राजस्थान का एकीकरण- जनमानस एवं जनचेतना

INTEGRATION OF RAJASTHAN: PEOPLE'S ASPIRATIONS AND CONSCIOUSNESS

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

को इतिहास विषय (सामाजिक विज्ञान संकाय) में

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

वर्ष– 2016

शोध निदेशक
डॉ. हुकम चंद जैन
प्राचार्य, अकलंक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कोटा
पूर्व विभागाध्यक्ष (सेवानिवृत्त) इतिहास विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

शोधार्थी
सुनीता मीना
व्याख्याता, इतिहास,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर

शोध-केन्द्र

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

APPENDIX- IX

CERTIFICATE BY THE SUPERVISIOR

It is certified that the-

1. **Thesis entitled ''राजस्थान का एकीकरण – जनमानस एवं जनचेतना'' (Integration of Rajasthan: People's Aspirations and Consciousness) Submitted by Mrs. SUNITA MEENA is an original piece of Research work carried out by the candidate under my supervision.**
2. **Literary Presentation is satisfactory and the THESIS is in a form of suitable for publication work.**
3. **Work evinces the capacity of the candidate for critical examination and independent judgment.**
4. **Candidate has put in at least 200 days of attendance every year.**

(Dr. Hukam Chand Jain)
Principal
Aklank Girls P.G. College, Kota

डॉ. हुकम चंद जैन
प्राचार्य, अकलंक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कोटा
पूर्व विभागाध्यक्ष (सेवानिवृत्त) इतिहास विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुनीता मीना पत्नी डॉ० हनुमान प्रसाद मीना ने ''राजस्थान का एकीकरण - जनमानस एवं जनचेतना'' विषय का व्यापक अध्ययन मेरे निर्देशन में लिखा है, इनका यह कार्य मौलिक तथा स्तरीय है। शोधार्थी ने विषय को व्यापक एवं विश्लेषणात्मक स्वरूप प्रदान कर इसकी उपादेयता को सार्थक बनाने का अथक प्रयास किया है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

शोध निदेशक

दिनांक

(डॉ. हुकम चंद जैन)

शपथ–पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.डी (इतिहास) में ‘‘राजस्थान का एकीकरण–जनमानस एवं जनचेतना ’’ विषय पर लिखित शोध–प्रबंध शोधार्थी द्वारा किया गया पूर्णतः मौलिक कार्य है। इस समग्र विषय अथवा इसके किसी भी अंश पर इससे पूर्व कोई शोध कार्य नहीं किया गया है।

शोधार्थी

दिनांक :

(सुनीता मीना)
व्याख्याता, इतिहास
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर

प्राक्कथन

सुप्त राजस्थान मेरे ! बद्ध राजस्थान।।

क्रूर युग के करूण रव में सुन नया आह्वान।।

19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में मराठा आक्रमण से भयभीत राजपूताना के राजाओं ने अंग्रेजों से सहायक संधियाँ करके ब्रिटिश संरक्षण स्वीकार कर लिया। शासकों को इससे आंतरिक विद्रोह और बाहरी संकट से मुक्ति तो मिल गयी किंतु वे आमोद–प्रमोद में इतने डूब गये कि अब अपने कर्त्तव्य से पूरी तरह विमुख हो चुके थे। अपनी प्रजा से उनका संपर्क पूरी तरह समाप्त हो चुका था। देशी राजा अंग्रेजों के गुलाम थे और उनकी रियासतें ब्रिटिश साम्राज्य को बनाए रखने का यंत्र मात्र बन कर रह गई थी। आम नागरिक, अंग्रेज,राजा और जागीरदार इन तीनों की गुलामी के बोझ से दबा हुआ था।

अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है और न वाणी।

साहस– हिम्मत तनिक नहीं है, निर्बल हूँ, हूँ पामर प्राणी।।

पर है ह्रदय अधमुख तन में, और जलन है भीतर भारी।

वह सुलगेगी, वह फैलगी, जल जावेगी दुनिया सारी।।

20 वीं सदी तक आते–आते राजपूताना के जनमानस के हृद्‌य में शासक वर्ग के शोषण से उपजी चिंगारी उग्र रूप धारण कर चुकी थी। विभिन्न रियासतों में प्रबुद्ध व्यक्तियों ने जनाधिकारों की प्राप्ति हेतु आम नागरिकों को सार्वजनिक जीवन के कार्यों हेतु प्रशिक्षित करना प्रारम्भ किया। राजपूताना के जनमानस के रियासती कुशासन और विदेशी सत्ता के विरुद्ध किये गये दोहरे संघर्ष के अध्ययन के बिना भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास अधूरा ही कहा जायेगा। एकीकरण से पूर्व राजपूताना 19 रियासतों, 3 ठिकानों तथा एक केन्द्र शासित प्रदेश में बँटा हुआ था। यहां के वीर, साहसी और अपने गौरव व आत्मसम्मान को प्राथमिकता देने वाले कृषक, आदिवासी तथा शहरी शिक्षित मध्यमवर्ग ने मिलकर जनचेतना की ऐसी लहर उत्पन्न की जिसमें राजशाही के

समस्त अवशेष विलीन हो कर रह गये। राजपूताना के जनमानस का यह संघर्ष ब्रिटिश भारत की जनता के संघर्ष से कई मायने में कठिन था क्योंकि एक तरफ तो सम्पूर्ण राजपूताना प्रदेश भौगोलिक बाधाओं से परिपूर्ण था, वहीं दूसरी ओर 19 छोटी–बड़ी रियासतों के कारण राजनीतिक दृष्टि से भी बँटा हुआ था। निंरकुश राजतन्त्रात्मक शासन के कारण राजनीतिक गतिविधियाँ, सभा सम्मेलन करना यहां पर अत्यधिक कठिन था। ब्रिटिश भारत के समान यहाँ की जनता को गांधी और कांग्रेस जैसे संगठन का नेतृत्व भी अंत तक प्राप्त नहीं हो सका। ऐसी विकट व दुरूह परिस्थितियों में भी जनमानस ने स्वयं अपने बल पर प्रजामंडल जैसे संगठन खड़े करके जमीनी स्तर पर रजवाड़ों व अंग्रेज दोनों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष का प्रदर्शन किया। जहां ब्रिटिश भारत की जनता का संघर्ष 1947 में ही समाप्त हो गया वहीं रियासती राजपूताना की जनता ने तब तक संघर्ष किया जब तक उन्हें सही मायने में उत्तरदायी शासन की प्राप्ति नहीं हो गयी। वास्तव में यह राजपूताना की वीर रियासती जनता का ही भय था जिसके कारण पहले ये निरंकुश शासक भारत संघ में विलय के लिये तैयार हुए और आगे चलकर इन्होंने अपनी–अपनी रियासतों को आधुनिक राजस्थान के भाग्य निर्माताओं को सौंप दिया। इस प्रकार बिना किसी हिंसक क्रांति के राजपूताना से राजशाही का सदा के लिए विलोपन हो गया। यहां के जनमानस ने अपनी राजनीतिक चेतना और जागृति के बल पर महाराणा प्रताप और सांगा के राजपूताना के एकीकरण के स्वप्न को साकार किया और आधुनिक राजस्थान के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया।

चिंता नहीं आज हमने भी,
अपना बल पहचान लिया है।
तुम आने दो वार, सामने,
हमने सीना तान लिया है।।

इतिहास 'आत्म–ज्ञान' का साधन है। स्वयं को जानने का अर्थ है, यह जानना कि 'पूर्व में जनमानस का मनोविज्ञान क्या था और सामाजिक, राजनीतिक जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा। हम यह तब तक नहीं जान सकते जब तक इतिहास को

जानने की कोशिश न करें। इसलिए कॉलिंगवुड ने कहा है कि 'मनुष्य क्या कर सकता है यह जानने का साधन उसे यह जानना है जो उसके किया है।' इसी प्रकार लार्ड एक्टन के अनुसार 'इतिहास मुनष्य के व्यक्तिगत कार्यों का सामान्यीकृत लेखा–जोखा है जो किन्हीं सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये एक निकाय में एकीकृत होते हैं।' वास्तव में इतिहास समाज में रहने वाले जनमानस के सार्वजनिक कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है। आज इतिहास का कार्य क्षेत्र, एवं उद्देश्य सब कुछ ही परिवर्तित हो गये हैं। अब इतिहास में राजा–महाराजाओं एवं सामंतों के क्रिया–कलापों की अपेक्षा, सामान्य जनमानस के कृत्यों को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

इतिहास की इसी अवधारणा को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने इस विषय का चयन किया है। जिससे रियासती राजपूताना के सामान्य जनमानस के उत्तरदायी शासन की प्राप्ति तथा राजस्थान के एकीकरण के लिये किये गये संघर्ष को भारतीय इतिहास में महत्व प्राप्त हो सके। साथ ही प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय इतिहास को समृद्ध बनाया जा सके और स्थानीय स्त्रोतों का बेहतर उपयोग हो। राजस्थान के इतिहास में जनता के सभी वर्गों ने सामूहिक रूप से राजतंत्र के विरुद्ध जाकर उत्तरदायी शासन प्राप्त करने के लिए जो संघर्ष किया उसे उचित महत्व प्रदान करने की आवश्यकता है। इसी कड़ी में मेरा यह एक छोटा सा प्रयास है।

यह शोध प्रबन्ध इस विषय पर पूर्व में हुए शोध कार्यों से इस दृष्टि से भिन्न है कि प्रथम तो यह अध्ययन किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित न होकर राजपूताना की समस्त रियासतों उनके भारतीय संघ में विलय व आगे चलकर राजस्थान संघ में एकीकरण को अपने अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित करता है। इस शोध अध्ययन में 20 वीं शताब्दी के राजपूताना के समस्त राजनीतिक घटनाक्रम का 1956 ई. तक का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। द्वितीय महत्वपूर्ण विशेषता इस अध्ययन में यह है कि इसमें राजस्थान के एकीकरण के विभिन्न चरणों के घटनाक्रम को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने का न केवल प्रयास किया गया है। अपितु विषय से संबंधित सभी पक्षों की मनोग्रंथियों को भी खोलने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''राजस्थान का एकीकरण– जनमानस एवं जनचेतना'' का उद्‌देश्य राजस्थान के एकीकरण और यहां की जनता के इस कार्य में योगदान पर प्रकाश डालना है। अध्ययन व सुविधा की दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभक्त किया गया है। **प्रथम अध्याय,** में विषय की पृष्ठभूमि में जाते हुए विषय का अवधारणात्मक व सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। **द्वितीय अध्याय,** में विलीनीकरण के संदर्भ में देशी रियासतों व उनके राजाओं की मनःस्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। **तृतीय अध्याय,** में राजपूताना की जनता की विलीनीकरण तथा एकीकरण में भूमिका का अध्ययन अवलोकन किया गया है। **चतुर्थ अध्याय,** में राष्ट्रवादी शक्तियों अर्थात विभिन्न राजनीतिक दलों, नेताओं व सामान्य जनमानस द्वारा राजस्थान के एकीकरण के लिये किये गये प्रयासों का विश्लेषण किया गया है। **पंचम अध्याय,** में राजस्थान के एकीकरण के दो चरणों, मत्स्य संघ और संयुक्त राजस्थान के निर्माण पर प्रकाश डाला गया है। **षष्ठम् अध्याय,** में एकीकरण के तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम चरणों क्रमशः संयुक्त राजस्थान (द्वितीय), वृहद राजस्थान तथा संयुक्त वृहद राजस्थान के निर्माण का विश्लेषण किया गया है।**सप्तम अध्याय** में 1952 ई. के प्रथम आम चुनाव एवं उसके पश्चात् के परिदृश्य की मीमांसा की गई है। **अष्ठम् अध्याय,** में एकीकरण के अंतिम चरण सिरोही व अजमेर के विलय की व्याख्या की गयी है तथा **नवम् अध्याय** में अध्ययन का निष्कर्ष व मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का पूर्ण होना एक दिव्य स्वप्न के साकार होने के समान है जिसका सर्वाधिक श्रेय मैं अपने विद्वान गुरू और मार्गदर्शक डॉ0 हुकमचंद जैन (शोध निदेशक) को देना अपना महत्ती कर्त्तव्य समझती हूँ। मैं विद्यार्थी जीवन से ही इनकी लिखी पुस्तकें पढ़कर ज्ञान ग्रहण करती रही हूँ। विषय चयन से लेकर विषय सामग्री के संकलन, विश्लेषण एवं लेखन में इनके निर्देशन के लिये आभार को शब्द सीमा में बांधना संभव नहीं है। आज भी आप निरंतर अध्ययनशील और लेखन में व्यस्त हैं। इनसे शोध की सूक्ष्म दृष्टि का प्रशिक्षण पाना मेरे लिये गर्व का विषय है।

इस शोध कार्य के लेखन में डॉ0 मधुमुकुल चतुर्वेदी (विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान) का आशीर्वाद व विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन हमेशा मेरे साथ रहा तथा इन्होंने समय–समय पर अपने विद्वतापूर्ण सुझाव देकर नवीन उद्‌भावनाओं को उद्‌घाटित कर

शोध को परिष्कृत करने के लिए मुझे प्रेरित किया। अतः इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना भी मेरा पुनीत कर्त्तव्य है।

मैं डॉ0 मोहनलाल गुप्ता (जन सम्पर्क अधिकारी, जयपुर), डॉ0 ज्योति अरूण (व्याख्याता, राजनीति विज्ञान) को भी इस शोध लेखन में असाधारण सहयोग प्रदान करने के लिए आभार व्यक्त करती हूँ। धैर्य के साथ कम्प्यूटर टाईप का कार्य करने पर श्री जिनेन्द्र को भी मैं धन्यवाद् देती हूँ।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों के सहयोग के लिए मैं आभार व्यक्त करती हूँ विशेष रूप से श्री अरूण श्रीवास्तव, श्री सोहनलाल, श्री फरीद अहमद तथा रिसर्च ऑफिसर श्री अशोक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

नेहरू स्मृति संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली के भी समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों को मैं अपने शोध कार्य में सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती हूँ। विशेषकर पुस्तकालय का उपयोग करने के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष की शुक्रगुजार हूँ एवं आभार व्यक्त करती हूँ।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों विशेषकर श्री हरिमोहन मीना, श्री पूनम चंद जोहिया, श्री ज्ञान चंद तथा निदेशक, डॉ0 महेन्द्र सिंह खड़गावत को प्रदत्त सहयोग के लिये आभार।

राजकीय महाविद्यालय, कोटा के इतिहास विभाग को मैं उनके सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए धन्यवाद् ज्ञापित करती हूँ। इस क्रम में मैं इतिहास के विभागाध्यक्ष डॉ. बाबूसिंह नरूका एवं संकाय सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूँ।

मैं जिन अन्य संस्थाओं का लाभ उठा सकी उसमें राज्य अभिलेखागार जयपुर, राज्य अभिलेखागार अलवर, राधाकृष्णन पुस्तकालय जयपुर, राजस्थान विश्वविद्यालय शोध शाखा एवं पुस्तकालय जयपुर, केन्द्रीय पुस्तकालय, राजकीय महाविद्यालय, कोटा, महाराजा गंगासिंह पुस्तकालय बीकानेर, राजकीय पुस्तकालय सवाई माधोपुर,

पुस्तकालय राजकीय महाविद्यालय सवाई माधोपुर आदि प्रमुख हैं। अतः मैं इन सभी संस्थाओं की आभारी हूँ।

मैं अपने पति डॉ. हनुमान प्रसाद मीना (व्याख्याता, राजनीति विज्ञान) के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके अमूल्य सहयोग के बिना इस शोध प्रबन्ध का पूर्ण होना संभव नहीं था।

मेरे पिता श्री बी.एल.मीना, माताजी श्रीमती विमला देवी, और ससुर श्री कन्हैयालाल मीना, सास श्रीमती तुलसी देवी के प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। मेरे दोनों पुत्रों तेजस एवं सुलक्ष ने भी इस कार्य में हमेशा मेरा सहयोग किया। मेरे वात्सल्य एवं स्नेह की पूर्ति अब इनके लिये सहज, सुलभ हो जायेगी।

अंत में मैं अपने समस्त परिजनों एवं मित्रों को भी सादर धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने पाठ्य सामग्री के संकलन में मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया। साथ ही उन सभी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस शोध कार्य में मुझे सहयोग दिया है।

दिनांक .... **(सुनीता मीना)**

विषय-सूची

अध्याय – प्रथम.. (13 – 61)

प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि : विषय का अवधारणात्मक व सैद्धान्तिक विवेचन

अध्याय – द्वितीय .... (62 – 143)

विलीनीकरण के संदर्भ में देशी रियासतों का मनोविज्ञान

अध्याय – तृतीय .... (144 –209)

विलीनीकरण में जनमानस की भूमिका

अध्याय – चतुर्थ.. (210 – 239)

विलीनीकरण हेतु किये गये प्रयास

अध्याय – पंचम.. (240 – 259)

विलीनीकरण के प्रारंभिक चरण

अध्याय – षष्ठम्.. (260 – 295)

विलीनीकरण में उत्तरोत्तर प्रगति

अध्याय – सप्तम्.. (296 – 333)

राजस्थान में प्रजातंत्र की स्थापना (1947–1952)

अध्याय – अष्ठम्.. (334 – 351)

विलीनीकरण का अंतिम चरण व वर्तमान स्वरूप

अध्याय – नवम्.. (352 – 361)

निष्कर्ष एवं आत्मकथ्य

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)..(362 – 378)

परिशिष्ट (APPENDIX)

I.	अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व नहीं दिये जाने से सम्बन्धित एक समाचार।	379
II.	जोधपुर रियासत द्वारा जनता को उत्तरदायी शासन प्रदान करने सम्बन्धी समाचार, वीर अर्जुन, दिल्ली 29 जुलाई, 1945	380
III.	जोधपुर में जन–आन्दोलन, विश्वामित्र, 02 अगस्त, 1942 बम्बई	381
IV.	जैसलमेर के दीवान द्वारा पश्चिमी राजपूताना ऐजेंसी के रेजिडेन्ट को 11 जून 1937 को देशी रियासतों के संघ में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में लिखा पत्र।	382
V.	राजस्थान की प्रथम विधान सभा के सदस्यों का निर्वाचन, 22 फरवरी, 1952 को प्रकाशित राजस्थान गजट	383
VI.	झालावाड़ रियासत द्वारा जनता को पूर्ण उत्तरदायी शासन, गजट 3 फरवरी, 1948	384 385 386
VII.	अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद द्वारा रियासतों में उत्तरदायी शासन की मांग – द हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 अप्रैल, 1947 दिल्ली।	387
VIII.	संयुक्त राजस्थान का गठन– द हिन्दुस्तान टाइम्स, 19 अप्रैल, 1948	388
IX.	अजमेर–मेरवाड़ा प्रदेश के राजस्थान मे ंविलय से सम्बन्धित समाचार– 30 जून, 1948	389
X.	सरदार पटेल द्वारा देशी रियासतों को संविधान सभा में प्रवेश की चेतावनी।	390
XI.	देशी रियासतों के जनमानस की स्थिति को व्यक्त करता चित्र।	391

(सभी दस्तावेज राज्य अभिलेखागार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

मानचित्र

अध्याय : प्रथम
प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि : विषय का अवधारणात्मक व सैद्धान्तिक विवेचन

''......... अगर हम सारे भारत को जिलों में बांट दे तो स्थितियां ऐसी नहीं हैं कि हमारा साम्राज्य 50 साल तक भी चले किन्तु यदि हम देशी रियासतों को शाही उपकरणों के रूप में रखें तो हम भारत में तब तक के लिये रहेंगे जब तक हमारी नोसैनिक शक्ति बनी रहेगी।''

— लार्ड केनिंग

प्रकृति ने भारत का निर्माण आत्महित की दृष्टि से कमोबेश एक पर्याप्त इकाई के रूप में किया किन्तु ऐतिहासिक दुर्घटनाओं ने इसे बहुसंख्यक राजनीतिक अस्तित्वों में विभक्त किया।[1] यद्यपि भारत भौगोलिक दृष्टि से एक इकाई बना रहा किन्तु राजनीतिक दृष्टि से एक इकाई के रूप में यह कभी नहीं रह पाया। प्राचीन काल से ही राजनीतिक दृष्टि से इसे एक इकाई बनाने के प्रयत्न किये जाते रहे किन्तु पूर्ण सफलता कभी नही मिल सकी।

भारत में ऋग्वैदिक काल से पूर्व ही राज्य व्यवस्था बननी प्रारम्भ हो गयी थी। वैदिक काल में स्थापित राजवंशों में से सूर्यवंशी, चंद्रवंशी तथा यदुवंशी क्षत्रियों के राज्य दीर्घ काल तक उत्तर भारत में बने रहे।[2] सूर्यवंशी राजाओं में इक्ष्वाकु वंश सबसे महान राजवंश हुआ जिसमें राजा रन्तिदेव, अज, रघु, दिलीप तथा राजा रामचंद्र जैसे महान राजा हुए।[3] चन्द्रवंशियों में भरतवंश प्रतापी राजवंश हुआ, जिसमें महाराजा दुष्यंत, भरत, युधिष्ठिर और परीक्षित आदि बड़े राजा हुए। यदुवंशियों में श्री कृष्ण तथा महाराजा भट्टि आदि बड़े प्रतापी शासक हुए कालांतर में नाग, मौर्य तथा गुप्तवंश आदि प्रबल प्रतापी राजवंश भी स्थापित हुए और काल के प्रवाह में बह गये, किन्तु सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी और यदुवंशी राजाओं के छोटे–बड़े राज्य भारत में बने रहे।

शनैः शनैः समय बीतता गया और इन राजवंशो में से अनेक शाखाएं विकसित होती गयी। पश्चिमी भारत में यौधेय, मालव, शिवि, साल्व, अर्जुनायन, वाकाटक, कुणिंद, मघ, उत्तमभद्र आदि क्षत्रिय कुलों ने राजतंत्र अर्द्ध राजतंत्र तथा जनपदीय शासन व्यवस्थायें स्थापित की।[4] काल के प्रवाह के साथ शक, कुषाण, हुण, खिजर, आभीर, पह्लव इत्यादि विदेशी शासक भारत भूमि पर आक्रांताओं के रूप में आये और भारतीय क्षत्रियों में विलीन हो गये।[5] 5 वीं शताब्दी में मेवाड़ में गुहिलों का प्रतापी राजवंश स्थापित हुआ।[6] जब सातवीं शताब्दी में वर्धन, चावड़, मौखरी एवं परवर्ती मौर्य विनाश को प्राप्त हुए तो उत्तर एवं पश्चिमी भारत में प्रतिहार, परमार, चौहान, चालुक्य तथा भाटी और राठौड़ जैसे राजपूत राजवंशो का उद्भव हुआ।[7]

भारतीय इतिहास में 7 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक के काल को राजपूत काल की संज्ञा दी जाती है।[8] यद्यपि इनकी उत्पत्ति के विषय में विवाद है किन्तु अधिकांश भारतीय विद्वान इन्हें वैदिक आर्यों की ही संतान मानते हैं।[9] तत्कालीन भारतीय स्त्रोंतो में राजपूतों के 36 कुलों का उल्लेख मिलता है।[10] गुर्जर, प्रतिहार, परमार, चौहान, चालुक्य, भाटी, तथा राठौड़ राजवंशों में से कुछ राजवंशों को सूर्यवंशी कुछ को चन्द्रवंशी तथा कुछ राजवंशों को यदुवंशी कहा जाता है। कुछ राजवंशों के विषय में विवाद है कि वे प्राचीन सूर्य, चन्द्र, अथवा यदुवंशी राजकुलों की ही शाखाओं में से थे अथवा प्राचीन राजवंशों से हटकर पूर्णतः नवीन राजकुल स्थापित हुए थे।[11] यह वह समय था जब अरब के रेगिस्तान में इस्लाम का जन्म हो रहा था।

जब 7वीं शताब्दी में इस्लाम का उदय हुआ तो भारतीय राजकुल खतरे में आ गये। इस्लामी आक्रांता बगदाद के खलीफा को यह वचन देकर भारत पर आक्रमण करते थे कि वे इस्लाम के प्रचार के लिये जा रहें हैं किन्तु उनके उद्देश्य अक्सर दोहरे थे। वे इस्लाम के प्रचार के साथ–साथ भारत की अथाह धन सम्पदा को लूटना चाहते थे।[12] इसी के चलते 712 ई. में सिंध क्षेत्र के शासक दाहिरसेन, 1001 ई. में पंजाब के राजा जयपाल, 1192 ई. में दिल्ली और अजमेर के प्रतापी चौहान शासक पृथ्वीराज चौहान की पराजय हुई। ये भीषण पराजये थीं। जिनके कारण भारतीय शासक कमजोर होते चले गये और भारत में इस्लामी शक्ति का प्रसार होता गया।

बहुत से राजवंश सदा–सदा के लिये काल के गाल में समा गये किन्तु कुछ भारतीय राजवंश इन विषम परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व बचाये रख सके।

मध्ययुग के आरम्भ में राजपूताना क्षेत्र में राजपूत जाति के विविध कुलों के कई छोटे–बड़ें राज्य थे जो अपने कुल की शक्ति, प्रभाव और राज्यविस्तार के लिए सक्रिय रहते थे। वंशमूलक महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित राजपूत राज्यों में आपसी ईर्ष्या और संघर्ष बहुत अधिक रहता था।[13] फिर भी सोलहवीं सदी के मध्य तक अधिकांश राजपूत राज्यों में नेतृत्व साधारणतः एक कुल विशेष के पास ही बना रहा, जैसे बारहवीं सदी के अंत तक चौहानों का, तेरहवीं से सोलहवीं सदी के मध्य तक सिसोदियों का और इसके पश्चात् से कुछ समय के लिये राठौड़ों का नेतृत्व रहा।

1526 ई. में जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय मेवाड़ के महाराणा सांगा के नेतृत्व में राजपूतों ने खानवा के युद्ध में बाबर को जबरदस्त टक्कर दी। किन्तु बाबर सांगा को परास्त करके भारत में मुगल साम्राज्य को निरापद बनाने में सफल रहा।[14] इसके पश्चात् भारतीय राजकुल और अधिक संकट में आ गए। उस समय राजपूताना में 10 राज्य थे– मेवाड़ (उदयपुर), ढूंढाड़ (आम्बेर) मारवाड़ (जोधपुर) बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, बूँदी, बांसवाड़ा, डूंगरपुर एवं करौली। अकबर की सुलहकुल नीति ने इन राजकुलों को एक तरफ तो सरंक्षण की ऑक्सीजन देकर अधीनस्थ स्थिति में जीवित रहने और मुगल साम्राज्य के स्वामिभक्त रक्षक बने रहने का अवसर प्रदान किया। वहीं दूसरी तरफ स्वर्ण जंजीरों में जकड़ कर सदियों के लिये अफीम की नींद सुला दिया। जिस प्रशंसनीय वीरता आत्मोत्सर्ग तथा स्वातन्त्रय प्रेम के लिये राजपूत राजकुल जाने जाते थे। उन्होंनें उन्हीं आदर्शों का सदा–सदा के लिए परित्याग कर दिया। वैसे तो अकबर ने इन राजपूत राज्यों की आंतरिक व्यवस्था में परिवर्तन नहीं किया लेकिन उसने अधीनता स्वीकार करने वाले शासकों को शाही सेवा में नियुक्त करके इन राजकुलों के राजाओं को गैर हाजिर शासक बना दिया।[15] इस युग में केवल मेवाड़ ही ऐसा राज्य था जिसने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की और इसके उपरांत भी बना रहा।[16]

वंश परम्परा के अनुसार राजपूत राजघराने तीन वर्गों में विभक्त थे–सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी और अग्निवंशी।[17] सूर्यवंशी राजपूतों के तीन कुल थे– सिसोदिया (मेवाड़) कछवाहा (ढूंढाड़) और राठौड़ (मारवाड़) राजपूताना की अन्य रियासतों के संस्थापकों में से अधिकांश शासक इन्हीं तीन बड़े राज्यों के वंशज थे। सिसोदिया कुल के पाँच राजघराने थे उदयपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा और शाहपुरा। कछवाह कुल के दो राजघराने थे जयपुर और अलवर एवं राठौड़ कुल के तीन राजघराने थे जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़। चन्द्रवंशी राजपूतों के दो कुल थे, यादव और भाटी और अग्निवंशी में केवल चौहान कुल का शासन था। यादव कुल का शासन करौली में और भाटी कुल का शासन जैसलमेर में था बूँदी और कोटा में चौहान कुल की हाड़ा शाखा का एवं सिरोही में देवड़ा का शासन था। इनमें से मेवाड़ हर तरह से अन्य समस्त राज्यों में उच्च स्थान रखता था। जहाँ राजपूताना की अन्य सब रियासतें अकबर के अधीन हो गयी थीं। वहीं मेवाड़ ने अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखा।[18] मेवाड़ को विजित कर उसे अपने अधीन बनाने तथा वहां के राणा को अपने शाही दरबार में समुपस्थित देखने की उसकी तमन्ना कभी भी पूरी नहीं हो सकी। जहांगीर के समय में मेवाड़ को मुगलों से संधि करनी पड़ी जो औरंगजेब के समय में भंग हो गयी।[20]

राजपूताना के सात राज्यों–कोटा, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, किशनगढ़, प्रतापगढ़ तथा शाहपुरा की स्थापना मुगलों के काल में हुई। इन्हें मिलाकर राजपूताना के राज्यों की संख्या 17 हो गयी। औरंगबेज के शासन काल में मुगल–राजपूत सम्बंधो में काफी उतार चढ़ाव देखने को मिले उसकी धर्मान्धता ने आन्तरिक रूप से लगभग सभी राजपूती रियासतों को उसका विरोधी बना दिया।[21] राजपूत राजवंशों ने मुगल साम्राज्य के शक्तिशाली स्तम्भों का कार्य किया किन्तु औरंगजेब उनकी मित्रता का मूल्य समझने में असफल रहा।[22] उसकी मृत्यु के पश्चात् अधिकांश राजपूत राजवंशों ने मुगलों से संबंध विच्छेद कर लिये तथा मुगल साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया।

1734 ई. में मुगलों के पराभव से लेकर 1817 ई. तक का भारतीय इतिहास अराजकता का इतिहास है और इस अराजकता का दंश राजपूताना की रियासतों को भी झेलना पड़ा। केन्द्रीय सरकार के क्षीण हो जाने के कारण अनेक छोटे–छोटे रजवाड़ों का उदय हुआ। इनमें से कुछ ही जैसे कि हैदराबाद, बंगाल और अवध को

विभाजन से निर्मित राज्य कहा जा सकता है। मराठा जाट, सिक्ख और अफगान अन्य श्रेणी में आते थे, उनके बीच नेतृत्व को लेकर विवाद चलता रहता था।[23] सम्पूर्ण उपमहाद्विप में छोटे–छोटे स्वतन्त्र राजवंश विकसित हो गये। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के नेतृत्व में विदेशी आक्रमणों ने अव्यवस्था को और बढ़ा दिया। क्षेत्रीय शक्तियों में मराठे सबसे शक्तिशाली बन कर उभरे।

17 वीं शताब्दी में मराठों का उत्थान भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है।[24] शिवाजी ने यत्र–तत्र बिखरी हुई दक्षिण की मराठा शक्ति को संगठित किया। जिससे मराठा–मुगल सम्पर्क 16 शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हुआ।[25] राजपूत शासकों का मराठों से सम्बन्ध प्रारम्भ में मुगल सेना नायकों के रूप में हुआ। औरंगजेब अपने पूर्ण प्रयासों के उपरांत भी मराठों को परास्त नहीं कर सका। औरंगजेब के अन्तिम दिनों में ही मराठों ने मुगल प्रान्तों में लूटमार प्रारम्भ कर दी थी। जो उसकी मृत्यु पर्यन्त निरन्तर बनी ही रही। मुगल सम्राट एक के बाद एक आते जाते रहे। वे अपनी ही आन्तरिक समस्याओं में इतने उलझे हुये थे की मराठों को लूटमार करने से रोक नहीं सके।[26] राजपूताना की रियासतों के साथ मराठों का सीधा सम्बन्ध उनके मालवा गुजरात में प्रवेश के साथ ही प्रारम्भ होता है। यह स्वाभाविक ही था कि दिल्ली तक जाने की इच्छा रखने वाले मराठा, बीच में पड़ने वाले भाग राजपूताना को भी प्रभाव में लाना चाहते थे। 1711 ई. में मराठों ने प्रथम बार मेवाड़ में लूटमार तथा चौथ वसूली की। मराठे बार–बार राजपूत रियासतों पर आक्रमण करते रहे जबकि राजपूत शासक परस्पर राग–द्वेषों में ही उलझे रहे। उन्होंने मराठा समस्या की गम्भीरता को समझा ही नहीं। उनका इस हद तक पत्तन हो चुका था कि वे पारस्परिक उत्तराधिकार संघर्ष में उनको आमंत्रित करने लगे।[27] बूँदी, जयपुर, मारवाड़ तथा मेवाड़ के उत्तराधिकार संघर्ष में मराठों के हस्तक्षेप ने राजपूताना की रियासतों की निर्बलता की पोल खोल कर रख दी।[28] सिन्धिया और होल्कर की लूट–मार जहाँ राजपूताना को राजनैतिक शून्यता प्रदान कर रही थी वहीं राजाओं, सामन्तों व जागीदारों के मध्य पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या और स्वार्थ के वृक्ष को भी पोषित कर रही थी।[29] 1817 ई. तक राजपूताना के अधिकांश राज्य मराठों द्वारा आक्रांत किये गये

किन्तु इस काल में कोई नया राज्य अस्तित्व में नहीं आया और न ही किसी पुराने राज्य का अस्तित्व समाप्त हुआ।

इधर 1498 ई0 में पुर्तगाली वास्को–डि–गामा की भारत खोज ने यूरोपीय देशों के लिये भारत में व्यापार के द्वार खोल दिये।[30] 1599 ई में लंदन के व्यापारियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की। उक्त कम्पनी ने 1601 ई. में भारत से व्यापार करना शुरू किया। सन् 1612 में कम्पनी ने मुगल सम्राट जहांगीर से कतिपय नगरों में व्यापार करने का फरमान प्राप्त कर लिया सन् 1616 ई. में ब्रिटेन के सम्राट जेम्स प्रथम ने अपने राजदूत सर टॉमस रो को जहांगीर के दरबार में भेज कर भारत में कंपनी की स्थिति को और अधिक सुदृढ़ कर लिया।[31] पुर्तगाली, डच, फ्रैंच और अंग्रेज भारत में व्यापार के नाम पर शनैः शनैः अपने पैर जमाते रहे, जबकि भारतीय शक्तियां आपस में ही उलझी रही। ये यूरोपीय जातियाँ व्यापारी बन कर आयी थीं किन्तु इनके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में धर्म का झण्डा था। भारत में अपने वर्चस्व की स्थापना से पूर्व इन जातियों को आपस में ही एक दूसरे से निपटना था। लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक ये यूरोपीय जातियां एक दूसरे से संघर्ष करती रहीं। वर्चस्व की लड़ाई के लिये इंग्लैण्ड और फ्रांस में सौ वर्ष का युद्ध चला संसार में शायद ही कभी किन्ही देशों ने इतनी दीर्घ लडाई लड़ी हो। वर्चस्व की इस लड़ाई में अंग्रेजों को विजय प्राप्त हुई। कम से कम भारत में वे निर्विवाद शासन करने की स्थिति में आ गये।

1757 ई. में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों को पहली बार भारत में राजनीतिक शक्ति प्राप्त हुई।[32] जिससे बंगाल में उन्हें सरकार स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। एक–एक करके उन्होंने समस्त भारतीय राजनीतिक शक्तियों को परास्त करके उन्हें सहायक संधी स्वीकार करने पर विवश किया।[33] जहां तक राजपूत राजाओं का प्रश्न है, 18 वीं शताब्दी के अन्त तक वे पतन की ऐसी गर्त में डूब चुके थे कि उनमें अपनी आत्मरक्षा तक का साहस शेष नहीं रहा।[34] विभिन्न राजपूत शासकों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं तथा पारस्परिक प्रतिस्पर्धाओं के कारण उनमें जघन्य व पाश्विक प्रवृतियां घर कर चुकी थी। लगभग अस्सी वर्षों तक मराठों, पिण्डारियों तथा पठानों ने राजपूताना को जी भर कर लूटा और आम जनता में त्राहि–त्राहि मचा दी। ऐसी परिस्थितियों में उनके सामने अंग्रेजों का सरंक्षण[35] प्राप्त करने तथा उनके

साम्राज्यवाद का समर्थन करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहा[36] क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार सहायक संधि प्रथा की संधियों के अन्तर्गत इन राज्यों को अपनी शरण में नहीं लेती तो संभवतः इस राज्यों का अस्तित्व ही समाप्त हो चुका होता। ये संधियां डूबते को तिनके का सहारा जैसी दिखाई दी व इतना मजबूत सहारा सिद्ध हुई कि ये राज्य विनाशधारा में डूबने से बच गये।[37]

''Almost all the ruler's sent their vakils to response to Lord Hasting's call for subsidiory alliance and between 1803 to 1821 the states of Rajaputana condnded their protective alliances with the British. The engagements contracted with the british by the ruling chiefs of rajasthan provided the desired protection to them against internal and external dangers on payment and loyal co-operation with the paramount power.[38]

इस प्रकार सन्धि की शर्तों के अनुसार रियासती शासकों को बाहरी प्रभुसत्ता से पूर्णतया वंचित कर दिया गया व आन्तरिक प्रभुसत्ता का कम्पनी व रियासतों के शासकों के मध्य अस्पष्ट शब्दों में बँटवारा करते हुए व्यवस्था की गई कि 'एक अंग्रेज राजनीतिक प्रतिनिधि दरबार में रहेगा, वह राजा को सलाह देगा तथा आन्तरिक कुशासन अथवा संकट के समय हस्तक्षेप करेगा।''[39] वास्तव में अंग्रेज रेजीडेन्ट रियासतों में ब्रिटिश गवर्नर जनरल का प्रतिनिधि मात्र था किन्तु रियासती भारत का समस्त इतिहास अंग्रेज रेजीडेन्टों के रियासतों के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप से भरा पड़ा है। व्यवहार रूप में अंग्रेज रेजीडेन्ट की मर्जी के बिना रियासत में पत्ता भी नहीं हिलता था। अंग्रेज सरकार को वे रियासत की छोटी से छोटी गतिविधियों से परिचित करवाते थे। यहां तक की वे अपनी शक्तियों का विभत्स प्रयोग करते हुए शासकों के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने से नहीं चूकते थे।

"The whisper of the residency was the thunder of the states and that advice of the resident was usually an order of a command." [40]

इस प्रकार देशी शासकों ने सुरक्षा की धुन में अपनी स्वतन्त्रता को हमेशा के लिये खो दिया। स्वतंत्रता की हानि से जो किंचित दुःख उन्हें हुआ। वह कुछ वर्षों में शान्त हो गया। नेरेशगण अंग्रेजी सरकार की शक्ति को दुर्धर्ष व दुर्निवार्य समझकर अधीनता के आदी बन गये। उनकी दूसरी पुश्त स्वतन्त्रता की चिंता करना ही भूल गई। राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजी शासन भी भारत को एक इकाई के रूप में निर्मित नहीं कर पाया। भारत का विशाल भू–भाग जो कंपनी के प्रत्यक्ष नियंत्रण में था ''ब्रिटिश भारत'' कहलाया। जबकी भारत का वह भू–भाग जो महाराजाओं, राजाओं, जागीरदारों, जमींदारों आदि के नियंत्रण में था (जिस पर कम्पनी का अप्रत्यक्ष नियंत्रण था।) ''रियासती भारत'' कहलाया। इस प्रकार ब्रिटिश भारत पर कम्पनी का प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा रियासती भारत पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण था क्योंकी हमारे अध्ययन का विषय रियासतों में विभाजित राजपूताना के एकीकरण से सम्बन्धित है। इसलिए यहां पर 'रियासत' शब्द को परिभाषित करना भी अनिवार्य है। रियासत की परिभाषाएं रियासत के द्वारा उपभोग किये जाने वाले अधिकार एवं रियासत तथा सार्वभौम सत्ता के मध्य सम्बन्धों के आधार पर दी गई है। ''एक स्वदेशी राज्य (रियासत) एक राजनीतिक समुदाय है जो भारत की परिभाषित सीमा का एक क्षेत्र घेरे हुए है, तथा एक सामान्य तथा जिम्मेदार शासक की प्रजा है, जिसने आन्तरिक सार्वभौमिकता का ब्रिटिश सरकार की अनुमति से आनन्द लिया व क्रियान्वित किया हो। जिनकी सार्वभौमता की अविभाज्यता भारतीय सार्वभौमिक राज्यों की प्रणाली के साथ नहीं है।''[41] एक अन्य परिभाषा यह भी दी जाती है। कि ''कोई क्षेत्र चाहे एक राज्य की तरह, एक स्टेट, एक जागीर अथवा अन्य किसी प्रकार वर्णित हो, रियासत है,' जिनकी प्रभुत्ता ब्रिटिश शासक की प्रभूत्ता के अधीन हो एवं जो ब्रिटिश भारत का हिस्सा न हो''[42]

भारतीय रियासतों की संख्या विवादास्पद है बटलर कमेटी व साइमन कमीशन ने रियासतों की संख्या 562 बताई, जबकि ज्वाइन्ट पार्लियामेन्टरी कमेटी ऑन इण्डिया कान्स्टीट्यूशनल रिफॉर्म्स ने रियासतों की संख्या 600 तथा रियासती मंत्रालय, भारत सरकार ने यह संख्या 584 बताई है।[43] 1825 ई. में सर जान स्टुअर्ट मिल ने कहा कि देशी राज्यों को समाप्त कर दिया जाना चाहिये किन्तु कम्पनी के पुराने प्रशासक जॉन मैल्कम का मानना था कि देशी राज्य अंग्रेजों की असली शक्ति है।[44] अतः भारतीय

राज्यों को बने रहने दिया गया। वास्तव में मैल्कम का कहा तब सच सिद्ध हुआ जब 1857 की क्रांति के समय भारतीय देशी रियासतों ने क्रांतिकारियों के विरूद्ध अंग्रेजों के लिए ढाल का कार्य किया। कम्पनी के शासन के दौरान राजपूताना में दो नये राज्य अस्तित्व में आए–टोंक तथा झालावाड़। उपरोक्त रियासतों के अतिरिक्त राजपूताना में तीन ठिकाने लावा, कुशालगढ, नीमराणा, भी थे। इनके अतिरिक्त विजयनगर तथा ईडर भी राजपूताना की रियासतें मानी जाती थी।

शोध विषय का अवधारणात्मक विवेचन

पृष्ठभूमि के सामान्य परिचय के पश्चात् अब शोध विषय के शीर्षक में प्रयुक्त आधारभूत शब्दों की व्याख्या कर देना आवश्यक है ताकि विषय से सम्बन्धित हमारी अवधारणा स्पष्ट हो सके। शोधार्थी का शोध विषय है–

''राजस्थान का एकीकरण – जनमानस एवं जनचेतना''

उपर्युक्त शीर्षक में प्रयुक्त कुछ शब्द व्याख्या सापेक्ष है। अतः इनका अवधारणात्मक स्पष्टीकरण यहां प्रस्तुत करना आवश्यक है।

राजस्थान का एकीकरण– राजस्थान से हमारा आशय भूतपूर्व देशी रियासतों के विलय के फलस्वरूप गठित भारतीय गणतन्त्र के उस राज्य या प्रदेश से है, जो संप्रति इस नाम से अभिहित किया जाता है। तथा जो स्वतन्त्रता पूर्व जार्ज टॉमस द्वारा प्रयुक्त शब्द 'राजपूताना' नाम से जाना जाता था।[45] इन देशी रियासतों या रजवाड़ों का सामूहिक रूप से बोध कराने के लिये ''राजस्थान'' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कर्नल जेम्स टॉड ने किया था। फलतः सन 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब राजपूताना की देशी रियासतों के विलय के फलस्वरूप इस प्रदेश का पुनर्गठन हुआ तो इस राज्य का कर्नल टॉड द्वारा प्रयुक्त ''राजस्थान'' नाम ही स्वीकार किया गया।

जहाँ तक एकीकरण का प्रश्न है तो देश की स्वतन्त्रता के समय भारत में 562[46] छोटी–बड़ी देशी रियासतें थी। जिन्हे येन–केन प्रकरेण ब्रिटिश भारत के साथ–मिलाकर भारत संघ का निर्माण किया गया। राजस्थान में इस समय 19 रियासतें, 3 ठिकानें तथा एक केन्द्र शासित प्रदेश था। इन सभी रियासतों को विभिन्न चरणों में एकत्रित करते हुये 30 मार्च 1949 को सरदार पटेल ने उद्घाटन किया,

इसका नाम जैसा कि हमने पूर्व में बताया राजस्थान रखा गया तथा राजस्थान को भारतीय संघ के एक राज्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई। इस प्रकार सदियों से बिखरी हुई इन छोटी–बड़ी रियासतों को एकीकरण के माध्यम से एक भौगोलिक व राजनीतिक पहचान मिली।

प्रदेश या राज्य के अर्थ में 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग कर्नल टॉड के द्वारा ही किया गया था तथापि एक भिन्न अर्थ में राजस्थान शब्द का प्रयोग हमें कर्नल टॉड से भी पहले मिलता है। वस्तुतः मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में 'राजस्थान' सहित इसके अपभ्रंश रूपों 'राजसथान,' 'राजथान,' राजस्थाण' आदि का जगह–जगह प्रयोग हुआ है, जो किसी राज्य या प्रदेश विशेष का वाचक न होकर राजधानी के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। उदाहरणतः–

01. **''उठे खीचीयां रा गांव अर राजस भूम खरलां री।**
सो खरलां रो राजथांन बांवरी–बांवरे।''[47]

02. **''इतरे गोहिलां पिण आलोज कियौ जो पुंवारा का लिया।**
लुदखे राजस्थान बांध्यो।''[48]

03. **''रावलजी श्री देवराजजी नव कोट पुंवारां का लिया।**
लुदखे राजस्थान बांध्यों।''[49]

उपर्युक्त उद्धरणों में ''राजस्थान' शब्द 'राजधानी' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। परन्तु 'राजपूताने' के भूतपूर्व राजवाड़ों के लिये सामूहिक रूप से बोधक एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र या पृथक राजनैतिक इकाई के रूप में इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कर्नल टॉड ने ही किया जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस पुनर्गठित राज्य के लिए स्वीकार कर लिया गया। हमने इसे यहां इसी अर्थ में ग्रहण किया है।

यहां प्रसंगतः राजस्थान के प्रचीन इतिहास की चर्चा कर देना भी समीचीन होगा। यदि राजस्थान के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि निक्षेप करें तो विदित होगा कि प्रस्तुत नामकरण से पूर्व राजस्थान प्रदेश के विविध भू–भाग विभिन्न नामों से जाने जाते थे तथा समय–समय पर यहाँ विभिन्न राजवंशों का शासन रहा। उदाहरणतः राजस्थान के सैकत भू–भाग, जिसके अन्तर्गत मारवाड़ तथा थार रेगिस्तान का भू–क्षेत्र

(जैसलमेर, बीकानेर, बाडमेर, आदि जिले) सम्मिलित था, के लिये मरू या मरूदेश का उल्लेख हमें ऋग्वेद[50] महाभारत[51] वृहतसंहिता[52] इत्यादि प्राचीन ग्रंथों तथा रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख तथा पाल अभिलेखों में मिलता है। आगे चलकर मरूदेश केवल मारवाड़ आदि के रेतीले भू–भाग का ही वाचक न रहकर अधिक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, जैसा कि यहां की भाषा डिंगल या मारवाड़ी के लिये व्यवह्त शब्दों – मरूभाषा, मरूभूम–भाषा, मरूबानी आदि से प्रकट है जैसे–

01. मुरभुर– भाषा तणों मारग आछी रीत सूं।[53]

02. मुरधर भाषा जिस निमंत, किसने रूपग किद्ध।[54]

03. डिंगल अपनामक कहुंक, मरूबारी हु विधेय,।[55]

वस्तुतः यह मरूभाषा किंचित स्थानीय परिवर्तनों के साथ समूचे राजस्थान प्रदेश की भाषा थी। मरूभाषा का सर्वप्रथम उल्लेख 8–9 वीं शताब्दी में उद्योतन सूरी रचित, कुवलयमाला में मिला हैः–

अप्पा–तुप्पा मणि रे अह पेच्छर मारूए तत्तों[56]

तात्पर्य यह कि 12 वीं शताब्दी तक आते–शोर 'मरूदेश' संज्ञा अधिक व्यापक क्षेत्र के लिये प्रयुक्त होने लगी थी।[57]

17वीं शताब्दी के लगभग लिखित 'शक्ति संगम तंत्र' के षटपंचाशदेश विभाग में जिन अनेक देशों की सूची गिनाई गई है, उनमें मरूदेश भी एक है जिसका ग्रंथ रचयिता ने 'रोचक' वर्णन किया है–

गुर्जरात्पर्व भागे त टूरकातो हि दक्षिणे।
मरूदेशों महेशानि उष्ट्रोत्पत्ति मरायणः।।[58]

मरू के बाद जांगल क्षेत्र का नाम आता है। वानस्पतिक दृष्टि से जांगल का अर्थ वह भू–भाग है जहाँ साधारणतः आकाश साफ रहता हो जन और वनस्पति का अभाव हो तथा वृक्षों में शमी (खेजड़ी) कैर, पीलू और कंटकुंड (करील) का आधिक्य हो।[59]

महाभारत में प्रयुक्त 'कुरू–जांगल' एवं मद्र जांगल के उल्लेख से प्रतीत होता है कि जांगल के अंतर्गत केवल राजस्थान का उत्तरार्द्ध भाग ही नहीं बल्कि पंजाब का दक्षिण पूर्वी भाग भी सम्मिलित था। **मूलतः जांगल क्षेत्र जिसमें हर्ष, नागौर व सांभर सम्मिलित थे, के अधीश्वर होने के कारण शाकम्भरी और अजमेर के चौहान नरेश को प्रायः 'जागलेश' भी कहा जाता था।[60] तथा इसी जांगल क्षेत्र के अधिपति होने के कारण ही आगे चलकर बीकानेर के राजा 'जंगलधरपातिशाह' कहलाये।[61]** इसी जांगल क्षेत्र में 'जांगल–कूप' (जांगल) भी था। जहां श्रावक लिल्हन द्वारा भगवान शांन्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराये जाने का वि.सं. 1176 का अभिलेख मिलता है, जो अब बीकानेर में सुरक्षित है।[62] राजस्थानी इतिहास व साहित्य–ग्रंथों में जांगल का प्रचुर उल्लेख हुआ है जैसे–

सांखलो खींवसी चरू सुकाल, जांगल राज कैरे।[63]

राजस्थान का पूर्वी भाग(जयपुर, अलवर, भरपुर का कुछ भाग) मत्स्य कहलाता था। जिसका ''शक्तिसंगमतंत्र'' में इस प्रकार उल्लेख हुआ है–

पुलिन्दादुत्तरे, भागे कच्छाच्छ पश्चिमें शिवे।
मत्स्य देंश, समाख्यातः मत्स्य बाहुल्य कारकः।।[64]

इसका सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता है। जहां मत्स्य निवासियों को सुदास का शत्रु कहा गया है। महाभारत में मत्स्य राज्य की राजधानी विराटनगर (आधुनिक बैराठ) तथा मत्स्य राजा का पाण्डवों का प्रबल पक्षधर होने का उल्लेख मिलता है। साथ ही उसमें मत्स्य वासियों की सत्यवादिता की भी प्रशंसा की गई है।[65] अंगुत्तरनिकाय में उनकी शूरसेन प्रदेशवासियों के साथ गणना की गई है। इससे पता चलता है कि मत्स्य प्रदेश के अन्तर्गत जयपुर, अलवर तथा भरतपुर का भाग सम्मिलित था।

मत्स्यवासियों से ही अभिन्नतः सम्बद्ध साल्व वासी थे। प्रसिद्ध पुरातत्वेत्ता कनिंघम का मत है कि साल्व जनपद की राजधानी 'साल्वपुर ही वर्तमान अलवर है।[66]

शूरसेन जनपद के अन्तर्गत मथुरा सहित अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली का सीमावर्ती क्षेत्र सम्मिलित था। रणथम्भौर के प्रसिद्ध चौहान शासक राव हम्मीर का

मंत्री रणमल्ल शूरवंशीय क्षत्रिय ही था।[67] अपभ्रंश की एक हस्तप्रति में उपलब्ध वंशावली से पता चलता है कि शूरसेन, जनपद या इसका अधिकांश भाग 'भादानक' अथवा' 'भानय' के नाम से जाना जाता था। जिसका विकृत ही वर्तमान' बयाना है।[68]

इसी प्रकार राजस्थान का दक्षिण–पूर्वी भू–भाग शिवि, दक्षिण का मेदपाट (मेवाड़) बागड़ (डूँगरपुर) प्राग्वाट, मालव और गुर्जरत्रा तथा पश्चिम का माड, माडबल्ल आदि नामों से जाने जाते थे।

शिवि जनपद चितौड़ का समीपवर्ती क्षेत्र था[69] चितौड़ से 7 मील उत्तर–पूर्व में स्थित नगरी नामक गांव से उपलब्ध मुद्राओं पर उत्कीर्ण ''माज्झिममिकया शिवि जनपदस्य'' से इसकी पुष्टि होती है। मालव भी मध्यप्रदेश के मालवा भू–भाग में बसने से पहले काफी समय तक राजस्थान में रहे थे। रेड़ में खुदाई से मिली वस्तुओं पर उत्कीर्ण 'मालव जनपदस्य' से यह असंदिग्ध रूप से सिद्ध है कि 'मालव–जनपद' भी राजस्थान के इसी क्षेत्र के अन्तर्गत था। गुर्जर अथवा 'गुर्जरत्रा' नाम से अभिहित क्षेत्र में राजस्थान का दक्षिण–पश्चिमी भू–भाग (सिवाणा, जालौर) आता था जिसकी प्राचीन राजधानी, भीनमाल थी। जैसा कि प्रसिद्ध चीनी यात्री हवेन्सांग के उल्लेख से संकेत मिलता है। 8वीं शताब्दी (778ई0) में उद्योतन सूरि द्वारा रचित कुवलयाला में भी गुर्जरदेस तथा भिल्लमाल का उल्लेख हुआ है। मेदपाट, मेवाड़ का ही पुराना नाम है। मेवाड़ के गुहिल वंश की स्थापना से पहले यहां कदाचित ''मेदों'' या ''मेरो' का शासन था। इसलिये इसका प्राचीन नाम मेदपाट था। मेदपाट को ही 'प्राग्वाट' भी कहा जाता था, जैसा कि जयसिंह कलचुरि के अभिलेखों में मेवाड़ के राजाओं को प्राग्वाट नरेश लिखा होने से ज्ञात होता है।

माड' नाम जैसलमेर के लिए आज भी प्रचलित है, जिससे सम्बद्ध 'माड' राग राजस्थान में अतिशय लोकप्रिय है। अन्य क्षेत्रीय नामों में वल्लमण्डल, अनन्त गोचर आदि भी उपलब्ध होते है। घटियाला अभिलेख में कवक्क के त्रवणी वल्ल का माड में विख्यात हो जाने का उल्लेख है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि वल्ल 'माड' का कोई समीपवर्ती ही भूक्षेत्र था। **''बागड़'** राजस्थान में दो भूक्षेत्रों का वाचक रहा है– वर्तमान डूंगरपुर, बाँसवाड़ा क्षेत्र का तथा नरहड़ पिलानी भादरा, नोहर, एवं कनाणा

आदि भू–भाग का, जिसे जिनपाल संकलित खतरगच्छ पट्टावली में बागड़ के नाम से बहुशः अभिहित किया गया है।[70]

चौहान नरेशों के राज्य शाकम्भरी एवं अजमेर को 'जांगल' के साथ–साथ सपादलक्ष भी कहा जाता था। आगे चलकर 'सपादलक्ष' शब्द चौहान अधिकृत क्षेत्र से इतर भू–भाग के लिऐ प्रयुक्त होने लगा जिसमें जांगल शेखावाटी से रणथम्भौर तक का भू–भाग, कोटा का कुछ भाग, मेवाड़ का माँडलगढ़ दुर्ग तथा बूँदी, अजमेर एवं किशनगढ़ का पश्चिमी भाग सम्मिलित था।[71] इसी प्रकार नाडौल के चौहानों का राज्य 'सप्तशत' के नाम से जाना जाता था। इसी भाँति राजस्थान के विविध भू–भागों के लिए और भी अनेक नाम समय–समय पर प्रचलित रहें हैं, जो उस पर शासन करने वाले शासक वंश में हुए परिवर्तन के साथ या अन्य कारणों से परिवर्तित होते रहे हैं। इन नामों के साथ राजस्थान के अनेक छोटे–बड़े राजवंशों के उत्थान–पतन और उदय–पराभव का इतिहास जुड़ा हुआ है। कई नाम ऐसे भी है, जो काल के प्रभाव से मुक्त रह किसी प्रकार बचे रह गये हैं और आज भी लोक–व्यवहार में अतिशय प्रचलित है।

राजस्थान की उपर्युक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में वर्तमान पुनर्गठित राजस्थान राज्य का मानचित्र देखने पर हम निश्चय ही गर्वित हुए बिना नहीं रह सकते। कारण जैसा कि हम देख आए है, वैसे तो इस प्रदेश के विविध भू–भागों पर समय–समय पर विभिन्न राजवंशों का शासन रहा है। तथापि इस समूचे प्रदेश पर किसी एक सत्ता का एकछत्र प्रभुत्व कभी नहीं रहा। दूसरे शब्दों में एक राजनीतिक इकाई अथवा एकीकृत, विशाल राज्य के रूप में इन भूतपूर्व रजवाड़ों का जैसा पुनर्गठन स्वातन्त्र्योत्तर भारत में हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ। जैसा कि डॉ0 दशरथ शर्मा ने कहाँ है–

"It was this with the advent of our national Government that rajasthan could acquire a political unification and integration altogether unprecedented."[72]

जनमानस एवं जनचेनता– 19 वीं शताब्दी का राजपूताना छोटी–छोटी इकाईयों में बंटा हुआ त्रि–पक्षीय दमन और अत्याचार को सहता हुआ प्रदेश था। जिसमें सामान्य जनता, परम्परागत रूढ़िवादी समाज, अप्रत्यक्ष औपनिवेशिकता, निरकुंश राजतंत्र शाही, बेलगाम जागीरदारी व्यवस्था, चरमराती अर्थव्यवस्था, उद्योगधंधों का पतन, करों का बोझ तथा अशिक्षा जैसी अनगिनत समस्याओं से जूझ रही थी। ऐसे में कोई उनका मार्गदर्शक या पथदर्शक नहीं था।[73] सामान्य जन के दृष्टिकोण से देखा जाये तो यह युग राजनीतिक जीवन के क्षेत्र मे घोर निराशा का युग था। रियासतों में किसी भी प्रकार के सुधार विषयक प्रयासों को विद्रोह के रूप में देखा जाता था।[74] सामान्य जन का किसी भी प्रकार का कोई सामूहिक या सार्वजनिक जीवन नहीं था।[75] राजनीतिक संस्थाएं व सभाएं नहीं थीं। अखबार भी नहीं निकलते थे। प्रजा के अधिकार व कर्त्तव्य, राज्य के शासन सुधार और देश की राजनीती में जनता की सहभागिता का जहां तक सम्बन्ध है। रियासतों में ये सब कल्पनातीत थे।[76] इस प्रकार समस्त 19वीं शताब्दी में राजपूताना एक सामंती प्रदेश बना रहा जिसके तीन स्वामी अंग्रेज रियासती शासक और जागीरदार थे। रियासतों के भाग्य विधाता अंग्रेज थे तथा जनता के भाग्य विधाता रियासत नरेश व जागीरदार थे। इन तीनों शक्तियों ने अपने अपने हितों के वशीभूत होकर ऐसी स्थितियां बनाएं रखने के अथक प्रयास किये जिससे रियासती प्रजा के अन्तर्मन में चेतना का संचार न हो सकें। यही कारण था की 19वीं शताब्दी में जहां ब्रिटिश भारत में पुनर्जागरण के अन्तर्गत नवचेतना उत्पन्न हुई उससे राजपूताना की रियासतें पूर्णतया अप्रभावित रही। न यहां अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई न संचार व्यवस्था और न ही शिक्षा के क्षेत्र में कोई प्रभाव उत्पन्न हुआ, यहां तक कि संचार व्यवस्था और प्रेस पर नियंत्रण के द्वारा ब्रिटिश भारत के समाचार पत्रों को भी नियमित रूप से रियासतों में उपलब्ध नहीं होने दिया गया।[77]

इस प्रकार राजस्थान की रियासतों में जन–जागरण एंव चेतना का स्पष्ट, सामूहिक संगठित स्वरूप एवं प्रभाव 20वीं शताब्दी में ही देखने को मिला। इस नवजागरण के पीछे 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधार अंग्रेजी शिक्षा एवं समाचार पत्रों का योगदान, प्रवासी व्यापारी वर्ग की भूमिका, ब्रिटिश भारत की गतिविधियां तथा कांग्रेस जैसी संस्थाओं के योगदान के साथ–साथ आर्थिक कारणों को भी गिना जा

सकता है।[78] 20वीं सदी में एक के बाद एक उभरने वाले कृषक आंदोलन, आदिवासी आंदोलन तथा प्रजामण्डल आदोलन, रियासती जन मानस में लम्बे समय से पनप रहे असंतोष का परिणाम थे। रियासतों में जन आंदोलनों का संचालन करने वाले तील तत्व थे और तीनों ही अनुयायी सामान्य जन का अवतार थे। इसने कृषक, आदिवासी तथा शहरी मध्यम वर्ग सम्मिलित था।

जहां तक जनमानस एवं जनचेतना, शब्दों की अवधारणात्मक व्याख्या का प्रश्न है। जनमानस शब्द, जन+मान दो शब्दों से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है सर्वसाधारण जनता अथवा समूह के अन्तर्मन अर्थात ह्रदय के संकल्प विकल्प[79] या मन–मस्तिष्क में पलने वाली अकांक्षाएं इसी प्रकार जन–चेतना शब्द भी जन+चेतना शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है। लोक जन, अथवा समूह की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति [80] अर्थात अपने चारों ओर की घटनाओं और वातावरण के विषय में सजग व सचेत रहना।

अतः हम कह सकते है कि राजपूताना की रियासती प्रजा में अपने चारों ओर घटित घटनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ उद्‌देश्य व संकल्प घर करने लगे। उनमें जागरण के कारण धीरे–धीरे अंसतोष तथा विद्रोह की भावनाएं पनपने लगी। अपनी स्थिति को लेकर राजनीतिक व्यवस्था के विरूद्ध मन–मस्तिष्क में प्रश्न दौड़ने लगे, सामान्य जन की इसी मनोवृत्ति के फलस्वरूप राजपूताना में एक के बाद एक विद्रोह, प्रदर्शन, धरने, जूलूस व राजनीतिक जन–जागरण से परिपूर्ण घटनाएं जन्म लेने लगी। किसी भी स्थान पर जन आंदोलन तभी प्रारम्भ हो सकते हैं जब वहां की जनता स्वयं तैयार हो.।[81] और अब रियासत की जनता तैयार थी। आम जन में राजनीतिक घटनाओं के प्रति सजगता, जिज्ञासा, असंतोष, न्याय–अन्याय का भान व्यवस्था परिवर्तन की इच्छा, अधिकारों के लिए संघर्ष इत्यादि विशेषताएं देखने को मिली जो हमें इससे पूर्व राजपूताना के आम जन में दृष्टव्य नहीं हुई। 20 वीं शताब्दी की राजपूताना की रियासती जनता की इसी विशेषता को हम जनमानस की जनचेतना का नाम दे सकते हैं।

अध्ययन की प्रकृति

शोध (अनुसंधान) एक प्रक्रिया है जिसका अभिप्राय अतीत सम्बन्धी नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाना तथा ज्ञान की सीमा को विस्तृत करना है।[82] गवेषणा, शोध, खोज, अनुसंधान वस्तुतः एक ही वैज्ञानिक प्रक्रिया के पर्याय हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान की आधुनिक विधाए 18वीं सदी की देन हैं। इस परंपरा के विद्वानों ने वैज्ञानिक विधाओं के आधार पर इतिहास का अध्ययन कर ऐतिहासिक अनुसंधान की आधारशिला तैयार की। वे भली–भाँति जानते थे कि विज्ञान ने भौतिक जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन करके मानव–जीवन के लिये सुखद परिणाम प्रस्तुत किया है। यदि वैज्ञानिक विधाओं का प्रयोग इतिहास के अध्ययन में भी किया जाए, तो इस विषय के महत्व तथा उपादेयता में अवश्य वृद्धि होगी। इतिहास में वैज्ञानिक विधा के प्रबल समर्थक प्रो.जे.बी. ब्यूरी का कथन है कि ''इतिहास विज्ञान है न कम और न अधिक''। परिणाामस्वरूप वैज्ञानिका विद्या में आस्था रखने वाले इतिहासकारों ने कठिन परिश्रम से ऐतिहासिक स्त्रोतों को क्रमबद्ध किया त्रुटिपूर्ण स्त्रोतों की व्याख्या करके उनको विश्वसनीय स्वरूप प्रदान किया। इसके लिए इन विद्वानों ने आलोचनात्मक विधाओं का प्रयोग किया। डेविड थॉमसन का कथन है कि ''उनका उद्‌देश्य त्रुटियों मात्र को दूर करके ऐतिहासिक ज्ञान को सुनिश्चित तथा सुव्यवस्थित अध्ययन द्वारा एक सुदृढ़ आधार प्रदान करना था। जो शोधकर्ताओं के लिए सुगम मार्गदर्शन कर सकें।''

प्रो0 ब्यूरी के बाद जर्मनी में नेबूर तथा रांके, ब्रिटेन में एक्टन, अमेरिका में कार्ल बेकर तथा फ्रांस में टेने जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों ने भी ऐतिहासिक अनुसंधान की आधुनिक विधाओं का समर्थन किया। उन्होंने इतिहास –विज्ञान के तकनीकी ज्ञान की आधारशिला रखी। उन्होंने ऐतिहासिक अनुसंधान की आधुनिक विधाओं का प्रतिपादन किया और आलोचनात्मक पद्वति की नवीन विधियों को प्रस्तुत किया जिसे, ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली कह सकते हैं। 19वीं सदी में इतिहासकारों ने ऐतिहासिक गवेषण की विधाओं को परिपक्वता तथा प्रौढ़ता प्रदान की। बर्नहीम लांग्लाय तथा सेनाबास ने ऐतिहासिक अध्ययन में वैज्ञानिक प्रणाली के माध्यम से अतीत का अवलोकन किया तथा अपने समसामयिक समाज के संमुख अनेक अन्तर्निहित तथ्यों को प्रस्तुत किया। परिणामस्वरूप उनके उत्तराधिकारी इतिहासकारों ने

केवल उनकी विधाओं का अनुकरण किया अपितु समय–समय पर यथोचित उपादानों द्वारा उन्हें परिष्कृत भी किया। इन विद्वानों के प्रयासो के फलस्वरूप ऐतिहासिक गवेषणा में विज्ञान तथा कला का संगम स्थापित हुआ। उनका एकमात्र लक्ष्य अतीत से समसामयिक समाज के प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करना था। 18वीं तथा 19 वीं शताब्दी के इतिहासकारों की रचनाओं में विज्ञान तथा कला का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। इस प्रकार ऐतिहासिक शोध के अन्तर्गत शोधार्थी को अपने अध्ययन को विज्ञान के समान क्रमबद्ध, व्यवस्थित तथा वस्तुनिष्ठ बनाना चाहिये। वहीं काव्यात्मकता से बचते हुए ऐतिहासिक तथ्यों को रोचक तरीके से प्रस्तुत करना चाहिये। शोध (अनुसंधान) एक प्रक्रिया है जिसका कार्य अतीत सम्बन्धी नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाना तथा ज्ञान की सीमा को विस्तृत करना है। इस प्रकार कहा जा सकता है। कि ऐतिहासिक अनुसंधान में इतिहासकार अतीत के अन्तर्निहित प्रतिमानों की खोज करता है। इस तरह गवेषणा एक शोध है। शोध स्वयंमेव इतिहास नहीं अपितु इतिहासकार द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुंचने का एक साधन तथा प्रक्रिया है।

जहां तक शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध की प्रकृति का प्रश्न है यह तथ्यों पर आधारित पूर्णतः वैज्ञानिक प्रकृति का शोध है जो परिकल्पनात्मकता, का व्यावहारिक प्रयोग करते हुए, अच्छाई और बुराई का निर्णय करके, व्यक्ति या समाज को अच्छाई की ओर ले जाने का प्रयत्न करता है।

इसमें मानवीय मूल्यों को समावेशित करते हुए कलात्मकता का पुट दिया गया है। प्रस्तुत शोध का विषय ''राजस्थान का एकीकरण– जनमानस एवं जनचेतना है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन– प्रस्तुत शोध मूल रूप से एक ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत राजस्थान के एकीकरण से जुड़े हुए हर विशेष और सामान्य जन मानस के अन्तर्मन में व्याप्त ग्रन्थियों का अध्ययन सम्मिलित है। शोध कार्य का द्वितीय अध्याय पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक अध्ययन पर अधारित है। मनोविज्ञान अर्थात् मानव, मन का विज्ञान, मानव मन के आंतरिक मनोभावों को समझने का ज्ञान अंग्रेजी शासन काल के दो सौ वर्षों का राजपूताना की देशी रियासतों के शासकों पर मानसिक प्रभाव, भारत संघ में रजवाड़ों के विलय के दबाव से उत्पन्न मनोभावों का अध्ययन प्रस्तुत

शोध में किया गया है। रियासत की प्रजा तथा उनके नेतृत्वकर्ताओं का अपने राजा के विषय में आन्तरिक उदगार, रियासतों के भारत विलय के सम्बन्ध में उनकी मानसिक स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत शोध में किया गया है अतः प्रस्तुत शोध अध्ययन एक प्रकार से ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। यह मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन है।

ऐतिहासिक दार्शनिक अध्ययन– ऐतिहासिक दार्शनिक अध्ययन का अर्थ अतीत और इतिहासकार के मस्तिष्क का पारस्परिक सामंजस्य है। अतीत के परिवेश में इतिहासकार की मानसिक प्रक्रिया अथवा चिंतन को इतिहास दर्शन कहा जा सकता है। अन्य शब्दों में अतीतकालीन घटना के सम्बन्ध में इतिहासकार की मानसिक गवेषणा तथा घटना के विषय में उसका निष्कर्ष इतिहास दर्शन है। इतिहास दर्शन का अभिप्राय अतीतकालीन घटना में निहित मानसिक प्रक्रिया अथवा विचार को वर्तमान और भविष्य में प्रतिरोपित करना मात्र होता है। इतिहास दर्शन का उद्देश्य यही है कि हम सब इतिहास विषय का आधुनिक तार्किक और वैज्ञानिक विधि से अध्ययन कर सकें और उसमें गूढ तत्वों को ढूंढने का प्रयास कर सकें। इसलिए इतिहास के दार्शनिक अध्ययन में अन्वेषणा, गवेषणा आदि को विशेष महत्व दिया जाता है।

प्रस्तुत शोध मानवीय क्रियाओं में अन्तर्निहित विचारों को प्रतिबिम्बित करता है। इसका प्रमुख उद्देश्य तथ्य एवं सत्य का निरूपण है। जिससे मानव कल्याण हो सके और यही उद्देश्य दर्शन का है। सत्यम्, शिवम, सुन्दरम की प्राप्ति ही दर्शन है अतः प्रस्तुत शोध की प्रकृति दार्शनिक भी है।

धर्मनिरपेक्ष अथवा लौकिक अध्ययन– इतिहास प्रायः सांसारिक घटनाओं से सम्बन्ध रखता है, न कि भावात्मक प्रयत्नों से यह समय स्थान से अनियन्त्रित घटनाओं, स्थितियों एवं व्यक्तित्वों से व्यवहार नहीं करता है। अबौद्धिकता और पारलौकिकता इतिहास के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आती है। इतिहास की प्रकृति केवल मानवीय सम्बन्धों तक सीमित है। इतिहास की विषय सामग्री का निर्माण सामाजिक और बौद्धिक प्राणी के रूप में मानव द्वारा ही किया जाता है। साथ ही इसके अध्ययन क्षेत्र का निर्माण भी मनुष्य की सार्वजनिक गतिविधियाँ ही करती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन पूर्णतः तर्क और बौद्धिकता पर आधारित मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन है। शोध का विषय मानव की लौकिक गतिविधियाँ हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति धर्मनिरपेक्ष तथा लौकिक है।

अधीनस्थ (सब अल्टर्न) अध्ययन– प्रस्तुत शोध विषय से जुड़े मुख्य नेतृत्वकर्ताओं तथा कुलीन शासकों के साथ–साथ आम जनता को भी अपने अध्ययन का विषय बनाता है। परम्परातगत इतिहासकारों ने प्रभूत्वशाली वर्ग के इतिहास को ही लिख कर अपना कार्य समाप्त कर दिया। यहां तक की बड़े विद्रोह और क्रान्तिकारी परिवर्तनों की चर्चा इतिहासकारों ने जब कभी भी की है तो इन घटनाओं के वास्तविक कर्त्ता अर्थात आम आदमी का सच्चा इतिहास उसी के नजरिए से लिखने की कोशिश शायद ही हुई हो। इस बात को तो कोई नकार नहीं सकता कि इतिहास के सभी बड़े परिवर्तनों में जनसाधारण ने सक्रिय भूमिका निभाई है। परन्तु परम्परागत इतिहास लेखन में आम जनता को उच्चवर्गीय नेताओं एवं संगठनों के इशारों पर चलने वाली कठपुतली मान लिया गया था। फिर बड़ी आर्थिक सामाजिक विपत्तियों के कारण कभी कभार यांत्रिक रूप से विद्रोह करने वाले ढोर डांगर के रूप में देखा गया है जिनका अपना कोई विवेक नही होता। अतः इतिहास में इनकी चेतना, इनकी समझ का अलग से अध्ययन करने की कोई विशेष आवश्यकता भी नही समझी गयी। इतिहास में शिखर दृष्टि को न केवल अधूरा माना है, बल्कि ऐतिहासिक विश्लेषण के नजरिए से काफि हद तक भ्रामक ही पाया है।

परम्परागत इतिहास की इसी वंचना को दूर करने का प्रयास है, आम आदमी का इतिहास। प्रस्तुत शोध अध्ययन में राजस्थान के एकीकरण सें सम्बन्धित घटनाओं के विषय में आम आदमी का दृष्टिकोण तथा उसकी भूमिका के विषय में अध्ययन किया गया है। अतः प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति अधीनस्थ अध्ययन की भी है।

विश्लेषणात्मक अध्ययन– विश्लेषणात्मक इतिहास का अभिप्राय अतीत का आलोचनात्मक तथा सारांश युक्त प्रस्तुतीकरण है। इस प्रकार की अवधारणा पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है। प्रारम्भ में इतिहास को दर्शन तथा साहित्य का कविता अंग स्वीकार किया जाता था। अरस्तु ने इतिहास को तुच्छ स्वीकार किया है।

नैबूर तथा रांके ने 19 वीं शताब्दी में इतिहास को वैज्ञानिक विधाओं से अलंकृत किया। प्रकृति का वैज्ञानिक अध्ययन संभव है। मनुष्य का वैज्ञानिक अध्ययन यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है, क्योंकि अतीतकालिक मानवीय कार्यों का प्रत्यक्षीकरण तथा अवलोकन संभव नहीं है। क्रोचे के अनुसार ऐतिहासिक पुनःरचना अनुभवमूलक तथा इतिहासकार के मस्तिष्क की उपज है। इस प्रकार मनुष्य के अध्ययन का विषय मनुष्य है।

ज्ञान के दो मार्ग है– प्रकृति के ज्ञान के लिए विज्ञान तथा मानव–सम्बन्धी ज्ञान के लिए इतिहास। इतिहास दर्शन है जो उदाहरणों द्वारा ज्ञान प्रदान करता है। युग का निर्माण बीते हुए अतीत के ऊपर होता है। अतः वर्तमान, भूत से संबद्ध है और अर्थपूर्ण ढंग से सम्पूर्ण भूत को अपने में समेटे हुए है। ई.एच.कार के अनुसार ''इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच क्रिया की अविच्छन्न प्रक्रिया तथा अतीत और वर्तमान के बीच अनवरत परिसंवाद है।''[83] इस प्रकार ऐतिहासिक ज्ञान समाज के लिए उपादेय होता है। इतिहासकार ऐतिहासिक तथ्यों से संतुष्ट न होकर समाज के लिए क्या, क्यों और कहां का निरन्तर उत्तर देता रहता है। विश्लेषणात्मक इतिहास दर्शन का मूल उद्देश्य इतिहास चिंतन की मूलभूत समस्याओं पर विचार करना तथा उसे वैज्ञानिक विधाओं से अलंकृत करना है।

इसलिए प्रस्तुतः शोध की प्रकृति विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित है।

निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध में अध्ययन की प्रकृति तथ्यों पर आधारित वैज्ञानिक शोध की है, जिससे मानोवैज्ञानिक अध्ययन, दार्शनिक अध्ययन धर्मनिरपेक्ष तथा लौकिक अध्ययन अधीनस्थ (सब अल्टर्न) अध्ययन भी समाहित है।

शोध कार्य के उद्देश्य

[84]इतिहास मनुष्य को कार्य करने के लिये प्रेरित प्रोत्साहित और विवश करता है, और यही विवशता शोध कार्य के लिए अग्रसर करती है।[84]

ऐतिहासिक शोध अतीत का यर्थाथ प्रस्तुत करता है अपने शोध के माध्यम से शोधार्थी ऐतिहासिक घटनाओं के विषय में मानव –मस्तिष्क की जिज्ञासाओं को शांत करता है। शोध कार्य या अनुसंधान का उद्‌देश्य वर्तमान को सुंदर बनाना तथा भूतकाल के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। अनुसंधान में बोधपूर्वक यत्न होता है, योजनानुसार कार्य होता है, वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि होती है, और निश्चित लक्ष्य की ओर सजग उन्मुखता होती है, किन्तु इन सब से पूर्व शोधार्थी शोध कार्य का एक निश्चित उद्‌देश्य निर्धारित करता है।

प्रकृति के नैसर्गिक नियमों से तथा अन्य जीव–जन्तुओं के जीवन से भिन्न स्वनिर्मित और स्वसंचालित जो जीवन मनुष्य को प्राप्त हुआ है वह उसके अनुसंधान का ही परिणाम है। मानव का मस्तिष्क अन्य जीव–जन्तुओं के मस्तिष्क से आनुपातिक आकार में बड़ा है, और सूक्ष्म अवलोकन, सुचिन्तित आयोजन, विवेकपूर्ण निर्णय, विश्लेषण जनित निष्कर्ष, कुशल निर्माण तथा चातुर्यपूर्ण विनाश की अतिशय शक्तियों से समन्वित है। इन सबके लिए अपेक्षित अपार संग्रह शक्ति और स्मरण शक्ति भी उसमें है। जब से सभ्यता का आरंभ हुआ तभी से मनुष्य इन शक्तियों का उपयोग कर प्रकृति के रहस्यों को जानकर, उसके तत्वों और शक्तियों को अपने जीवन में उपयोगी बनाने का बोध–पूर्वक प्रयत्न करता आ रहा है। अतः सच्चे अर्थ में मानव सभ्यता का इतिहास उसकी अनुसंधान वृत्ति का इतिहास है।

हमारी सांस्कृतिक उन्नति का रहस्य शोध में निहित है। शोध नये सत्यों के अन्वेषण द्वारा अज्ञान के क्षेत्रों को लुप्त कर देता है। और वे सत्य हमें कार्य करने की उत्कृष्टतर विधियाँ और श्रेष्ठ परिणाम प्रदान करते हैं।[85]

जहां तक शोधार्थी के शोध कार्य के उद्‌देश्य का प्रश्न है, समस्त प्रकार के शोधों का प्रथम व अंतिम उद्‌देश्य होता है – मानव कल्याण।

ऐतिहासिक शोध कार्य का प्रथम उद्‌देश्य मानव मात्र की प्रगति है। मनुष्य को उसके भूतकालीन कृत्यों से परिचित करवाना है, जिस प्रकार विज्ञान का उद्‌देश्य प्रकृति का अध्ययन है उसी प्रकार इतिहास का उद्‌देश्य मानव का अध्ययन है।

किसी भी विषय में किये गये शोध कार्य का उद्देश्य सम्बन्धित विषय को और अधिक समृद्ध करते हुए नवीन ज्ञान उपलब्ध करवाना होता है। साथ ही वो चाहता है कि जिस विषय पर वह शोध कर रहा है उसके पक्ष में वह सशक्त तर्क प्रस्तुत करे। तथा अपने विषय को और अधिक मजबूती के साथ समृद्ध करें प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य भी यही है कि आधुनिक राजस्थान के निर्माण से सम्बन्धित इस विषय पर भावी पीढ़ियों के लिए पूर्णतः वैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित निष्पक्ष इतिहास का निर्माण सम्भव हो सके।

जिस प्रकार लोकतन्त्र का आधार स्थानीय शासन होता है उसी प्रकार किसी देश के राष्ट्रीय इतिहास का आधार होता है, वहाँ का स्थानीय इतिहास। राष्ट्रीय इतिहास किसी इतिहास रूपी मीनार के उच्च शिखर पर विराजमान गुम्बद के समान है जिसका आधार होता है प्रान्तीय और स्थानीय इतिहास, राष्ट्रीय व प्रान्तीय इतिहास आपस में सम्बद्ध होते हैं। प्रान्तीय स्तर पर जितना शोध कार्य होगा, राष्ट्रीय इतिहास उतना ही परिपक्व होगा। चूँकि राजस्थान का एकीकरण ऐसा विषय है जो पूरी तरह से भारत में देशी रियासतों के विलय से जुड़ा हुआ है। अतः प्रस्तुत विषय पर शोध कार्य का एक उद्देश्य राष्ट्रीय इतिहास को समृद्ध तथा सुदृढ़ बनाना है। राष्ट्रीय इतिहास की घटनाएं कहीं न कहीं स्थानीय इतिहास से जुड़ी हुई होती हैं। जब हम राष्ट्रीय इतिहास के तथ्यों की खोज करते हैं। तब कहीं न कहीं हमें स्थानीय इतिहास से भी प्रत्यक्ष होना पड़ता है। ब्रिटिश भारत की स्वतन्त्रता तथा देशी रियासतों का विलय करके भारत संघ का निर्माण अपने आप में एक महान ऐतिहासिक घटना है और इसी महान घटना का एक महानतम अवदान है राजस्थान की रियासतों का विलीनीकरण। राजस्थान की इन रियासतों का विलय अपने आप में इटली या जर्मनी के एकीकरण से कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इटली या जर्मनी के एकीकरण का स्वप्न तो मात्र दौ सौ साल पुराना था लेकिन राजस्थान के एकीकरण का स्वप्न राणा सांगा तथा महाराणा प्रताप जैसे वीर शासकों की आँखों में पाँच सौ वर्ष पूर्व से पल रहा था। राजस्थान की देशी रियासतों का भारत संघ में विलय इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि युगों–युगों से तानाशाही, सामंतशाही, आर्थिक शोषण से व्यथित राजपूताना के जनमानस को अंततः स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

राजपूताना की देसी रियासतों का विलय भौगोलिक दृष्टि से देश के सबसे बड़ें राज्य की महत्वपूर्ण घटना है इसलिए इस विषय पर शोध कार्य अपने आप में ही उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। इस विषय के पक्ष में यह भी कहा जा सकता है कि यह शोध विषय जितना राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर महत्व रखता है उतना ही इसे शोध कार्य की दृष्टि से कम महत्व दिया गया है। कुछ गिने चुने शोध कार्य ही ऐसे है जो इस विषय के केन्द्रीय भाव को स्पर्श कर पाये है।

इतिहास का अर्थ कुछ समय पूर्व तक राजा, महाराजा, तथा बड़े व महत्वपूर्ण व्यक्तियों का यशोगान करना होता था। किन्तु आज सामान्य व्यक्ति या आमजन को महत्व दिया जा रहा है। पहले किसी ने भी सदियों से पीड़ित, शोषित तथा अधिकार विहीन जीवन जीने को मजबूर आम –जन को महत्व नहीं दिया। इस शोध कार्य का उद्देश्य आम आदमी की भूमिका को राजस्थान के एकीकरण के संदर्भ में खोजना है।

शोध साहित्य का सर्वेक्षण

अनुसंधान कार्य में स्त्रोत एक माध्यम का कार्य करते हैं। हमें जब कोई ठोस और तथ्यपूर्ण प्रमाणिक स्त्रोत मिलतें हैं तभी हम किसी निश्चित् दिशा में अनुसंधान का कार्य प्रस्तुत करते हैं। ये स्त्रोंत, संदर्भ अथवा साक्ष्य स्वरूप होते है। यदि किसी स्त्रोत से हमें संदर्भ न प्राप्त हो तो हम अनुसंधान का कार्य नहीं कर सकते । अनुसंधान के लिए जिन ऐतिहासिक स्त्रोतों की आवश्यकता होती है, उनमें पुरालेख, पत्र–पत्रिकाऐं, गजेट्स, अध्यादेश, पुरातत्व व मुद्राशास्त्र भी समान रूप से उपयोगी है। अनुसंधान के स्त्रोतों को दो भागों मे विभाजित किया गया है।

01. प्राथमिक या मूल स्त्रोत

02. द्वितीय या गौण स्त्रोत

प्राथमिक या मूल स्त्रोत के रूप में विभिन्न अभिलेखागारों में संग्रहित पुरालेख शोधार्थी के शोध विषय से सम्बन्धित है।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर में संग्रहित सामग्री

– मत्स्य संघ के निर्माण से सम्बन्धित दस्तावेज।

– संयुक्त राजस्थान व वृहत राजस्थान के निर्माण से सम्बन्धित रिकॉर्ड

– बीकानेर राज्य के गृह विभाग की पाक्षिक खुफिया रिपोर्ट।

– जोधपुर राज्य के महकमा खास से सम्बन्धित रिकॉर्ड।

– प्रजामण्डलों से सम्बन्धित रिकॉर्ड

– संयुक्त राजस्थान की प्रगति रिपोर्ट, जून 1949।

– जोधपुर सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग की प्रेस कंटिग फाइल्स।

– राज्य अभिलेखागार के पुस्तकालय का गजट संग्रह।

– पश्चिमी राजपूताना एजेन्सी, जोधपुर 1941–1951 का रिकॉर्ड।

– बस्ता न01 महकमा खास जोधपुर राज्य के संयुक्त राजस्थान के निर्माण से सम्बन्धित

प्रशासनिक दस्तावेज व परिपत्र।

– स्वतन्त्रता सेनानियों के मौखिक रिकॉर्ड

– राजस्थान राज्य अभिलेखागार, जयपुर, अलवर व कोटा का रिकॉर्ड

राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपथ नई दिल्ली का रिकॉर्ड

– राजनीतिक व विदेश विभाग से सम्बन्धित दस्तावेज।

– राजपूताना स्टेट, ऐजेंसी रिकॉर्ड

– देशी रियासतों व संघ से सम्बन्धित दस्तावेज।

– चेम्बर ऑफ प्रिसेंज के कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट (1922–40)

– बटलर कमेटी रिपोर्ट

– होम डिपार्टमेंट – पोलिटिकल ब्रांच का रिकॉर्ड

नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

– इण्डियन स्टेट पीपल्स मूवमेंट रिकॉर्ड

– अखिल भारतीय कांग्रेस से सम्बन्धित रिकॉर्ड

– देशी रियासतों के विलय से सम्बन्धित दस्तावेज

द्वितीय या गौण स्त्रोत– इसके अन्तर्गत मूल स्त्रोंतों पर आधारित समय समय पर लिखे गयें ग्रन्थ व शोध अध्ययन सम्बन्धित है। शोधार्थी ने इसके लिए निम्नलिखित ग्रंथों का अध्ययन किया है।

रामनारायण चौधरी[86] – आधुनिक राजस्थान का उत्थान (1974) प्रस्तुत पुस्तक के लेखक रामनारायण चौधरी स्वयं एक स्वतन्त्रता सेनानी तथा महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेता रहे। राजस्थान में अजमेर इनका प्रमुख कार्यस्थल रहा। राजस्थान की रियासतों की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति के ये प्रत्यक्षदर्शी रहे। राजस्थान के एकीकरण व उससे जुड़े घटनाक्रम में लेखक स्वयं भागीदार थे अतः इनके द्वारा लिखित उपरोक्त पुस्तक राजस्थान के एकीकरण के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत है। प्रस्तुत पुस्तक की पाठ्य सामग्री लेखक की निजी डायरी और संस्मरणों पर आधारित है। लेखक की एक अन्य ऐतिहासिक पुस्तक बीसवीं सदी का राजस्थान (1980) भी उपल्बध है जिसमें स्वतन्त्रता और उसके बाद के संस्मरण सम्मिलित हैं।

उपरोक्त दोनों पुस्तकें राजस्थान के एकीकरण तथा उसकी पृष्ठभूमि पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। किन्तु उपरोक्त दोनों पुस्तकें लेखक के निजी स्मरणों पर आधारित है अतः ऐतिहासिक मापदण्डों पर पूरी तरह खरी नहीं उतरती।

गुलाबचंद काला[87]– **राजस्थान परिचय ग्रंथ** (1954), रियासती राजस्थान की राजनीतिक घटनाओं के वर्णन विश्लेषण तथा आधुनिक राजस्थान के निर्माण, तथा एकीकरण के विभिन्न चरणों का उल्लेख उपरोक्त पुस्तक में मिलता है। आधुनिक राजस्थान के अध्ययन के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

डी.डी.गौड़[88]– **कान्सटीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ ईस्टन राजपूताना स्टेट्स (1978)** उपरोक्त पुस्तक में पूर्वी राजस्थान की देशी रियासतों अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली में रियासत कालीन प्रशासनिक व राजनीतिक स्थिति, उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए सामान्य जनमानस द्वारा किये जाने वाले संघर्ष का विवरण मत्स्य संघ का निर्माण तथा पूर्वी राजस्थान के राजस्थान संघ में विलय का उल्लेख है। पुस्तक पूर्वी राजस्थान की तत्कालीन स्थिति का सूक्ष्म वर्णन करती है। किन्तु इसमें सम्पूर्ण राजस्थान को अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया है।

प्रकाश पुरोहित[89]– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्रामकालीन पत्रकारिता (2007) प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रारम्भ से लेकर राजस्थान प्रांत के निर्माण के पश्चात से प्रथम निर्वाचन तक, राजस्थान में पत्रकारिता की गतिविधियों का विशद वर्णन व विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक प्रत्यक्ष रूप से तो पत्रकारिता को समर्पित है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से राजस्थान में जन–जागरण व एकीकरण का इतिहास प्रस्तुत करती है।

चेतना मुद्गल[90]– बीकानेर में जन आन्दोलन (1995) प्रस्तुत पुस्तक 18 वीं शताब्दी की बीकानेर रियासत से लेकर बीकानेर के भारत संघ में विलय तक का राजनीतिक इतिहास प्रस्तुत करती है। इसमें बीकानेर के शासकों की निरंकुश नीति तथा सामान्य जनमानस के राजनीतिक आन्दोलनों का निष्पक्ष विवरण है। उपरोक्त पुस्तक बीकानेर रियासत के राजनीतिक जागरण का अध्ययन करने हेतु एक उचित माध्यम है। किन्तु यह पुस्तक केवल बीकानेर के इतिहास का ही स्त्रोत है। अन्य देशी रियासतों के विषय में इससे हमें कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

विजय कुमार त्रिवेदी[91]– युगयुगीन सिरोही (1990) लेखक ने सिरोही रियासत की स्थापना से लेकर 1947 ई. तक की सिरोही रियासत के इतिहास का विशद् वर्णन किया है। उपरोक्त पुस्तक सिरोही रियासत के राजनीतिक संगठनों तथा उनके द्वारा किए गये विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों का व्यापक वर्णन व विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक से सिरोही रियासत की सामान्य जनता के तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के विषय में विचारों व विश्वासों का प्रतिबिम्ब मिलता है। किन्तु यह पुस्तक 1947 ई0 तक के इतिहास पर ही समाप्त हो जाती है। यह पुस्तक 1947 से 1956 ई. तक के सिरोही के इतिहास पर हमें कोई जानकारी उपलब्ध नहीं करवाती है।

एफ. के. कपिल[92]– राजपुताना स्टेट्स (1817–1950) प्रस्तुत पुस्तक शोधार्थी के अध्ययन विषय के लिए महत्वपूर्ण पाठ्य सामग्री उपलब्ध करवाती है। इसमें राजपुताना की रियासतों के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा की गई, सहायक संधियों तथा ब्रिटिश ताज के प्रति देशी राजाओं की भक्ति व अधीनता, ब्रिटिश परमोच्च सत्ता, संघीय

व्यवस्था, 1905 से 1947 तक के स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति राजपुताना के शासकों का दृष्टिकोण तथा राजस्थान के एकीकरण के लिए संघर्ष इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। उपरोक्त पुस्तक रियासती राजाओं के पक्ष को तो उजागर करती है। किन्तु सामान्य जनमानस के अन्तर्मन में चल रही प्रतिक्रिया और संघर्ष की अनदेखी करती है। अतः सामान्य जनता के पक्ष को भी शोध के माध्यम से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। लेखक की इस विषय पर एक अन्य पुस्तक, राजपूताना जन–जागरण से एकीकरण (2014) है जो उपरोक्त विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है।

विनीता परिहार[93]– राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष (2002) उपरोक्त पुस्तक में राजस्थान की विभिन्न रियासतों में रजवाड़ों के विरुद्ध उठे असन्तोष, उत्तरदायी शासन की मांग तथा प्रजामण्डल आन्दोलनों का विशद विवेचन किया गया है। किन्तु यह पुस्तक मुख्य रूप से मारवाड़, विशेषकर जोधपुर रियासत की गतिविधियों पर ही अपने आपको मुख्य रूप से केन्द्रित करती है। इसलिए अन्य देशी रियासतों की जानकारी इस पुस्तक में नहीं मिलती है।

मंजू गुप्ता[94]– स्वतन्त्रता संग्राम एवं जमनालाल बजाज (2010) लेखिका ने इस पुस्तक में राजस्थान की देशी रियासतों में जनजागृति पर व्यापक प्रकाश डाला है तथा जमनालाल बजाज व अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों के व्यक्तित्व व कृत्तित्व का ज्ञान भी हमें इस पुस्तक में मिलता है। क्योंकि यह पुस्तक जीवनी आधारित है अतः इससे हमें सीमित जानकारी ही प्राप्त हो पाई है।

विक्रमाद्वित्य चौधरी[95]– ''राजस्थान में किसान आन्दोलन'' प्रस्तुत कृति में जोधपुर रियासत में कृषकों द्वारा राजशाही के विरूद्ध जो संघर्ष किया उसका विवरण है। यह कृति हमें तत्कालीन जनमानस की वास्तविक स्थिति से अवगत करवाती है। इससे पता चलता है कि राजशाही और सामंतशाही के शोषण चक्र में फंसी जनता मे शनैःशनैः जागृति आ रही थी और वे अहिंसात्मक व संवैधानिक तरीकों से दमनचक्र से सदैव के लिए मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे। किन्तु यह पुस्तक मूल रूप से तत्कालीन कृषक समाज पर केन्द्रित है अतः इससे भी राजस्थान की रियासतों के विषय में व्यापक जानकारी हमें नहीं मिलती।

बी.कृष्णा[96]– ''सरदार वल्लभ भाई पटेल– इण्डियाज आयरन मैन'' प्रस्तुत पुस्तक भारत के एकीकरण के लिए सरदार पटेल द्वारा अपनायी ''रक्त एवं लौह'' की नीति पर केन्द्रित है। इसमें पाकिस्तान के निर्माता मोहम्मद अली जिन्ना द्वारा जोधपुर के शासक हनुवंत सिंह को बहला–फुसला कर जोधपुर रियासत के पाकिस्तान में विलय के प्रयास को बड़े ही सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया गया है इस पुस्तक में राजस्थान के एकीकरण का भी उल्लेख किया गया है। उपरोक्त पुस्तक राजस्थान के एकीकरण के घटनाक्रम पर महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करवाती है। किन्तु मूल रूप से ये भारत की अन्य बड़ी–बड़ी रियासतों की महागाथा कहती है।

दाऊदयाल आचार्य[97]– ''भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान'' प्रस्तुत पुस्तक के लेखन आचार्य दाऊदयाल स्वयं बीकानेर रियासत के एक महत्वपूर्ण स्वतन्त्रता सेनानी व कार्यकरता रहे अतः उपरोक्त पुस्तक बीकानेर में राजनैतिक जनजागृति, तथा रियासत के शासकों की तानाशाही के विरूद्ध जनआन्दोलन तथा बीकानेर रियासत के राजस्थान संघ में विलय पर एक महत्वपूर्ण व ऐतिहासिक साक्ष्यों से पुष्ट एक प्रमुख स्त्रोत है। लेखक ने उपरोक्त पुस्तक में अपने संस्मरणों को ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ पुष्ट करते हुए लिखा है। चूँकि लेखक का कार्यक्षेत्र केवल बीकानेर रियासत से जुड़ा था अतः यह पुस्तक भी हमें बीकानेर तक सीमित कर देती है।

करणी सिंह[98]– रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सैन्ट्रल पॉवर (1465–1949) बीकानेर रियासत के इतिहास तथा उससे जुड़ी हुई घटनाओं को जानने के लिए यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। चूँकि लेखक स्वयं बीकानेर रियासत के शासक रहे अतः राजस्थान और भारत के एकीकरण में बीकानेर रियासत की भूमिका के विषय में यह पुस्तक महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध करवाती है। उपरोक्त पुस्तक में बीकानेर के महाराजा गंगासिंह सादुलसिंह तथा करणीसिंह के तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था तथा संवैधानिक सुधार और आम जनता के प्रति दृष्टिकोण की झलक मिलती है। किन्तु यह पुस्तक केवल राजसत्ता का दृष्टिकोण प्रदर्शित करती है। आमजन के विषय में इसमे कोई सूचना नहीं है।

कमल यादव[99]**– देशी रियासतों में राजनैतिक चेतना और जन आन्दोलन,(1993)** अलवर की देशी रियासत में राजनीतिक जागरण व जन आन्दोलन के व्यापक विस्तार पर यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण सूचना स्त्रोत है। यह राजस्थान की देशी रियासतों के राजस्थान संघ में विलय पर भी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। कुल मिलाकर उपरोक्त पुस्तक अलवर रियासत के लिए हमारे पास एक महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में उपलब्ध होती है। शोधार्थी के समक्ष फिर वही समस्या आ खड़ी होती है कि राजपूताना की अन्य रियासतों के विषय में यह हमें कोई जानकारी नहीं देती। प्रस्तुत पुस्तक केवल अलवर रियासत की महागाथा कहती है।

वी.पी. मेनन[100]**– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स (1969)** सरदार पटेल के पश्चात् भारत के एकीकरण में किसी अन्य व्यक्ति का योगदान है तो वे है तत्कालीन रियासती विभाग के सचिव श्री वी.पी. मेनन। वी.पी. मेनन देशी रियासतों के भारत में विलय की एक एक घटना के प्रत्यक्ष गवाह थें अतः उन्ही के द्वारा लिखित ये पुस्तक देशी रियासतों के शासको की मनोग्रन्थियों तथा आम जनता की आशाओं –आपेक्षाओं की कहानी खुल कर कहती है। इसमें तेरहवे अध्याय में राजस्थान की रियासतों के विषय में जानकारी दी गई है। चूँकि पुस्तक सम्पूर्ण भारत के घटनाक्रम को समाहित किए हुए है अतः राजस्थान के विषय में इससे हमें घटनाओ का विस्तृत विवरण नहीं मिलता है।

वी0पी0 मेनन द्वारा ही लिखित एक अन्य पुस्तक ''द ट्रान्सफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया (1957) उपरोक्त पुस्तक भारत में अंग्रेजों के प्रस्थान तथा भारत को सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया पर जानकारी देती है। इससे सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात् देशी – रियासतों को प्राप्त परमोच्चसत्ता विषयक ब्रिटिश भारत व देशी रियासतों के विवाद पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

बृजकिशोर शर्मा[101]**– सामन्तवाद एवं किसान संघर्ष**, प्रस्तुत पुस्तक 1938 से 1947 तक के राजपूताना की रियासतों के किसानों के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक जीवन की कहानी प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक अप्रत्यक्ष रूप से हमें रियासती राजपूताना की आमजनता के मनोभावों और उनमें पनपते असंतोष की झलक दिखाती है।

रीमा हूजा[102]– प्रिंस, पेट्रियोट, एण्ड पार्लियामेन्टेरियन – करणी सिंह (1997) रीमा हूजा द्वारा लिखित बीकानेर के पूर्व शासक करणी सिंह की जीवनी पर यह पुस्तक आधारित है। इसमें एक शासक के दृष्टिकोण से भारत के स्वतन्त्रता संग्राम स्वतन्त्रता प्राप्ति व उसके बाद की घटनाओं का वर्णन है। इसमें राजस्थान व भारत के प्रथम आम चुनाव का भी जिक्र है।

देव किशन राजपुरोहित[103]–राजस्थान शासन परिचयांकन (1988) यह एक छोटी सी पुस्तक है जिसमें 1947 से लेकर 1956 तक के राजस्थान राज्य के एकीकरण के विभिन्न चरणों का उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक में 1952 के प्रथम आम चुनाव तथा उसके बाद का परिदृश्य समाहित है।

देव कोठारी[104]– स्वतन्त्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान, डॉ. देव कोठारी द्वारा सम्पादित उपरोक्त पुस्तक में मेवाड़ रियासत में स्वतन्त्रता आन्दोलन के विभिन्न पक्षों को प्रदर्शित किया गया है। रियासत में समय–समय पर हुए विभिन्न जन आन्दोलनों, गोगुंदा आन्दोलन, उदयपुर गोली कांड, प्रजामण्डल की गतिविधियां, प्रथम स्वतन्त्रता दिवस पर आम जनता में व्याप्त उत्साह, मेवाड़ में उत्तरदायी शासन के लिये संघर्ष तथा राजस्थान संघ में मेवाड़ विलय की घोषणा, मेवाड़ स्वतन्त्रता आन्दोलन में सार्वजनिक शिक्षा संस्थाओं तथा समाचार–पत्रों की भूमिका इत्यादि विषयों पर अलग–अलग लेखको ने अपने विचार व्यक्ति किए हैं। मेवाड़ रियासत व उससे सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं के अध्ययन के लिए यह पुस्तक एक सशक्त माध्यम बन पड़ी है।

रतन लाल मिश्र[105]– राजस्थान का स्वतन्त्रता संग्राम दुर्लभ दस्तावेज (1999) पुस्तक में राजस्थान में चले स्वतंन्त्रता आन्दोलन के इतिहास से सम्बन्धित विभिन्न महत्वपूर्ण दस्तावेजों या साक्ष्यों का संकलन है। उपरोक्त पुस्तक में देशी राज्य लोक परिषद तथा प्रजामण्डल से सम्बन्धित विभिन्न पत्रों आदेशों तथ पम्प्लेट्स का संकलन है। साथ ही विभिन्न देशी रियासतों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घोषणाए तथा आदेश भी इससे समाहित किये गये है।

पृथ्वीसिंह मेहता[106]–हमारा राजस्थान (1950) उपरोक्त पुस्तक के विभिन्न अध्यायों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रियासत कालीन राजस्थान के दर्शन होते है। साथ ही एकीकरण और उसके बाद की घटनाओं पर भी इसमे प्रकाश डाला गया है।

दुर्गादास(सं)[107]– सरदार पटेल कोरसपोन्डेन्स (1945–50) विद्वान श्री दुर्गादास द्वारा संपादित सरदार पटेल से सम्बन्धित विभिन्न पत्रों के अध्ययन से भी तत्कालीन रियासती भारत, उनसे सम्बन्धित विभिन्न शासकों की विचारधारा तथा विभिन्न गतिविधियों के साथ–साथ, भारत संघ में विलय से सम्बन्धित परिस्थितियों के अध्ययन का अवसर हमें उपरोक्त पुस्तक के विभिन्न वॉल्यूमों से मिलता है। इनमें भी विशेष रूप से वॉल्यूम न. 5 शोद्यार्थी के शोध विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण पाठ्य सामग्री उपलब्ध करवाता है।

के.पी.सिंह[108]– सरदार वल्लभभाई पटेल (2008) सरदार पटेल की जीवनी पर आधारित यह पुस्तक सरदार के जीवन व कार्यशैली का परिचय देते हुए देशी रियासतों के विलय की जानकारी देती है। प्रस्तुत पुस्तक जीवनी पर आधारित होने के कारण अतिश्योक्तिपूर्ण तथा कल्पना का पुट लिये हुए है अतः, इसमें एतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव है।

के.एस. सक्सेना[109]– राजस्थान में राजनैतिक जन–जागरण (1972) लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में रियासत कालीन राजस्थान में राजनैतिक जन–जागरण विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना जन आन्दोलन राजनीतिक जनजागरण और एकीकरण को समाहित करते हुए पुस्तक का लेखन कार्य सम्पन्न किया है। उपरोक्त पुस्तक में सम्पूर्ण राजस्थान के जन आन्दोलन को समाहित किया गया है।

वी.डी.माथुर[110]– स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेंस (1987) प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डॉ0 माथुर ने देशी राज्य लोक परिषद के इतिहास के माध्यम से हमें अवगत करवाया है कि किस प्रकार रियासती भारत में लोक परिषद के माध्यम से राजनीतिक जनजागरण का प्रारम्भ हुआ। लेखक ने राजस्थान में राजनीतिक जागरण के कारण कांग्रेस का देशी राज्यों की समस्या के प्रति दृष्टिकोण प्रजामण्डल आन्दोलन, सत्ता हस्तान्तरण तथा राज्य के

एकीकरण के समय, शासक व जनता का दृष्टिकोण इत्यादि विषयों पर विस्तार से चर्चा की है। शोधार्थी के लिये उपरोक्त पुस्तक अत्यधिक ज्ञानवर्धक सिद्ध हुई है।

जे.के.जैन,[111]**– स्वाधीनता के गीत** (1987) प्रस्तुत पुस्तक में रियासत कालीन राजपूताना के जन आन्दोलनों के समय आम जनमानस द्वारा रचित गीतों का संकलन है। विभिन्न रियासतों के शासकों, कांग्रेस और अन्य राजनीतिक संगठनों से जुड़े छोटे–छोटे नेताओं से सम्बन्धित साक्ष्य तो हमें विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त हो जाते है। किन्तु वह आम नागरिक जो पढ़ना–लिखना नहीं जानता था और दूर–दूराज के गांवों में रहता था। उसके अन्तर्मन में चल रहे द्वंद को हम इन्हीं गीतों के माध्यम से जान सकते हैं। सामान्य जनमानस के विचारों और पीड़ाओं की अभिव्यक्ति के ज्ञान का एक मात्र स्त्रोत आम जनता की बोली भाषा मे लिखे ये गीत हैं।

ऊषा गोस्वामी (सं.)[102] **राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी, कोटा, बूँदी, झालावाड (2007)प्रस्तुत** पुस्तक स्वतंत्रता सेनानियों के संस्मरणों पर आधारित है, इसमें हाड़ौती अंचल के रियासत कालीन जन आन्दोलनों से जुड़े स्वतन्त्रता सेनानियों के विषय में जानकारी मिलती है। हाडौती अंचल के इन स्वतन्त्रता सेनानियों के जीवन चरित्र के माध्यम से हम हाड़ौती अचंल की रियासतों व वहां की जनता की गतिविधियों से परिचित हो पाए। यह पुस्तक राज्य अभिलेखागार बीकानेर की प्रस्तुती है।

राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी–जयपुर अंचल (2011) प्रस्तुत पुस्तक में जयपुर अंचल के 31 स्वतंत्रता सेनानियों के संस्मरण है। इस अंचल के वीर सेनानियों ने भी स्वतंत्रता के इस यज्ञ में अपनी आहुतियां दी और सर्वस्व अर्पण कर अपने शौर्य, त्याग और बलिदान से नवीन इतिहास रचा। भारत के स्वतंत्र होने के बाद रियासतों के विलीनीकरण और एकीकृत राजस्थान के निर्माण में भी जयपुर के इन स्वतंत्रता सेनानियों ने कठिन संघर्ष किया। यहां अनके आन्दोलन हुए, जिनमें यहां के वीरों की गाथायें है। प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहित जयपुर के स्वतंत्रता सेनानियों के संस्मरण तत्कालीन इतिहास को उजागर करते हुए कई अज्ञात एवं अनछुए प्रसंगो को भी उद्घाटित करते हैं। इनसे जो तथ्यात्मक संदर्भ प्राप्त हुऐ हैं, वे इतिहास और शोध की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी जोधपुर अंचल, (2009) प्रस्तुत पुस्तक में पाली सिरोही, जोधपुर और फलौदी के 32 स्वतन्त्रता सेनानियों के संस्मरण संकलित हैं। इन संस्मरणों से तत्कालीन स्थिति परिस्थिति, गतिविधियों और मनोदशाओं का जो रूप हमारे समक्ष स्पष्ट होता है, वह इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन संस्मरणों से ज्ञात होता है कि उस समय राष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में सारा जन–जीवन निडरता और उत्साह से तरंगित हो उठा था। उस समय जबकि विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता नहीं थी, मातृभूमि के इन सपूतों ने गोष्ठियों, समाचार–पत्रों, जुलुसों, भूख हड़तालों तथा सत्याग्रह के माध्यम से सामान्य जनता को जागृत किया। उपरोक्त समस्त पुस्तकें राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर द्वारा स्वतंत्रता सेनानियों के मौखिक संस्मरणों पर आधारित है।

कुलदीप शर्मा (सं.) [113]**– राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी– उदयपुर, डूँगरपुर, बांसवाड़ा** (1995) प्रस्तुत पुस्तक बागड़ अंचल के स्वाधीनता संघर्ष को जानने का सशक्त माध्यम है। राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम में रियासतों के एकीकरण के विषय में शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए यह एक सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है। यह भी राजकीय अभिलेखागार बीकानेर की पुस्तक है।

हुकम चन्द जैन[114]**– ऐतिहासिक राजस्थान (2009)** प्रस्तुत कृति यद्यपि इतिहासकार डॉ0 गौरी शंकर हीराचंद ओझा को केन्द्र में रखते हुए रची गई है किन्तु इस कृति के माध्यम से रियासत कालीन ऐतिहासिक राजस्थान के विभिन्न आयामों के दर्शन होते हैं राजस्थान के इतिहास को सम्मानीय विद्धान लेखक ने धारा प्रवाह शैली में विश्लेषित किया है। प्रस्तुत कृति राजस्थान के इतिहास लेखन पर मील का पत्थर है। निस्सन्देह रूप से इस कृति ने शोधार्थी को गंभीर शोध के लिऐ प्रेरित किया है।

बी.एल. पानगड़िया[115] **– राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम (1985)** प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम में सामान्य जनमानस के योगदान का मूल्यवान एवं रोचक वर्णन है। इसके अन्तर्गत स्वाधीनता संग्राम का एकीकृत इतिहास समाहित है। राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम पर आधारित अधिकांश पुस्तकें 1947 ई. तक समाप्त हो जाती है, यह उन महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है। जो हमें 1956 ई. तक के राजस्थान का विस्तृत

विवरण देते हुए राजस्थान के एकीकरण के इतिहास को हमारे सामने शब्दों के माध्यम से साकार करती है।

शिव शर्मा[116]– अजमेर इतिहास और पर्यटन (2009) राजस्थान की रियासतों के विपरीत अजमेर ही वह एकमात्र स्थान था जो ब्रिटिश शासन की प्रत्यक्ष अधीनता में था। राजनीतिक गतिविधियों के संचालन व अन्य विपत्तीकालीन परिस्थितियों में स्वतन्त्रता सेनानी यहीं से अपनी गतिविधियों का संचालन करते थे। पुस्तक से ऐतिहासिक, सामरिक व सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से राजस्थान के इतिहास में अजमेर का महत्व उजागर होता है। कुल मिलाकर राजस्थान के इतिहास क्रम तथा यहां की सभ्यता के विकास को समझने के लिए अजमेर के इतिहास का अध्ययन आवश्यक है और इस अध्ययन की पूर्णता के लिये उपरोक्त पुस्तक अति आवश्यक कही जा सकती है।

ए.सी. बनर्जी[117]– द राजपूत स्टेट्स एण्ड ब्रिटिश पेरामाउंट्सी (1980) प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने विभिन्न राजपूत रियासतों के साथ ब्रिटिश परमोच्चसत्ता के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है। उपरोक्त पुस्तक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रियासती शासक ब्रिटिश अधीनता में मात्र जमीदारों– सामन्तों का सा जीवन जी रहे थे। सम्प्रभू सत्ता के रूप में उनके समस्त अधिकार अंग्रेज रेजिडेन्ट तथा उसके माध्यम से वायसराय के पास थे। 1947 में सत्ता हस्तान्तरण के समय ब्रिटिश भारत व देशी रियासतों के मध्य परमोच्चसत्ता को लेकर गतिरोध का भी इसमें उल्लेख है।

सुकुमार भटाचार्य[118]– द राजपूत स्ट्टेस एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी (1972), ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ देशी रियासतों की सहायक संधि तथा अधीनता 1857ई. के संग्राम में राजपूत रियासतों की भूमिका तथा विभिन्न राजपूती शासकों की अंग्रेजों के प्रति नीति इत्यादि विषयों को प्रस्तुत पुस्तक में समाहित किया गया है। यह पुस्तक रियासती राजस्थान की पृष्ठभूमि को रोचक रूप में प्रस्तुत करती है।

जी.एस.एल.देवड़ा[119]–सोशियों–इकॉनोमिक स्टडी ऑफ राजस्थान (1986) प्रस्तुत पुस्तक रियासत कालीन राजस्थान की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि के अध्ययन में सहायक सिद्ध होती है।

उर्मिला फड़नीस[120]– टूवर्ड्स द इंटिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स (1910–1947) (1968) लेखिका द्वारा लिखित उपरोक्त पुस्तक में देशी रियासतों एवं ब्रिटिश सत्ता के मध्य सम्बन्धों की चर्चा है। प्रस्तुत पुस्तक 1947 ई. में ब्रिटेन द्वारा भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरण तथा देशी रियासतों की परामोच्चसत्ता से सम्बन्धित समस्या पर भी प्रकाश डालती है। किन्तु यह पुस्तक भारत की स्वतन्त्रता पर आकर समाप्त हो जाती है। जबकि देशी रियासतों का भारत संघ में विलीनीकरण तथा इससे उत्पन्न समस्याएं 1947 ई. के बाद उत्पन्न हुई थी।

शोभालाल गुप्ता[121]– गांधीजी और राजस्थान (1969) प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने गांधीजी द्वारा समय–समय पर राजपूताना की रियासतों तथा उनकी जनता के विषय में जो वक्तव्य दिये उनका संकलन हमें उपरोक्त पुस्तक में मिलता है। रियासती राजस्थान में राजनीतिक जागृति तथा जन जागरण के सम्बन्ध में गाँधीजी के क्या विचार थे यह भी उपरोक्त पुस्तक में सम्मिलित किया गया है।

जे.एम. गहलोत[122]– राजस्थान बिफोर सैकण्ड वर्ल्ड वार (1967) प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व के राजस्थान का अपनी लेखनी के माध्यम से चित्रण किया है। यह वह युग था जब राजपूताना की आमजनता प्रजामण्डल आन्दोलनों में जोर–शोर से भाग ले रही थी। तथा राजनीतिक घटनाओं के प्रति जनता में जागृति आ रही थी।

आर.एल.हाड़ा[123]– हिस्ट्री आफ फ्रिडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स (1968) प्रस्तुत पुस्तक में देशी रियासतों विशेषकर राजपूताना की छोटी–बड़ी रियासतों में स्वतन्त्रता संघर्ष का विवरण दिया गया है। लेखक ने अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की इन रियासतों के स्वतन्त्रता संघर्ष में भूमिका पर भी प्रकाश डाला है।

वल्लभभाई पटेल[124]–भारत की एकता का निर्माण–सरदार पटेल के भाषण (1970) देशी रियासतों की भारत में स्थिति स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की उनकी गतिविधियों तथा भारत में उनके विलय के सम्बन्ध में सरदार पटेल द्वारा समय–समय पर जो भाषण तथा सार्वजनिक वक्तव्य दिए उनका संकलन इस पुस्तक में किया गया है।

बाबू भाई.जे. पटेल[125]**– स्वतंत्र भारत का निर्माण (1983)** प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भारत के प्रथम गृह मंत्री तथा रियासती विभाग के अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई पटेल की भारत के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका को महिमा मंडित किया है। इसमें सरदार पटेल की भारत संघ में देशी रियासतों विशेषकर राजपूताना की रियासतों से सम्बन्धित समस्त गतिविधियों का अंकन मिलता है।

वल्लभ भाई पटेल[126] **– फॉर ए यूनाइटेड इण्डिया –स्पीड ऑफ सदार पटेल (1947–50)** सरदार पटेल भारत के लौह पुरूष तथा भारत की एकता के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। उन्हीं के अथक प्रयासों तथा कूटनीति का प्रतिफल था की ब्रिटिश भारत की अधिकांश रियासतों ने भारत संघ में विलय को स्वीकार किया। आज स्वतन्त्र भारत के मानचित्र का जो विस्तार हम कश्मीर से कन्याकुमारी तक देखते है, वह सरदार पटेल का ही कमाल हो सकता है। जिन्होंने अपने अथक साहस, परिश्रम तथा वाकचातुर्य के बल पर रियासती रजवाड़ों को भारत के पक्ष में मोड़ा।

भगवानदास केला[127–] **देशी राज्यों की जनजागृति(1948)** लेखक ने चूँकि तत्कालीन स्वतन्त्रता संग्राम तथा देशी रियासतों की स्थिति को समीप से एक सहभागी के रूप में देखा था अतः इनके द्वारा देशी रियासतों की स्थिति तथा यहां की जनता में फैली जनजागृति का विवरण पूरी तरह तथ्यों पर आधारित प्रतीत होता है।

सुमनेश जोशी[128]**– राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी (1973)** राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम में विभिन्न स्वतन्त्रता सेनानियों की गतिविधियों के माध्यम से रियासतकालीन राजपूताना की स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

सौभाग मेहता[129] – **स्ट्रगल फॉर रेस्पांसिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़ (1982)** लेखक राजपूताना की मारवाड़ रियासत में जनजागरण का उद्‌य, विभिन्न राजनीतिक संगठनों तथा प्रजामण्डल की राजनीतिक गतिविधियों तथा तत्कालीन मारवाड़ रियासत के शासकों की प्रतिक्रियावादी नीति का विस्तार से परिचय देता है। पुस्तक मारवाड़ के स्वतन्त्रता आन्दोलन के दर्शन का अनुपम झरोखा है।

एस,एच. पाटिल[130]**– द कांग्रेस पार्टी एण्ड प्रिंसली स्टेट्स (1981)** प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने देशी रियासतों के सम्बन्ध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों की समीक्षा

की है। उपर्युक्त पुस्तक में लेखक ने 19वीं शताब्दी के अन्त से लेकर 1947 तक देशी रियासतों के विषय मे कांग्रेस की नीतियों का विश्लेषण करते हुए उन कारणों को भी गिनाया है जब कांग्रेस देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने से डरती थी।

राम पाण्डे[131]– पीपुल्स मूवमेंट इन राजस्थान भाग 1 एवं 2 (1984, 1986) प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान में स्वतन्त्रता संघर्ष के समय में जितने भी जन आन्दोलन हुए उन सभी को सम्मलित करते हुए राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति पाठक को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करती है।

के.एल.कमल,एस.एन0जैन[132]–भारतीय स्वाधीनता संग्राम एंव राजस्थान के जन–आन्दोलन (1988) प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान के स्वाधीनता संग्राम की विभिन्न धाराओं का परिचय देते हुए उनकी कार्यशैली का अध्ययन एवं अवलोकन करने का हमें अवसर प्रदान करती है। उपरोक्त पुस्तक में विभिन्न लेखकों के अलग–अलग विषयों पर लेखों का संकलन है जिसके कारण राजस्थान के स्वाधीनता आन्दोलन के विषय में हमें विभिन्न विद्वानों के विचारों को जानने का अवसर मिला है।

बी.कृष्णा[133]– इण्डियाज बिस्मार्क– सरदार वल्लभ भाई पटेल, (2007) प्रस्तुत पुस्तक 562 देशी रियासतों को एकीकृत करके भारत संघ में विलय के लिए प्रेरित करने वाले सरदार वल्लभ भाई पटले के भारतीय इतिहास में असाधारण योगदान की गाथा कहती है। उपरोक्त पुस्तक में अन्य भारतीय रियासतों के साथ –साथ राजस्थान का भी उल्लेख है।

एल.एस.राठौड़[134]– पोप्यूलर मूवमेंट एण्ड डेमोक्रटिक इन्स्टीट्यूशन इन द प्रिंसली स्टेट ऑफ राजस्थान,(1970) प्रस्तुत पुस्तक में रियासती स्वतन्त्रता आंदोलन का विशद् चित्रण किया गया है। ब्रिटिश भारत तथा रियासती राजसत्ता के भीतर औपनिवेशिक जुए के नीचे पिसती राजस्थान की जनता का इसमें यर्थाथ चित्रण किया गया है। यह पुस्तक रियासती राजाओं के कार्य–कलापों को ही सामने नहीं लाती अपितु औपनिवेशिक भारत की तत्कालीन स्थितियों और मौटे तौर पर रियासती स्वतंत्रता संग्राम का एक जीवंत खाका प्रस्तुत करती है।

सुखसम्पत्तिराय भण्डारी[135]– भारत के देशी राज्य (2009) प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने 20वीं शताब्दी में भारत में विद्यमान देशी रियासतों का इतिहास एक साथ प्रस्तुत कर अद्‌भुत श्रम साध्य कार्य किया है। यह दुष्कर कार्य बहुत ही मौलिक प्रस्तुति तथा कश्मीर से लेकर सुदूर दक्षिण के राज्यों का विस्तृत राजनीतिक इतिवृत है। इसमें राजपूताना की विभिन्न रियासतों का प्रमाणिक राजनीतिक इतिहास भी संकलित है। जागीरदारों की विवरणिका व उनका इतिहास देकर सामन्तवाद की मौलिक जानकारी भी प्रस्तुत की गयी है।

मोहनलाल गुप्ता[136]– ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएँ– (2009) राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक में 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों के राजपूताना रियासतों में प्रवेश करने से लेकर उन्हें हर तरह से कमजोर करके उन पर अपना शिंकजा कसने तथा भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के कारण विवश होकर बीसवीं सदी के मध्य में उन्हें फिर से स्वतंत्र करने तक का इतिहास इस पुस्तक में लिखा गया है।

अंजु सुथार[137]– 20वीं सदी में राष्ट्रीय राजनीति के निर्माता (2008) पुस्तक में राजपूताना के उन प्रमुख व्यक्तियों के व्यक्तित्वों पर प्रकाश डाला गया है जो बीसवीं सदी के पूर्वाध में राष्ट्रीय जीवन में अपनी गहरी छाप रखते थे तथा जिन्होंने तत्कालीन राजनीति को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावित किया। विशेषकर बीकानेर नरेश महाराजा गंगासिंह, अलवर नरेश महाराजा जयसिंह के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य, उपलब्ध होते हैं।

अनुसंधान प्रविधि का विश्लेषण

सत्य तक पहुँचने के लिए कोई भी संक्षिप्त मार्ग नहीं है। जगत का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त और कोई दूसरा द्वार नहीं है।[138] अनुसंधान कर्त्ता का उद्‌देश्य होना चाहिए की वह ऐसी अनुसंधान प्रविधि की खोज करे जो उसे पूर्णतया वस्तुनिष्ठ व वैज्ञानिक परिणाम प्रदान करे। किन्तु कलात्मक विषयों में प्राकृतिक विज्ञान के समान पूर्ण वस्तुनिष्ठता संभव नहीं है। ऐसे में शोधार्थी को ऐसी तकनीक या पद्धति अपनानी चाहिये जो उसे सत्य के अधिक से अधिक निकट ले जा

सके। इतिहास चूँकि कलात्मक विषय है अतः शोधार्थी के लिये तथ्य एवं व्याख्या दोनों का ही बराबर महत्व है। शोधार्थी यदि वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हुए तथ्यों का अध्ययन करके उनकी निष्पक्ष व्याख्या करता है तो निस्संदेह वह एक उत्कृष्ट परिणाम प्रदान करने में सक्षम होगा।[139]

ऐतिहासिक अनुसंधान में तथ्य एवं मूल्यों के प्रयोग के विषय में इतिहासकारों में हमेशा से ही विवाद रहा है। यदि हम अपने शोध कार्य में केवल तथ्यों पर निर्भर रहते हैं तो इतिहास सरस न होकर निरस बन जायेगा। दूसरी तरफ यदि ऐतिहासिक सर्वेक्षण पूरी तरह मूल्य सापेक्ष होगा तो उसकी वस्तुनिष्ठता खतरे में पड़ जाऐगी। इसलिए सही अर्थों में श्रेष्ठ ऐतिहासिक अनुसंधान वही है जिसमें तथ्य एवं मूल्यों के प्रयोग का सही अनुपात हो। ऐसा होगा तभी सच्चे अर्थों में निश्चित, प्रमाणिक, वस्तुपरक, व्यापक, जाँचशील, संचारणीय तथा सार्वजनिक प्रकृति के इतिहास का निर्माण करने में हम सक्षम होंगे न कोई गुप्त क्रियाऐं है, न कोई पूर्व निश्चित उपचार न कोई आत्मसीमित बोध और न कोई सौदेबाजी सारी गणना मेज पर रखी जानी चाहिये ताकि सारा संसार उसे देख सके और चुनौती दे सके।[140] इतिहास अपने आप में एक महत्वपूर्ण विषय है सरल शब्दों में कहे तो ''इतिहास अतीत के प्रकाश में वर्तमान को समझना एवं भविष्य के विषय में एक गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त करना है।''[141]

रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार ''शोधार्थी को वर्तमान में घटित घटनाओं को भूतकाल में घटित घटनाओं के साथ जोड़कर एक क्रमिक विकास के रूप में अध्ययन करना चाहिये। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोत का संकलन करके स्वयं निष्पक्ष व वस्तुनिष्ठ व्याख्या करनी चाहिये उसे अपने कार्यक्षेत्र या विषय की पूर्ण जानकारी होनी चाहिये। उसमें विश्वसनीय एवं सम्बद्ध तथ्यों का चयन करने का ज्ञान, साहस तथा योग्यता होनी चाहिये। उसे अपनी सीमाओं, विषय की सीमाओं तथा निजी पूर्वाग्रहों के प्रति भी सचेत होना होगा। ऐतिहासिक घटनाओं को न तो देखा जा सकता है न दोहराया जा सकता है, उनकी मापन या गणना करना भी संभव नहीं है, फिर भी अपने सीमित साधनों के भीतर शोधार्थी निष्पक्ष इतिहास का निर्माण करने का प्रयास करता है।

अनुसंधान अथवा उसकी कार्य प्रणाली को विद्वानों ने तीन भागों में विभक्त किया है–

01. **नवीन तथ्यों की खोज**– शोधकार्य में पहला कार्य होता है अतीतकालिक घटना के सम्बन्ध में नये तथ्य, सूचना तथा विचारों को खोज कर उन्हें प्रस्तुत करना। भारतीय इतिहास में इस प्रकार के प्रमाण प्रचूर मात्रा में उपलब्ध हैं सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी लिपि को पढ़कर अशोक महान के सम्बन्ध में अज्ञात तथ्यों को प्रकाशित किया। सर जॉन मार्शल तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय अतीत के अगाध समुद्र में प्रवेश कर बहुमूल्य मोतियों को सामाजिक सतह पर लाने में सफलता प्राप्त की। ऐसी प्रक्रिया को अनुसंधान की साधारण प्रणाली के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसका एकमात्र उद्देश्य अतीत के उन तथ्यों को प्रकाश में लाना है। जिनका ज्ञान समसामयिक समाज को न हो।

02. **उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या**– अनुसंधान की यह प्रणाली जटिल है। इसके अन्तर्गत शोधकर्ता ज्ञात तथ्यों का विश्लेषण, व्याख्या, स्पष्टीकरण, मूल्यांकन तथा आलोचनात्मक परीक्षण करता है। इस प्रणाली में शोधकर्ता अपनी मानसिक शक्ति के सहारे अपने पूर्ववर्ती लेखकों के विचारों की आलोचनात्मक ढंग से व्याख्या करके पिछले लेखकों के निष्कर्षों को गलत सिद्ध करता है तथा उसके स्थान पर अपने विचारों को प्रस्तुत करता है। इस प्रविधि में अनुसंधानकर्ता ऐतिहासिक अनुसंधान की विधाओं का प्रयोग तथ्यों के संकलन उनके घनिष्ठ सम्बन्धों को परखने तथा सामान्यीकरण सिद्धांत के आधार पर उनमें सुधार करने में करता है। उसमें ऐसा करने की क्षमता भी होनी चाहिये। शोधकर्ता अपनी कथा की पुनःरचना बदले हुए दृष्टिकोण के अनुसार समसामयिक सामाजिक आवश्यकता के अनुसार करता है। यदि वह अपने समसामयिक समाज को अतीत का अवबोध कराने में सक्षम नहीं है तो उसे सफल शोधकर्ता नहीं कहा जा सकता है।

03. **सिद्धान्तों के परिवेश में तथ्यों का निरूपण** – शोध प्रक्रिया का यह तीसरा स्तर और अधिक जटिल है। इस स्तर पर पहुँचकर अनुसंधानकर्ता दार्शनिक बन जाता है वह एक सिद्धांत के माध्यम से अतीत की घटनाओं का निरूपण करता है। वह सामान्य नियम के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं के व्यावहारिक स्वरूप की

व्याख्या करता है। हीगल, मार्क्स, काम्टे, क्रोचे, टायन्बी आदि ने अपने विशेष दृष्टिकोण से अतीत का मूल्यांकन किया तथा अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये।

जहां तक प्रस्तुत शोध की प्रविधि का प्रश्न है। यह शोध कार्य मुख्यतः विवेचनात्मक व विश्लेषणात्मक है, जिसमें सर्वप्रथम सामग्री का संकलन किया गया है प्राप्त सामग्री के तीन प्रकार हैंः– प्राथमिक स्त्रोत, द्वितीयक स्त्रोत व तृतीय स्त्रोत।

यह शोध राजस्थान की भूतपूर्व देसी रियासतों के एकीकरण की समस्या पर केन्द्रित है अतः शोधकर्ता इसमें समस्या का व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध रूप में वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन अवलोकन करके वस्तुनिष्ठ व ज्ञानपरक निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करेगी। शोधकार्य की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को कई सोपानों में विभक्त किया गया है। अनुसंधान के प्रत्येक स्तर पर सावधानी पूर्वक कार्य किया गया है। जिससे प्रस्तुत शोध, सरल, व्यवस्थित तथा प्रमाणिक बन सके।

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित चरण हैं–

01. **ऐतिहासिक दस्तावेज या साक्ष्यों का संग्रह–** प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक स्त्रोतों का संग्रह करते हुए उनका अध्ययन अवलोकन व वर्गीकरण
02. **तथ्यों की प्राप्ति–** साक्ष्यों के गहन अध्ययन के आधार पर तथ्यों की प्राप्ति उनका अध्ययन, अवलोकन व निरीक्षण करना।
03. **तथ्यों की व्याख्या–** प्राप्त तथ्यों के अध्ययन, अवलोकन निरीक्षण करने के पश्चात उनकी व्याख्या व विश्लेषण का कार्य एक महत्वपूर्ण कार्य है। यह इतिहासकार के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि वो उनकी व्याख्या में कितना सफल होता है।
04. **तर्क–प्रस्तुति या स्पष्टीकरण–** अनुसंधानकर्ता को सदैव रचनात्मक तर्क प्रस्तुत करने चाहिये। तर्क देते समय उसकी सत्यता के प्रति सतर्क रहना चाहिये।
05. **सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष प्राप्ति–** घटनाओं की क्रमबद्धता के बाद एक श्रेष्ठ शोधकर्ता सामान्यीकरण के माध्यम से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार इतिहास सम्पूर्ण मानव शिक्षा का उपयोगी साधन बन जाता है एक निष्पक्ष एवं व्यवस्थित अनुसंधान मानव मात्र के लिए महानतम अवदान सिद्ध हो सकता है।

इसे आकर्षक, रोचक, सुन्दर तथा ग्राह्य बनाना ही इतिहासकार का उद्देश्य होना चाहिये। कलात्मक रचना का अभिप्राय दुरूह साहित्यिक शब्दों का प्रयोग नहीं अपितु रोचक शैली के माध्यम से स्पष्ट प्रस्तुतीकरण होता है।

<u>रेखा चित्र 1.1</u>

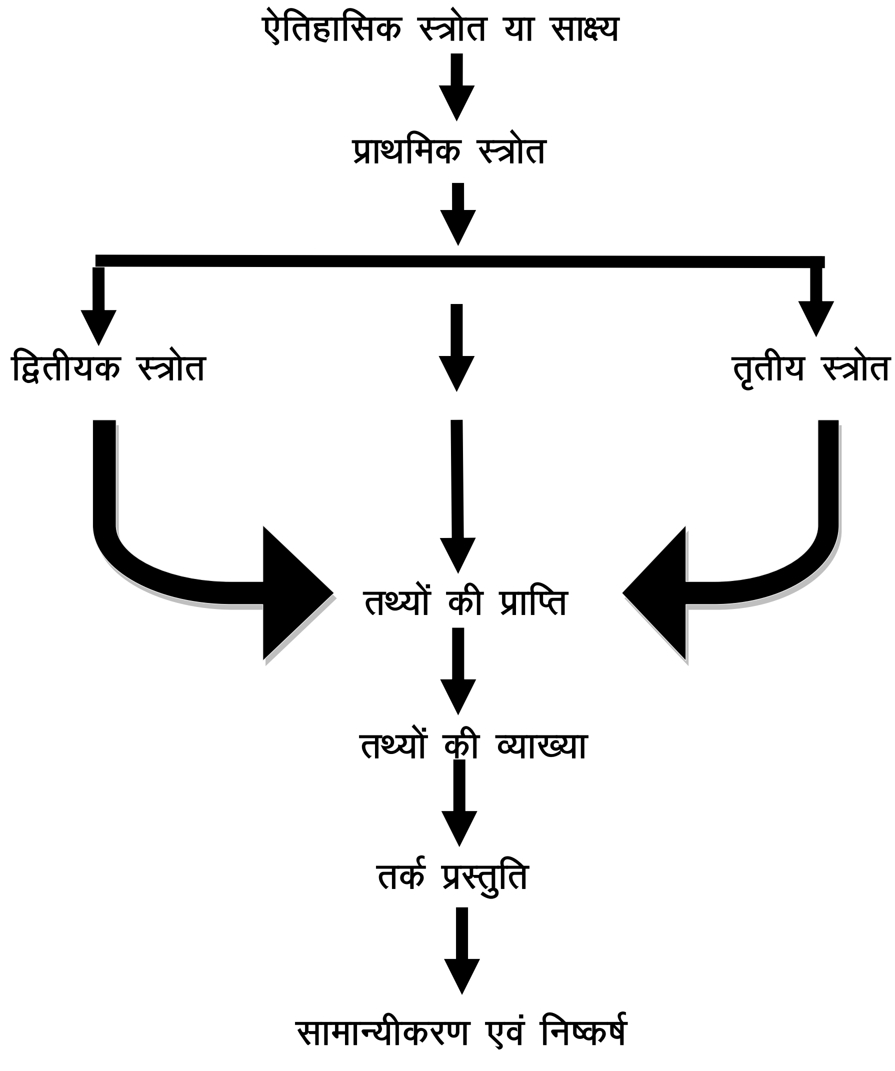

संदर्भ सूची

1. एस.एच. पाटिल– दी कांग्रेस पार्टी एण्ड प्रिंसली स्टेट्स पृ. 1
2. महाभारत, सभा पर्व
3. रोमिल थापर – भारत का इतिहास, पृ. 23 दिल्ली 1975
4. वी.सी. पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास Vol II पृ0 1
5. द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली–प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1981पृ. 241–42
6. हुकम चन्द जैन – ऐतिहासिक राजस्थान, जयपुर 2009, पृ. 145–46
7. a वी.सी. पाण्डेय – प्राचीन भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास, Vol II पृ. 172

   b हरिनारायण दुबे – दक्षिण भारत का इतिहास इलाहाबाद, 1988
8. द्विजेन्द्र नारायण झा – प्राचीन भारत का इतिहास दिल्ली, 1981 पृ. 354
9. a सी.वी. वैध – हिन्ट्री ऑफ मिडाइवल हिन्दू इण्डिया Vol II पृ. 7

   b रामजी उपाध्याय – प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति – पृ. 12
10. a राजतरंगिनी (1617)

    b हम्मीरायण – सं. भवरलाल नाहटा, पृ. 32

    c नैणसी री ख्यात्–वदरी प्रसाद साकरिया Vol III पृ. 173–74
11. a जेम्स टॉड– एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान VOL I पृ. 80

    b क्रुक – अर्लि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया VOL III पृ. 412
12. अमरेन्द्र कुमार सिंह – भारत में मुस्लिम साम्राज्य पृ. 8–9
13. a हरिशचंद्र वर्मा (सं.) – मध्यकालीन भारत दिल्ली, 1993, पृ. VOL II

    b हुकम चंद जैन –ऐतिहासिक राजस्थान, जयपुर 2009, पृ. 254 – 55

    c गौरी शंकर हीराचंद ओझा – जोधपुर राज्य का इतिहास पृ. 148 – 49
14. हरिशंकर शर्मा, सरोज पावा – राजस्थान के इतिहास की रूप रेखा जयपुर पृ. 228–29
15. हरिशचंद्र वर्मा (सं0) – मध्यकालीन भारत, दिल्ली 1993, VOL II पृ. 547
16. गौरी शंकर हीराचंन्द ओझा – उदयपुर राज्य का इतिहास जोधपुर 1928, VOL I
17. विशुद्धानन्द पाठक – उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास पृ. 431
18. राजेन्द्र शंकर भट्ट – उदयसिंह, राणा प्रताप, अमर सिंह पृ. 51
19. रघुवीर सिंह – पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. 81
20. आर.पी. त्रिपाठी – मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन, पृ. 352
21. श्याम सिंह रत्नावत – मुगल राजपूत सम्बन्ध पृ. 161

22. a अमरेन्द्र कुमार सिंह – भारत में मुस्लिम साम्राज्य पृ. 165
b सिडनी ओवन – इण्डिया ऑन द ईव ऑफ ब्रिटिश कॉनकेसट पृ. 41
23. हरिशचंद्र वर्मा (सं0) – मध्यकालीन भारत दिल्ली, 1993 VOL II पृ. 676
24. गुप्ता, व्यास, ओझा – मध्योत्तर आधुनिक राजस्थान का इतिहास जयपुर, 2001 पृ. 102
25. मनूची– स्टोरिया द मोगोर VOL II अनुवाद विलियम इरविन पृ. 111–12
26. जेम्स टॉड – राजस्थान का इतिहास जयपुर, 2008, अनुवाद केशव ठाकुर, VOL II पृ. 121–22
27. गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा– उदयपुर राज्य का इतिहास, जोधपुर VOL II पृ. 685
28. गुप्ता, व्यास, ओझा–मध्योत्तर आधुनिक राजस्थान का इतिहास जयपुर, 2001 पृ. 127
29. विष्णु दयाल माथुर– स्टेट्स पीपल्स कांन्फ्रेंस जयपुर 1987 पृ. 4
30. हरिशचन्द्र वर्मा – मध्यकालीन भारत VOL II पृ. 678
31. टॉमस रो का यात्रा वृतान्त, (सं.) विलियम पोस्टर लंदन
32. हरिशचंद्र वर्मा – मध्यकालीन भारत, पृ. 727
33. विष्णु दयाल माथुर – स्टेट्स पीपल कांन्फ्रेंस पृ. 4
34. हरिशंकर शर्मा, – राजस्थान के इतिहास की रूप रेखा पृ. 459
35. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ राजपूताना स्टेट्स 1867–68 पृ. 82
36. एम.एस. मेहता – लार्ड हेस्टिंग्स एण्ड द इण्डियन स्टेट्स पृ. 31
37. निर्मला गुप्ता – राजस्थान (1790– 1862) अराजकता से व्यवस्थान की ओर पृ. 203
38. व्हाइट पेपर ऑन इण्डियन स्टेट्स, गर्वमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1950
39. एस.बी. चौधरी सिविल डिस्टरवेंन्स ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल इन इण्डिया (1768–1857) पृ. 48
40. के.एम. पणिक्कर – एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ रिलेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स विथ द गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, पृ. 103
41. एच.एस. पाटिल – द कांग्रेस पार्टी एण्ड प्रिंसली स्टेट्स पृ. 3
42. उपरोक्त पृ. 3
43. उपरोक्त पृ. 4
44. मोहन लाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाऐं जोधपुर, 2009 पृ. 161
45. मिलीट्री मैमोरीज ऑफ जार्ज, टॉमस, एडिशन, लंदन पृ. 180, 347 VOL V
46. रियासतों की निश्चित संख्या पर विवाद है।
47. कुँवरसी सांखलों – सम्पादक मनोहर शर्मा, पृ. 12
48. नैणसी री ख्यात् सम्पादक बद्रीप्रसाद साकरिया पृ. 278
49. जैसलमेर री ख्यात, सम्पादक नारायण सिंह भाटी पृ. 40

50. ऋग्वेद, 1.35.6

51. वनपर्व , 201.41

52. वृहतसंहिता (पौराणिक सूची)

53. रघुनाथ रूपक गीताँरो– संपादक महताब चन्द खारेड़ पृ. 283

54. रघुवरजस प्रकाश – सीताराम लालस सं0 पृ. 2

55. सूर्यमल्ल मिश्रण – वंशभास्कर पृ. 147

56. उद्योत्तन सूरी – कुवलयमाला

57. दशरथ शर्मा – राजस्थान थ्रो द एजिस पृ. 11

58. शक्ति संगम तंत्र – पृ. 3, 7 (19)

59. शब्दार्थ चिन्तामणि – पृ. 991

60. दशरथ शर्मा – अर्ली चौहान डायनेस्टी पृ. 10, 11, 23, 70

61. दयाल दास री ख्यात – सं. दशरथ शर्मा

62. जैन ऐटीक्यूरी, वी.पी. 63

63. कुवरसी सांखलों, पृ. 9

64. शक्ति संगमतंत्र पृ. 3, 7

65. महाभारत (कर्णपर्व)

66. ऐन्शियंट ज्योग्राफि ऑफ इण्डिया, लंदन 1871

67. हम्मीरायण भूमिका, दशरथ शर्मा,

68. दशरथ शर्मा – राजस्थान थ्रो द एजिज पृ. 14

69. डी.सी. शुक्ला – अर्ली हिस्ट्री ऑफ राजस्थान पृ. 29

70. जिनपाल – खतरगच्छ पट्टावली, पृ. 12, 17 – 19, 34

71. गौरीशंकर हीराचंद ओझा का नागरी प्रचारिणी पत्रिका में लेख पृ. 330 – 32

72. दशरथ शर्मा – राजस्थान थ्रो द एजिज पृ. 16

73. गोविन्द अग्रवाल – पत्रों के प्रकाश में जन सेवक स्वामी गोपालदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 34

74. जी.एस.एल.देवड़ा (सं)– महाराजा गंगासिंह शताब्दी ग्रंथ बीकानेर, 1980 पृ. 10

75. गोविन्द अग्रवाल– पत्रों के प्रकाश में जन–सेवक स्वामी गोपालदासजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

76. रामनारायण चौधरी – 20वीं सदी का राजस्थान पृ. 30

77. रूडोल्फ एवं रूडोल्फ – एसेज ऑन राजपूताना पृ. 8

78. एम.एस. जैन0 – आधुनिक राजस्थान का इतिहास जयपुर 1989, पृ. 315–20

79. पुरूषोत्तम नारायण अग्रवाल – नालंदा अद्यतन कोष, जयपुर

80. उपरोक्त
81. एम.एस. जैन– आधुनिक राजस्थान का इतिहास जयपुर– 1989, पृ. 317
82. बी.एस अली – हिस्ट्री इट्स थ्योरी एण्ड मैथड्स मद्रास, 1978
83. ई.एच. कार – व्हाट इज हिस्ट्री, लदंन 1961
84. जी. आर कालिंगवुड़ – द आइडिया ऑफ हिस्ट्री लंदन, 1946
85. बेस्ट जॉन, डब्ल्यू – रिसर्च इन एज्यूकेशन, नई दिल्ली – 1983
86. राम नारायण चौधरी – 20 वीं सदी का राजस्थान अजमेर, 1982
– आधुनिक राजस्थान का उत्थान अजमेर, 1974
87. गुलाब चंद काला – राजस्थान परिचय ग्रंथ जयपुर 1954
88. ड़ी.ड़ी. गौड़ – कांन्सटीट्यून्शनल डवलपमेंट ऑफ ईस्टन राजपूताना स्टेट्स, जोधपुर 1978
89. प्रकाश पुरोहित – राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता जयपुर 2007
90. चेतना मुदगल – बीकानेर में जन आंदोलन, बीकानेर, 1995
91. विजय कुमार त्रिवेदी – युगयुगीन सिरोही उदयपुर, 1990
92. एफ. के. कपिल – राजपूताना स्टेट्स 1917 – 1950, बुक ट्रेजर जोधपुर
93. विनीता परिहार – राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष, 2002
94. मंजू गुप्ता – स्वतंत्रता संग्राम एवं जमनालाल बजाज, जयपुर 2010
95. विक्रमाद्वित्य चौधरी – राजस्थान में किसान आंदोलन, जोधपुर 2005
96. बी. कृष्णा – सरदार वल्लभ भाई पटेल – इण्यिाज आयरन मैन, दिल्ली
97. दाऊदयाल आचार्य – भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान
98. करणी सिंह– रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सैन्ट्रल पावर (1465–1949) नई दिल्ली
99. कमल यादव – देशी रियासतों में राजनीतिक चेतना और जन आन्दोलन (अलवर राज्य के विशेष संदर्भ में) जयपुर 1993
100. वी.पी. मेमन – इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, नई दिल्ली, 1969
–द ट्रासफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया, नई दिल्ली, 1957
101. बृज किशोर शर्मा – सामंतवाद एवं किसान संघर्ष, जयपुर
102. रीमा हूजा – प्रिंस, पेट्रियोट एण्ड पार्लियामेन्टेरियन – करणी सिंह, नई दिल्ली, 1997
103. देव किशन राजपुरोहित – राजस्थान शासन परिचयांकन, जयपुर 1988
104. देव कोठारी, सं0 – स्वतंत्रता आंदोलन में मेवाड़ का योगदान, उदयपुर
105. रतन लाल मिश्र – राजस्थान का स्वतन्त्रता संग्राम दुर्लभ दस्तावेज, जयपुर, 1997
106. पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार – हमारा राजस्थान, जयपुर, 1950
107. दुर्गादास, सं. – सरदार पटेल्स कारस्पोंडेन्स VOL I अहमदाबाद, 1973
108. के.पी. सिंह – सरदार वल्लभाई पटेल जयपुर, 2008

109. के.एस. सक्सेना – राजस्थान में राजनैतिक जन–जागरण, नई दिल्ली 1972
110. वी.डी. माथुर – स्ट्ेटस पीपल्स कान्फ्रेंस जयपुर 1987
111. जे.के. जैन, (सं.) – ''स्वाधीनता के गीत, जयपुर, 1987
112. ऊषा गोस्वामी (सं.) – राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी – VOL I,II,III राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
113. कुलदीप शर्मा,(सं.)–राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
114. हुकम चन्द जैन – ऐतिहासिक राजस्थान जयपुर, 2009
115. बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, जयपुर 1985
116. शिव शर्मा – अजमेर इतिहास और पर्यटन, जयपुर, 2009
117. ए.सी. बनर्जी – द राजपूत स्टेट्स एण्ड ब्रिटिश पेरामाउंट्सी नई दिल्ली, 1980
118. सुकुमार भट्टाचार्य – द राजपूत स्टेट्स एण्ड ईस्ट इण्डिया कंपनी नई दिल्ली 1972
119. जी.एस. एल. देवड़ा – सोशियों इकॉनामिक स्टडी ऑफ राजस्थान जोधपुर 1986
120. उर्मिला फड़नीस – टूवडर्स द इंटिग्रेशन आफ इण्डियन स्टेट्स (1910–1947)नई दिल्ली,1968
121. शोभालाल गुप्ता– गांधीजी और राजस्थान, भीलवाड़ा 1969
122. जे0एस0 गहलोत – राजस्थान विफोर सैकण्ड वर्ल्ड वॉर, जोधपुर, 1967
123. आर0 एल. हाडा. – हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स, नई दिल्ली 1968
124. वल्लभभाई पटेल – भारत की एकता का निर्माण – सरदार पटेल के भाषण, नई दिल्ली 1970
125. बाबूभाई जे. पटेल – स्वतंत्र भारत का निर्माण, अहमदाबाद, 1983
126. वल्लभभाई पटेल – फॉर ए यूनाइटेड इण्डिया – स्पीड ऑफ सरदार पटेल,
127. भगवान दास केला[124] – देशी राज्यों की जनजागृति, 1948
128. सुमनेश जोशी – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, जयपुर
129. सौभाग मेहता – स्ट्रगल फॉर रेस्पांसिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़, जोधपुर, 1982
130. एस.एच. पाटिल – द कांग्रेस पार्टी एण्ड प्रिंसली स्ट्ेटस, बबंई 1981
131. राम पाण्डे – पीपुल्स मूवमेंट इन राजस्थान VOL I,II, जयपुर 1986
132. के.एल. कमल, एस.एन. सक्सैना – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन–आंदोलन जयपुर, 1988
133. बी. कृष्णा – इण्डियाज बिस्मार्क– सरदार वल्लभ भाई पटेल, नई दिल्ली 2007
134. एल.एस. राठौड़ – पोप्यूलर मूवमेंट एण्ड डेमोक्रेटिक, इन्सटीट्यूशन इन द प्रिंसली स्टेट्स ऑफ राजस्थान, नई दिल्ली 1970
135. सुखसम्पत्तिराय भण्डारी – भारत के देशी राज्य, जयपरु, 2009
136. मोहनलाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाऐं जोधपुर,2009
137. अंजु सुथार – 20 वीं सदी में राष्ट्रीय राजनीति के निर्माता, जयपुर 2008

138. कार्ल पीयर्सन – द ग्रामर ऑफ साइंस लंदन A – C ब्लैक 1911, पृ.1

139. झारखण्ड चौबे– इतिहास दर्शन, वाराणसी 1999

140. स्टूअर्ट चेस – द प्रोपर स्टडी ऑफ मैनकाईड एन इनक्वाईरी इनटू द साइंस ऑफ ह्यूमन रिलेशन, न्यूयार्क, 1948

141. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय – इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 1973

अध्याय : द्वितीय

विलीनीकरण के संदर्भ में देसी रियासतों का मनोविज्ञान

''किसी ने मुझे रंच मात्र भी आभास नहीं करवाया था कि भारत पर से ब्रिटिश साम्राज्य को समेटने की समस्याऐं जितनी दुरूह होंगी उससे ज्यादा न सही लेकिन उसकी बराबरी की दुरूहता इन रजवाड़ों के कारण पैदा हो जायेगी।''

–लार्ड माउंटबेटन

राजाओं ने एक–एक करके अपने पत्ते खोलने आरम्भ कर दिये थे। वे समझ गये थे कि अब अंग्रेज देश में नहीं रहेंगे। इसलिये अंग्रेजों की कृपाकांक्षा प्राप्त करने के स्थान पर इस बात पर ध्यान लगाना अधिक उचित होगा कि कहीं भविष्य में बनने वाला आजाद भारत राजाओं के राज्यों को न निगल जाए दूसरी तरफ छोटे राजा इस बात को लेकर आंशकित थे कि कहीं बड़ें राजा ही उन्हें न निगल जायें । रियासती भारत में अजीब सी बैचनी और कई तरफा घमासान मचने लगा था।[1]

लगभग 140 वर्षों के अंग्रेजी शासन काल में भारत की देशी रियासतें और उनके रजवाड़ें अंग्रेजी औपनिवेशिक साम्राज्य को बनाए रखने के हथियार के रूप में इस्तेमाल होते रहे। इस अवधि में कभी भी अंग्रेजों की साम्राज्यिक नीति स्पष्ट नहीं रही।[2] जैस–जैसे भारत में अंग्रेजों का राज्य फैलता गया वैसे–वैसे अंग्रेजों के मन में यह विश्वास जड़ जमाता गया कि गोरी जाति श्रेष्ठ और ऊंची है। काले भारतीय नीच और मूर्ख है। उन पर शासन करने की जिम्मेदारी, ईश्वर नामक रहस्मय शक्ति ने अंग्रेजों के ही कंधो पर रखी है। अंग्रेज वह जाति है जो केवल जीतने और शासन करने के लिये पैदा हुई है।[3]

देसी रियासतों के साथ अंग्रेजी साम्राज्य के सम्बंधों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। [4]

I. अधीनस्थ सन्धि काल 1819–1857 ई.

II. अधीनस्थ संघ काल 1858 – 1905 ई.

III. अधीनस्थ सहयोग काल 1906 – 1947 ई.

I. **अधीनस्थ सन्धि काल 1819–1857 ई.**– 1818 से 1857 के बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन राज्यों को अपने अधीन रखा। इस काल में कंपनी के अधिकारियों ने देशी राज्यों पर अपनी प्रभुसत्ता जताने के लिये कई उपाय किये।[5] राजपूताना की विभिन्न रियासतों के उद्धरणों [6] से स्पष्ट होता है कि कम्पनी सरकार ने संधि की धाराओं और शर्तों में उल्लेखित निरन्तर मैत्री देकर रियासतों के शासकों को पूर्णतया अधीनता की स्थिति में लाने का लक्ष्य रखा। राजपूताना की रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के समय कंपनी सरकार के कर्णधारों के मस्तिष्क में परमोच्च शक्ति के सिद्धांत की धारणा सम्भवतः अपरिपक्व व सुषुप्तावस्था में रही होगी। उपरोक्त काल में यह शनैः–शनैः विकसित होने लगी।[7]

राज्य के नये उत्तराधिकारी को मान्यता देना व उसके राज्याभिषेक के समय खिल्लत प्रदान करना नजर, उपहार आदि स्वीकार करना, विशिष्ट सेवाओं के लिए उपाधियाँ व सम्मान देना, दरबार का आयोजन करना आदि जैसे परमोच्चाधिकारों से मुगल बादशाह को वंचित कर उसके स्थान पर कंपनी सरकार ने परमोच्च शक्ति के रूप में उनका उपभोग करना शुरू कर दिया था। 1832 ई. में रियासतों पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिये ''एजेंट टू दी गवर्नर जनरल फॉर राजपूताना'' का पद सृजित किया । राजाओं से कहा गया कि वे अपने वकीलों की नियुक्ति करें जो अजमेर में रहकर ए0जी0जी0 के सम्पर्क में रहें ताकि ए0जी0जी0 उन्हें राज्य के सम्बन्ध में दिशा– निर्देश दे सके। 1835 ई. में मुगल बादशाह के सिक्कों के स्थान पर विलियम चतुर्थ के सिक्के ढलवाये। यह सब इसलिए किया गया ताकि देशी राज्यों के शासक कंपनी सरकार को वैध रूप से मुगल प्रभुसता का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लें।[8]

ईस्ट इण्डिया कंपनी अपने व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए भारत में आई थी किन्तु उन्हें अपने इन्हीं हितों की पूर्ति के लिये भारत की राजनीति में प्रवेश करना पड़ा। इस कार्य में उन्हें जबर्दस्त ऊर्जा लगानी पड़ी। उनकी सफलतायें भी अद्वितीय थी। धीरे–धीरे वे भारत में शासक शक्ति बन गये। 1833 ई. के चार्टर एक्ट के माध्यम से कम्पनी की व्यापारिक गतिविधियाँ समाप्त कर दी गयी तथा उसने भारत सरकार के रूप में कार्य करना आरंभ कर दिया।[9]

जब 1848 ई. में लार्ड डलहौजी ईस्ट इण्डिया कंपनी का गवर्नर जनरल बनकर आया। उसने घोषणाा की कि भारत के समस्त देशी राज्यों के अस्तित्व की समाप्ति सिर्फ कुछ समय की बात है क्योंकि देशी शासकों के भ्रष्ट और अत्याचारी प्रशासन की अपेक्षा ब्रिटिश प्रशासन बहुत अच्छा है। डलहौजी का विश्वास था कि भारत के देशी राज्यों में ब्रिटिश माल का निर्यात कम होने का मूल कारण उन राज्यों में भारतीय शासकों का कुप्रशासन है।[10] उसका विचार था कि देशी राजाओं से भारत में ब्रिटिश विजय को सरल बनाने का काम लिया जा चुका है। और उनसे पिण्ड छुड़ा लेना लाभप्रद होगा। इसके लिये उसने '' डॉक्टर राइन ऑफ लैप्स'' का आविष्कार किया और देशी राज्यों को हड़पना आरंभ किया।[11] यहाँ यह समझ लेना समीचीन होगा कि संरक्षित देशी राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य के उतने ही अभिन्न हिस्से थे जितने कि कंपनी द्वारा प्रत्यक्षतः प्रशासित क्षेत्र इसलिये देशी राज्यों को बनाए रखना या अंग्रेजी राज्य में मिला लेने का प्रश्न उस समय कोई अधिक प्रासंगिक नहीं रह गया था। भाग्यवश राजपूताने का कोई भी राज्य '' डॉक्टर राइन ऑफ लैप्स'' की भेंट नहीं चढ़ा जिसका लाभ आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में राजपूताना के राज्यों, ब्रिटिश सरकार तथा मुस्लिम लीग को मिला और आधी शताब्दी तक वे भारत की राजनीति में छाये रहे।''

1857 ई. तक राजपूताना की सभी देशी रियासतों पर अंग्रेजों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था। अब राज्यों के पास अपनी सैन्य शक्ति कुछ भी शेष नहीं बची थी। देशी राजाओं की स्थिति यह हो चुकी थी कि एक तरफ तो वे अंग्रेज अधिकारियों के शिंकजे में कसे जाकर छटपटा रहे थे तो दूसरी ओर उन्हें यह भी स्पष्ट भान था कि यदि देशी राज्यों को बने रहना है तो अंग्रेजी शासन को मजबूत बनाये रखने के लिये उन्हें हर संभव उपाय करना होगा।[13]

सर थॉमस मुनरो ने हेस्टिंग्स को 11 अगस्त 1857 को लिखे पत्र में लिखा है कि ''घरेलू अत्याचार तथा पारदेशिक आक्रमण से सुरक्षा भारतीय नरेशों के लिये महंगी पड़ी है। उनको अपनी स्वतंत्रता राष्ट्रीय आचरण तथा जो कुछ मनुष्य को आदरणीय बनाता है, इत्यादि का बलिदान करना पड़ा था।''[14]

इस प्रकार शासकों की बाहरी स्वतंत्रता तो 1857 ई. के पूर्व ही समाप्त हो गई थी। पर आन्तरिक प्रशासन में ब्रिटिश अधिकारियों के हस्तक्षेप ब्रिटिश समर्थक पदाधिकारियों और राजकुमारों को प्रोत्साहन देने की आंग्ल–नीति ने राजपूत शासकों को भोग–विलास और आमोद – प्रमोद के कार्यों में व्यस्त कर दिया। जयपुर के शासक सवाई जगत सिंह ने तो रसकपूर नामक एक वेश्या को अपनी महारानियों से भी अधिक सम्मान और अधिकार प्रदान करते हुए उसके नाम के सिक्के चलाये, इसी तरह का हाल लगभग अन्य राज्यों, जोधपुर, कोटा आदि में था। शासकों की स्थिति के विषय में ''स्वप्न राजस्थान'' के लेखक मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि ''किसी ने भी (राजा ने) कभी रियासत में इस सिरे से उस सिरे तक दौरा न किया होगा। न रैय्यत से पूछा होगा कि तुम्हारा हाल क्या है? हमारे अहलकार और हाकिम तुम्हारे साथ कैसा सलूक करते हैं, और क्या हासिल लेते हैं ? शेर और सूअर की तलाश में तो अपने मुल्क के ऊजड़ जंगलों में नजर दौड़ाई होगी। मगर यह कभी नहीं सोचा कि उन जंगलों में कहीं से पानी लाने की युक्ति कर घास फूस की जगह जौ–गेंहू के लहलहाते खेतों से आँखों को ठण्डा करें, मेले और तमाशों के शौक में तो बहुत बार गलियों और बाजारों में बन–ठन निकले होंगे। मगर वैसे कभी रैय्यत के सुख दुःख की खबर लेने को महलों से बाहर कदम भी न रखा होगा......नाच और मुजरा देखा होगा मगर दरबार–ए–आम में बैठकर रैय्यत की फरियाद दो घड़ी भी न सुनी होगी। ''यह कथन सर्वथा सत्य भले ही नहीं हो पर दशा कुछ ऐसी ही थी। जिसमें ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट और राज्यों के रेजीडेन्ट राजपूताना और उसके राज्यों के व्यावहारिक प्रभु थे।[15]

इस स्थिति से राज्यों में द्वैध शासन जैसी समस्याएं उत्पन्न होने लगी जिसका परिणाम यह हुआ कि राज्यों में अराजकता फैलने लगी और 1857 ई. में लगभग समस्त देश की देशी रियासतों में अंग्रेजी हुकुमत के प्रति विद्रोह हो गया। राजपूताना

में भी विद्रोह की चिंगारी बड़ी तेजी से फैली किन्तु देशी राजाओं के सहयोग से इस विद्रोह को शीघ्र ही कुचल दिया गया। वास्तव में देशी रियासतों के शासकों ने ही ब्रिटिश साम्राज्य को भारत में जीवन दान दिया।[16]

1857 में देश में जिस प्रकार की परिस्थितियां बनी उनके लिये राष्ट्रीय स्तर पर भले ही लार्ड डलहौजी द्वारा भारतीय राज्यों को हड़पने के लिये आविष्कृत की गयी डॉक्टराइन ऑफ लैप्स की नीति, ईसाई धर्म के प्रचार की चेष्टायें तथा अपने ही भारतीय सैनिकों के प्रति भेदभाव युक्त कार्यवाहियाँ जिम्मेदार थीं। किन्तु राजपूताने में उत्पन्न स्थितियों के लिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी नहीं अपितु भारतीय रजवाड़ों तथा उनके अधीन आने वाले ठिकानों का आपसी संघर्ष जिम्मेदार था। यही कारण था कि जब ईस्ट इण्डिया कंपनी के अत्याचारों के कारण 1857 ई. में पूरे देश में सैनिक विद्रोह हुआ तो उसे स्थानीय जागीरदारों तथा गिने–चुने असंतुष्ट राजाओं का सहयोग मिला जबकि अधिकांश बड़े राजाओं ने अंग्रेज शक्ति का साथ दिया क्योंकि तत्कालीन ए.जी.जी. जॉर्ज पेट्रिक लारेंस ने राजाओं को पत्र लिखकर ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान रहने का वचन देने के लिये कहा[17] राज्यों के शासक पूरी निष्ठा से ए.जी.जी. के निर्देशों का पालन करने को उत्सुक थे और यह उत्सुकता उनकी अंग्रेजी समर्थन प्राप्त करने की आवश्यकता के अनुपात में ही थी।[18]

ब्रिटिश अधिकारियों ने गुलाम मनोवृत्ति वाले इन राजपूत शासकों की मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की है। अजमेर के सैन्य अधिकारी आई..टी. प्रिचार्ड ने लिखा है कि ''राजस्थान के देशी राजाओं ने यदि क्रांति को उचित नेतृत्व दिया होता तो इस क्रांति के परिणाम ही दूसरे होते।''[19]

जॉन स्ट्रेची ने कहा कि– ''1857 और 1858 ई. के विद्रोह ने सिद्ध कर दिया कि देशी रियासतें हमारे लिये कमजोरी का नहीं अपितु शक्ति का स्त्रोत है।

इस समय शायद ही ऐसी कोई देशी रियासत होगी, जिसने अत्यन्त कठोर परीक्षा और विपत्ति के समय वफादारी न दिखाई हो।[20]

1857 की क्रांति में राजाओं की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए बूंदी के राज्याश्रित कवि पण्डित सूर्यमल्ल मीसण ने 1857 में पीपल्या के ठाकुर को एक पत्र

लिखा जिसमें उन्होंने लिखा कि ''इस क्रान्ति ने अंग्रेजों को चालीस से लेकर साठ–सत्तर वर्ष पीछे धकेल दिया है तो भी ये राजा लोग कायरता दिखा रहे हैं, और अंग्रेजों की गुलामी करते हैं परन्तु मेरी बात आप याद रखिये कि जो इस बार अंग्रेज रह गया तो वही सर्वशक्तिमान हो जायेगा। पृथ्वी का मालिक कोई नहीं रहेगा, सब ईसाई हो जायेंगे। इसलिये यदि दूरदर्शिता से विचार किया जाये तो ऐसा करने से लाभ किसी को नहीं होगा, पर ऐसा सोचे तब न।''[21]

जोधपुर के तख्तसिंह, जयपुर के रामसिंह, मेवाड़ के स्वरूप सिंह, बीकानेर के सरदार सिंह इत्यादि राजपूताने के शासक चाहते तो 1857 में क्रान्तिकारियों का साथ देकर बड़ी आसानी से अंग्रेजों से मुक्ति प्राप्त कर सकते थे। किन्तु 1857 की परिस्थितियों में राजपूताने के राज्यों ने कभी नहीं चाहा कि अंग्रेजों का शासन समाप्त हो। राजपूताना के शासक जागीरदारों से अत्यन्त त्रस्त थे तथा उन्हें लगता था कि राजाओं को अंग्रेज शक्ति ही जागीरदारों की समस्या से मुक्त कर सकती है। अतः जब जागीरदारों ने क्रांन्तिकारी सैनिकों का साथ दिया तो राजपूताना के सारे शासक एक साथ इस विद्रोह के विरूद्ध उठ खड़े हुए।

II **अधीनस्थ संघ कालीन राजस्थान (1858 से 1905 ई.)** इस आन्दोलन के पश्चात् ही अंग्रेजों और राजाओं दोनों को समझ में आया कि दोनों शक्तियां एक दूसरे लिये अपरिहार्य है। इस कारण अंग्रेजों और राजाओं का गठजोड़ अब एक नयी मजबूती को प्राप्त कर गया। राजपूताना के नरेशों ने महारानी विक्टोरिया के 1858 ई. के घोषणा पत्र में राजाओं की रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में नहीं मिलाने तथा राजाओं के अधिकारों, प्रतिष्ठा और मान मर्यादा का सम्मान करने की घोषणा का स्वागत किया, खुशियां मनाई तथा महारानी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।[22]

उन्हें साम्राज्य के तरंगरोध के रूप में इस्तेमाल करना सदा से ब्रिटिश नीति रही है। बहुत समय पहले सर जॉन मैल्कम ने कहा था कि ''अगर हम समस्त भारत को जिलों में बांट दे तो स्थितियां ऐसी नहीं है कि हमारा साम्राज्य 50 साल तक भी चले किन्तु यदि हम कई देशी रियासतें उन्हें बिना कोई राजनीतिक सत्ता दिये शाही उपकरणों के रूप में रखे तो हम भारत में तब तक के लिये रहेंगे। जब तक हमारी नौ

सैनिक शक्ति बनी रहेगी। इस राय में निहित ठोस सत्य के विषय में मुझे कोई संदेह नहीं है, और हाल की घटनाओं ने उसे पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान देने योग्य बना दिया है।[23]

भारत मंत्री द्वारा गवर्नर केनिंग को पत्र लिखा गया कि ''देशी नरेशों को सुरक्षा प्रदान करके ही हम भारत में अपना राज्य स्थापित कर सकते हैं।[24] भविष्य के किसी संकट से ब्रिटिश राज्य को बचाने के लिये इन्हें अवरोध (बांध) माना गया। 140 देशी नरेशों को सनद (अधिकार पत्र) दिये गये। तथा यह व्यवस्था की गई कि 'राजगद्दी'' देशी राजा का अधिकार न होकर परमोच्च शक्ति से मिला हुआ उपहार होगी।[25] ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़, मारवाड़, जयपुर एवं बीकानेर रियासतों के राजाओं को 17 तोपों की सलामी देने की स्वीकृति प्रदान की। बाद में अन्य राजाओं को भी तोपों की सलामियां लेने की अनुमति दी गयी। इन सलामियों की संख्या अंग्रेज शासकों के अप्रसन्न अथवा प्रसन्न होने पर घटती–बढ़ती रहती थी। 1858 ई. से पूर्व भारतीय नरेश यह सोचते थे कि उनका कम्पनी सरकार के साथ बराबरी का सम्बन्ध है, वे समय–समय पर बराबरी का दावा किया करते थे। अब स्थिति पूरी तरह से स्पष्ट हो गयी केनिंग ने पहली बार ब्रिटिश परमोच्च सत्ता के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुये 1862 ई. में एक दरबार का अयोजन किया।[26]

इस दरबार में केनिंग द्वारा की गई घोषणा में 'परमोच्च सत्ता'' और सामन्त जैसे शब्दों का प्रयोग ब्रिटिश ताज द्वारा भारतीय राजाओं के साथ सम्बन्धों में योजनाबद्ध बदलाव का संकेत था। के0एम0 पणिक्कर का कथन है कि ''शान्तिपूर्ण ढंग से एक संवैधानिक क्रांति हुई जिससे ब्रिटिश सत्ता भारत में सार्वभौम बन गयी। [27] ब्रिटिश क्राउन समय–समय पर दरबार का आयोजन करके देशी राजाओं को व्यक्तिगत रूप से उनकी राजभक्ति प्रदर्शित करने के लिए आमंत्रित करता था, देशी नरेशों को ग्रांड कमांडर ऑफ द स्टार ऑफ इण्डिया (जी0सी0एस0आई.) (जी0सी0 वी0ओ0) आदि उपाधियों से सम्मानित किया जाता था।[28] ब्रिटिश परमोच्च शक्ति को प्रतिपादित करने की यह एक प्रक्रिया थी।[29]

1858 ई. के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने देशी नरेशों के प्रति दोहरी नीति का अनुसरण किया। एक ओर देशी नरेशों को प्रसन्न कर मैत्री का हाथ बढ़ाया तो दूसरी तरफ परमोच्च सत्ता के सिद्धांत को प्रतिपादित कर देशी नरेशों को व्यवस्थित तरीके से शक्तिहीन बनाकर पूर्णरूप से अधीनस्थ स्थिति में परिणत कर दिया।[30] सन् 1858 ई. से लेकर ब्रिटिश राज की समाप्ति तक अंग्रेजों की नीति भारतीय नरेशों, जागीरदारों और प्रतिक्रियावादी तत्वों के संरक्षण की रही जिनका प्रयोग वह भारत के प्रगतिशील तत्वों के विरोध में करती रही।[31]

सन् 1876 ई. में वायसराय लार्ड लिटन ने घोषणा की कि इंग्लैण्ड की राजशाही को अब से एक शक्तिशाली देशी अभिजातंत्र की आशाओं, आंकाक्षाओं, सहानुभूतियों और हितों के साथ अपना घनिष्ट संबंध स्थापित करना होगा। राजाओं जागीदारों और जमीदारों ने इस घोषणा का अर्थ यह लगाया कि वे तब तक बने रहेंगे जब तक कि ब्रिटिश शासन बना रहेगा। देशी राज्यों पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिये गवर्नर जनरल के सीधे नियंत्रण में एक राजनीतिक विभाग बनाया गया। इस विभाग में नियुक्ति के लिये इण्डियन पोलिटिकल सर्विस का गठन किया गया। इस सेवा में इण्डियन सिविल सर्विस तथा सेना के अधिकारी लिये जाते थे। राजनीतिक विभाग के अधीन समस्त प्रमुख रियासतों एवं रियासतों के समूहों के लिये रेजीडेंट एवं पोलिटिकल एजेण्ट रखे गये।[32]

1858 ई. में वायसराय लार्ड कर्जन ने बड़े गर्व के साथ कहा था। हमारी नीति के फलस्वरूप देशी नरेश भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अंग बन चुके हैं।[33] देशी रियासतों के शासक, अंग्रेजों का कर चुकान के लिये प्रजा के हितों की चिंता न करते हुए मनमानी करते थे। कर वसूलने के लिये अब वे ज्यादा अत्याचार करते थे, राज्य की कानून व्यवस्था पहले राजाओं और राजपरिवार के सदस्यों की मर्जी से चलती थी, किन्तु अब अंग्रेजों तथा उनके प्रतिनिधियों की मर्जी के अनुसार चलने लगी।

1903 ई. में कर्जन ने स्पष्ट किया कि राजा अपने राज्यों पर ब्रिटिश शासक के ऐजेंट के रूप में शासन कर रहें हैं। ब्रिटिश क्राउन की परमोच्चता हर स्थान पर चुनौती रहित है, इसने अपने निर्बाध अधिकारों को स्वयं सीमित कर रखा है।[34] कर्जन

ने देशी रियासतों के शासकों को शासन करने के अयोग्य, अज्ञानी, उदण्ड व उज्जड़ विद्यार्थी कहा था।[35]

भारत में अंग्रेजों की शासन पद्धति शुरू से कुछ ऐसी रही जैसे कोई बूढ़ा स्कूल मास्टर कक्षा के उज्जड़ विद्यार्थियों को बेंत के जोर पर सही करने निकला हो। वस्तुतः देशी शासकों की स्थिति ब्रिटिश सरकार के समक्ष मात्र एक सामंत की भाँति थी।[36]

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय राजनीति में परिवर्तन आया। बहुत से ऐसे तथ्य उभर कर आये जिनके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को भारतीय नरेशों के साथ अपनाई जा रही नीति पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा इसमें एक महत्वपूर्ण तथ्य था भारत में राष्ट्रीय भावना का विकास। देश में राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। ब्रिटिश साम्राज्य के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी। जब अंग्रेजों का सिंहासन हिलने लगा तब उन्हें एक बार फिर देशी नरेशों की याद आई। उन्हें देशी राजाओं की सहायता की आवश्यकता हुई। दूसरी तरफ परमोच्च सत्ता की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ी जिससे देशी शासक चिंतित थे। वे परमोच्च शक्ति के सिद्धांत का विरोध करने का मानस बना रहे थे। वे इसकी व्याख्या चाहते थे और सन्धियों से प्राप्त अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये आतुर थे।[37]

ब्रिटिश सरकार ने 1905 ई. के बाद देशी नरेशों के साथ ''अधीनस्थ सहयोग'' की नीति का अनुसरण करना चाहा।

III **अधीनस्थ सहयोगकालीन राजस्थान (1908–1947)–** कर्जन के शासनकाल की तूफानी उत्तेजना के बाद जब भारत के नये वायसराय लार्ड मिण्टो (1905–1911) ने पद संभाला, तब उसने देशी राज्यों के आंतरिक मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप करने तथा नरेशों पर अनुचित दबाव डालने की नीति का परित्याग कर दिया। लार्ड मिण्टो ने देशी राजाओं की समस्याओं को समझने के लिये उनके साथ सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक समझा। नवम्बर, 1909 ई. में उदयपुर यात्रा के समय लार्ड मिण्टो ने कहा कि विशेष परिस्थितियों को छोड़कर सामान्यतः ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों के विषय में अहस्तक्षेप की नीति अपनायेगी देशी राज्यों में नियुक्त पॉलिटिकल एजेन्टों के अधिकारों में शनैःशनैः कमी आने लगी थी। भारत में संचार साधनों का द्रुतगति से विकास हो

रहा था। जिसके फलस्वरूप ए.जी.जी. और वायसराय के बीच निरन्तर संपर्क बना रहता था। तथा सभी विषयों पर राजनीतिक विभाग से तुरन्त निर्देश प्राप्त हो जाते थे। स्थानीय पॉलिटिकल अधिकारी अब एक डाकघर की भॉति था। 1896 ई. में इण्डियन पॉलिटिकल प्रेक्टिस की तीन जिल्दें और 1910 ई. में पॉलिटिकल डिपार्टमेंट मेन्यूअल के प्रकाशित हो जाने के बाद स्थानीय अधिकारी के लिए व्यक्तिगत विवेक और निर्णय का अवसर ही नहीं रहा। एक बार फिर देशी राज्यों का सहयोग प्राप्त करने के लिऐ समान हितों की बात कहकर ब्रिटिश सरकार ने देशी राज्यों के नरेशों को अपनी ओर आकर्षित करने की नीति निर्धारित की।[38] ब्रिटिश सत्ता ने इस काल में राजाओं को मजबूत बनाने के लिये इस बात की आवश्कता अनुभव की कि देशी नरेशों का एक संघ बनाया जाना चाहिये जिसके द्वारा उनका सहयोग प्राप्त करने में आसानी हो।

28 मई, 1906 को लॉर्ड मिण्टो ने भारत सचिव लार्ड मार्ले को एक पत्र लिखा– कांग्रेस के उद्देश्यों को चकनाचूर करने के लिए मैं हाल में बड़ी गंभीरता से सोचता रहा हूँ। मेरे विचार में राजाओं की एक कांऊसिल बना देने से हमारा अभिप्राय सिद्ध हो सकता है।[39] परन्तु भारत सचिव मार्ले इस प्रस्ताव के प्रति सकारात्मक नहीं थे। कुछ बड़े व प्रमुख शासकों ने भी इसका विरोध किया। ऐसी स्थिति में भारत सचिव ने मिण्टो के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि इस प्रकार की योजना तभी सफल हो सकती है जबकि उसमें भाग लेने वाले उससे पूर्ण सहमत हों[40]

इसी विचार से प्रेरित होकर लार्ड हार्डिंग ने भारतीय नरेशों से सलाह लेने की पद्धति शुरू की। इस तरह की पहली कान्फ्रेंस 1913 में प्रथम महायुद्ध की शुरूआत पर हुई। प्रथम विश्व युद्ध में राजाओं के सहयोग को देखते हुए ब्रिटिश सरकार द्वारा साम्राज्य परिषद का गठन किया गया। इसके माध्यम से आंग्ल शासन भारतीयों को यह अनुभव कराने के लिये आतुर था कि वह भारतीयों को साम्राज्य से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में सहकारी बनाने का अभिलाषी है। 1917 में लंदन में आयोजित साम्राज्यिक सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये तीन भारतीय प्रतिनिधियों – बीकानेर नरेश गंगासिंह, सर जेम्स मेस्टन तथा सर एस.पी.सिन्हा को बुलाया गया । सन् 1917 ई. में महाराजा गंगासिंह ने भारत लौटते समय रोम में एक आलेख भारत सचिव के पास भेजा जो ''**रोम नोट**'' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गंगासिंह ने साम्राज्य के

अन्तर्गत भारत को स्वराज प्रदान करने पर जोर देते हुए नरेशों की एक परिषद या सभा का निर्माण करने का भी सुझाव दिया था।[41] बाद में भारत सचिव एडविन एस. माण्टेग्यू के भारत आगमन पर, गंगासिंह, अलवर के महाराजा जयसिंह और अन्य नरेशों ने एक शिष्टमण्डल के रूप में मिलकर अपना दृष्टिकोण अनके समक्ष रखा।[42] रजवाड़ों की मांगों को देखते हुए मांटेग्यू–चैम्सफोर्ड रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था। कि भारतीय नरेशों की एक स्थायी परिषद होनी चाहिये। अंततः दिसम्बर 1919 ई. में नरेन्द्र मण्डल की स्थापना के सम्बन्ध में राजकीय घोषणा कर दी गई। अटल एवं अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप नरेन्द्र मण्डल की स्थापना का निर्णय किया गया। इस प्रकार महाराजा गंगासिंह का इस संस्था को प्रारम्भ से लेकर अन्तिम रूप देने तक बहुत बड़ा योगदान रहा.।[43]

8 फरवरी, 1921 को सम्राट जार्ज पंचम के चाचा ड्यूक ऑफ कैनॉट ने दिल्ली के किले में इसका उद्घाटन किया।[44.] इस अवसर पर ब्रिटिश सम्राट जार्ज षष्ठम की ओर से की गई घोषणा में कहा गया कि मेरे पूर्वजों द्वारा एवं स्वयं मेरे द्वारा अनके अवसरों पर दिये गये आश्वासनों के अनुसार मैं भारतीय शासकों के विशेषाधिकारों, अधिकारों एवं उनकी गरिमा को बनाये रखूंगा। राजा लोग इस बात को लेकर निश्चित रहें यह प्रतिज्ञा सदैव अनुलंघनीय एवं पवित्र रहेगी।

नरेन्द्र मण्डल की अध्यक्षता वायसराय करता था। वायसराय की अनुपस्थिति में चांसलर द्वारा अध्यक्षता की जाती थी। इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष जनवरी या फरवरी में दिल्ली में होता था। 1927 ई. तक इसका अधिवेशन बन्द कमरे में होता था किन्तु 1928 से इसका खुला अधिवेशन होने लगा। इस संस्था के प्रथम चांसलर बीकानेर रियासत के महाराजा गंगासिंह थे। 1926 ई. तक वे इस पद पर बने रहे।[45] पूरे विश्व में यह अपने जैसी एकमात्र संस्था थी। वैसी संस्था न भूतकाल में बनी थी और न भविष्य में कभी बनने वाली थी। इस मण्डल की स्थापना से ब्रिटिश सरकार तथा देशी नरेशों के बीच निकट का सम्बन्ध स्थापित हुआ। वे दोनों यह अनुभव करने लगे थे कि उनके हित अधिकांशतः समान है। इस संस्था के माध्यम से देशी नरेश भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में प्रविष्ट हुए।[46]

इस संस्थान से अपेक्षा की गयी थी कि यह देशी राज्यों में प्रशासनिक सुधार के काम को आगे बढ़ायेगी किन्तु हैदराबाद, कश्मीर, बड़ौदा, मैसूर, त्रावणकोर, कोचीन और इन्दौर आदि कई बड़ी रियासतें नरेन्द्र मण्डल में शामिल नहीं हुई, दूसरी और 127 छोटी छोटी रियासतों में से कुल 12 सदस्य ही नरेन्द्र मण्डल में लिये गये इन दोनो कारणों से यह संस्था मध्यमवर्गीय रियासतों की संस्था बन कर रह गयी।[47] यह एक परामर्शदात्री संस्था थी। इसकी बैठक वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होती थी। इस संस्था का मुख्य कार्य ब्रिटिश सरकार से परामर्श लेना तथा ब्रिटिश सरकार को परामर्श देना था। किन्तु बाद में यह संस्था भारतीय राजाओं के अधिकारों के सम्बन्ध में तथा ब्रिटिश नीति के सम्बन्ध में भी विचार विमर्श करने लगी। आरम्भ में नरेन्द्र मण्डल के अनेक सदस्य अखिल भारतीय संघ के निर्माण के पक्ष में थे।

राजा रजवाड़े यदि चाहते तो इस संस्था का उपयोग अपने अधिकारों को मजबूत बनाने तथा रियासतों की जनता के लिये अनुकूल विधि विधान बनाने में कर सकते किन्तु अधिकांश राजाओं को अपने आमोद–प्रमोद तथा विलासिता से ही अवकाश नहीं था। इस कारण नरेन्द्र मण्डल में कठिनाई से 50 सदस्य ही भाग लेते थे और ये सदस्य भी सभा भवन में कम बैठते थे। नरेन्द्र मण्डल में राज्यों की प्रजा का न तो प्रतिनिधित्व था और न उनके हितों के लिये कोई बात ही की जाती थी। इस संस्था में पारित कोई भी प्रस्ताव संस्था की बैठक में उपस्थित या अनुपस्थित सदस्यों पर बिना उसकी स्वीकृति के लागू नहीं हो सकता था।[48] भारत के पांच राज्यों के नरेश ही नरेन्द्र मण्डल में ज्यादा रूचि लेते थे, जिनमें बीकानेर और अलवर नरेश प्रमुख थे।[49]

इस प्रकार बीसवीं शती में जब संवैधानिक आंदोलन का दौर चला तब देशी नरेशों का यह मण्डल गठित हुआ जिसकी प्रेरक ब्रिटिश सरकार थी। केन्द्रीय धारासभा, गोलमेज सम्मेलन या इस प्रकार के अन्यान्य सम्मेलनों में प्रस्तुत प्रस्ताव एवं विधेयक नरेन्द्र मण्डल की स्वीकृति के बिना संवैधानिक स्तर प्राप्त नहीं कर सकते थे। इस प्रकार यह नरेश या देशी राज्यों का संघ अंग्रेज सरकार की सुरक्षा प्राचीर था जिसकी चिनाई बांटों और राज करो के चूना –गारे से हुई थी।[50]

अंग्रेजी सत्ता के साथ देशी नरेशों के संबंध का प्रश्न अभी तक पूरी तरह सुलझ नहीं सका था। इस सम्बंध में महाराजा गंगासिंह के चांसलर के रूप में किये गये प्रयास असफल ही रहे। अधिकांश वायसरायों का भारतीय नरेशों के साथ दृष्टिकोण एक साम्राज्यवादी का ही रहा। लार्ड चेम्सफोर्ड के पश्चात् लार्ड रीडिंग भारत का वायसराय नियुक्त हुआ। नरेन्द्र मण्डल का अध्यक्ष होने के नाते वह नहीं चाहता था कि परमोच्च सत्ता के अधिकारों से सम्बन्धित प्रश्नों पर नरेन्द्र मण्डल में विचार–विमर्श किया जाये। रीडिंग ने देशी राजाओं को अपने राज्यों में राजनीतिक सुधार करने के लिये बार–बार कहा।[51] लार्ड रीडिंग ने हैदराबाद के निजाम को लिखा कि ''ब्रिटिश क्राउन की सर्वोच्चता के परिणामस्वरूप उसे देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का भी अधिकार है।[52] इस प्रकार के कुछ उदाहरणों के कारण देशी रजवाड़ों ने यह महसूस किया कि ब्रिटिश सरकार से उनके सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना आवश्यक है क्योंकि आंग्ल भारत में प्रत्येक राजनीतिक परिवर्तन के साथ उनके सन्धियों से प्राप्त अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का ह्रास होता जा रहा था।[53]

लार्ड रीडिंग के उत्तराधिकारी लॉर्ड इर्विन ने भी भारतीय नरेशों से आग्रह किया कि वे अपने राज्यों में राजनीतिक सुधार करें और सही रूप से वे अपनी प्रजा के सर्वमान्य सेवक तथा उनके हितों के एकमात्र विश्वस्त रक्षक बनें। इस आशय का फरवरी 1928 ई. में नरेन्द्र मण्डल ने एक प्रस्ताव भी पारित किया। जिसमें नरेशों से आग्रह किया गया कि वे आंतरिक राजनीतिक शासन सुधार की आवश्यकता को समझते हुए इस दिशा मे कारगर कदम उठाऐं। परन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयास नहीं किया। यह उनकी भयंकर भूल व अदूरदर्शिता ही कही जायेगी। उन्होंने अपनी प्रजा को अपने साथ न लेकर ब्रिटिश सरकार तथा राष्ट्रीय कांग्रेस आदि भारतीय राजनैतिक दलों के विरूद्ध आवाज उठाई ये दोनों प्रमुख विरोधी पक्ष नरेशों की सभी कमजोरियों से परिचित थे, अतः राजनीतिक मामलों में उन्होंने समय–समय पर नरेशों की उपेक्षा ही की और अन्ततः इन देशी राज्यों के भारत में विलय के समय कोई कठिनाई उपस्थित नहीं हुई। [54]

मई 1927 ई. में वायसराय लार्ड इर्विन ने नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति के सदस्यों से शिमला में विचार विमर्श किया। वहाँ राजाओं ने ब्रिटिश सरकार के साथ अपने राजनीतिक संबन्धों का यथातथ्य अवबोधन एवं यथोचित मूल्यांकन कराने के लिए एक कमेटी की नियुक्ति की मांग की। परिणामतः सैक्रेटरी ऑफ स्टेट ब्रिकनहेड द्वारा 26 दिसम्बर 1927 ई. को तीन सदस्यों की एक समिति की नियुक्ति की गई इसके अध्यक्ष हरकोर्ट बटलर थे। इसमे दो और सदस्य सिडने पील और डब्ल्यू. एस. होल्डरवर्थ थे। यह समिति बटलर समिति के नाम से जानी जाती है। इस समिति का मुख्य कार्य देशी राज्यों के साथ भारत सरकार के राजनीतिक व आर्थिक सम्बन्धों पर विचार करना था। देशी नरेशों ने ब्रिटेन के प्रसिद्ध तथा तत्कालीन विश्व के सबसे मंहगे वकील लेसली स्कॉट को बुलाया। उसने बटलर कमेटी के सम्मुख नरेशों की तरफ से पैरवी की थी उसका मुख्य तर्क यही था कि परमोच्च सत्ताधारी शक्ति के अधिकार सीमित थे। यह कहा गया कि भारत सरकार को देशी राज्यों के आन्तरिक मामलों में हर प्रकार से हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। लेसली स्कॉट ने देशी नरेशों के पक्ष को बड़े प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया था, परन्तु इन सबसे उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। 16 अप्रैल, 1929 को बटलर समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई।[55]

जिसमें कहा गया कि निश्चित रूप से भारतीय राजाओं के संबंध ब्रिटिश सम्राट से है। साम्राज्यिक इतिहास ब्रिटिश इम्पीरियल हिस्ट्री में भारत की देशी रियासतों ने मुख्य भूमिका निभाई है। विद्रोह के समय उनकी स्वामिभक्ति, देशभक्ति पूर्ण दावों के प्रति उनका रूख, महायुद्ध के समय उनकी अनुपम सेवाएं, ब्रिटिश ताज, सम्राट तथा राज परिवार के प्रति उनका अद्भूत समर्पण हमारे साम्राज्य का ऐतिहासिक गौरव है किन्तु परमोच्चता सदैव के लिये परमोच्च है।[56] परमोच्चता ने ही राजाओं के अस्तित्व को बनाये रखा है। इसलिये भारतीय राजा ब्रिटिश सम्राट के साथ बराबरी का दावा नहीं कर सकते। समिति ने सिफारिश की कि ब्रिटिश सरकार की परमोच्चता को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि देशी राज्यों के शासन में चलने वाले जन आंदोलन को समाप्त करने के लिये ब्रिटिश सरकार राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करे।[57]

बटलर समिति की रिपोर्ट पर सभी ओर से आलोचना की गयी। इस रिपोर्ट को देखकर राजाओं में विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ।[58] फरवरी 1930 में नरेन्द्र मण्डल के अधिवेशन में महाराजा गंगासिंह ने राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के अधिकार पर बटलर समिति द्वारा अपनाई गई विचार पद्धति की तीव्र भर्त्सना की।[59]

इस कानूनी बहस से देशी नरेशों को एक ही लाभ पहुँचा, उनका यह तर्क कमेटी ने स्वीकार कर लिया कि देशी नरेश ब्रिटिश क्राउन के प्रति उत्तरदायी थे और वे इसके अतिरिक्त किसी अन्य के प्रति वफादार नहीं हो सकते थे।

अधिकांश भारतीय चाहते थे कि देश में एकता तथा एकरूपता स्थापित की जाये। 1904 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 20 वें सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में **सर हेनरी कॉटन** ने पहली बार कांग्रेस के मंच से संघीय विचार को स्पर्श किया। सर हेनरी कॉटन ने भारतीय संघ की स्थापना को भारतीय देशभक्तों का आदर्श बताते हुए कहा कि ''यूनाईटेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया'' नामक एक ऐसे संघ की स्थापना हो जो स्वतंत्र और विलग राज्यों का स्वायत्तशासी उपनिवेशों के साथ मैत्रीपूर्ण स्तर पर गठित संघ हो और जो ब्रिटेन की छत्रछाया से परस्पर संयुक्त हो। सर हेनरी कॉटन ने इसे ''मद्धिम एवं दूरस्थ भविष्य'' बताया था।

सन् 1914 में वायसराय लार्ड हार्डिंग ने इस प्रकार के संयुक्तिकरण की साध्यता को अभिज्ञात कर लिया था। उनके मन में एक ऐसा तंत्र विकसित करने की योजना थी जिसके द्वारा ब्रिटिश भारत तथा रियासती भारत के बीच एक सतत् एवं सहज सहकारिता स्थापित हो सके।[60]

बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने 1914 में वायसराय के समक्ष एक मसविदा प्रस्तुत किया जिसमें सुझाव था कि समस्त देशी राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक संघीय मण्डल का विकास किया जाये तथा यदि आवश्यक हो तो इस मण्डल में ब्रिटिश भारतीय प्रातों का भी उनके तत्सम्बन्धी राज्यपालों तथा उपराज्यपालों द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाये। महाराजा के इस सुझाव की चारो ओर प्रशंसा हुई किन्तु वास्तविकता यह थी कि विदेशी शासकों, भारतीय नेताओं तथा आमजन की सहानभूति बटोरने के उद्देश्य से ही महाराजा ने यह सुझाव दिया था क्योंकि आगे चलकर जब

इसके क्रियान्वयन का वास्तविक अवसर आया तो महाराजा गंगासिंह संघ निर्माण के कार्य के सबसे बड़े विरोधी सिद्ध हुये।[61]

1927 ई. में भारतीय संविधान आयोग की नियक्ति कर दी गयी इसके अध्यक्ष सर जॉन साइमन थे आयोग के समस्त सात सदस्य अंग्रेज थे। इसलिये इसे साइमन कमीशन या ''व्हाईट कमीशन' भी कहा जाता है।[62]

साइमन कमीशन के व्यापक विरोध एवं उसकी असफलता से चिढ़कर भारत सचिव लार्ड ब्रिकनहेड ने ब्रिटिश संसद में भारतीयों को भारत में एक ऐसे संविधान के निर्माण की चुनौती दी जो समस्त पक्षों को मान्य हो। इसी चुनौती का परिणाम था 10 अगस्त, 1928 को प्रकाशित नेहरू रिपोर्ट। इस रिपोर्ट में देशी राज्यों के संबंध में कहा गया था कि भारत की उत्तरादयी सरकार भी देशी राज्यों के संबंध में उन्हीं अधिकारों का प्रयोग करेगी तथा उनके प्रति संधियों से अविर्भूत होने वाले अथवा अन्य उन्हीं दायित्वों का पालन करेगी। जिन अधिकारों एवं दायित्वों को वर्तमान भारत सरकार द्वारा एतकाल पर्यन्त प्रयुक्त एवं पालित किया गया है। रिपोर्ट में देशी नरेशों को कहा गया था कि उन्हें भारतीय संघ में तभी सम्मिलित किया जायेगा। जब उनके राज्यों में उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दी जायेगी। [63]

भारतीय नरेशों ने जिनमें महाराजा गंगासिंह अग्रणीय थे। रिपोर्ट का स्वागत किया, परन्तु उन्होंने एतकाल पर्यन्त प्रयुक्त एवं पालित की शब्द योजना के प्रति असहमति प्रकट की देशी राजा अपने राज्यों के एकतन्त्रात्मक ढाँचे में भी परिवर्तन लाने के पक्ष में नहीं थे।[64]

नेहरू रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए मणिलाल कोठारी ने कुछ राजाओं के लिये अपशब्द का प्रयोग किया इससे उत्तेजित होकर बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने अपने एक भाषण में अपने पुरखों की तलवार का उल्लेख किया। राष्ट्रीय सामचार पत्रों ने इस पर यह टिप्पणी की कि जो लोग विदेशियों के सामने भेड़ बने रहे और अपनो को तलवार दिखाते हैं वे मर्द नहीं।[65]

संघीय व्यवस्था पर राजाओं के विचार

देश में चले राष्ट्रीय आंदोलन के कारण अपने कम होते प्रभाव को सुरक्षित रखने के लिये भारतीय राजा उत्तरोतर अपने आप को राष्ट्रीय आंदोलन के विरूद्ध प्रस्तुत करते रहे। उस समय ब्रिटिश भारत के सामाचार पत्रों में एवं सार्वजनिक मंचों से ये आलोचनायें की जा रही थीं कि ब्रिटिश भारत में संवैधानिक प्रगति का विरोध करने के लिये राजा–लोग अंग्रेजों के साथ षड़यंत्र में सम्मिलित हो गये हैं। महाराजा गंगासिंह ने अत्यंत दृढ़ता से इन आरोपों का खण्डन किया [66] और कहा कि ''भारतीय नरेशों ने सामूहिक रूप से अनके अवसरों पर यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि वे न केवल आंग्ल भारत में अपने देशवासियों की राजनीतिक एवं संवैधानिक प्रगति के प्रति सहानुभूति रखते हैं अपितु राजाओं ने देशवासियों के प्रति अपना अनुमोदन एवं पक्षपोषण भी व्यक्त किया है।''[67]

कांग्रेस 1929 के आते–आते डोमिनियम स्टेट्स के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य की मांग पर अड़ गई। अंग्रेजों की अपेक्षाओं पर खरे उतरने के लिए राजाओं ने कांग्रेस की पूर्ण स्वराज्य की मांग का विरोध किया। बीकानेर नरेश गंगासिंह व अलवर महाराजा जयसिंह नरेन्द्र मण्डल की राजनीति में अग्रणी रहे थे।[68] यही कारण था कि 1929 ई. के प्रारम्भ में राजस्थान के कुछ शासकों ने अपने आपको राष्ट्रीय धारा के मार्ग में एक बड़े पत्थर की भांति खड़ा कर दिया।[69]

फरवरी, 1929 ई. में नरेन्द्र मण्डल की एक सभा में कांग्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की आलोचना की गयी। बीकानेर नरेश गंगासिंह ने इस सम्मेलन में कहा कि हम ब्रिटिश राजमुकुट के साथ अपनी संधियों के द्वारा बंधे हुए हैं। जिसके कारण शासक किसी भी ऐसी ख्याली और असंभव योजना को सहन नहीं कर सकते जिसका लक्ष्य अंग्रेजों से सम्बध विच्छेद और पूर्ण स्वतन्त्रता स्थापित करना हो। गंगासिंह यहाँ तक कह गये कि अंग्रेजी सम्बन्ध विच्छेद के बाद ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होने के मार्ग में दुर्गम कठिनाईयां पैदा हो जायेगी।[70]

साइमन कमीशन की रिपोर्ट को सभी राजनीतिक दलों ने अस्वीकार कर दिया। अतः सरकार ने 12 नवम्बर, 1930 ई. को लंदन में गोलमेज परिषद का सम्मेलन बुलाया। इसमे 89 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें से 16 देशी रियासतों के, 57 ब्रिटिश भारत के और 16 ब्रिटिश संसद के प्रतिनिधि थे। राजपूताना से अलवर, बीकानेर और धौलपुर राज्यों के नरेश इसमें सम्मिलित हुये। उनके साथ उनके योग्य प्रशासक भी थे। कांग्रेस ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया।[71]

19 दिसम्बर, 1929 को बीकानेर नरेश गंगासिंह ने बीकानेर राज्य की विधानसभा में भाषण देते हुए कहा कि मैं उस दिन को देख रहा हूँ, जब एकीकृत भारत महामना सम्राट की छत्रछाया में डोमिनियन स्टेट्स का आनंद ले रहा होगा तथा भारतीय राज्य एवं राजा लोग एक ठोस संघीय ढांचे में ब्रिटिश भारत के प्रांतों के साथ परम समानता की स्थिति को प्राप्त करने का आनंद लेंगे जिसके कि वे पूरे हकदार हैं।[72] अलवर महाराजा जयसिंह ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहा कि मेरा लक्ष्य यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया बनाना है जहाँ प्रत्येक प्रान्त प्रत्येक रियासत अपनी नियति, अपने वातावरण, परम्पराओं, इतिहास तथा धर्म के साथ एकत्र होकर साम्राज्यिक तथा महान उद्देश्यों के लिये कार्य करे।[73]

फरवरी, 1930 में आयोजित नरेंद्र मण्डल के अधिवेशन में महाराजा गंगासिंह ने कहा कि जब विभिन्न प्रांत अधिकतर स्वायत्ता के लिये तथा नये अधिकारों के उपहार के लिये दुहाई मचा रहे हैं, तब राजा–रजवाड़े भी अपनी मूल आंतरिक स्वायत्ता के पुनः स्थापन की प्रत्याशा करते है।[74]

नेहरू ने इस पर टिप्पणी की कि आंग्ल भारत द्वारा, अखिल भारत के लिये अधिराज्य प्रतिष्ठा की मांग, बटलर समिति के निष्कर्ष तथा सइमन आयोग की नियुक्ति के परिणामस्वरूप राजा लोग स्वभावतः उद्विग्न हो उठे है।[75]

चतुर ब्रिटिश शासकों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुये भारत पर दीर्घ काल तक राज्य करने के लिये एक नया फार्मूला तैयार किया उन्होंने भारत की संवैधानिक प्रगति अर्थात स्वाधीनता का मार्ग रोकने के लिये एक और तो देशी राजाओं की पीठ थपथपाई तथा दूसरी ओर मुस्लिम लीग को सम्बल प्रदान किया।[76]

ब्रिटिश सरकार का नया फार्मूला यह था कि देश को एक करने के नाम पर भारत संघ बनाने के प्रयास तेज किये जाये।[77] न तो कांग्रेस और मुस्लिम लीग किसी बात पर सहमत होगी और न ही कांग्रेस और देशी राजा किसी बात पर सहमत होंगे। इस स्थिति का प्रतिफल भारत पर ब्रिटिश शिकंजे की मजबूती के रूप में होगा।[78]

ऐसा लगता था कि देश कई धड़ों में बंटकर एक दूसरे के विरूद्ध लड़ाई लड़ने के लिये कमर कस रहा था। एक ओर ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों के विरूद्ध आजादी की लड़ाई लड़ने वाले भारतीय नेता थे तो दूसरी और भारत पर मजबूती से अपना अधिकार बनाये रखने के लिये तत्पर ब्रिटिश सरकार के विदेशी एवं भारतीय अधिकारी। एक ओर देशी राज्यों में सुशासन की मांग करने वाली अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद तथा राज्यों की प्रजा परिषदें थीं, तो दूसरी ओर देशी राज्यों में अपने नैसर्गिक राज्याधिकार से राज्य सुख भोगने वाले राजा। इसी संबंध में प्रो0 कीथ ने लिखा है कि–''यह भी स्पष्ट था कि ब्रिटिश पक्ष के द्वारा संघीय योजना को समर्थन दिये जाने का कारण ब्रिटिश भारत में खतरनाक प्रजातांत्रिक तत्वों के विकास के विरूद्ध संघर्ष करने के लिये विशुद्ध रूढ़िवाद को पनपाना था। आगे चलकर भारत सरकार अधिनियम 1935 में किये गये कई प्रावधानों से भी यह बात स्पष्ट होती है।''[79]

12 नवम्बर, 1930 से 19 जनवरी, 1931 तक चले गोलमेज सम्मेलन में सर तेजबहादुर सप्रू ने भारत में संघीय निर्माण का प्रस्ताव रखा तथा कहा कि ''राजा लोग पहले देशभक्त हैं और बाद में राजा'' वे एक ऐसे भारत की रचना करने के लिये प्रस्तुत हो जायें जिसका प्रत्येक भाग आत्म शासित हो, जो अपनी सीमाओं के भीतर निरपेक्ष स्वतंत्रता का उपभोग करता हो, जो शेष भाग के साथ यथोचित सम्बन्धों से विनियमित हो।''[80]

महाराजा गंगासिंह ने संघ के विषय में कहा था कि पूरे भारत की समृद्धि और संतोष के लिये हम भारतीय राजा अपना पूरा सहयोग देकर कर्त्तव्य पालन करने के लिये तैयार हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि हम अपना सहयोग उस संघीय सरकार को दे सकते हैं, जो रियासतों और ब्रिटिश भारत से मिलकर बनी हो। राजा लोग भारतीय हैं तथा वे लोग अपने देश की उन्नति के पक्ष में हैं और समस्त भारत की अधिकतम

समृद्धि एवं संतुष्टि में भाग लेने की तथा उसमें अपना योगदान करने की इच्छा रखते हैं।[81]

यद्यपि देशी राज्यों ने संघ में सम्मिलित होने के लिये कुछ शर्तें रखी जिसमें सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह थी कि ब्रिटिश सम्राट के साथ राजाओं के समझौते के अधिकारों को माना जाये और राजाओं की इच्छा के बिना उन्हें बदला न जाये। तथा यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि संघ, संवैधानिक प्रावधान तथा आर्थिक सुरक्षा की दृष्टि से देशी राज्यों के लिये संतोषजनक हो।[82]

उनके द्वारा संघीय प्रणाली को स्वीकार कर लेने से भारतीय राजनीति में एक क्रांन्तिकारी मोड़ आया। संयुक्त भारत का सिद्धांत सभी पक्षों ने स्वीकार कर लिया।[83]

अखिल भारतीय संघ की स्थापना के प्रति देशी राजाओं तथा मुस्लिम समुदाय द्वारा अधिक उत्साह दिखाया गया। ये बात और है कि दोनों ही पक्षों के उत्साह दिखाने के अलग–अलग कारण थे।[84]

कोरफील्ड ने इस विषय में लिखा है–ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेनोल्डस तथा अन्य लोगों को आश्चर्य हुआ, उन्हें संदेह था कि शासकों ने इसके परिणामों पर अच्छी तरह से विचार कर लिया था। राजाओं ने सोचा कि वे ब्रिटिश नियंत्रण से मुक्त हो जायेंगे। तथा उन पर संघ का बहुत ही कम नियंत्रण होगा।[85]

वी0पी0 मेनन ने इस विषय पर लिखा है "कि ऐसा किये जाने के कई कारण थे। कुछ रियासतों में जनता आंदोलन उत्पन्न कर रही थी। तथा राजा के अधिकार को चुनौती दी जा रही थी। कुछ राजाओं को चिंता थी कि यदि उनकी रियासत में नागरिक अवज्ञा का आंदोलन चलाया गया तो वे क्या करेंगें? कुछ राजाओं को लगता था कि एकीकृत ब्रिटिश भारत, अंग्रेज तथा भारतीय नेता पूरी तरह से देशी रियासतों को विलोपित कर देना चाहते हैं या कम से कम रियासतों के ऊपर ब्रिटिश भारत का आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं। हम देशी राज्य शासक और जनता इस तरह के विचारों का विरोध करने के लिये बाध्य हैं। अपने अधिकार सुरक्षित पाने की अपेक्षा संघीय भारत अधिक लाभदायक है। कुछ का यह भी सोचना था कि संघीय इकाई में

सम्मिलित होने से उन्हें आर्थिक सहायता मिल सकेगी। कुछ राजाओं की अभिलाषा थी कि नयी सरकार में उन्हें उच्च पद प्राप्त हो जायेंगे।''[86]

1931 ई. से 1935 ई. तक संघीय शासन व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में भारत में जो राजनीतिक चहल पहल रही उसमें देशी नरेशों की भूमिका भी रही, प्रथम गोलमेज सम्मेलन के समय देशी नरेशों में जो एकजुटता दिखाई दे रही थी, वह इसके बाद तुरत भंग हो गई।[87] देशी नरेश ''दो गुटों में विभाजित हो गये थे एक गुट का नेतृत्व पटियाला नरेश कर रहे थे, जबकि दूसरा गुट भोपाल नरेश के द्वारा संचालित था।[88] राजपूताना के देशी नरेशों में बीकानेर के महाराजा गंगासिंह, अलवर के महाराजा जयसिंह और धौलपुर के महाराज राणा उदयभान सिंह अधिक सक्रिय रहे। वे नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति के दीर्घकाल तक सदस्य रहे तथा उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में भी भाग लिया था। महाराजा गंगासिंह का राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान था। परन्तु राज्यदत्त का व्यक्तिगत सापेक्षित महत्व तथा अपनी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण राजपूताने के तीन प्रमुख राज्यों ने उनका हृदय से साथ नहीं दिया। धौलपुर नरेश उदयभान सिंह ने पटियाला गुट का साथ दिया जबकि बीकानेर के महाराजा गंगासिंह भोपाल गुट के सक्रिय सदस्य थे।[89]

पटियाला नरेश ने प्रस्तावित संघ व्यवस्था में छोटे राज्यों के हितों की उपेक्षा होने की बात कही छोटे राज्य पटियाला गुट के सहयोगी थे। पटियाला व धौलपुर रियासत ने मिलकर ''फेडरल इण्डिया'' के स्थान पर ''इण्डियन–इण्डिया''[90] योजना तैयार की राजपूताना के बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर और झालावाड़ के शासक इस योजना के पक्ष में थे। जबकी भोपाल–बीकानेर गुट के नरेश सीधे भारतीय संघ में सम्मिलित होने के पक्ष में थे। राजाओं की उस समय की मनः स्थिति पर एस0 के0 बोस ने लिखा है– ''संभवतः ही किसी भी संघीय योजना में अपने निजी अधिकार और हितों की सुरक्षा के लिये राजा लोग उत्सुक रहते थे और आशवासनों चाहते थे कि उनके निजी आंतरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप न करे बहुत से राजाओं को संघीय विचार पर संदेह हुआ और वे चुप होकर बैठ गये।''[91]

राजाओं ने उन्नीसवीं सदी के भारत को विलोपित होते हुए देखा तथा दूसरे अल्पसंख्यकों की भांति वे भी अपने दावों को बाजी पर लगाना चाहते थे ताकि वे उसका अधिकतम लाभ उठा सकें।[92]

महाराजा गंगासिंह के दृष्टिकोण पर चेतना मुद्गल ने लिखा है कि –''बटलर समिति की रिपोर्ट से शासकों को बड़ा धक्का लगा जिससे गंगासिंह के समक्ष भारत सरकार द्वारा राज्यों के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप का भय उत्पन्न हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब 17 नवम्बर, 1930 को गोलमेज सम्मेलन में सप्रू ने भारतीय शासकों को भारत संघ में सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया तो गंगासिंह ने 27 नवम्बर, 1930 के अपने भाषण में उसे तुरंत स्वीकृति दे दी। गंगासिंह ने अपना वास्तविक उद्देश्य अपने लम्बे भाषण में स्पष्ट किया वह राष्ट्रीय नेताओं से पहले अपने संधि अधिकारों के लिये मान्यता, संघीय व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिये सर्वोच्च न्यायालय, वायसराय को परामर्श देने के लिये एक राज्य परिषद और सामूहिक हितों के प्रश्नों का वर्गीकरण चाहते थे।[93] दाऊदयाल आचार्य ने महाराजा गंगासिंह के प्रयासों को दिखावटी माना है। वे लिखते है कि ''महाराजा साहब ने जब कभी भी और जिस किसी भी मंच पर भारत की स्वतंत्रता के प्रति समर्थन और सहानुभूति प्रकट की है व दिखावटी ही रही है क्योंकि उन्होंने स्वंतत्रता के मुद्दे के साथ हमेशा राजाओं के विशेषाधिकारों की शर्त को अनिवार्य रूप से रोड़ा बनाकर जोड़ा हैं और इस प्रकार देश की आजादी में रोड़े ही अटकाये है।......चूँकि बीकानेर नरेश भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों और संघर्षों में रोड़ा अटकाने वालों में अग्रणी थे इसलिए बाधक बनने वाले समस्त नरेशों में इनका नाम सिरे चढ़ता है।''[94]

देशी राजाओं द्वारा हमेशा यह महसूस किया गया कि परमोच्चसत्ता तथा राजाओं के सम्बन्धों को स्पष्ट परिभाषित नहीं किया गया है। अतः उनका भविष्य खतरे में रहेगा जब कभी भारत को सत्ता हस्तान्तरित की जाएगी।[95]

विधान मण्डलों में प्रतिनिधित्व का प्रश्न तथा राज्यों को संघ से कुछ वित्तीय सुविधाएं मिलने के विषय पर इन्कार करके फेडरल स्ट्रक्चर समिति ने राजाओं की आशाओं पर तुषारापात किया। संघीय न्यायालय रियासतों के कार्यक्षेत्र का विस्तार

करेगा, इसलिये गंगासिंह ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में प्रथम सम्मेलन के बराबर दिलचस्पी नहीं ली।[96]

गोलमेज सम्मेलन के समय तथा प्रारम्भ से लेकर 1947 ई. तक जब तक की देशी रियासतों का भारत में विलय नहीं हो गया देशी राजा हमारे देश के नेताओं के साथ आँख मिचौनी का खेल खेलते रहे। यद्यपि उन्होंने तीनों गोलमेंज सम्मेलनों कि परिचर्चा में भाग लिया तथापि महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ तथा देशी रियासतों के कुछ प्रतिनिधियों को छोड़कर कोई भी इस समस्या का समाधान खोजना नहीं चाहते थे।[97] देशी राजाओं ने अंग्रेज अफसरों की मदद से हर उस योजना को विफल करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी जिससे की भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होती हो उनकी व्यक्तिगत मंत्रणाओं में प्रायः यही विषय हावी रहता था कि भारत की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित प्रगति को कैसे रोका जाए?[98]

देशी रियासतों को संघीय व्यवस्था में अनेक रियायतें दी गई। उनकी आबादी भारत की कुल जनसंख्या का 23 प्रतिशत थी परन्तु संघीय विधानमण्डल के निचले सदन में उन्हें 33 प्रतिशत और उच्च सदन में 40 प्रतिशत स्थान दिये गये थे।[99]

इसके पश्चात् भी देशी राजाओं ने संघ व्यवस्था में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। बीकानेर राज्य के संघीय व्यवस्था में सम्मिलित नहीं होने के विषय से सम्बन्धित कारणों का उल्लेख महाराजा गंगासिंह द्वारा 27 जनवरी, 1939 को वायसराय को भेजे गये एक पत्र से होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार ने इसके विषय में चर्चा बन्द कर दी। 1935 ई. की संघीय व्यवस्था केवल कागजों में ही बनी रही।[100]

जहां कुछ इतिहासकारों ने गोलमेज सम्मेलन को असफल ठहराया है वहीं कुछ इतिहासकार इसे सफल सम्मेलन मानते हैं। मैसूर के दीवान सर मिर्जा इस्माइल ने लिखा है कि इस सम्मेलन की सफलता के बाद स्वयं अंग्रेज अधिकारियों में बेचैनी दिखायी दी। इंडियन फ्रेंचाइजी कमेटी के अध्यक्ष लार्ड लोटियान ने मिर्जा इस्माइल से एक वार्ता के समय कहा कि संघ भारत में राजा लोगों के अधिकारों को सभवतः तीस

साल तक चलायेगा। इस पर मिर्जा इस्माइल ने पूछा कि उसके बाद? लॉर्ड लोठियान ने उत्तर दिया कि वे नहीं सोचते कि राजा रजवाड़े अधिक दिन तक बने रहेंगे।[101]

राजाओं की मनःस्थिति

भारतीय नरेशों और ब्रिटिश भारतीय राजनीतिज्ञों के उद्‌देश्य एक दूसरे के विपरीत थे। भारतीय नरेश संघ के साथ ढुलमुल संबंध बनाकर ब्रिटिश शिकंजे को ढीला करना चाहते थे जबकी भारतीय नेता संघ निर्माण के माध्यम से भारत की आजादी का द्वार खोलना चाहते थे। भारतीय नरेश इस बात पर अड़े थे कि संघीय विधान मण्डल में राजाओं द्वारा मानोनीत प्रतिनिधि रहें, जबकि कांग्रेस की मांग थी कि जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को ही मान्यता दी जाये।[102]

जब राजाओं को लगा कि प्रस्तावित संघ राजाओं का हित साधन नहीं करेगा तो वे ब्रिटिश नेताओं और सरकारी मंत्रियों से मिलकर योजना बनाने लगे कि भारतीय नेताओं की आजादी हासिल करने की हर एक कोशिश को नाकामयाब कर दिया जाये संघीय निर्माण समिति की बैठकों के पहले ना ना प्रकार के उपायों का जाल बिछाया गया और योजनाएं बनायी गयी कि कांग्रेसी नेताओं का विरोध करके या तो सम्मेलन असफल कर दिया जाये अथवा विधान मण्डल में अपने मनोनीत सदस्यों का अधिक से अधिक अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त किया जाये ताकि देश का शासन राजाओं के हाथों में ही रह सके।[103]

यह कहा जा सकता है कि पहले गोलमेज सम्मेलन को कांग्रेस की अनुपस्थिति ने विफल किया दूसरे गोलमेज सम्मेलन को मुस्लिम लीग के हठीले रवैये ने तथा तीसरे गोलमेज सम्मेलन को राजाओं ने ब्रिटिश नेताओं के साथ मिली भगत करके हठीली चाले चलकर विफल किया। भारत सरकार अधिनियम 1938 में प्रावधान किया गया था कि ब्रिटिश भारत और स्वेच्छा से शामिल होने वाली देशी रियासतों के ढुलमुल अखिल भारतीय संघ में पूर्ण उत्तरदायित्व युक्त सरकार का निर्माण हो। संघीय विधान में रियासतों को अत्याधिक महत्व दिया गया था। इससे बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गयी। एक ओर तो राजा रजवाड़े अपनी सम्प्रभूता तथ ब्रिटिश ताज के साथ हुई संधियों को अनुलंघनीय बताकर अपने विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखे बिना, संघ में

सम्मिलत होने को तैयार नहीं थे तथा दूसरी और उनके संघ में सम्मिलित होने से उन्हें संघ के माध्यम से ब्रिटिश भारत के शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिलने वाला था।[104]

जनवरी, 1939 ई. में वायसराय ने राज्यों के शासकों को उनकी मांगों, आशंकाओं तथा प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए एक नया सम्मिलन पत्र तैयार करवाकर राज्यों को भिजवाया। इसे अखिल भारतीय संघ निर्माण की दिशा में वायसराय की ओर से किया गया अंतिम प्रयास माना जाता है।

कोनार्ड कोरफील्ड के अनुसार 1939 ई. में जब ये सम्मिलन पत्र शासकों को भिजवाये गये, उस समय मैं राजपूताने के रेजीडेंट का कार्य देख रहा था। जब ये संलेख राजाओं को मिले तो उनमे से कईयों ने पोलिटिकल एजेण्टों से सलाह मांगी। बीकानेर के महाराजा पहले से ही संघ में न मिलने का निश्चय कर चुके थे यहां तक कि वे संघ का विरोध करने वाले शासकों का नेतृत्व भी कर रहे थे। किन्तु कुछ शासक महाराजा बीकानेर का अनुसरण करने की इच्छा नहीं रखते थे तथा पॉलिटिकल अधिकारियों की राय जानना चाहते थे। उनमें से अधिकतर शासक यह जानना चाहते थे कि यदि वे सम्मिलन पत्र पर हस्ताक्षर कर देते हैं तो क्या वे राज्य के दीर्घ इतिहास, परम्परा और निष्ठा के प्रति अविश्वसनीय हो जायेगे।'' कोनार्ड कोरफील्ड के प्रयासों के फलस्वरूप राजपूताने के आधे से अधिक राजाओं ने भारत संघ में मिलने के लिये अपनी सहमति दे दी किन्तु देश के अन्य हिस्सों में स्थित रियासतों ने ऐसा नहीं किया।[105]

वी.पी. मेमन के अनुसार ''कुछ राजाओं का व्यवहार देखने वाला था उन्होंने अनौपचारिक बैठकों में कोई निश्चित रूख नहीं अपनाया अपितु वे बार बार राजनीतिक विभाग के पास भागते और उनसे कुछ छूट देने की प्रार्थना करते। राजनीतिक विभाग के अधिकारी वायसराय से बात करने के लिये जाते। इस प्रकार मेरी गो राउंड जैसी स्थिति बन गयी।''

चेतना मुदगल ने इस विषय पर लिखा है कि 1937– 39 ई. के मध्य राज्यों के शासक वर्ग ने अपने सम्मान और प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये भारतीय संघ में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। राजपूताना के शासकों ने अविश्वसनीय अयोग्यता का परिचय देकर अपने महत्व को सदा के लिये कम करवा लिया।

उन पर न तो राष्ट्रीय नेता और न ही अंग्रेज कोई तर्क संगत नीति अपनाने के लिये भरोसा कर सकते थे वे केवल अपने सम्मान, गौरव और प्रतिष्ठा में इतने डूबे रहे कि उन्हें पानी के गहरे होने का अनुभव ही नहीं हुआ। 1939 ई. के पश्चात् उनके प्रभाव को घटने में अधिक समय नहीं लगा।[106] राजाओं के अड़ियल रवैये पर टिप्पणी करते हुए फरवरी, 1940 में महात्मा गांधी ने हरिजन में लिखा'' मेरा अनुमान है कि राजा रजवाड़ें ब्रिटिश ताज के चाकर हैं। तथा ब्रिटिश ताज के बिना उनका कोई अस्तित्व नहीं है। वे ताज से वरिष्ठ तो हो ही नहीं सकते। यदि ताज जो कि अपनी सत्ता छोड़ने जा रहा हैं तो राजा लोग भी स्वतः अपनी सत्ता खो देंगे। राजाओ को इस बात पर गर्व होना चाहिये कि ब्रिटिश ताज के उत्तराधिकारी जो कि राजाओं के सम्मान की सुरक्षा करेंगे। भारत के लोग हैं, मैं यह दावा कांग्रेस की ओर से नहीं अपितु भारत के लाखों बेजुबान लोगों की ओर से कर रहा हूँ।''[107]

मार्च, 1940 ई. में नई दिल्ली में वायसराय की अध्यक्षता में नरेन्द्र मण्डल की बैठक हुई जिसमें एक प्रस्ताव पारित किया गया कि'' भारत के राजा अपने राज्यों की सम्प्रभुता की गारण्टी, संधि में प्रदत्त अधिकारों की सुरक्षा तथा ब्रिटिश प्रभुसत्ता के किसी अन्य भारतीय सत्ता को स्थानान्तरण से पूर्व राजाओं की सहमति प्राप्त किये जाने की अनिवार्यता की शर्त पर ही डोमिनियन स्टेट्स के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करेंगें।[108] **लंदन से प्रकाशित समाचार पत्र ''द टाइम्स'' ने इस पर** टिप्पणी की कि यह प्रस्ताव प्रदर्शित करता है कि भारतीय राजा संवैधानिक प्रगति का विरोध करते हैं तथा वे भारतीय आजादी का भी विरोध करते हैं।

नरेन्द्र मण्डल की इसी बैठक में बीकानेर नरेश गंगासिंह ने गांधी और कांग्रेस की जमकर आलोचना की तथा अस्पष्ट शब्दों में युद्ध की धमकी तक दे डाली। महाराजा गंगासिंह ने चैम्बर ऑफ प्रिंसेज में दिये गये भाषण में तीन प्रमुख बाते कही थी–एक

तो यह कि राजा–रजवाड़े ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उपज नहीं है। अपितु ब्रिटिश भारत, ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उपज है। दूसरी यह कि अधिकांश रियासतें अपने राजाओं की वलिष्ठ भुजाओं की ऋणी है इसलिये उन्हें मिटाया नहीं जा सकता। तीसरी यह कि राजा लोग कांग्रेस से नहीं लड़ रहे कांग्रेस राजाओं से द्वेष भाव रखती है।[109]

इन बातों का जवाब देने के लिये गांधीजी के परम सहयोगी प्यारेलाल ने हरिजन में एक विस्तृत लेख लिखा जिसमें कहा गया कि'' दुर्भाग्य से इस प्रकार की बेतुकी बात हो गयी है किन्तु यह बहुत विलम्ब से की गयी है। परमोच्च सत्ता से राजाओं के सम्बन्धों की संवैधानिक स्थिति चाकर अथवा अधीनस्थ सहयोग की है, कोई भी कह सकता है कि यह कांग्रेस की शब्दावली नहीं है। इसकी नींव उस साम्राज्यादी शासन द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों ने रखी थी। जिसके बारे में बीकानेर के महाराजा अनेक बार कह चुके हैं कि उन्हें इन सम्बन्धों पर गर्व है।''[110]

ब्रिटिश सरकार युद्ध काल में भी भारतीय संवैधानिक गतिरोध को दूर करने का प्रयास करती रही। 22 मार्च, 1942 को क्रिप्स मिशन भारत आया। भारतीय क्रिप्स योजना से संतुष्ट नहीं हुए। इस योजना में देशी राज्यों के विषय में अंग्रेजों ने एक नयी चाल चली। उनका कहना था कि वे किसी भी देशी राज्य को भारतीय संघ में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं करेंगे। देशी नरेशों का भी रवैया बदलने लगा यहीं से देशी नरेश अपने भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित रहने लगे। उनके सामने अब मूल प्रश्न यह था कि भारत की नयी संवैधानिक योजना में उनकी स्थिति क्या रहेगी?[111]

राजा रजवाड़े अपने भविष्य के प्रति आशांकित होकर बार–बार क्रिप्स से मिले। 2 अप्रेल, 1942 को क्रिप्स ने तीन नरेशों को जो उनसे मिलने आये थे गुस्से में आकर कहा कि'' उन्हें अपना फैसला कांग्रेस या गांधी से करना होगा। क्योंकि हम तो अब बिस्तर बोरिया बांधकर भारत से कूच करने वाले हैं। इस प्रकार क्रिप्स ने राजाओं को स्पष्ट किया कि वे अपने भविष्य के लिए भारत सरकार की तरफ देखे न कि ब्रिटिश सरकार की तरफ। क्रिप्स मिशन के इस रवैये से राजाओं को यह अप्रिय तथ्य स्पष्ट हो गया कि यदि ब्रिटिश भारत और राजसी भारत के हितों के बीच किसी तरह का विवाद हुआ तो महामना सम्राट की सरकार देशी राज्यों को नीचा दिखायेगी।[112]

1944 ई. में नेरन्द्र मण्डल की स्थायी समिति ने मांग की कि ब्रिटिश भारत को सत्ता का हस्तान्तरण किये जाने से पूर्व राज्यों के आंतरिक प्रशासन में ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप को पूर्णतः समाप्त कर दिया जाना चाहिये। ताकि प्रत्येक प्रकार के भय को समाप्त किया जा सके। राजनीतिक विभाग नरेंद्र मण्डल के इस विचार से सहमत नहीं हुआ तथा उसने राजाओं को कड़े पत्र लिखे। इन पत्रों की भाषा से राजाओं ने अपने आपको अपमानित अनुभव किया और राज्यों की स्थिति के लगातार क्षय के विरोध में दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में सामूहिक त्यागपत्र दे दिया।[113]

भूतकाल से बिल्कुल उलट ब्रिटिश सरकार ने भारत में कैबिनेट मिशन भेजने से पूर्व ही राजाओं को आवश्वासन दे दिया कि सम्राट के साथ उनके सम्बन्धों या उनके साथ की गयी। संधियों और समझौतों में दिये गये अधिकारों में उनकी सहमति के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा। 12 मार्च, 1946 के पत्र में लार्ड वैवेल ने इस आश्वासन को दोहराया।[114] 24 मार्च, को भारत की समस्या के समाधान के लिए कैबिनेट मिशन योजना प्रस्तुत की गई।[115]

02 अप्रैल, 1946 ई. को कैबिनेट मिशन तथा वायसराय के साथ साक्षात्कार के दौरान नरेन्द्र मण्डल के चांसलर भोपाल के नवाब ने स्पष्ट कर दिया कि देशी राज्य अपनी अधिकतम प्रभूसत्ता के साथ अपने अस्तित्व को कायम रखना चाहते हैं। वे अपने आंतरिक मामलों में ब्रिटिश भारत का कोई हस्तक्षेप नहीं चाहते। उन्होंने सलाह दी कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर भारतीय राज्यों तथा ब्रिटिश भारत के प्रांतों का एक प्रिवी कौंसिल बनाया जाना चाहिये। जब भारत में दो राज्यों (भारत एवं पाकिस्तान) का निर्माण हो सकता है। तब तीसरे भारत को मान्यता क्यों नहीं दी जा सकती, जो राज्यों से मिलकर बना हो? परमोच्चता भारत की भावी सरकार को स्थानान्तरित नहीं की जानी चाहिये।[116]

राजाओं में भी पारस्परिक मतभेद विद्यमान थे राजपूताना और शेष भारत के छोटे राज्यों की राय कुछ अलग थी। डूंगरपुर के शासक ने कहा कि छोटे राज्यों को भय है कि बड़े राज्य उन्हें निगल जाना चाहते हैं। ''छोटे राज्य संतोषजनक गांरटी चाहते हैं। एक अन्य राजा ने कहा की ''प्रत्येक राज्य को उसकी पुरानी आजादी पुनः लौटा दी

जानी चाहिये तथा उसे अपनी मनमर्जी के अनुसार कार्य करने के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये।''

12 मई, 1946 को कैबिनेट मिशन ने राज्यों के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट करते हुए भोपाल नवाब को एक स्मरण पत्र दिया जिसका शीर्षक **''संधियां एवं परमोच्चता''** था। इसे 12 मई, 1946 का स्मरण पत्र कहा जाता है। इसमें कहा गया कि नरेन्द्र मण्डल ने पुष्टि कर दी है कि भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति की अभिलाषा में भारतीय रियासतें देश के साथ हैं।[117]

राज्यों के शासक यह जानकर प्रसन्न हुए कि परमोच्चता समाप्त कर दी जायेगी तथा किसी अन्य सत्ता को स्थानान्तरित नहीं की जायेगी । समस्त अधिकार राज्यों को वापस मिल जायेंगे किन्तु वे इस प्रस्ताव की प्रशंसा नहीं कर सके क्योंकि परमोच्चता की समाप्ति के बाद राज्यों को अपनी रक्षा के लिये अपने ऊपर ही निर्भर रहना था। लोकतांत्रिक पद्धति से निर्मित शक्तिशाली भारत सरकार उनके व्यक्तिगत शासन को बनाये रखने में क्यों रूचि लेगी? अब राजाओं के लिये यह चिंता का विषय था।

16 मई, 1946 को कैबिनेट मिशन ने अपनी योजना प्रकाशित की जिसमें कहा गया की परमोच्चसत्ता समाप्त कर दी जाऐगी। राज्यों को उनके अधिकार वापिस कर दिये जायेंगे। अतः देशी राज्यों को चाहिये कि वे अपने भविष्य की स्थिति उत्तराधिकारी भारतीय सरकार से बातचीत करके व्यवस्थित करें। अर्थात रजवाड़े अपनी शर्तों पर भारतीय संघ में शामिल हो सकते थे या भारत से बाहर रह सकते थे।

अन्ततः 29 जनवरी, 1947 ई. को नरेन्द्र मण्डल ने एक लम्बे प्रस्ताव द्वारा संविधान सभा के साथ अपने सहयोग के सम्बन्ध में निर्णय लिया। जिसमें कुछ शर्तें सुस्पष्ट की गई।[118]

यद्यपि इस प्रस्ताव को पारित करते समय सभी नरेश एकमत थे तथापि इसके बाद नरेन्द्र मण्डल अनेक गुटों में विभाजित हो गया था। राजपूताना के नरेशों के भी दो गुट बन गये। जयपुर के प्रधानमंत्री बी.टी. कृष्णामांचारी के नेतृत्व में राजपूताना के बड़े–बड़े राज्यों ने कांग्रेस के साथ सहयोग की नीति अपनाई। बाकी के छोटे राज्य

अभी भी असहयोग की नीति का अनुसरण कर रहे थे भारत का विभाजन हो जाने के बाद उनकी नीति में परिवर्तन आया।[119]

अन्ततः जुलाई, 1947 ई. में भारत स्वतन्त्रता अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार भारत की सभी देशी रियासतें स्वतंत्र हो गयी। नवगठित कांग्रेस सरकार को देशी राज्यों के सम्बन्ध में भारत में ब्रिटिश सरकार का उत्तराधिकारी नहीं माना गया। यह एक पेचीदा प्रश्न था जिसका समाधान बड़ी कठिनाई से हुआ।[120] नरेशों की अक्षम्य अदूरदर्शिता तथा आपसी फूट से भारत की राजनीतिक एकता पर प्रहार हुआ तथा छोटे बड़े पारस्परिक मतभेद अन्ततः देशी राज्यों तथा वहाँ के सारे राजघरानों के लिए भी पूर्णतया घातक सिद्ध हुए। राजपूताना के नरेशों का इतिहास कुछ अपवादों के अतिरिक्त राजनीति में होने वाली निरन्तर विफलताओं भयंकर भूलों तथा अक्षम्य अपेक्षाओं की निरन्तर परम्परा मात्र था।[121]

इन तमाम सरगर्मियों के बीच ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी, 1947 को हाउस ऑफ कामंस में ऐतिहासिक घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार जून, 1948 से पूर्व सत्ता जिम्मेदार भारतीयों के हाथों में सौंप देगी सत्ता के हस्तांतरण के साथ ही रियासतों पर ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता समाप्त हो जायेगी। उन्होंने यह भी घोषणा की कि लार्ड वैवेल के स्थान पर लार्ड माउंटबेटन भारत के नए वायसराय होंगे। [122]

विलीनीकरण के संदर्भ में देशी रियासतों का मनोविज्ञान

लार्ड माउंटबेटन ने 24 मार्च, 1947 को ब्रिटिश क्राउन के बीसवें व अंतिम प्रतिनिधि के रूप में कार्यभार संभाला उनके सहयोगी लार्ड इस्में का कहना था कि–''लार्ड माउंटबेटन ने जहाज का उत्तरदायित्व तब संभाला है जब वह बीच समुद्र में है, उसमें आग लगी हुई है तथा उसमें बारूद भरा हुआ है।''[123]

माउंटबेटन में भारतीय रजवाड़ों के लिये न तो प्रशंसा का भाव था न धैर्य, उनमें जो सबसे अच्छे थे उन्हें वह अर्धविकसित, तानाशाह समझते थे। और जो सबसे खराब थे उन्हें गया– बीता और चरित्रहीन! माउंटबेटन का मानना था कि कांग्रेस की बढ़ती हुई ताकत को देखकर भी रजवाड़ों ने अपने प्रशासन में किसी तरह की

प्रजातंत्रात्मक प्रणाली शुरू नहीं की। 1935 में अवसर था किंतु वे भारत संघ में सम्मिलित नहीं हुए। इन हरकतों के कारण माउंटबेटन उन्हें मूर्खों की जमात कहते थे।[124]

माउंटबेटन ने भारतीय नेताओं के साथ लम्बे समय तक गहन विचार–विमर्श के पश्चात् अपना प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को भेजा जो 3 जून 1947 को स्वीकार कर लिया गया।[125] भारतीय राजनीतिक दलों ने भी इस प्रस्ताव को मान लिया। 3 जून 1947 की घोषणा में 15 अगस्त, 1947 को भारत को सत्ता हस्तान्तरण की घोषणा की गई। इस घोषणा ने जहां देश विभाजन का आधार तैयार किया वहीं रियासतों के शासकों में पृथकतावादी प्रवृति को भी बढ़ावा मिला।[126]

जब ये निश्चित हो गया की ब्रिटिश सरकार 15 अगस्त, 1947 तक कांग्रेस के नेताओं को सत्ता का हस्तांतरण कर देगी तब ये घोषणा राजाओं के लिए वज्रपात के समान थी। ऐसे में उन्होंने अपने राज्यों के भारतीय संघ में विलय को रोकने के लिये सारे अच्छे–बुरे उपाय कर डालें।[127]

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 की धारा 8 के अनुसार देशी राज्यों पर से 15 अगस्त, 1947 ई. को ब्रिटिश सरकार की परमोच्चता समाप्त हो जानी थी तथा यह पुनः देशी राज्यों को हस्तांतरित कर दी जानी थी। इस कारण देशी राज्य अपनी इच्छानुसार भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी भी देश में सम्मिलित होने अथवा पृथक अस्तित्व बनायें रखने के लिये स्वतंत्र थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में अधिकांश राज्य, हिन्दू राज्य थे। राजपूताना में भी यही स्थिति थी। केवल टोंक राज्य में मुस्लिम शासक का शासन था, किन्तु वहाँ भी जनसंख्या हिन्दू बहुल थी। अतः जातीय आधार पर भारत तथा राजपूताना के राज्य और उनकी जनता ब्रिटिश भारत के हिन्दू बहुल क्षेत्र से जुड़े हुए थे।

कांग्रेस का मानना था कि जब ब्रिटिश सरकार सत्ता का हस्तांतरण भारत सरकार को कर रही है तब देशी राज्यों पर से ब्रिटिश सरकार की परमोच्चता स्वतः ही भारत सरकार को स्थानान्तरित हो जायेगी।[128]

यद्यपि छोटे राज्यों के पास भारत संघ में मिल जाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था तथापि बड़े एवं सक्षम राज्यों की स्थिति अलग थी। तथापि नाम मात्र की छोटी–छोटी रियासतों ने भी स्वतन्त्र रहने का स्वप्न देखा।[129]

अलवर नरेश ने 3 अप्रैल, 1947 को बम्बई में आयोजित नरेन्द्र मण्डल की बैठक में कहा कि ''देशी राज्यों के अधिपतियों को हिंन्दी संघ राज्य में नहीं मिलना चाहिये।''[130]

5 जून, 1947 को भोपाल तथा त्रावणकोर ने स्वतंत्र रहने के निर्णय की घोषणा की। हैदराबाद को भी यही उचित जान पड़ा। जम्मू एवं कश्मीर, इन्दौर, जोधपुर, धौलपुर, भरतपुर तथा कुछ अन्य राज्यों के समूह के द्वारा भी ऐसी ही घोषणा किये जाने की संभावना थी।[131]

भारत के विभाजन के पश्चात् देश में रह गयी 562 छोटी बड़ी रियासतों के शासकों की महत्वाकाक्षाएं देश की अखण्डता के लिये खतरा बन गयी। मद्रास के तत्कालीन गवर्नर तथा बाद में स्वतंत्र भारत में ब्रिटेन के प्रथम हाई कमिश्नर सर आर्चिवाल्ड नेई को रजवाड़ों के साथ किसी प्रकार की संधि होने में संदेह था।[132] माउंटबेटन ने सरदार पटेल से कहा कि यदि राजाओं से उनकी पदवियां न छीनी जाये, महल उन्हीं के पास बने रहें, उन्हें गिरफ्तारी से मुक्त रखा जाये, प्रिवीपर्स की सुविधा जारी रहे तथा अंग्रेजों द्वारा दिये गये किसी भी सम्मान को स्वीकारने से न रोका जाये तो वायसराय राजाओं को इस बात पर राजी कर लेंगे कि वे अपने राज्यों को भारतीय संघ में विलीन करें और स्वतंत्र होने का विचार त्याग दें। पटेल ने माउंटबेटन के सामने शर्त रखी कि वे इस संबंध में माउंटबेटन की शर्त को स्वीकार कर लेंगे यदि माउंटबेटन सारे रजवाड़े को भारत की झोली में डाल दे।[133]

तेज बहादुर सप्रु का कहना था कि मुझे उन राज्यों पर चाहे वह छोटे हों अथवा बड़ें, आश्चर्य होता है कि वे इतने मूर्ख हैं कि वे समझते है कि वे इस तरह से स्वतंत्र हो जायेंगे और फिर अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखेंगे।[134] यद्यपि भारत की स्वतंत्रता निश्ंचित हो गयी थी। तथापि देश को एक भारी संकट का सामाना करना था।

''दुर्दिन के मसीहाओं ने भविष्यवाणी की थी कि हिन्दुस्तान की आजादी की नाव रजवाड़ों की चट्टान से टकरायेगी।''[135]

भारत को स्वतंत्र किये जाने की घोषणा के बाद लंदन इवनिंग स्टैण्डर्ड में कार्टूनिस्ट डेविड लॉ का एक कार्टून 'Your Babies Now' शीर्षक से छपा था जिसमें भारत के राष्ट्रीय नेताओं के समक्ष भारतीय राजाओं की समस्या का सटीक चित्रण किया गया था। इस कार्टून में नेहरू तथा जिन्ना को अलग– अलग कुर्सियों पर बैठे हुये दिखाया गया था। जिनकी गोद में कुछ बच्चे बैठे थे। ब्रिटेन को एक नर्स के रूप में दिखाया गया था जो यूनियन जैक लेकर दूर जा रही थी। नेहरू की गोद में बैठे हुए बच्चों को राजाओं की समस्या के रूप में दिखाया गया था, जो नेहरू के घुटनो पर लातें मार–मार कर चिल्ला रहे थे।[136]

जिन्ना का षड़यत्र

एक ओर कांग्रेस देशी राज्यों के प्रति कठोर नीति का प्रदर्शन कर रही थी दूसरी ओर मुस्लिम लीग ने देशी राज्यों के साथ बड़ा ही नरम दृष्टिकोण रखा। मुस्लिम लीग के लिये ऐसा करना सुविधाजनक था क्योंकि प्रस्तावित पाकिस्तान की सीमा में देशी राज्यों की संख्या केवल 3 थी। जबकी 562 रियासतें प्रस्तावित भारत संघ की सीमा के भीतर स्थित थी। जिन्ना यह प्रयास कर रहे थे कि अधिक से अधिक संख्या में देशी रियासतें अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित हो जायें ताकि भारतीय संघ स्थायी रूप से दुर्बल बन सके। जिन्ना राजाओं के मानस में यह बात उतारना चाहते थे कि कांग्रेस मुस्लिम लीग तथा देशी शासकों की साझा शत्रु है। जिन्ना ने लुभावने प्रस्ताव देकर राजपूताना की रियासतों को पाकिस्तान में सम्मिलित करने का प्रयास किया। उन्होंने घोषित किया कि देशी राज्यों में मुस्लिम लीग बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करेगी और यदि देशी राज्य स्वतंत्र रहे तो भी मुस्लिम लीग की ओर से उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं दी जायेगी। लीग की ओर से राजस्थान के राजाओं में गुप्त प्रचार किया जा रहा था कि उन्हें पाकिस्तान में मिलना चाहिये, हिन्दी संघ राज्य में नहीं।[137] जिन्ना ने रियासती विभाग के सचिव कोरफील्ड और भोपाल नवाब का उपयोग भारत को कमजोर करने के लिये किया।[138]

महाराजा जोधपुर और बहुत सी छोटी रियासतों के शासक बड़े ध्यान से यह देख रहे थे कि बड़ी रियासतों के विद्रोह का क्या परिणाम निकलता है, उसी के अनुसार वे आगे की कार्यवाही करना चाहते थे।[139]

महाराजा बड़ौदा ने अपने हाथ से सरदार पटले को पत्र लिखा कि जब तक उनको भारत का राजा नहीं बनाया जाता और भारत सरकार उनकी समस्त मांगे नहीं मान लेती तब तक वे कोई सहयोग नहीं देंगे और न ही जूनागढ़ के नवाब की बगावत दबाने में सहयोग देंगे।[140]

इस पर भारत सरकार ने महाराजा बड़ौदा प्रतापसिंह की मान्यता समाप्त करके उनके पुत्र फतह सिंह को महाराजा बड़ौदा स्वीकार किया। भारत सरकार का कठोर रवैया देखकर राजा विनम्र देश सेवकों जैसा व्यवहार करने लगे। जो राज्य संघ उन्होंने रियासतों का विलय न होने देने के लिये बनाया था, उसे भंग कर दिया गया। उन्होंने समझ लिया कि अब भारत सरकार से मिल जाने और उसका संरक्षण प्राप्त करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, वे यह भी सोचने लगे की शासक बने रह कर विद्रोही प्रजा की इच्छा पर जीने की अपेक्षा भारत सरकार की छत्रछाया में रहना कहीं अधिक उपयुक्त होगा।[141]

नरेन्द्र मण्डल के तत्कालीन चांसलर, भोपाल नवाब हमीदुल्लाखाँ छिपे तौर पर मुस्लिम परस्त, पाकिस्तान परस्त, तथा कांग्रेस विरोधी के रूप में काम कर रहे थे किन्तु जब देश का विभाजन होना निश्चित हो गया तो तीसरे मोर्चे के नेता भोपाल नवाब ने अपनी मुठ्ठी खोल दी और प्रत्यक्षतः विभाजनकारी मुस्लिम लीग के समर्थन में चले गये तथा जिन्ना के निकट सलाहकार बन गये।[142] वे जिन्ना की उस योजना में सम्मिलित हो गये जिसके तहत राजाओं को अधिक से अधिक संख्या में या तो पाकिस्तान में मिलने के लिये प्रोत्साहित करना था या फिर उनसे यह घोषणा करवानी थी कि वे अपने राज्य को स्वतंत्र रखेंगे। रियासती मंत्रालय के सचिव ए.एस.पई ने पटेल को एक नोटशीट भिजवायी कि भोपाल नवाब, जिन्ना के दलाल की तरह काम कर रहें हैं।[143]

नवाब चाहता था कि भोपाल से लेकर करांची तक के मार्ग में आने वाले राज्यों का एक समूह बने जो पाकिस्तान में मिल जाये, इसलिये उन्होंने जिन्ना की सहमति से एक योजना बनायी कि बड़ौदा, इंदौर, भोपाल, उदयपुर, जोधपुर और जैसलमेर राज्य पाकिस्तान का अंग बन जाये। इस योजना में सबसे बड़ी बाधा उदयपुर और बड़ौदा की ओर से उपस्थित हो सकती थी। महाराजा जोधपुर ने उक्त रियासतों से सहमति प्राप्त करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली।[144] इस प्रकार भारत के टुकड़े–टुकड़े करने का एक मानचित्र तैयार हो गया।[145]

हमीदुल्ला खाँ ने धौलपुर महाराजराणा उदयभान सिंह को भी इस योजना में सम्मिलित कर लिया। उदयभान सिंह जाटों की प्रमुख रियासत के बहुपठित, बुद्धिमान एवं कुशल राजा माने जाते थे, किंतु वे किसी भी कीमत पर धौलपुर को भारत संघ में मिलाने को तैयार नहीं थे। जिन्ना के संकेत पर नवाब तथा महाराजराणा ने जोधपुर, जैसलमेर, उदयपुर तथा जयपुर आदि रियासतों के राजाओं से बात की तथा उन्हें जिन्ना से मिलने के लिये आमंत्रित किया। नवाब का साथ देने वाले हिन्दू राजाओं में अलवर महाराजा भी थे।[146] गणेश प्रसाद बरनवाल ने लिखा है–भरतपुर और अलवर के राजाओं ने कांग्रेस की केन्द्रीय सरकार का तख्ता पलट देने की भी साजिश रची।

कोरफील्ड के दुष्प्रयास

राजनीतिक विभाग में कोनार्ड कोरफील्ड ने रेजीडेटों और पॉलिटिकल ऐजेटों के माध्यम से राजाओं को भारतीय संघ से पृथक रहने के लिये प्रेरित किया।[147] कोरफील्ड चाहते थे कि कम से कम दो तीन राज्य जिनमें हैदराबाद, प्रमुख था, कांग्रेस के चंगुल से बच जाये। बाकी रजवाड़ों का भी भारत में सम्मिलित होना जितना मुश्किल हो सके बना दिया जाये।[148]

कोरफील्ड ने रजवाड़ों के बीच घूम– घूम कर प्रचार किया कि उनके सामने दो नहीं तीन रास्ते हैं वे दोनों उपनिवेशों में से किसी एक में सम्मिलित हो सकतें हैं अथवा स्वतंत्र भी रह सकते हैं।[149]

कोरफील्ड के प्रयासों से त्रावणकोर तथा हैदराबाद ने घोषणा कर दी कि वे किसी भी उपनिवेश में सम्मिलित नहीं होंगे अपितु स्वतंत्र देश के रूप में रहेंगे।[150]

कोरफील्ड के दुष्कृत्यों ने कतिपय भारतीय रजवाड़ों के मस्तिष्क में भारतीय संघ के प्रति नकारात्मक विचार उत्पन्न किये। जो रजवाड़ों से इतना प्रेम करते थे कि रजवाड़ों के हित को ही वे भारत का हित समझते थे। कोरफील्ड के आदेश पर उन फाइलों, रिपोर्टों, फोटोग्राफों और दस्तावेजों का लगभग चार टन वजनी ढेर जलाया गया जिनमें पूरे विस्तार के साथ वह ब्यौरा अंकित था। जो राजा–महाराजा और नवाबों आदि की पिछली पाँच पीढ़ियों की सनकों, विलासिताओं, मक्कारियों और क्रूरताओं इत्यादि को समेटे हुए था। इन फाइलों के साथ अफवाहों फुसफुसाहटों और सिसकारियों का एक पूरा युग भस्म हो रहा था।[151]

रियासती विभाग का गठन

5 जुलाई 1947 को सरदार पटेल के नेतृत्व में रियासती विभाग अस्तित्व में आया। कांग्रेस को आशा थी कि पार्टी का यह लौह पुरूष अपनी धोती समेट कर राजाओं पीछे पड़ जायेगा।[152]

हमीदुल्ला खाँ, कोरफील्ड तथा रामास्वामी अय्यर की योजना से निबटने तथा स्वतंत्र हुई रियासतों को भारत संघ में घेरने के लिये पटेल अकेले ही भारी थे।[153]

वी.पी. मेनन को पटेल का सलाहकार व सचिव नियुक्त किया गया। वे एकमात्र ऐसे अधिकारी थे, जो देशी राज्यों की जटिल समस्या को सुलझा सकते थे।[154]

पटेल का जोरदार व्यक्तित्व और मेनन के लचीले दिमाग का संयोग इस मौके पर और भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ[155] नेपथ्य में मंजे हुये राजनीतिज्ञ जैसे सरदार के.एम. पणिक्कर, वी.टी. कृष्णामाचारी तथा भारतीय रियासतों के प्रतिष्ठित मंत्री और भारतीय सिविल सेवा के वरिष्ठ अधिकारी जैसे सी.एस. वेंकटाचार, एम. के. वेल्लोदी, वी. शंकर, पण्डित हरी शर्मा आदि अनुभवी लोग कार्य कर रहे थे।[156]

पटेल ने मेनन से कहा कि पाकिस्तान इस विचार के साथ कार्य कर रहा है कि सीमावर्ती कुछ राज्यों को वह अपने साथ मिला ले। स्थिति इतनी खतरनाक संभावनायें लिये हुए है कि जो स्वतंत्रता हमने बड़ी कठिनाईयों को झेलने के पश्चात् प्राप्त की है, वह राज्यों के दरवाजे से विलुप्त हो सकती है[157] राजाओं की ओर से जो वक्तव्य आये थे उनसे लगने लगा था कि भारत के विभाजन के लिये रजवाड़े कटीबद्ध हैं।

''माउंटबेटन ने लंदन को भेजी गयी अपनी रिपोर्ट में लिखा'' किसी ने मुझे रंच मात्र भी आभास नहीं करवाया था कि भारत पर से ब्रिटिश साम्राज्य को समेटने की समस्याऐं जितनी दुरूह होंगी उससे ज्यादा न सही लेकिन उसकी बराबरी की दुरूहता इन रजवाड़ों के कारण पैदा हो जायेगी।[158]

स्वतन्त्रता की तिथि में पाँच सप्ताह शेष रह गये थे। एक ओर कोरफील्ड अंग्रेजों की सत्ता समाप्ति से पहले रजवाड़ों से केन्द्रीय सत्ता का विलोपन करने के काम में लगे हुए थे जिससे एक–एक करके सारी व्यवस्थायें रद्द होती जा रही थीं। दूसरी ओर सरदार इस उधेड़ बुन में थे। कि 15 अगस्त से पहले राजाओं की प्रत्येक व्यवस्था जिन्हें अंग्रेजों ने रद्द करना आरम्भ कर दिया था, जैसे सेना–डाक आदि को बनायें रखने के सम्बन्ध में कैसे बात की जाये?[159]

मेनन ने सरदार को सुझाव दिया कि राजाओं से केवल तीन विषयों में विलय के लिये कहा जाये। ये तीन विषय रक्षा, विदेशी मामले और संचार से सम्बन्धित थे। मेनन ने वायसराय से कहा कि यदि सारे रजवाड़े भारत में मिल जाते हैं तो विभाजन का घाव काफी कम हो जायेगा तथा यदि इस काम में माउंटबेटन ने सहयोग दिया तो भारत की जनता सदियों तक उनकी ऋणी रहेगी। माउंटबेटन ने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया।[160]

5 जुलाई, 1947 को पटेल ने राजाओं से अपील की कि वे 15 अगस्त, 1947 से पूर्व भारत संघ में सम्मिलित हो जायें। देशी राज्यों को सार्वजनिक हित के तीन विषय, प्रतिरक्षा, विदेश तथा संचार संघ को सुपुर्द करने होंगे। जिसकी स्वीकृति उन्होंने पूर्व में केबीनेट मिशन योजना के समय दे दी थी। भारतीय संघ इससे अधिक उनसे और कुछ नही मांग रहा। संघ देशी राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की मंशा नहीं रखता। कांग्रेस राजाओं के विरूद्ध नहीं रही है। देशी नरेशों ने सदैव देशभक्ति व लोक कल्याण के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।[161]

पटेल ने राजाओं को चेतावनी भी दी कि यदि कोई नरेश यह सोचता हो कि ब्रिटिश परमोच्चता उसको हस्तान्तरित कर दी जायेगी, तो यह उसकी भूल होगी। परमोच्चता तो जनता में निहित है। इस प्रकार से यह घोषणा राजाओं को समान

अस्तित्व के आधार पर भारत में सम्मिलित हो जाने का निमंत्रण था। सरदार के शब्दों में यह प्रस्ताव, रजवाड़ों द्वारा पूर्व में ब्रिटिश सरकार के साथ की गयी अधीनस्थ संधि से बेहतर था।[162]

इस प्रकार पटेल व मेनन द्वारा देशी राजाओं को घेर कर भारत संघ में विलय के लिये पहला पासा फेंका गया जिसका परिणाम यह हुआ कि बीकानेर नरेश सादुलसिंह ने सरदार पटेल की इस घोषणा का एक बार फिर स्वागत किया और अपने बंधु राजाओं से अनुरोध किया कि वे इस प्रकार आगे बढ़ाये गये मित्रता के हाथ को थाम लें और कांग्रेस को पूरा समर्थन दें ताकि भारत अपने लक्ष्य को शीघ्रता से प्राप्त कर सके। इस सम्बन्ध में सादुलसिंह के पुत्र करणीसिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि '' एक लम्बी दौड़ के पश्चात् भारत की स्वतंत्रता अवश्यम्भावी थी किन्तु यह स्वतन्त्रता व्यक्तिगत रूप से मेरे और समस्त भारत की रियासतों के लिये एक उग्र परिवर्तनकारी सिद्ध हुई। इस शताब्दी के अगले 25 वर्षों में भारत के राजा और रानियां इतिहास के पन्नों में दर्ज होकर महत्वहीन होने वाले थे। स्वतन्त्रता के साथ ही अधिकांश भारतीय रजवाड़ों ने भारतीय संघ अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित होना स्वीकार किया[163]

किन्तु अधिकांश राजाओं का मानना था कि उन्हें पटेल की अपेक्षा कोरफील्ड की बात माननी चाहिये।[164]

जब राजाओं को ब्रिटिश संवैधानिक अधिवक्ता सर वॉल्टर मौंक्टन की यह सलाह प्राप्त हुई कि यदि वे कांग्रेस सरकार के द्वारा तैयार किये गये प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करेंगे तो उनका अंत हो जायेगा, इस पर राजा लोग बिदक गये। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं था, कि राजा लोग प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करने में हिचकिचा रहे थे।

सम्मिलन प्रपत्र

रियासती विभाग ने देशी राज्यों के भारत अथवा पाकिस्तान में प्रवेश के लिये दो प्रकार के प्रपत्र तैयार करवाये– प्रविष्ठ संलेख InstruMent Of Accession तथा यथास्थिति समझौता पत्र (Stand Still AgreeMent) प्रविष्ठ संलेख एक प्रकार का

मिलाप पत्र (Joining Letter) था जिस पर हस्ताक्षर करके कोई भी राजा भारतीय संघ में प्रवेश कर सकता था और अपना आधिपत्य केन्द्र सरकार को समर्पित कर सकता था। यह प्रविष्ठ संलेख उन बड़ी रियासतों के लिये तैयार किया गया था। जिनके शासकों को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। इन रियासतों की संख्या 140 थी। इन रियासतों के अतिरिक्त गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र में 300 रियासतें ऐसी थी। जिन्हें जागीर अथवा तालुका कहा जाता था। इनमें से कुछ जागीरों व तालुकों को 1943 में संलग्नता योजना के तहत निकटवर्ती बड़े राज्यों के साथ जोड़ दिया गया था। किन्तु परमोच्चता की समाप्ति के साथ ही यह योजना भी समाप्त हो जानी थी। अतः इन ठिकानों एवं तालुकों के ठिकानेदारों एवं तालुकदारों ने मांग की कि उन्हें वर्ष 1943 वाली स्थिति में ले आया जाये तथा उनकी देखभाल भारत सरकार द्वारा ही की जाये, जैसी कि राजनैतिक विभाग द्वारा की जाती रही थी। इन ठिकानों एवं तालुकों के लिये अलग प्रविष्ठ संलेख तैयार करवाया गया। काठियावाड़ मध्य भारत तथा शिमला हिल्स में 70 से अधिक राज्य ऐसे थे जिनका पद ठिकानेदारों और तालुकदारों से बड़ा था किन्तु पूर्ण शासक का दर्जा प्राप्त नहीं था। ऐसे राज्यों के लिये अलग से प्रविष्ठ संलेख तैयार करवाया गया।[165]

स्टैण्डस्टिल एग्रीमेंट प्रशासनिक एवं आर्थिक सम्बन्धों की यथास्थिति बनाये रखने के लिये सहमति पत्र था। भारत सरकार ने निर्णय किया कि वह उसी राज्य के साथ यथास्थिति समझौता करेगी जो राज्य प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करेगा।[166]

इन दोनों प्रकार के प्रपत्रों को वायसराय ने 25 जुलाई, 1947 की बैठक में उन देशी राज्यों के शासकों को दे दिया जो भारत की सीमा में पड़ने वाले थे क्योंकि जिन्ना ने वायसराय को कह दिया था कि पाकिस्तान की सीमा में आने वाले राज्यों से वे स्वयं बात करेंगें।[167]

नरेन्द्र मण्डल का पूर्ण अधिवेशन

25 जुलाई 1947 को वायसराय ने दिल्ली में नरेन्द्र मण्डल का पूर्ण अधिवेशन बुलाया। माउंटबेटन द्वारा क्राउन रिप्रजेण्टेटिव के अधिकार से बुलाया जाने वाला यह पहला और अंतिम सम्मेलन था।[168] इस समय महाराजा पटियाला नरेन्द्र मण्डल के चांसलर

थे। वे भी अपनी रियासत को स्वतंत्र रखने के लिये प्रयासरत थे। कोनार्ड कोरफील्ड को भारतीय रियासतों के पक्ष में वातावरण बनाने के लिये चोरी छिपे लंदन भेजन में महाराजा पटियाला की प्रमुख भूमिका थी। [169]

वायसराय ने बैठक में भाग लेने के लिए इंग्लैण्ड की नौसेना के एडमिरल की सफेद और भव्य पोषाक धारण की ताकि रजवाड़ों को माउंटबेटन और उनका वकतव्य आकर्षित व सम्मोहित कर सके।

सम्मलेन में उपस्थित लगभग 75 बड़े राजाओं अथवा उनके प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुये माउंटबेटन ने कहा कि भारत स्वतंत्रता अधिनियम ने 15 अगस्त 1947 से राज्यों को ताज के प्रति उनके दायित्वों से स्वतंत्र कर दिया है। राज्यों को तकनीकी एवं कानूनी रूप से सम्पूर्ण स्वतंत्रता होगी, किन्तु ब्रिटिश राज के दौरान साझा हित के विषयों के सम्बन्ध में एक समन्वित प्रशासन पद्धति का विकास हुआ है जिसके कारण भारतीय उपमहाद्विप ने एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य किया। वह सम्पर्क अब टूटने को है। यदि इसके स्थान पर कुछ भी नहीं रखा गया तो उसका परिणाम अस्तव्यस्तता ही होगा। मैं कहना चाहूँगा कि उसकी पहली चोट राज्यों पर होगी।[170] उपनिवेश सरकार से आप उसी प्रकार नाता नहीं तोड़ सकते जिस प्रकार कि आप जनता से नाता नहीं तोड़ सकते, जिसके कल्याण के लिये आप उत्तरदायी हैं।[171]

राज्य तीन विषयों– प्रतिरक्षा, विदेश यात्रा तथा संचार के सम्बन्ध में भारत या पाकिस्तान जो उनके लिये उपयुक्त हो के साथ अपना विलय कर लें। वायसराय ने राजाओं को आश्वस्त किया कि राज्यों पर कोई वित्तीय जवाबदेही नहीं डाली जायेगी तथा उनकी संप्रभुता का अतिक्रमण नहीं किया जायेगा।[172]

वायसराय ने राजाओं को न केवल इस बात के लिये हतोत्साहित किया कि वे अपने राज्यों को स्वाधीन इकाई के रूप में रखें अपितु उन्होंने हिन्दू बहुल क्षेत्रों के राजाओं को सलाह भी दी कि वे अपने राज्यों का विलय भारत में ही करें।[173]

माउंटबेटन की इस भूमिका पर माउंटबेटन के प्रेस सलाहकार एलेन कैम्पबेल जानसन ने अपनी डायरी में लिखा है कि रजवाड़ों की समस्या से माउंटबेटन पूरी तरह उलझ गये हैं। 3 जून की योजना के पहले अपनी कूटनीतिक चाल में उन्होंने जान

बूझकर खतरा उठाया और अब स्वयं सम्मिलित होने की विधियां गढ़ रहें हैं।[174] वे इस विशेष पक्ष की ओर सभी राज्यों को लाना चाहते हैं।

बैठक में वायसराय ने अपने तरकस के सभी वाणों का प्रयोग किया और आरम्भ में ही राजाओं को अच्छी तरह समझा दिया कि वी.पी. मेनन की योजना में कांग्रेस की ओर से एक राजनीतिक अवसर दिया गया है, जो संभवतः दुहराया न जाये। उन्होंने राजाओं को सचेत किया कि जो राजा अपने हथियार एकत्र करने की आशा पाले बैठे हैं, उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि ये हथियार निकम्में और पुराने साबित होंगे।

25 जुलाई, 1947 की बैठक माउंटबेटन की चालाकी, मोहिनी और समझाने–बुझाने की कला का ज्वलंत उदाहरण है। इस समय तक उन्हें यह विश्वास हो गया था कि रियासतों के पास पाकिस्तान या भारत में सम्मिलित होना ही एकमात्र विकल्प है। स्वतंत्र होने का प्रश्न ही नहीं था.... दिल्ली की गर्मी में रजवाड़ों के पसीने छूट रहे थे। नरेन्द्र मण्डल में पंखे चक्कर खा रहे थे और अध्यापक बने वायसराय, स्कूली बच्चों की तरह एक–एक से पूछ रहे थे कि हस्ताक्षर करेगा या नही? उसमें से जो सबसे प्रतापी राजा थे उनके चेहरों पर भी परास्त व्यक्ति की उदास और खोई हुई दृष्टि थी। वे लोग यह विश्वास लेकर बैठक में आये थे कि चूँकि माउंटबेटन स्वयं राजपरिवार से है इसलिये वे कांग्रेस से राजाओं की रक्षा करेंगे। किन्तु वायसराय ने इस बैठक में जो रूख अपनाया वह राजाओं के लिये अप्रत्याशित था।

कोरफील्ड ने यह आरोप लगाया है कि इस बैठक में माउंटबेटन ने नये रियासती विभाग के दलाल की तरह कार्य किया।[175]

प्रविष्ठ संलेख प्रारूप को स्वीकृति

वायसराय ने एक वार्ता समिति का गठन किया जिसमें 10 राज्यों के शासक तथा 12 राज्यों के दीवान सम्मिलित किये गये। यह समिति दो उपसिमितियों में विभक्त हो गयी। एक उपसमिति को प्रविष्ठ संलेख पर तथा दूसरी उपसमिति को यथास्थिति समझाौता पत्र पर विचार विमर्श करना था। इन दोनों उपसमितियों ने 25 जुलाई से 31 जुलाई तक प्रतिदिन दिल्ली स्थित बीकानेर हाउस में अलग अलग बैठकें की। लगातार छः दिन एवं रात्रियों तक परिश्रम करने के बाद दोनों दस्तावेजों को

अंतिम रूप दिया जा सका।[176] 31 जुलाई 1947 को दोनों प्रारूप स्वीकार कर लिये गये।[177]

राजाओं के विशेषाधिकारों की संवैधानिक गारण्टी

राजपूताना के राजा स्वतंत्र भारत में भी अपने विशेषाधिकारों को बनाये रखने के लिये उत्सुक थे। अधिकांश राजाओं को डर था कि आजादी के बाद या तो उनकी जनता ही उनकी सम्पत्तियों को लूट लेगी अथवा कांग्रेस सरकार उसे जब्त कर लेगी। ब्रिटिश सत्ता आजादी के बाद किसी भी तरह राजाओं की रक्षा नहीं कर सकती थी। उनमें से अधिकांश को समझ में आने लगा था कि या तो अत्यंत असम्मानजनक तरीके से हमेशा के लिये मिट जाओ या फिर किसी तरह सम्मानजनक तरीके से अपनी कुछ सम्पत्ति तथा कुछ अधिकारों को बचा लो। 31 जुलाई 1947 को बीकानेर नरेश सादुलसिंह ने रियासती मंत्रालय के सचिव को पत्र लिखकर विशेषाधिकारों की मांग की। रियासती मंत्रालय के सचिव ने महाराजा को लिखा कि नरेशों के व्यक्तिगत विशेषाधिकारों के विषय में हमने केन्द्र सरकार के सभी सम्बन्धित विभागों से राय ली है और मुझे कुछ आश्वासन देने के निर्देश हुए हैं इसके अंतर्गत नरेशगण व उनके परिवार जिन विशेषाधिकारों का उपयोग करते आये हैं वह भविष्य में भी करते रहेंगे। बीकानेर महाराजा ने इस पत्र की प्रतियां बहुत से राजाओं को भिजवायी। जोधपुर महाराजा इस पत्र से आश्वस्त नहीं हुए किन्तु उन्होंने सरकार से किसी विशेषाधिकार की मांग नहीं की।[178]

यह सब होते हुए भी रजवाड़े अपने विशेषाधिकारों, अपने महलों, हिरे–जवाहरातों, सम्पत्तियों तथा अपनी नृत्यांगनाओं को बचाने के लिये पर्दे के पीछे से कांग्रेसी नेताओं से मोलभाव कर रहे थे। जो विशेषाधिकार राजाओं को दिये गये उनमें, उनके महल उनके अधिकार में रहे टैक्स से मुक्ति पानी और बिजली निःशुल्क मोटरों पर विशेष लाल रंग वाली प्लेट लगाने की छूट, रियासती झण्डा लगाने की अनुमति, विदेशों से वापसी पर बहिःशुल्क के लिये सामान की जांच से छूट और न्यायालयों में उपस्थिति से छूट। भारत सरकार की अनुमति के बिना किसी महाराजा पर दीवानी या फौजदारी, मुकदमा दायर नहीं किया जाये, मर्यादा के अनुकुल विशेष अवसरों पर

उनको तोपों की सलामियां, फौजी सलामियां, लाल कालीन के दस्तूर इत्यादि सम्मलित थे।[179]

महाराजाओं की सुविधाओं की समाप्ति यही नहीं हो जाती है। महाराजाओं को अपने करोड़ो रूपये कीमत के हिरे जवाहरात, सिवाय ताज के जो कि रियासती सम्पत्ति समझे जाते थे और असली निकाल कर नकली लगा दिये गये थे, रखने का अधिकार रहा। लाखों रूपये मूल्य के असली मोतियों के हार नकली मोतियों के हारों से बदल दिये गये। ''प्रश्न ये नहीं था कि अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बढ़ा चढ़ा कर बता रहे थे और न ही किसी घरेलू महिला पर कोई विवाद था, मुझे राज्य चाहिये था सम्पत्ति नहीं।'' सरदार पटेल ने जानबूझकर राजाओं की इस प्रवृत्ति की ओर से आँखे मूंद ली।[180] रियासती मंत्रालय के अधिकारियों ने जो राजाओं से समझौता कराने के लिये नियुक्त थे, अपनी जेबे खूब गरम की।[181] भारत के संविधान के अनुच्छेद 291 तथा अनुच्छेद 362 द्वारा देशी रजवाड़ों को उनके विशेषाधिकारों तथा सुविधाओं की संवैधानिक गारण्टी दी गयी।

शासकों की आन्तरिक मनोदशा
तथा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर की बाध्यता

सरदार पटेल की अपील, माउटबेटन द्वारा नरेन्द्रमण्डल में दिये गये उद्बोधन, कोरफील्ड की रवानगी, रियासतों में चल रहे ''जन आन्दोलन तथा बीकानेर नरेश को रियासती मंत्रालय के पत्र[182] इत्यादि परिस्थितियों के वशीभूत होकर राजपूताना के अधिकांश राजाओं ने भारत में विलय के समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। बीकानेर नरेश सादुलसिंह हस्ताक्षर करने वाले प्रथम राजा थे।[183]

राजवाड़ों के अन्तर्मन में गहरा द्वन्द चल रहा था वे अपनी सत्ता छोड़ना नहीं चाहते थे किन्तु परिस्थितिवश वे विवश थे।

रजवाड़ों ने देखा कि अपनी प्रजा से सीधा सम्बन्ध न रखने से लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक उनकी रियासतों में अव्यवस्था का बोलबाला रहा जिसकी वजह से जनता में उनके लिये लेश मात्र भी सहानुभूति नहीं रह गयी। ब्रिटिश भारत की अंग्रेज सरकार

के प्रश्रय में रहकर वे स्वेच्छाचारी बनकर जो चाहते वही करते रहे और अपनी प्रजा के कल्याण की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। राजे–महाराजे रियासतों के राजस्व से प्राप्त धन को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं, सैर–सपाटों, दावतों, पार्टियों, विदेश यात्राओं, अफसरों के लम्बे वेतन भत्तों ओर शानोशौकत पर व्यय करते रहे। परन्तु अब पुराने दस्तूर बदल चुके थे। राजाओं ने सोचा कि उनका जमाना बदल चुका है। जनता की राय इस कदर उनके विरूद्ध है कि सिवाय इसके कि वे अधीनता स्वीकार करके अपनी रियासतें भारतीय संघ में मिला दें, और कोई उपाय नहीं है।[184]

जयपुर, बीकानेर, पटियाला, ग्वालियर, मैसूर, बड़ौदा इत्यादि राज्यों के मुख्यमंत्री नहीं चाहते थे कि राजाओं के शासन आगे भी रहें उन्होंने अपने शासकों को सलाह दी कि राजनीतिक अधिकार भारत सरकार को सौंप दें। प्रिवीपर्स की बड़ी रकमें, हीरे–जवाहरात, पदाधिकार और सुविधायें सुरक्षित रखना उनके हक में अच्छा होगा बजाय इसके कि वे सरकार के काम में कठिनाईयां पैदा करें।

अधिकतर राज्यों, विशेषकर छोटे राज्यों, जिन्हें अपनी सीमाओं का पता था तथा वे ये भी जानते थे कि रोटी के किस तरफ मक्खन लगा हुआ है स्वेच्छा से भारतीय संघ के अंतर्गत आ गये। न तो वे आर्थिक रूप से सक्षम थे और न ही आंतरिक अथवा बाह्री दबावों का विरोध करने की उनमें क्षमता थी। कई बुद्धिमान तथा यथार्थवादी राजाओं ने विरोध की व्यर्थता तथा शक्तिशाली भारत संघ की संविधान सभा की सदस्यता की सार्थकता को अनुभव किया तथा शालीनता पूर्वक भारत संघ में सम्मिलित हो गये। कुछ हंसोड़ एवं मजाकियां स्वभाव के थे वे भी संघ में धकेल दिये गये। कुछ राजा अपने घोटालों और कारनामों से डरे हुये थे उन्हें भी बलपूर्वक संघ में धकेला गया। राजनीतिक विभाग के मखमली दस्ताने युक्त हाथ राजाओं की भुजाओं पर काम कर रहे थे।[185] एक एक कर रजवाड़ों ने दस्तखत करने के लिये कतार लगा दी। कुछ रजवाड़ों ने अपना विलय स्वीकार तो किया किन्तु बेहद रंजिश के साथ। मध्य भारत का एक राजा विलय के कागजात पर हस्ताक्षर करने के साथ लड़खड़ा कर गिरा और हृदयघात से उसकी मृत्यु हो गयी।[186] बड़ौदा का महाराजा दस्तखत करने के बाद मेनन के गले में हाथ डालकर बच्चों की तरह रोया।[187] भोपाल ने सेंट्रल इण्डियन

स्टेट्स का एक फेडरेशन बनाने का प्रयास किया किन्तु वह असफल हो गया। राजपूत राजाओं ने भारतीय सेना के राजपूत सिपाहियों को आकर्षित करके रजवाड़ों की सेना में सम्मिलित कर लेने की आशा की थी। किन्तु यह आशा फलीभूत नहीं हुई।[188] त्रावणकोर में महाराजा के खिलाफ कांग्रेस के प्रदर्शन और प्रधानमंत्री रामास्वामी अय्यर पर हमले ने निर्णय कर दिया।[189] त्रावणकोर के विलय का अन्य रियासतों पर जादू का सा प्रभाव हुआ। राज्यों को सबक मिला। वे और अधिक संख्या में हस्ताक्षर करने लगे।[190] इस हमले ने निजाम को हिला दिया।[191]

धौलपुर के महाराजराणा ने आँखो में मोट–मोटे आंसू भर कर माउंटबेटन से कहा– आपके महामना सम्राट के पुरखों के साथ मेरे पूज्य पुरखों के जो सम्बन्ध 1765 से चले आ रहे थे, वे आज हमेशा के लिये टूट रहे हैं।

राजा लोगों के नष्ट होने के तीन कारण थे, एक तो वे राष्ट्रवादी थे, दूसरे वे कायर थे तथा तीसरा कारण यह था कि उनमे से अधिकांश मूर्ख थे और अपने ही पापाचार में नष्ट हो गये थे।[192] हैदराबाद, त्रावणकोर, भोपाल, जोधपुर व इंदौर दस्तखत करने वालों में सम्मिलित नहीं हुए। वायसराय ने हैदराबाद के अतिरिक्त शेष सभी रियासतों के शासक अथवा दीवान को वार्ता के लिए बुलाया।[193] यह अभियान तीन चरणों में सम्पन्न हुआ– रियासतों का भारत में विलय, उनका जनतांत्रिकीकरण तथा उनका एकीकरण। राजाओं को समझाने, खुशामद करने उन्हें घूस देने तथा उनके पास पर्याप्त सेनाओं के न होने का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि वे सत्ता के हस्तान्तरण से पहले ही भारत संघ में आ मिली।[194]

बीकानेर रियासत के प्रविष्ठि संलेख पर हस्ताक्षर

बीकानेर रियासत संविधान सभा में अपना प्रतिनिधि[195] भेजने से लेकर भारत संघ में विलय की घोषणा के मामलें में देश के समस्त देशी राज्यों में अग्रणी रही किन्तु महाराजा बीकानेर सादुलसिंह स्वतंत्र भारत में अपने अधिकारों को लेकर अत्यंत सतर्क थे।

फिरोजपुर वाटर हैड वर्क्स का विवाद

ब्रिटिश सरकार की घोषणा के अनुसार भारत और पाकिस्तान में सम्मिलित किये जाने वाले क्षेत्रों का निर्णय हिन्दू अथवा मुस्लिम बहुल जनसंख्या के आधार पर किया जाना था। इस आधार पर पाकिस्तान ने पंजाब के फिरोजपुर स्थित **''वाटर हैड वर्क्स''** पर भी अपना दावा जताया। इस नहर से बीकानेर राज्य की एक हजार वर्गमील से अधिक भूमि की सिंचाई होती थी। महाराजा सादुलसिंह ने प्रधानमंत्री के.एम. पणिक्कर, जस्टिस टेकचंद बक्क्षी और मुख्य अभियंता लाला कंवरसेन को बीकानेर राज्य का पक्ष रखने के लिये नियुक्त किया।[196] पणिक्कर ने रियासती विभाग के मंत्री तथा विभाजन हेतु गठित उच्च स्तरीय परिषद के सदस्य सरदार पटेल पर इस बात के लिये दबाव डाला कि वे सुनिश्चित कर ले कि फिरोजपुर हैड वर्क्स पूर्णतः भारत सरकार द्वारा नियंत्रित रहेगा।[197]

महाराजा ने माउंटबेटन तथा पटेल को संदेश भिजवाया कि यदि फिरोजपुर हैड वर्क्स और गंगनहर का एक भाग पाकिस्तान में जाता है तो हमारे लिये पाकिस्तान में सम्मिलित होने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं बचेगा। [198]

17 अगस्त 1947 को रेडक्लिफ ने फिरोजपुर हैड वर्क्स को भारत में बने रहने का निर्णय दिया। [199]

स्वतंत्र भारत में बीकानेर रियासत का अन्तर्द्वंद

15 जुलाई 1947 को महाराजा सादुलसिंह ने नेहरू को एक पत्र लिखा जिसमे 110 पेराग्राफ थे।[200] महाराजा ने लिखा कि प्रजा परिषद वाले राज्य में इस प्रकार का प्रचार कर रहे हैं कि निकट भविष्य में समस्त भारत में गांधी राज्य हो जायेगा और भारतीय रियासतें भी उन में मिला ली जायेंगी। तिरंगा झण्डा ही एकमात्र झण्डा होगा। जबकि वास्तविकता तो यह है कि न तो महात्मा गांधी के राज्यों के सम्बन्ध में ऐसे विचार है और न ही अभी भारतीय रियासते, भारत में अपने अस्तित्व को सम्मिलित करने जा रही हैं।[201]

इस पत्र के माध्यम से बीकानेर महाराजा की तत्कालीन मनोदशा का ज्ञान प्राप्त होता है कि महाराजा किस प्रकार से आन्तरिक रूप से भयभीत थे। उनकी स्थिति उस बूढ़ी औरत के समान थी जो अपने धन की पोटली को संभालते हुए खतरनाक रास्ते पर फूँक–फूँक कर कदम रख रही थी कि कही कोई चोर–लुटेरे उसके धन को न लूट लें और ये चोर लुटेरे थे, प्रजा परिषद और कांग्रेस के नेता। इस पत्र से यही अभास होता है कि बीकानेर नरेश भले ही जोर–शोर से भारत संघ में मिलने की घोषणा कर रहे थे। किन्तु वे भयभीत थे ओर यह आशवासन भी चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में उनकी रियासत पूरी तरह स्वतंत्र बनी रहेगी। [202]

प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर

6 अगस्त, 1947 को सादुलसिंह ने प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर दिये। यथास्थिति समझौता पत्र पर राज्य के प्रधानमंत्री के. एम. पणिक्कर द्वारा हस्ताक्षर किये गये।[203] रियासती विभाग ने महाराजा को पत्र लिखकर सूचित किया कि वायसराय और सरदार पटेल ने महाराजा द्वारा निर्वहन की गयी भूमिका के प्रति आभार– व्यक्त किया है। संक्षिप्त अवधि में ही इस समझौते पर हस्ताक्षर करके महाराजा ने भारत तथा राज्यों के समान हित के लिये त्याग किया है। वायसराय तथा सरदार ने आशा व्यक्त की है कि इस विलय पत्र के माध्यम से प्रस्तुत उदाहरण से, आने वाले समय में भारत तथा राज्यों के मध्य सहयोग का एक नया युग आरंभ होगा जो संपूर्ण देश को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से मजबूत बनायेगा।[204]

बाद में ऐसे ही पत्र प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करने वाले अन्य सभी राज्यों के शासकों को भी भिजवाये गये। इस प्रविष्ठ संलेख के द्वारा महाराजा ने रक्षा, संचार और विदेश मामलों पर अपनी सारी सत्ता केन्द्र सरकार को सौंप दी और शेष विषयों में महाराजा ने अपने आप को स्वतंत्र मान लिया। अधिकांश रियासतों ने भविष्य के आगे सिर झुका कर प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर दिये। इनमें सबसे पहला बीकानेर का महाराजा था, जो वायसराय का पुराना दोस्त था बड़े नाटकीय अंदाज में उसने हस्ताक्षर किये।[205]

15 अगस्त, 1947 को महाराजा ने एक भाषण में स्वतंत्र भारत में स्वतंत्र बीकानेर की कल्पना को दोहराया और कहा कि बीकानेर का राजकीय ध्वज बीकानेर की सार्वभौम सत्ता का द्योतक है। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश सत्ता की समाप्ति के साथ भारतीय रियासतों को यह छूट थी कि वे अलग रहें और नये राष्ट्र के साथ सम्बन्धित होने से मना कर दें। कानूनी दृष्टि से आज हम सभी स्वतंत्र हो सकते हैं क्योंकि हमने ब्रिटिश साम्राज्य को आधिपत्य का जो अधिकार सौंपा था वह भारतीय स्वतंत्रता कानून के अंतर्गत हमें वापिस मिल गया। हम अलग रह सकते थे और भारतीय राष्ट्र में विलय नहीं करते। एक क्षण के विचार से ही यह स्पष्ट हो जायेगा कि इसका परिणाम कितना विनाशकारी होता। शुरू से ही मेरे दिमाग में यह बात आ गयी थी कि इससे भारत छोट–छोटे टुकड़ों में बंट जायेगा। इसके परिणाम का पूर्व ज्ञान रखते हुए मैंने बिना हिचकिचाहट के भारत के उन तत्वों के साथ सहयोग करने का निश्चय किया जो एक मजबूत केन्द्रीय सरकार की स्थापना के लिये कार्य कर रहे थे।[206]

बीकानेर नरेश की प्रशंसा

सरदार पटेल ने देशी राज्यों के भारत में विलय के पश्चात् महाराजा सादुलसिंह का धन्यवाद् करते हुए उन्हें लिखा कि राजाओं को गलत राह पर ले जाने के लिये जान–बूझकर जो संदेह और भ्रम उत्पन्न किये गये उन्हें मिटाने में महाराजा ने जो कष्ट किया, उससे मैं भली भाँति परिचित हूँ। महाराजा का नेतृत्व निश्चय ही समयानुकूल और प्रभावशाली रहा है।[207]

स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ माह बाद जनवरी 1948 में लार्ड माउंटबेटन बीकानेर राज्य के दौरे पर आये। उन्होंने भाषण में सादुलसिंह की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि महाराजा प्रथम शासक थे जिन्होंने भारत का नया संविधान बनाने में मदद देने के लिये संविधान निर्मात्री सभा में प्रतिनिधि भेजकर यह अनुभव कर लिया कि भविष्य में रजवाड़ों को क्या करना है? महाराजा पहले शासक थे जिन्होंने रियासतों के अपने पास के संघ में सम्मिलित होने के मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया।[208]

2 सितम्बर, 1954 को राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने बीकानेर में महाराजा सादुलसिंह की मूर्ति का अनावरण करते हुए उनके योगदान की प्रशंसा कि **जब एक**

ओर भारत के बंटवारे की विपत्ति आ रही थी और दूसरी ओर भारतवर्ष के टुकड़े किये जाने के लिये द्वार खोला जा रहा था उन्होंने जवांमर्दी, देशप्रेम तथा दूरदर्शिता से अपने आप को खड़ा करके उस दरवाजे का मुँह बंद कर दिया।[209]

बीकानेर महाराजा का पाकिस्तान की ओर झुकाव

बीकानेर के अधिकारियों तथा बहावलपुर राज्य के प्रधानमंत्री नवाब मुश्ताक अहमद गुरमानी के मध्य भारत सरकार के सैन्य अधिकारी मेजर शार्ट की अध्यक्षता में बीकानेर में एक बैठक रखी गयी। 7 नवम्बर, 1947 को मेजर शार्ट की मध्यस्थता में दोनों रियासतों के मध्य शरणार्थियों एवं सीमा सम्बन्धी विवादों पर चर्चा हुई तथा एक समझौता भी हुआ। इसके पश्चात् उसी दिन शाम की ट्रेन से मेजर शॉर्ट दिल्ली चले गये और गुरमानी को भी सरकारी रिकॉर्ड में बहावलपुर जाना अंकित कर दिया गया जबकि महाराजा ने गुरमानी को गुप्त मंत्रणा के लिये लालगढ़ में ही रोक लिया। तीन दिन तक गुरमानी लालगढ़ में रहा। इस दौरान राजमहल का समस्त स्टाफ मुसलमानों का रहा। इस कारण कुछ ही हिन्दु कर्मचारियों को महल में प्रवेश दिया गया। इनमें से राज्य के जनसम्पर्क अधिकारी बृजराज कुमार भटनागर भी थे। उन्हें इसलिये प्रवेश दिया गया कि वे महाराजा के अत्यंत विश्वस्त थे तथा उर्दू के जानकार भी थे। 10 नवम्बर तक गुरमानी और सादुलसिंह के बीच गुप्त मंत्रणा चलती रही। इस दौरान सादुलसिंह का झुकाव पाकिस्तान की ओर हो गया। यह निर्णय लिया गया कि प्रायोगिक तौर पर छः माह के लिये बीकानेर और बहावलपुर राज्यों के मध्य एक व्यापारिक समझौता हो। समझौता लिखित में हुआ तथा दोनों और से हस्ताक्षर करके एक दूसरे को सौंप दिया गया।[210]

बृजराज कुमार भटनागर ने यह बात बीकानेर में हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता दाऊदयाल आचार्य को बता दी। यह समाचार 17 नवम्बर 1947 को हिन्दुस्तान टाइम्स के दिल्ली संस्करण में तथा 18 नवम्बर को बीकानेर संस्करण में प्रकाशित हुआ जिससे दिल्ली और बीकानेर में हड़कम्प मच गया। बीकानेर प्रजा परिषद के नेताओं ने इस संधि का विरोध करने का निर्णय लिया और दिल्ली जाकर भारत सरकार को ज्ञापन देने की घोषणा की। यह रक्षा से सम्बद्ध मामला था तथा संघ

सरकार के अधीन आता था, इसलिये पटेल ने तुरन्त एक सैन्य संपर्क अधिकारी को बीकानेर तथा बहावलपुर की सीमा पर नियुक्त किया और बीकानेर महाराजा को लिखा कि वे इस अधिकारी के साथ पूरा सहयोग करें। बीकानेर के गृह मंत्रालय द्वारा समाचार पत्र के संवाददाता को सामाचार का स्त्रोत बताने के लिये कहा गया। इस तार में रायसिंह नगर के नाजिम को सूचित किया गया था कि बहावलपुर रियासत से हमारा व्यापार यथावत चल रहा है। रायसिंह नगर में राजस्व विभाग के भूतपूर्व पेशकार मेघराज पारीक ने वह तार नाजिम के कार्यालय से चुरा लिया और दाऊदयाल आचार्य को सौंप दिया। इस तार के प्रकाश में आने के बाद बीकानेर राज्य का गृह विभाग शांत होकर बैठ गया।[211]

बीकानेर महाराजा ने हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित इन खबरों का विरोध करते हुए भारत सरकार को लिखा कि बीकानेर प्रजा परिषद और बीकानेर राज्य के सम्बन्ध ठीक नहीं है। इसलिये प्रजा परिषद के एक कार्यकर्त्ता ने जो कि हिन्दुस्तान टाइम्स का संवाददाता भी है, इस खबर को प्रकाशित करवाया है ताकि बीकानेर राज्य पर दवाब बनाकर उसे उपनिवेश सरकार द्वारा अधिग्रहित कर लिया जाये। क्या प्रजा परिषद बीकानेर राज्य को जूनागढ़ तथा हैदराबाद के समकक्ष रखना चाहती है? महाराजा ने पटेल से अनुरोध किया कि वह इस सम्बन्ध में दोषी व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही करने में सहायता करें तथा एक अधिकारिक बयान जारी करके इस आरोप को निरस्त कर दिया जाये।[212]

इस पर रियासती विभाग ने एक वक्तव्य जारी किया कि कुछ सामाचार पत्रों में इस आशय के सामाचार प्रकाशित किये गये हैं। कि बीकानेर, पाकिस्तान एवं बहावलपुर के मध्य एक व्यापारिक संधि हुई है। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यह समाचार पूर्णतः आधारहीन है। ऐसा कोई समझौता नहीं हुआ है, बहावलपुर के मुख्यमंत्री सीमा के दोनों तरफ रह रहे शरणार्थियों में भय फैलने से रोकने के लिये किये जा रहे प्रयासों के लिये मैत्री यात्रा पर आये थे।[213] बीकानेर के अंतिम महाराजा सादुलसिंह ने अंतरिम सरकार बनाकर आंशिक मात्रा में सत्ता जनता को सौंपी अवश्य पर रियासत को अलग इकाई रखने हेतु जो पापड़ बेले गये और दुरभिसंधिया की, उनकी सूचना दाऊदयाल आचार्य एवं मूलचंद पारीक ने यथा समय उच्चस्थ विभागों

को पहुंचायी, वह तो देशभक्ति की अनोखी मिसाल है। उसी के कारण बीकानेर रियासत भारत में रह पायी।[214]

आगे चलकर महाराजा सादुलसिंह ने बीकानेर तथा राजपूताना की अन्य रियासतों के भारत संघ में एकीकरण को रोकने का हर संभव प्रयास किया। महाराजा ने अपनी रियासत को बचाने के लिये थैलियों के मुंह खोल दिये। बीकानेर रियासत के राजस्थान में एकीकरण को उन्होंने बलपूर्वक नियंत्रण माना। [215]

वृहत राजस्थान के उद्‌घाटन समारोह से ठीक एक दिन पहले महाराजा ने सरदार पटेल को पत्र लिखकर सूचित किया कि मेरा परिवार विगत पाँच शताब्दियों से बीकानेर से अपने रक्त सम्बन्ध से जुड़ा रहा है। मेरे लिये यह दिन प्रसन्नता मनाने का नहीं अपितु यह अवसर मेरे लिये अत्यंत अवसाद और दुख का दिन है।

जोधपुर राज्य का भारत में विलय

8 जून, 1947 को जोधपुर नरेश उम्मेद सिंह का देहांत हो गया। 21 जून, 1947 को दिवंगत नरेश के 25 वर्षीय पुत्र हनुवंतसिंह का राज्यारोहण हुआ। राज्यारोहण के अवसर पर हनुवंतसिंह ने घोषणा की कि स्वर्गवासी महाराजा ने जिन वैधानिक सुधारों का श्री गणेश किया उनमें वृद्धि करते हुए, वे वैधानिक शासक के रूप में शासन करेंगे। उन्होंने दिवंगत महाराजा द्वारा राज्य को संविधान सभा में सम्मिलित करने की जो घोषणा की थी उसकी भी पुष्टि की।[216] स्थापित परम्परा के अनुसार नये महाराजा के राज्यारोहण के समय ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि के रूप में राज्य का राजनीतिक एजेंट एक खरीता भेंट करता था, जिसमें नये महाराजा के राज्यारोहण की पुष्टि की जाती थी। चूँकि स्वतंत्रता की तिथि निकट आ गयी थी। इसलिये निर्णय किया गया कि महाराजा को ब्रिटिश क्रॉउन रिप्रजेण्टेटिव की ओर से दिया जाने वाला खरीता डाक से भेजा जाये।[217]

जोधपुर रियासत को पाकिस्तान में सम्मिलित कराने का षड़यंत्र

16 जुलाई, 1947 को वी0पी0 मेनन ने इंग्लैण्ड में भारत उपसचिव सर पैट्रिक को तार भेजा कि वायसराय ने मैसूर, बड़ौदा, ग्वालियर, बीकानेर, जयपुर और जोधपुर

के प्रतिनिधियों से भारत में विलय के विषय में बातचीत की। उन सबकी प्रतिक्रिया सकारात्मक थी।[218]

02 अगस्त, 1947 को मेनन ने पैट्रिक को सूचित किया कि भारत के लगभग सभी राजा अपने राज्यों का भारतीय संघ मे विलय करने के लिये तैयार हो गये केवल हैदराबाद, भोपाल और इंदौर हिचकिचा रहे हैं। वायसराय ने देशी नरेशों से बात की है और इन राज्यों के नरेशों ने भारतीय संघ में सम्मिलित होने पर सहमति दर्शायी है– ग्वालियर, पटियाला, कोटा, जोधपुर, जयपुर, रामपुर, नवानगर, झालावाड़, पन्ना, टेहरी, गढवाल, फरीदकोट, सांगली, सीतामऊ, पानीताना, फाल्टन, खैरागढ़ एवं सांदूर।[219]

यद्यपि जोधपुर राज्य 28 अप्रैल, 1947 से संविधान सभा में भाग ले रहा था तथा जोधपुर के युवा महाराजा हनुवंतसिंह दो बार भारत में मिलने की घोषणा कर चुके थे किन्तु वे देश को स्वतंत्रता मिलने से ठीक 10 दिन पहले पाकिस्तान का निर्माण करने वाले मुहम्मद अली जिन्ना और उनका साथ देने वाले नवाब भोपाल एवं धौलपुर के महाराजराणा के चक्कर में आ गये। जब राजपूताना के राज्यों का स्वतंत्र समूह गठित करने की योजना विफल हो गयी तो समस्त विभागों के सदस्यों ने राजपूताना के राज्यों को सलाह दी कि वे पाकिस्तान में मिल जायें क्योंकि भारत पाकिस्तान सीमा पर स्थित होने के कारण कानून वे ऐसा कर सकते थे। इनमें से जोधपुर राज्य एक था।[220]

महाराजा हनुवंतसिंह कांग्रेस से घृणा करते थे, तथा जोधपुर की रियासत पाकिस्तान से लगी हुई थी। इसलिये हनुवंतसिंह ने जिन्ना से भेंट करने की सोची।[221] जिन्ना और मुस्लिम लीग के नेताओं की जोधपुर नरेश से कई बार भेंट हुई थी और अंतिम भेंट में वे जैसलमेर के महाराजकुमार को भी साथ ले गये थे। बीकानेर नरेश ने उनके साथ जाने से मना कर दिया था और हनुंवतसिंह जिन्ना के पास अकेले जाने से हिचकिचा रहे थे।[222] उन लोगों को देखकर जिन्ना अति प्रसन्न हुआ। जिन्ना जानते थे कि अगर ये दोनों रियासतें पाकिस्तान में सम्मिलित हो गयी। तो अन्य राजपूत रियासतें भी पाकिस्तान में सम्मिलित हो जायेंगी। इससे पंजाब और बंगाल के बटवारे की कमी भी पूरी हो जायेगी। तथा सभी प्रमुख रजवाड़ों को हड़पने की कांग्रेसी

योजना भी विफल हो जायेगी।[223] जिन्ना ने एक खाली कागज पर हस्ताक्षर करके अपनी कलम के साथ जोधपुर नरेश को दे दिया और कहा कि आप इसमें जो भी शर्तें चाहे भर सकते हैं। इसके बाद कुछ विचार विमर्श हुआ। इस पर हनुवंतसिंह पाकिस्तान में मिलने को तैयार हो गये फिर वे जैसलमेर के महाराज कुमार की ओर मुड़े और उनसे पूँछा कि क्या वे भी हस्ताक्षर करेंगे? महाराज कुमार ने कहा कि वे एक शर्त पर हस्ताक्षर करने को तैयार है कि यदि कभी हिन्दू और मुसलमानों में झगड़ा हुआ तो जिन्ना हिन्दुओं के विरूद्ध मुसलमानों का पक्ष नहीं लेंगे। यह एक बम के फटने जैसा था जिसने महाराजा हनुवंतसिंह को अंचभे में डाल दिया। जिन्ना ने हनुवंतसिंह पर बहुत दबाव डाला कि वे दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दें।[224] जब महाराजकुमार जैसलमेर ने पाकिस्तान में विलय से मना कर दिया तो महाराजा विचलित हो गये। इस अवसर का लाभ उठाकर महाराजा के ए.डी.सी कर्नल केसरीसिंह ने महाराजा को सलाह दी कि वे अंतिम निर्णय लेने से पहले अपनी माताजी से भी सलाह ले लें।[225] महाराजा को यह बहाना मिल गया और उन्होंने यह कह कर जिन्ना से विदा ली कि वे इस विषय में सोच समझ कर अपने निर्णय से एक दो दिन में अवगत करवायेंगे।[226]

कर्नल केसरीसिंह ने जोधपुर लौटकर प्रधानमत्री सी.एस. वेंकटाचार को तथ्यों से अवगत करवाया, षड़यंत्र की गंभीरता को देखकर वेंकटाचार ने 6 अगस्त, 1947 को बीकानेर राज्य के प्रधानमंत्री सरदार पणिक्कर के पास पत्र भिजवाया।[227] पत्र में लिखा था कि भोपाल नवाब महाराजा जोधपुर को जिन्ना से मिलाने ले गये थे। जिन्ना ने पेशकश की थी कि वे जोधपुर को स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता देकर संधि करने को तैयार हैं उन्होंने यह भी पेशकश की कि जोधपुर राज्य को जो हथियार चाहिये वे पाकिस्तान के बंदरगाह से बिना सीमांत कर दिये लाये जा सकते हैं। जिन्ना ने महाराजा जोधपुर को राजस्थान का सर्वेसर्वा बनाने की पेशकश की जिससे जोधपुर महाराजा चकित रह गये और उनके मन में इच्छा जागी कि वे राजस्थान के सम्राट बन जायेंगे। महाराजा के सेक्रेटरी कर्नल केसरीसिंह, जिन्ना के निवास पर महाराजा के साथ गये थे किन्तु उन्हें अंदर नहीं जाने दिया गया। अतः उन्हें पूरी शर्तों के बारे में पता नहीं था। जब महाराजा दूसरे दिन भोपाल नवाब के साथ जिन्ना से मिलने गये

तो संधि का प्रारूप हस्ताक्षरों के लिये तैयार था। उस समय महाराजा ने केसरीसिंह से कहा कि मैं संधि पर हस्ताक्षर करके राजस्थान का बादशाह हो जाऊंगा। केसरीसिंह ने उन्हें समझाया कि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। इस पर महाराजा ने यह आश्वासन देकर जिन्ना से विदा ली कि वे अपने परिवार के अन्य सदस्यों से सलाह करके 8 अगस्त को संधि पर हस्ताक्षर करेंगे। केसरीसिंह ने भी इस आश्वासन को दोहराया।[228]

जोधपुर लौटकर हनुवंतसिंह ने सरदार समंद पैलेस में राज्य के जागीरदारों की एक बैठक बुलायी तथा उनकी राय जाननी चाही। दामली ठाकुर के अतिरिक्त और कोई जागीरदार भारत सरकार से संघर्ष करने के लिये तैयार नहीं हुआ।[229] महाराजा तीन दिन तक जोधपुर में रहे। पाकिस्तान में मिलने के प्रश्न पर जोधपुर के वातावरण में काफी क्षोभ था। जब हनुवंतसिंह तीन दिन बाद दिल्ली लौटे तो मेनन को बताया गया कि यदि मेनन ने महाराजा को शीघ्र नहीं संभाला तो वे पाकिस्तान में मिल सकते हैं।[230] मेनन ने माउंटबेटन से निवेदन किया कि वे जोधपुर महाराजा को भारत में सम्मिलित होने के लिये सहमत करें।[231] मेनन इंपीरियल होटल गये और महाराजा से कहा कि लार्ड माउंटबेटन उनसे बातचीत करना चाहते हैं। मेनन तथा हनुवंतसिंह कार में वायसराय भवन गये।[232] वायसराय ने अपने आकर्षक व्यक्तित्व और दृढ़ निश्चय से महाराजा से इस प्रकार बात की जैसे कोई अध्यापक अपने अनुशासनहीन छात्र को समझाता है। उन्होंने महाराजा से कहा कि उन्हें अपने राज्य को पाकिस्तान में मिलाने का पूरा अधिकार है। किन्तु उन्हें इसके परिणामों का भी ध्यान रखना चाहिये। वे स्वयं हिन्दू हैं व उनकी अधिकांश प्रजा हिन्दू है। महाराजा का यह कदम इस सिद्धांत के विरूद्ध होगा कि भारत के टुकड़े केवल दो भागों में होंगे जिनमें से एक मुस्लिम देश होगा और दूसरा गैर मुस्लिम देश। उनके पाकिस्तान में विलय से जोधपुर में सांप्रदायिक दंगे होंगे। कांग्रेस के भी आंदोलन करने की संभावना है। महाराजा ने माउंटबेटन को बताया कि जिन्ना ने खाली कागज पर अपनी शर्तें लिखने के लिये कहा है जिन पर जिन्ना हस्ताक्षर कर देंगे। इस पर मेनन ने कहा कि मैं भी ऐसा कर सकता हूँ। किन्तु उससे महाराजा को ठीक उसी तरह कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जिस तरह जिन्ना के हस्ताक्षरों के बावजूद महाराजा को पाकिस्तान से कुछ नहीं मिलेगा। इस पर माउंटबेटन ने मेनन से कहा कि मेनन भी जिन्ना की तरह महाराजा को कुछ

विशेष रियायतें दें।[233] महाराजा ने अपने राज्य का विलय भारत में करने की बात मान ली और प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर दिये।[234] महाराजा तथा मेनन के बीच कुछ विशेषाधिकारों पर सहमति हुई जिन्हें लिखित रूप में आ जाने पर मेनन स्वयं जोधपुर लेकर आये।[235]

08 अगस्त, 1947 को माउंटबेटन द्वारा भारत सचिव को भेजे गये प्रतिवेदन में कहा गया कि ''जोधपुर के प्रधानमंत्री वेंकटाचार ने सूचित किया है कि जोधपुर के युवक महाराजा ने दिल्ली में वायसराय के साथ दोपहर का खाना खाने के पश्चात् यह कहा था कि वे भारतीय संघ में मिलना चाहते हैं, परन्तु इसके तुंरत बाद ही धौलपुर महाराजा ने जोधपुर महाराजा को दबाया कि वे भारतीय संघ में सम्मिलित नहीं हो। जोधपुर महाराजा को जिन्ना के पास ले जाया गया और नवाब भोपाल तथा उनके वैधानिक सलाहकार जफरूल्लां खां की उपस्थिति में जिन्ना ने यह पेशकश की कि यदि महाराजा 15 अगस्त को अपने राज्य को स्वतंत्र घोषित कर दें तो उन्हें ये रियायतें दे दी जायेगी।– (1.) कराची के बंदरगाह की समस्त सुविधायें जोधपुर राज्य को दी जायेगी। (2) जोधपुर राज्य को शस्त्रों का आयात करने दिया जायेगा। (3) जोधपुर, हैदराबाद (सिंध) रेल्वे पर जोधपुर का अधिकार होगा। (4) जोधपुर राज्य के अकाल ग्रस्त जिलों के लिये पूरा अनाज उपलब्ध करवाया जायेगा। ''वायसराय ने लिखा कि ''महाराजा अब भी यह सोचतें हैं कि जिन्ना द्वारा की गयी पेशकश सर्वोत्तम है और उन्होंने भोपाल नवाब को तार द्वारा सूचित किया है कि उनकी स्थिति अनिश्चित है, और वे उनसे 11 अगस्त, को मिलेंगे। 7 अगस्त, को हनुवंतसिंह बड़ौदा गये जहाँ उन्होंने महाराजा गायकवाड़ को समझाया कि प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर नहीं करें, भोपाल नवाब भी प्रयास कर रहे हैं कि जोधपुर, कच्छ व उदयपुर के नरेश भी प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर नहीं करें। मैंने जोधपुर के महाराजा को इस विषय पर तार भेजा है कि वे शीघ्रातिशीघ्र आकर मुझसे मिलें। मुझे सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि भोपाल नवाब मेरे सामने तो मित्र की भांति व्यवहार करते हैं पंरतु पीठ पीछे मेरी योजना को विफल करने का षड़यंत्र करते हैं। मैं उनकी चालाकियों के विषय में उनके दिल्ली आने पर स्पष्ट बात करूंगा।[236]

11 अगस्त, 1947 को लार्ड माउंटबेटन ने देशी राज्यों के नरेशों से वार्तालाप किया तथा नवाब भोपाल से उस सूचना पर स्पष्टीकरण मांगा जो सरदार पटेल को प्राप्त हुई थी। जिसके अनुसार नवाब ने जोधपुर महाराजा पर दबाव डाला था कि वे उनके साथ चलकर जिन्ना से मिलें।[237]

भोपाल नवाब ने अपने उत्तर में वायसराय को सूचित किया– ''6 अगस्त, को महाराजा धौलपुर व दो अन्य राजाओं ने मुझे सूचना दी कि महराजा जोधपुर मुझसे (भोपाल नवाब) मिलना चाहते हैं। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि मुझे उनसे मिलकर प्रसन्नता होगी। जब महाराजा मेरे पास आये तो उन्होंने कहा कि वे जिन्ना से शीघ्र मिलकर उनकी शर्तों का ब्यौरा जानना चाहते हैं। जिन्ना दिल्ली छोड़कर हमेशा के लिये करांची जाने वाले थे। इस कारण अत्यंत व्यस्त थे। फिर भी मैंने महाराजा के लिये साक्षात्कार का समय ले लिया। हमें दोपहर बाद का समय दिया गया जिसकी सूचना महाराजा को भिजवा दी गयी। महाराजा मेरे निवास स्थान पर तीसरे पहर आये और हम दोनों जिन्ना से मिलने गये। महाराजा ने जिन्ना से पूंछा कि जो राजा पाकिस्तान से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, उनको क्या रियायत देंगे? जिन्ना ने उत्तर दिया कि मैं पहले ही यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि हम राज्यों से संधि करेंगे और उन्हें अच्छी शर्तें देकर स्वतंत्र राज्य की मान्यता देंगे। फिर महाराजा ने बंदरगाह की सुविधा, रेलवे का अधिकार, अनाज तथा शस्त्रों के आयात के विषय में वार्ता की। वार्ता के दौरान इस बात की कोई चर्चा नहीं हुई कि वे प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करें या न करें। मैं इस साक्षात्कार के बाद भोपाल लौट गया जहां मुझे महाराजा धौलपुर का टेलिफोन पर संदेश मिला कि महाराजा जोधपुर शनिवार (9 अगस्त) को दिल्ली लौट रहे हैं। अतः मुझे (नवाब को) दिल्ली पहुँच जाना चाहिये। मैं शनिवार को दिल्ली पहुँचा तो हवाई अड्डे पर मुझे महाराजा का संदेश मिला कि मैं सीधे महाराजा जोधपुर के निवास स्थान पर पहुँचू। वहां पहुँचने पर महाराजा धौलपुर ने कहा कि मुझे कुछ प्रतीक्षा और करनी पड़ेगी क्योंकि जोधपुर महाराजा वायसराय से मिलने गये हुए हैं और कुछ ही देर में लौटने वाले हैं परंतु महाराजा वायसराय के पास अधिक समय तक ठहर गये और हमारे पास आने का समय नहीं मिला उन्होंने टेलिफोन द्वारा यह संदेश भिजवाया कि वे जोधपुर जा रहे हैं और संध्या को वापस लौटेंगे।............

शनिवार संध्या को महाराजा धौलपुर आये और कहा कि जोधपुर महाराजा अभी तक नहीं लौटे हैं, प्रतीत होता है कि वे रविवार सवेरे लौटेंगे। रविवार (10 अगस्त) को लगभग डेढ़ बजे मुझे धौलपुर नरेश का निमंत्रण मिला कि मैं उनके साथ दोपहर के खाने पर सम्मिलित होऊं। वहां पहुँचने पर पता चला कि जोधपुर नरेश भी वहाँ थे। वे अपने गुरू को साथ लेकर आये थे। महाराजा ने मुझसे उनका परिचय करवाते हुए कहा कि ये मेरे दार्शनिक व मार्गदृष्टा हैं। जिन्ना से भेंट के बाद मैं उसी दिन जोधपुर महाराजा से मिला। महाराजा ने कहा कि हम लोग उनके गुरू से बातचीत करें, महाराजा धौलपुर व अन्य राजाओं ने गुरू से विस्तृत वार्तालाप किया। जिसमें मैंने बहुत कम भाग लिया। जब मैं विदा लेने लगा तो महाराजा जोधपुर ने कहा कि वे सोमवार (11 अगस्त) को सवेरे मुझसे मिलने आयेंगे। अपने निश्चय के अनुसार वे सोमवार को 10.00 बजे मुझसे मिलने आये तथा कहा कि उनके गुरू अभी किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं परंतु स्वयं उन्होंने निर्णय कर लिया है कि वे भारत संघ में ही रहेंगे। मैंने महाराजा से कहा कि आप अपने राज्य के मालिक हैं और कुछ भी निर्णय लेने के लिये स्वतंत्र हैं। [238]

वायसराय ने भोपाल नवाब द्वारा भेजे गये तथ्यों को सही माना है। ओंकारसिंह ने इस विवरण के आधार पर यह माना है कि जिन्ना और जोधपुर नरेश की भेंट के समय कर्नल केसरीसिंह महाराजा के साथ नहीं थे अन्यथा नवाब ने उनका उल्लेख अवश्य किया होता। ओंकारसिंह के अनुसार अवश्य ही केसरीसिंह ने यह मिथ्या भ्रम फैलाया था कि इस भेंट के दौरान केसरीसिंह भी उपस्थित थे और इसी भ्रम के कारण मानकेकर और पणिक्कर आदि ने तथ्यों को विकृत कर दिया है।[239]

16 अगस्त, 1947 को लार्ड माउंटबेटन द्वारा भारत सचिव को अपना अंतिम प्रतिवेदन भेजा गया जिसके अनुच्छेद 41 में कहा गया–'' 8 अगस्त को मैंने महाराजा जोधपुर को बुलाया तो वे उसी रात्रि को विलम्ब से जोधपुर से दिल्ली पहुँचे और अगले दिन सवेरे (9 अगस्त को) मुझसे मिलें। महाराजा ने निःसंकोच स्वीकार किया कि वे जिन्ना से मिले थे और नवाब भोपाल का विवरण सही है। पटेल को जब जोधपुर महाराजा की चाल का पता चला तो वे महाराजा को मनाने के लिये किसी भी सीमा तक जाने के लिये तैयार हो गये। (1) पटेल ने यह बात मान ली कि महाराजा

जोधपुर राज्य में बिना किसी रूकावट के शस्त्रों का आयात कर सकेंगे। (2) राज्य के अकालग्रस्त जिलों को पूरे खाद्यान्न की आपूर्ति की जायेगी, और इस हेतु भारत के अन्य क्षेत्रों की अवहेलना की जायेगी। (3) महाराजा द्वारा जोधपुर रेलवे की लाइन कच्छ राज्य के बंदरगाह तक मिलाने में कोई रूकावट नहीं कि जायेगी। पटेल की इस स्वीकृति से महाराजा संतुष्ट हो गये और उन्होंने निश्चय किया कि वे भारत के साथ रहेंगे।[240] ओंकार सिंह का मानना है कि महाराज हनुवंतसिंह न तो पाकिस्तान में मिलना चाहते थे और न ही राजस्थान के सम्राट बनना चाहते थे, अपितु वे तो अपने राज्य के लिये अधिकतम सुविधायें प्राप्त करने के लिये सरदार पटेल पर दबाव बनाना चाहते थे।[241] प्राप्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि जोधपुर नरेश अवश्य ही भोपाल नवाब और महाराजा धौलपुर की चाल में फँस कर उन संभावनाओं का पता लगाने के लिये जिन्ना तक पहुँच गये थे कि उनका अधिक लाभ किसमें है? भारत संघ में मिलने में, पाकिस्तान में मिलने में अथवा इन दोनों देशों से स्वतंत्र रहकर अलग अस्तित्व बनाये रखने में? जोधपुर और त्रावणकोर के हिन्दू राजाओं ने कुछ अलगाववादी चालाकियां करनी चाहीं किन्तु पटेल की सजगता ने उन्हें पानी–पानी कर दिया।[242]

सबसे पहले सुमनेश जोशी[243] ने जोधपुर से प्रकाशित समाचार पत्र, रियासती में जोधपुर नरेश के पाकिस्तान में मिलने के इरादे का भाण्डाफोड़ किया। 20 अगस्त, 1947 के अंक में ''राजपूताने के जागीरदारों और नवाब भोपाल के मंसूबे पूरे नहीं हुए'' शीर्षक से प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार जोधपुर राज्य के संघ प्रवेश से जो प्रसन्नता यहाँ के राजनैतिक क्षेत्र में हुई है। उसके पीछे आश्चर्य यह है कि नये–नये महाराजा ने बावजूद अपने तिलकोत्सव के भाषण के, संघ प्रवेश में क्यों हिचकिचाहट दिखायी? भोपाल नवाब ने कई हवाई जहाजों के जरिये 16 रियासतों के साथ संपर्क कायम करने का प्रयास किया। उन्होंने जोधपुर के मामले में इसलिये कामयाबी हासिल कर ली क्योंकि उनके चारों तरफ जागीरदार थे जो रियासत को पाकिस्तान में मिलाने के पक्ष में थे। जैसा कि महाराजा साहब के ननिहाल ठिकाने के प्रेस से प्रकाशित ''क्षत्रिय वीर'' के एक लेख में इशारा था, पाकिस्तान जागीरी प्रथा के प्रति उदार है जबकि हिन्दुस्तान इस प्रथा को मिटाना चाहता है। अतः पैलेस के जागीरदार स्वभावतः

हिन्दुस्तान से पाकिस्तान को ज्यादा पंसद करते हैं। इससे जोधपुर रियासत की बहुत बदनामी हुई है।हिन्दुस्तान यूनियन से दूर रहने का जो षड़यत्र किया गया था। उसमें यह भी प्रचारित किया गया था कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान आयेंगे तथा उनसे बातचीत करके रियासतों का सम्बन्ध सीधा इंग्लैण्ड से करवा दिया जायेगा। इस नाम पर बहुत लोग मूर्ख बनने वाले थे। अतः और लोगों को भी पाकिस्तान की तरफ से स्वतंत्र रहने का लालच दिया गया। जोधपुर महाराजा का भारत विरोधी रूख इन सभी बातों का सामूहिक परिणाम था। जाम साहब के पास भी भोपाल का संदेश गया था। पर उन्होंने उसे ठुकरा दिया। उदयपुर महाराजा के पास भी जोधपुर का संदेश गया जिसका महाराणा ने कड़ा उत्तर दिया। ऐसेम्बली लॉबी में भी जोधपुर का यूनियन में प्रवेश अत्यंत चर्चा का विषय है।[244]

वी.पी. मेनन और महाराजा हनुवंतसिंह का विवाद

जब 9 अगस्त, 1947 को वी.पी.मेनन महाराजा हनुवंतसिंह को लेकर वायसराय के पास गये तथा वायसराय के कहने पर मेनन ने महाराजा को विशेष रियायतें देने की बात मान ली तब वायसराय ने मेनन से कहा कि वे महाराजा से प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करवा लें और वायसराय हैदराबाद के प्रतिनिधि मण्डल से मिलने अंदर चले गये। वायसराय की अनुपस्थिति में महाराजा ने एक रिवॉल्वर निकाली और मेनन को धमकाने लगे परंतु महाराजा ने प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर दिये।[245]

मेनन के अनुसार हनुवंतसिंह द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर देने के बाद माउंटबेटन दूसरे कमरे में चले गये और महाराजा ने अपना रिवॉल्वर निकालकर मेनन की तरफ करके कहा –''मैं तुम्हारे संकेत पर नहीं नाचूंगा।'' मेनन ने कहा कि ''यदि आप सोचते है कि मुझे मारकर या मारने की धमकी देकर प्रविष्ठ संलेख को समाप्त कर सकते हैं तो यह आपकी गंभीर भूल है। बच्चों जैसा व्यवहार बंद कर दें। इतने में ही माउंटबेटन लौट आये। मेनन ने उन्हें पूरी बात बतायी। माउंटबेटन ने इस गंभीर बात को हल्का करने का प्रयत्न किया और हँसी मजाक करने लगे। जब तक जोधपुर नरेश की मनोदशा सामान्य हो गयी। मैं उन्हें छोड़ने के लिये उनके निवास तक गया।[246] मोसले के अनुसार जब वायसराय के समझाने पर जोधपुर महाराजा अपने

राज्य को भारत संघ में मिलाने पर सहमत हो गये तो वायसराय ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए महाराजा व मेनन की पीठ थपथपायी। इस प्रकार सारे मामले का अंत प्रसन्नता पूर्वक हुआ। उसी क्षण वायसराय को किसी काम से भीतर जाना पड़ा। उनके जाते ही महाराजा मेनन की ओर लपके और उनकी ओर रिवॉल्वर तानतें हुए कहा कि तुम चालाकी और बहाना बनाकर मुझे यहाँ लाये हो मैं तुम्हे मार डालूगां। मैं तुम्हारी बात बिल्कुल नहीं मानूंगा। मेनन ने साहस बटोरकर उत्तर दिया– यदि आप यह समझते हैं कि मुझे मारने से आपको अधिक रियायतें मिलेंगी तो आपका अनुमान गलत है। आपको इस तरह के बचकाने नाटक नहीं करने चाहिये। जब माउंटबेटन आये तो मेनन ने उन्हें बताया कि महाराजा ने मुझे रिवॉल्वर से मारने की धमकी दी है। इस पर वायसराय ने महाराजा से नम्रता पूर्वक कहा कि यह समय हँसी मजाक का नहीं है। आप प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कब करेंगें?[247] कॉलिंस तथा लैपियरे का वर्णन भी मोसले के वर्णन से मिलता जुलता है। उनके अनुसार वायसराय ने कहा की मैं और मेनन पटेल से आग्रह करेंगे कि आपकी सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा जाये किन्तु आप पाकिस्तान में जाने की न सोचें। वायसराय तो यह कहकर अन्दर चले गये और जोधपुर महाराजा ने जेब से एक ऐसा फाउंटेन पैन निकाला जिसे उन्होंने खास अपने लिये तैयार करवाया था। विलय के कागजात पर हस्ताक्षर करने के बाद उन्होंने फाउंटेन पैन का ढक्कन खोला जिससे एक नन्हीं सी टू–टू पिस्तौल निकल कर मेनन की कनपटी पर तन गयी – सब तुम्हारे कारण हुआ! अपने आप को क्या समझते हो ? आभास पाकर माउंटबेटन वहाँ आ गये। उन्होंने महाराजा से पिस्तौल छीन ली।[248]

जबकि ओंकारसिंह के अनुसार महाराजा के पास रिवॉल्वर नहीं, एक छोटा पैन पिस्तौल था जिससे महाराजा ने प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर किये थे, और मजाक–मजाक में ही मेनन को उससे डराया था। ओंकारसिंह के अनुसार इस घटना से सम्बन्धित समस्त तथ्य नवम्बर, 1947 में महाराजा हनुवंतसिंह ने ओंकारसिंह को बताये थे। महाराजा ने यह पैन पिस्तौल लॉर्ड माउंटबेटन को दे दिया। माउंटबेटन उसे लंदन ले गये तथा लंदन के मैजिक सर्कल के संग्रहालय में रखने हेतु भेंट कर दिया। यह पैन पिस्तौल आज भी लंदन में सुरक्षित है।[249]

महाराजा जोधपुर द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर

महाराजा हनुवंतसिंह द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर अंकित करने की जो तिथि प्रविष्ठ संलेख पर दर्शायी गयी है, वह मेनन तथा वायसराय दोनों के दावों से मेल नहीं खाती। वायसराय द्वारा भारत सचिव को भेजी गयी विभिन्न रिपोर्टों तथा मेनन द्वारा लिखित विवरण के अनुसार हनुवंतसिंह 9 अगस्त को वासयराय से मिले एवं उसी भेंट के दौरान प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर हुये।

प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कराने की तिथि 11 अगस्त, लिखी हुई है। इसके साथ जो यथास्थिति समझौता पत्र लगा हुआ है, उस पर जोधपुर राज्य के प्रधानमंत्री सी0एस0 वेंकटाचार्य के हस्ताक्षर हैं, जो कि 9 अगस्त, को महाराजा तथा वायसराय की भेंट के समय दिल्ली में उपस्थित नहीं थे।[250] 11 अगस्त, की तिथि सही प्रतीत होती है, क्योंकि इस बात का कोई कारण दिखायी नहीं देता कि 9 अगस्त, को हस्ताक्षर करते समय 11 अगस्त, की तिथि लिखी जाये। 11 अगस्त, 1947 को वी.पी. मेनन ने महाराजा जोधपुर को पत्र लिखकर सूचित किया कि महाराजा ने सरदार पटेल के साथ हुई वार्ता के दौरान जो मुद्दे उठाये थे उनका जवाब भिजवाया जा रहा है।[251]

जोधपुर में स्वतंत्रता दिवस समारोह

15 अगस्त, 1947 को जोधपुर में दो स्थानों पर समारोह मनाया गया। एक समारोह गिरदीकोट में मानाया गया जिसमें 40 हजार व्यक्ति एकत्रित हुए। नगरपालिका के चेयरमैन द्वारकादास पुरोहित ने झण्डारोहण किया।[252] दूसरा समारोह राज्य सरकार की ओर से महाराजा हनुवंतसिंह के नेतृत्व में मनाया गया। महाराजा ने तिरंगे को फौजी सलामी दी तथा परेड का निरीक्षण किया। इस अवसर पर महाराजा को 51 तोपों की सलामी दी गयी। महाराजा ने इस अवसर पर कोई भाषण नहीं दिया। स्टेडियम ग्राउण्ड में तिरंगे झण्डे को सलामी के वक्त उनके मौन और चुप्पी को उचित नहीं माना गया।[253] महाराजा ने बादलिये (हल्के नीले) रंग का साफा पहन कर परेड की सलामी ली। मारवाड में इस रंग को शोक के समय धारण किया जाता है।[254]

कांग्रेसी कार्यकर्ताओं चम्पालाल जोशी तथा जसवंत ने महाराजा को टोका कि आज तो केसरिया साफा पहनना चाहिये था। इस पर महाराजा ने कहा की ''म्हारो तो आज 36 पीढ़ियां रो राज खत्म हुओ है म्हारे तो आज शोक है।'' [255] बाली में स्वतंत्रता दिवस पर स्कूल के बच्चों को लड्डू बांटने के लिये हाकिम से शक्कर का कोटा मांगा गया लेकिन उसने देने से इनकार कर दिया। परगने के हाकिम और उसके कर्मचारियों ने स्वतंत्रता दिवस समारोह में भाग नहीं लिया। केवल जनता ने स्वतंत्रता दिवस मनाया।[256]

केसरी सिंह तथा वेंकटाचार को अपदस्त किया

महाराजा के ए.ड़ी.सी. कर्नल केसरी सिंह ने राज्य के प्रधानमंत्री सी.एस. वेंकटाचार को महाराजा और जिन्ना की भेंट की सूचना दी थी तथा वेंकटाचार ने इसकी सूचना वायसराय को भिजवायी थी। इस घटना के दो माह बाद ही महाराजा ने केसरीसिंह को उसके पद से हटा दिया। राज्य में असंतोष न फैले इसलिये महाराजा ने कर्नल को अच्छे कार्य का प्रमाण–पत्र तथा नयी ब्यूक गाड़ी भी प्रदान की।[257] वेंकटाचार संयुक्त प्रांत के रहने वाले थे तथा वरिष्ठ आई.सी.एस. अधिकारी थे। वे भारत सरकार से प्रतिनियुक्त होकर जोधपुर आये थे। जिन्ना से हुई भेंट के बाद जोधपुर राज्य में घटित गतिविधियों से अप्रसन्न होकर हनुवंतसिंह ने वेंकटाचार को पुनः नवम्बर, 1947 में कार्यमुक्त कर दिया।[258] वेंकटाचार को इस प्रकार कार्यमुक्त करके दिल्ली भेजा जाना नेहरू को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने पटेल को पत्र लिखकर अप्रसन्नता व्यक्त की–''**जैसा** कि आपकों ज्ञात है कि अलवर, भरतपुर, और जोधपुर के शासक अपने राज्य में जुल्म ढा रहें हैं। जोधपुर ने तो एक 18 वर्ष के विवेकहीन युवक को अपना गृहमंत्री बनाया है। वेंकटाचार को इसी कारण जोधपुर छोड़ना पड़ा। ये राजा लोग बड़े बुद्धिहीन हैं और स्वयं को हानि पहुँचा रहे हैं।[259]

उदयपुर राज्य का विलय

महाराणा सर भूपालसिंह बहादुर 24 मई, 1930 को उदयपुर राज्य की गद्दी पर बैठे।[260] उदयपुर राज्य आंरभ से राष्ट्रीय विचारधारा पर चल रहा था। तथा अपनी स्वतंत्र प्रकृति के कारण कई बार अपने गौरांग प्रभुओं को नाराज कर चुका था। जब

भारत की स्वतंत्रता का समय आया तब भी उदयपुर महाराणा ने स्वंय को राष्ट्र के साथ खड़े हुए दिखाया किन्तु वे भारत संघ में प्रत्यक्ष विलय की अपेक्षा किसी संघ अथवा उपसंघ के रूप में सम्मिलित होना चाहते थे। मई, 1946 में महाराणा भूपालसिंह ने राजस्थान, गुजरात और मालवा के शासकों व उनके प्रतिनिधियों का उदयपुर में एक सम्मेलन आयोजित किया। महाराणा ने इसकी एक कार्यकारणी सभा भी बनाई। जिसमें समस्त राज्यों के शासकों को समान स्तर प्रदान किया गया। उन्हें अपने में से किसी एक को तीन वर्षों के लिये अध्यक्ष चुनने का भी अधिकार दिया गया। द्विसदनीय व्यवस्थापिका का भी प्रस्ताव किया गया जिसके एक सदन में तो राज्यों से समान संख्या में प्रतिनिधि होंगे। छोटे से छोटे राज्य को भी एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। निर्वाचन में अधिक से अधिक लोगों को मताधिकार प्रदान किया जायेगा तथा मंत्रिमण्डल की भी व्यवस्था थी। यद्यपि इसके कार्यों, अधिकारों अथवा इसके गठन के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट व्याख्या नहीं थी।[261] आगे चलकर भी महाराणा ने राजपूताना की रियासतों के शासकों का सम्मेलन 25–26 जून, 1947 को पुनः आयोजित किया।[262] महाराणा ने सम्मेलन में उपस्थित शासकों को चुनौती देते हुए कहा–''हम लोगों ने मिलकर अपनी रियासतों की यूनियन नहीं बनायी, तो सभी रियासतें जो प्रांतो के समकक्ष नहीं हैं, निश्चित रूप से समाप्त हो जायेगी।[263]

उदयपुर रियासत को पाकिस्तान में मिलाने का प्रयास

धौलपुर नरेश महाराजराणा उदयभान सिंह ने जोधपुर नरेश हनुंवतसिंह, उदयपुर नरेश भूपालसिंह तथा जयपुर नरेश मानसिंह से सम्पर्क किया ताकि इन राज्यों को पाकिस्तान में मिलाने के लिये सहमत किया जा सके। उदयपुर नरेश और जयपुर नरेश तो उदयभानसिंह की चाल में नहीं आये किन्तु वह जोधपुर नरेश हनुवंतसिंह को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो गये।[264] महाराजा हनुवंतसिंह इस बात को जानते थे कि यदि राजपूताना की सर्वाधिक प्राचीन रियासत मेवाड़, भोपाल के नवाब की योजना में सम्मिलित हो जाती है तो यह योजना अच्छी तरह से कार्यान्वित की जा सकती है। अपने दीवान सी.एस. वेंकटाचार की सलाह के विरूद्ध महाराजा जोधपुर ने अपने साथ उदयपुर के महाराणा को पाकिस्तान में मिलने के लिये प्रेरित किया।[265] महाराणा ने इसका प्रत्युत्तर देते हुए लिखा– ''मेरी इच्छा तो मेरे पूर्वजों ने निश्चित कर

दी थी। यदि वे थोड़े भी डगमगाये होते तो वे हमारे लिये हैदराबाद जितनी ही रियासत छोड़ जाते। उन्होंने ऐसा नहीं किया और न मैं करूंगा। मैं तो हिन्दुस्तान के साथ हूँ।[266] जहाँ के.एम. मुंशी ने महाराणा के कथन को उद्धत करते समय हैदराबाद रियासत का उल्लेख किया है वहीं दुर्गादास ने हैदराबाद के स्थान पर जयपुर और जोधपुर रियासतों का उल्लेख किया है।[267] इस प्रकार महाराणा ने देशभक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्वेच्छा से भारतीय संघ में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। जोधपुर राज्य पश्चिम की तरफ पाकिस्तान तथा पूर्व की तरफ मेवाड़, इंदौर तथा भोपाल के मध्य योजक कड़ी था। महाराजा इंदौर पहले से ही भोपाल नवाब के साथ था, यदि उदयपुर, जोधपुर राज्य के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता तो भोपाल भी पाकिस्तान से जुड़ सकता था तथा नवाब की पाकिस्तान में मिलने की इच्छा पूरी हो सकती थी।......... किन्तु महाराणा ने जोधपुर के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। महाराणा भूपालसिंह भारत में सम्मिलित होने वाले सर्वप्रथम राजाओं में से थे। बाद में वे स्वेच्छा से राजस्थान संघ में सम्मिलित हो गये। [268]

उदयपुर महाराणा भूपालसिंह ने 7 अगस्त, 1947 को प्रविष्ठ संलेखः पर हस्ताक्षर किये। यथास्थिति समझौता पत्र पर कार्यकारी प्रधानमंत्री मनोहरसिंह ने हस्ताक्षर कियें।[269]

इस प्रकार उदयपुर राज्य भी प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करने वाले सर्वप्रथम राज्यों में शामिल था। इस दौरान राज्य में पूरी तरह शांति रही। सीमा पर स्थित न होने के कारण राज्य में किसी तरह के सांप्रदायिक तनाव की स्थिति भी नहीं बनी।

जयपुर राज्य का विलय

1922 ई. में सवाई माधोसिंह (द्वितीय) की निःसंतान मृत्यु हो जाने पर ईसरदा ठिकाने के 11 वर्षीय बालक मोरमुकुट सिंह को मानसिंह (द्वितीय) के नाम से जयपुर का राजा बनाया गया।[270] भारत की स्वतंत्रता के समय यही सवाई सर मानसिंह जयपुर के शासक थे। जब ब्रिटिश सरकार ने भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा की तो जयपुर उन राज्यों में से था जो सबसे पहले भारतीय संघ में सम्मिलित हुए। जयपुर की महारानी तथा सवाई मानसिंह की पत्नी महारानी गायत्री देवी के अनुसार ''यद्यपि

मैंने इस विचार को स्वीकार किया था कि हम किसी न किसी रूप में भारत का अंग होंगे, किन्तु मुझे यह कभी नहीं लगा कि जब हमारे राज्यों की पहचान समाप्त हो जायेगी तब हमारा जीवन इतना बदल जायेगा। मेरी कल्पना थी कि हम सदैव अपने राज्य की जनता से अपना संबंध बनाये रखेंगे। तथा सार्वजनिक जीवन में हमारी भूमिका बनी रहेगी।[271].

महाराजा के द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिये जाने के बाद भी महाराजा समय पर हस्ताक्षर के लिये उपलब्ध नहीं हुए। रियासती विभाग द्वारा 1 अगस्त, 1947 को समस्त राज्यों को प्रविष्ठ संलेख तथा यथा स्थिति समझौता पत्र की दो प्रतियाँ भिजवायी गयी थी। प्रविष्ठ संलेख की प्रतियों पर राज्य के शासक द्वारा तथा यथास्थिति समझौता पत्र की प्रतियों पर राज्य के प्रधानमंत्री द्वारा हस्ताक्षर करके रियासती विभाग को लौटाने थे। रियासती विभाग की योजना यह थी कि जब शासक द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर दिये जायेंगे तब वायसराय ब्रिटिश क्राउन के प्रतिनिधि के रूप में इस सम्मिलन को स्वीकार करेगा तथा प्रविष्ठ संलेख की एक प्रति पर हस्ताक्षर करके राज्य के शासक को लौटा देगा। इसी प्रकार राज्य के प्रधानमंत्री द्वारा हस्ताक्षरित यथा स्थिति समझौता पत्र को रियासती विभाग के सचिव वी0पी0मेनन द्वारा स्वीकार किया जाना था तथा मेनन के हस्ताक्षरों के बाद यथास्थिति समझौता पत्र की एक प्रति को राज्य को लौटाया जाना था। महाराजा जयपुर को भी सम्मिलन पत्र, यथा स्थिति समझौता पत्र की दो–दो प्रतियाँ यथा समय भिजवा दी गयी थी किन्तु महाराजा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करने के लिये उपलब्ध नहीं हुए।

इस पर जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री वी.टी. कृष्णामाचारी ने रियासती विभाग से अनुरोध किया कि महाराजा संभवतः लंदन में होंगे इसलिये समझौता पत्र की दोनों प्रतियों को लंदन स्थित भारत सचिव कार्यालय के लिये जाने वाली वायसराय की डाक में भेज दिया जाए। रियासती विभाग ने ऐसा ही किया किन्तु महाराजा की ओर से इस सम्बंध में कोई प्रत्युत्तर नहीं आया। प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करने की अंतिम तिथि को निकट आता देख प्रधानमंत्री वी.टी. कृष्णामाचारी ने फिर रियासती विभाग को सूचित किया कि महाराजा की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं आया है अतः संभव है कि महाराजा लंदन में न हों, वे स्विट्जरलैण्ड जाने की बात कर रहे थे। अतः संभव है कि

उन्हें वह पत्र नहीं मिला। महाराजा को 8 अगस्त को एक तार भी भेजा गया किन्तु उसका भी जवाब नहीं आया है। अतः रियासती विभाग द्वारा लंदन स्थित भारत सचिव कार्यालय को केवल के माध्यम से वह डाक महाराजा जहाँ कहीं भी हों, उन्हें भिजवा दी जाये इस सम्बन्ध में किया गया व्यय जयपुर राज्य द्वारा वहन किया जायेगा।[272]

इस पर मेनन ने भारत सचिव को तार भेजा कि कृष्णामाचारी के अनुरोध पर 1 अगस्त, 1947 को महाराजा जयपुर को देने के लिये प्रविष्ठ संलेख वायसराय की डाक के साथ लंदन भिजवाया गया था किन्तु महाराजा की ओर से कोई उत्तर नहीं आया है, अतः विशेष संदेशवाहक के द्वारा यह प्रविष्ठ संलेख महाराजा जहाँ कहीं भी हो उन्हें भिजवाये। इसका व्यय जयपुर राज्य वहन करेगा।[273] महाराजा की स्विट्जरलैण्ड में तलाश करवायी गयी किन्तु महाराजा वहाँ भी नहीं मिले। वे फ्रांस में थे। किसी तरह महाराजा से संपर्क किया गया तथा उनसे अनुरोध किया गया कि वे प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करें। इस पर महाराजा ने सूचित किया कि वे स्वयं लंदन आकर प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर देंगे। 12 अगस्त को भारत सचिव ने तार के द्वारा रियासती विभाग को सूचित किया कि महाराजा लंदन आ रहे हैं।[274]

भारत सचिव द्वारा वी.पी. मेनन को जो तार किया गया उसमें कहा गया कि महाराजा स्विट्जरलैण्ड से लौट रहे हैं।[275] तथा वायसराय को जो तार किया गया उसमें कहा गया कि महाराजा फ्रांस से लौट रहें हैं तथा वे 13 अगस्त को लौटेंगे। उनके द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर दिये जाने के बाद प्रविष्ठ संलेख तीव्र वायुडाक सेवा से भेज दिया जायेगा।[276] महाराजा मानसिंह ने 12 अगस्त, 1947 को प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर किये।[277] 14 अगस्त, को भारत सचिव ने गोपनीय तार द्वारा वी.पी. मेनन को सूचित किया कि महाराजा द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेज आज वायु सेवा द्वारा भेजा गया है।[278]

14 अगस्त को ही जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री वी.टी. कृष्णामाचारी ने वी.पी. मेनन को सूचित किया कि महाराजा जयपुर ने केवल से सूचना भेजी है कि महाराजा ने प्रविष्ठ संलेख मुझे (कृष्णामाचारी) देने के लिये वायसराय की डाक में दिल्ली

भिजवाये हैं अतः आप (मेनन) उस डाक को संभाल कर रख लें। जब मैं 20 अगस्त को दिल्ली आऊंगा तो मैं ये कागज आप को दे दूँगा।[279] 20 अगस्त को कृष्णामाचारी दिल्ली गये तथा उन्होंने मेनन से डाक प्राप्त करके 21 अगस्त को प्रविष्ठ संलेख की दो प्रतियाँ तथा यथास्थिति समझौता पत्र की एक प्रति मेनन को दी।[280] राष्ट्रीय अभिलेखागार में इस विलय पत्र को सुरक्षित रखा गया है इस पर मेजर जनरल महाराजा सर सवाई मानसिंह जी.सी. आई. ई. की ओर से 12 अगस्त, 1947 की तिथि में हस्ताक्षर अंकित हैं तथा इसे भारत की ओर से 16 अगस्त, 1947 को स्वीकार किया गया है।[281]

15 अगस्त, 1947 को भी महाराजा भारत में नहीं थे। वे अपने बच्चों को हैरो में उनके विद्यालय छोड़ने के लिये गये हुए थे। वहां से उन्होंने जयपुर राज्य की जनता के नाम अपना संदेश भिजवाया जो इस प्रकार था–''स्वतंत्र भारत हमारे कंधों पर महान जिम्मेदारी लायेगा और मुझे पूरा विश्वास है कि हम जयपुर में प्रसन्नता पूर्वक अपनी जिम्मेदारियों को ग्रहण करेंगें तथा विश्व के स्वतंत्र देशों में भारत को उचित स्थान दिलाने के लिये, भारत के निर्माण में अपनी पूरी क्षमता के साथ सहायता करेंगे।''[282]

महाराजा मानसिंह भारत संघ में प्रविष्ठ होकर प्रसन्न नहीं थे। महाराजा दूरदर्शी थे तथा यह समझ गये थे कि आगे क्या होने वाला है? उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी राजकुमार भवानीसिंह जिसे वे बबल्स कहते थे को अपने एक पत्र में लिखा है कि ''मुझे डर है कि यदि राजपूताना का कोई राजा त्याग और बलिदान करने के लिये नेतृत्व करने आगे नहीं आया तो प्रदेश का भविष्य अंधकार में है। इस पत्र में उन्होंने उदयपुर, जोधपुर और बीकानेर के राजाओं की कमजोरियों पर भी प्रकाश डाला।[283] पर महाराजा स्वयं आगे आने से झिझके। उन्हें जयपुर का शासन छोड़ने तथा अपनी प्रजा के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी त्याग देने से घृणा थी।[284]

अंतिम रियासत धौलपुर का विलय

धौलपुर के महाराजराणा उदयभानसिंह स्वयं को राजपूताना की रियासतों का सिरमौर समझते थें।[285] प्रारम्भ से ही महाराजराणा भारत संघ में न केवल प्रविष्ठ होने

के विरूद्ध थे अपितु उन्होंने नवाब भोपाल के साथ मिलकर राजपूताना की अन्य रियासतों को भी भारत संघ में प्रविष्ठ होने से रोका।[286] 20 जुलाई, 1947 को धौलपुर के महाराजराणा उदयभान ने वायसराय को सूचित किया कि परमोच्चता की समाप्ति पर वे समान हित के मुद्दो पर दोनों उपनिवेशों (भारत तथा पाकिस्तान) से यथास्थिति समझौता कर सकते हैं किन्तु वे प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते, जिसके द्वारा वे भारत उपनिवेश के आंतरिक हिस्से बन जायेंगे। उन्होंने मांग की कि इन विचारों वाले शासकों से विचार विमर्श करने के लिये अलग से समझौता वार्ता समिति गठित की जानी चाहिये। महाराजराणा ने यह भी आरोप लगाया कि रियासती विभाग राजाओं को इन गंभीर मुद्दों पर विचार विमर्श करने के लिये पर्याप्त समय नहीं दे रहा है।[287]

वायसराय ने वह पत्र रियासती विभाग को भिजवा दिया जार्ज एबेल ने मेनन को भेजे पत्र में अनुरोध किया कि महाराजराणा को जो जवाब भेजा जाये उसे भेजने से पूर्व उसके संबंध में ग्रिफ्टन से चर्चा अवश्य की जाये।

राणा धौलपुर ने 24 जुलाई, 1947 को इसी आशय का एक पत्र वायसराय के राजनीतिक सलाहकार कोनार्ड कोरफील्ड को भी लिखा तथा मांग की कि उन राज्यों के लिये अलग से समझौता समिति गठित की जाये जो संविधान सभा में भाग नहीं ले रहें हैं तथा जो दूसरे राजाओं से अलग विचार रखते हैं। महाराजराणा उदयभान ने इस कार्य में कोरफील्ड से सहायता करने का भी आग्रह किया। उन्होंने इसी आशय के पत्र नरेन्द्र मण्डल के चांसलर भोपाल नवाब हमीदुल्ला खां को तथा नरेन्द्र मण्डल के वाइस चांसलर पटियाला के महाराजा भूपिन्द्रसिंह जो कि महाराजराणा उदयभान के भांजे लगते थे, को भी भिजवाये।

लार्ड माउंटबेटन ने राणा उदयभान को पत्र लिखा जिसमें कहा गया था कि ''आपके पास कोई भी निर्णय लेने के लिये 14 अगस्त तक का समय है क्योंकि उस तिथि को रात्रि के 12 बजे बाद मेरे पास वायसराय के अधिकार नहीं रहेंगें। वायसराय ने महाराजराणा को यह भी बताया कि सम्मिलन पत्र पर हस्ताक्षर कर देने से वे केवल

तीन विषयों में ही भारत सरकार के साथ समझौता करेंगें। शेष मुद्दों पर वे स्वतंत्र रहेंगे कि वे भारत में सम्मिलित हों अथवा न हो अथवा स्वतंत्र रहे।[288]

उदयभान ने 20 जुलाई, 1947 के अपने पत्र में यह भी पूँछा था कि यदि मैं सम्मिलन पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करता हूँ तो भारत सरकार मेरा क्या करेगी? इस पर वायसराय ने अपने जवाब में कहा ''भारत सरकार वास्तव में आपके साथ कुछ नहीं करेगी किन्तु आप तथा आपकी रियासत सम्पूर्ण भारत के बीच अकेले पड़ जायेंगे।

महाराजराणा अंत तक सम्मिलन पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करने पर अड़े रहे किन्तु जब उन्हें पता चला कि जोधपुर तथा भोपाल के शासकों ने अधिमिलन पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं तो उन्होंने भी 14 अगस्त, 1947 को भारत में विलय को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार 15 अगस्त, 1947 के एक दिन पूर्व तक राजपूताना की समस्त रियासतों ने भारत में अधिमिलन पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। भारत की स्वतंत्रता और भारत संघ के निर्माण के प्रति महाराजराणा धौलपुर की भावना का पता लॉर्ड माउंटबेटन द्वारा 16 अगस्त, 1947 को लंदन स्थित भारत सचिव को भेजे गये प्रतिवेदन से मिलता हैं।

''14 अगस्त, 1947 को राजाओं द्वारा प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करने की अंतिम तिथि थी। उस दिन महाराजराणा धौलपुर मुझसे मिलने के लिये आये और मुझसे कहा कि परिस्थतियों के सम्मुख विवश होकर उन्होंने निर्णय किया है कि वे प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर देंगे। जब उन्होंने मुझसे विदा ली तो उनकी आंखो में आंसू भर आये। उन्होंने कहा–मेरे पूर्वजों और आपके सम्राट के पूर्वजों के जो संम्बन्ध सन् 1765 ई0 से लगातार चले आ रहे थे। अब समाप्त हो रहे हैं, मैंने उन्हें सांत्वना देने का प्रयास किया पर वे शोकाकुल ही रहे। उन्होंने कहा कि वे आज रात्रि को ही दिल्ली छोड़कर धौलपुर चलें जायेंगे।[289]

इस प्रकार 14 अगस्त, 1947 तक राजपूताना की समस्त छोटी–बड़ी रियासतें प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर कर भारत संघ में प्रवेश कर चुकी थी। इनमें बूंदी महाराव बहादुर सिंह, कोटा महाराव भीमसिंह, बांसवाड़ा के महाराज चन्द्रवीर सिंह, झालावाड़

महाराजा हरिशचन्द्र, किशनगढ़ महाराजा सुमेरसिंह, शाहपुरा के राजाधिराज सुदर्शन देव, भरतपुर महाराजा बृजेन्द्र सिंह, अलवर महाराजा, तेजसिंह इत्यादि सम्मिलित हैं। वास्तव में राजपूताना की रियासतों का कोई भी शासक सच्चे मन से प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करके भारत संघ में प्रविष्ठ नहीं होना चाहता था किन्तु बदली हुई परिस्थितियों में लगभग सभी रियासतों को भारतीय संघ में अपना विलय स्वीकृत करना पड़ा।

संदर्भ सूची

01. मोहनलाल गुप्ता– ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएँ पृ.383
02. उपरोक्त पृ.183
03. कॉलिंस एवं लैपियरे– फ्रिडम ऐट मिडनाइट पृ. 116
04. आर.पी.व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, पृ. 285
05. मोहनलाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ.162
06. a एचिनसन कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, एंगेजमेन्ट एण्ड सनद, वी. के वशिष्ठ– राजपूताना ऐजेन्सी (1832–58)

    b आर.पी.व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास पृ. 1–40
07. के.एम. पणिक्कर – एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ द रिलेशन ऑफ इन्डियन स्टेट्स विथ द गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया लंदन पृ.103
08. उर्मिला वालिया– चेंजिंग ब्रिटिश एटीट्यूड्स टूवर्ड्स द इण्डियन स्टेट्स, पृ.28
09. ए.सी. बैनर्जी (सं.)– इण्डियन कॉस्टीटूयूशनल डोक्यूमेंन्ट 1757–1947 Vol 2 कलकत्ता1961
10. सी.एन.वकील – फाईनेनशियल डवलपमेन्ट इन मॉडर्न इण्डिया, पृ.199, मुम्बई 1939
11. सी.हीबर्ट – द ग्रेट म्यूटनी, इण्डिया, 1857 न्यूयोर्क 1978 पृ. 90
12. मोहनलाल गुप्ता – राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ. 163
13. ए.सी.बैनर्जी – राजपूत स्टेट्स एण्ड द ईस्ट इण्डिया कम्पनी, पृ0 89 कलकत्ता 1951
14. सर टॉमस मुनरो द्वारा 11 अगस्त 1857 को गवर्नर जनरल लार्ड हैस्टिंग्स को लिखा पत्र
15. गुप्ता, व्यास, ओझा,– मध्योत्तर आधुनिक राजस्थान का इतिहास, उदयपुर 2001 पृ.155
16. के.एल. कमल (सं.) – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन –आन्दोलन पृ.168
17. फॉरेन पॉलिटिकल (फो0पो0) कन्सलटेशन 26 जून, 1857 नं. 113–116 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
18. सीमा गर्ग, सज्जन पोसवाल– 1857 का स्वतंन्त्रता संघर्ष, पृ.48
19. आई.टी.प्रिचार्ड़– द म्यूटनी इन राजपूताना पृ.39–40
20. रघुवीर सिंह – मालवा के महाविद्रोह कालीन अभिलेख, श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ 1986 पृ.354
21. a सूर्यमल मीसण द्वारा पीपल्या के ठाकुर फूलसिंह को लिखा पत्र पौष शुक्ल 1, संवत् 1914 b आर.एन. खड़गावत – राजस्थान रोल इन द स्ट्रगल ऑफ 1857 पृ.69
22. a ब्रिटिश पेरामॉउंटसी एण्ड इण्डियन रिनेंसा, विद्या भवन सीरीज भाग प्रथम पृ.743–45

    b रघुवीर सिंह – इण्डियन स्टेट्स पृ.31–34

23. मोहनलाल गुप्ता– ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ. 181
24. a आर.पी.व्यास– राजस्थान का वृहत् इतिहास पृ. 126
b जगन्नाथ प्रसाद मिश्र– आधुनिक भारत का इतिहास पृ. 556
25. आर.एल.हाडा – हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स पृ.37
26. द ब्रिटिश क्रॉउन एण्ड द इण्डियन स्टेट्स, डायरक्टरेट ऑफ द चेम्बर, पृ. 56–57
27. उपरोक्त
28. आर.सी. मजूमदार (सं) – भारतीय विद्याभवन सीरीज ब्रिटिश पेरामाउंटसी एण्ड इण्डियन रिनेसंस भाग I पृ. 967
29. गौरी शंकर हीराचंद ओझा– उदयपुर राज्य का इतिहास भाग III पृ. 801
30. आर.सी.मजूमदार (सं) – भारतीय विद्याभवन सीरीज ब्रिटिश पेरामाउंटसी एण्ड इण्डियन रिनेंसस, भाग I पृ.960
31. मोहनलाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएँ पृ.183
32. उपरोक्त पृ. 190
33. रघुवीरसिंह – इंडियन स्टेट संघ पृ.44
34. एफ. के. कपिल – राजपूताना स्टेट्स (1817–1950) पृ.121
35. सी.एच. फिलिप्स– द इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान (1858–1947) सलेक्टेड डोक्यूमेन्टस पृ.424
36. a उर्मिला फड़नीस – टू वर्डस द इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स (1919–1947) पृ. 10
b रघुवीर सिंह – पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. 304
37. आर.पी.व्यास – आधुनिक राजस्थान का वृहत्त इतिहास, पृ. 169
38. उपरोक्त पृ. 78
39. a 28 मई 1906 को वायसराय लार्ड मिण्टो का भारत सचिव मार्लें को लिखा पत्र भारत कार्यालय लंदन।
b आर.सी. मजूमदार– स्ट्रगल फॉर फ्रिडम पृ.967
40. भारत सचिव लार्ड मार्ले का पत्र, भारत सरकार को लंदन सं न0 193 नवम्बर, 27 1908
41. महाराजा गंगासिंह सेन्टेनरी वॉल्यूम उद्धत ''रोमनोट'' परिशिष्ट – 2 पैरा 53
42. a रघुवीर सिंह – इण्डियन स्टेट्स पृ.68–71
b उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ.21–22
43. C महराजा गंगासिंह सेन्टेनरी वॉल्यूम पृ. 11– 12
b आर.पी. व्यास – नरेन्द्र मण्डल की स्थापना सम्बन्धी एक लेख
c उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 25–27
d डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 13

44. a जरमनीदास – महाराजा पृ. 323
b वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट पृ. 16
45. डी.आर. मनकेकर– एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ.13
46. a उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स 1919–1947 पृ.27– 28
b करणीसिंह–रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेट्रल पॉवर (1465–1949)पृ277
47. जरमनी दास – महाराजा पृ.324
48. आर.जे. मूर– द क्राइसिस ऑफ इण्डियन यूनिटी– पृ. 28
49. मोहनलाल गुप्ता–ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं महत्वपूर्ण घटनांए पृ. 272–73
50. उपरोक्त पृ. 273
51. a उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टीगेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स (1919–1947) पृ.34–35
b आर.पी. व्यास का नरेन्द्र मण्डल पर लेख पृ.13
52. लार्ड रीडिंग का निजाम को पत्र, दिनांक 27 मार्च 1926
53. रघुवीर सिंह – इण्डियन स्टेट्स, पृ.80–81
54. रघुवीर सिंह – पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ.328
55. अन्जू सुथार – 20 वीं सदी में राष्ट्रीय राजनीति के निर्माता पृ.60
56. रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन द रिलेशनशिप बिटविन द पेरामाउंट पॉवर एण्ड द स्टेटस (बटलर कमेटी) पार्लियामेन्ट्री पेपर्स, ग्रेट ब्रिटेन रिपोर्ट ऑफ कमिश्नर्स 1928–29 खण्ड 6 फ्रॉम डब्लू डब्ल . प्रिंसली स्टेट . कॉम पृ. 288
57. a आर.जे.मूर – द मेंकिग ऑफ इण्डियाज पेपर फेडरेशन इन फिलिप एण्ड वेनराइट, द पार्टिशन ऑफ इण्डिया पृ. 57
b रघुवीर सिंह– इण्डियन स्टेट्स पृ. 86–96
58. करणी सिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सैन्ट्रल पावर पृ. 285
59. मोहनलाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन में राजपूताना की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाऐं पृ.288
60. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 12–13
61. मोहन लाल गुप्ता–ब्रिटिश शासन में राजपूताना की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ. 284
62. आर.एल. शुक्ल (सं.) आधुनिक भारत का इतिहास पृ. 793– 94
63. उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टीगेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 49–52
64. करणीसिंह – रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पॉवर – पृ.285
65. मोहनलाल गुप्ता– ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ.287
66. भारतीय विद्या भवन सीरीज, भाग II पृ. 466–76

67. गोलमेज सम्मेलन में महाराजा गंगासिंह का भाषण दिनांक 27 नवम्बर 1930, गोलमेज सम्मेलन की कार्यवाहियां, 1930–31 पृ.28–30
68. एच.वी. हडसन – द ग्रेट डिवाइड, पृ. 51
69. एम.एस.जैन. – आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ. 344
70. मोहनलाल गुप्ता– ब्रिटिश भारत में राजपूताना की रोचक एवं महत्वपूर्ण घटनाएं पृ.290–91
71. उपरोक्त
72. उपरोक्त
73. सैनी, मानवी, तायल – आजादी का आंदोलन और अलवर पृ. 60
74. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 10 फरवरी 1930
75. मोहन लाल गुप्ता – ब्रिटिश भारत में राजपूताना की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ.292
76. उपरोक्त
77. करणीसिंह – रिलेशन्स आफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पॉवर– पृ. 292–93
78. उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 57–70
79. एस.आर.एशटन– ब्रिटिश पॉलिसी टूवर्ड्स द इण्डियन स्टेट्स 1905–1939 पृ.189
80. एच.बी.हडसन– द ग्रेट डिवाइड पृ. 51
81. गोलमेज सम्मेलन के पूर्णाधिवेशन का भाषण दिनांक 27 नवम्बर 1930 गोलमेज सम्मेलन की कार्यवाही 1930 – 31 पृ. 28–30
82. a गोलमेज सम्मेलन में महाराजा का भाषण दिनांक 27, नवम्बर 1930, सम्मेलन की कार्यवाहियां 1930–31 पृ. 31–32
b जरमनीदास– महाराजा पृ. 325–327
83. एस. के.बोस – आधुनिक भारत के निर्माता सर तेगबाहादुर सप्रु पृ. 92–93
84. एच. बी. हडसन – द ग्रेट डिवाइड पृ. 59
85. कोरफील्ड सम थोट्स ऑन ब्रिटिश पॉलिसी एण्ड द इण्डियन स्टेट्स 1935–47, इन फिलिप्स एण्ड वेनराइट, द पार्टीशन ऑफ इण्डिया, पृ. 528
86. जरमनीदास– महाराजा, पृ. 332
87. आर.जे. मूर – द मेंकिग ऑफ इण्डियाज पेपर फेडरेशन इन फिलिप्स एण्ड वेनराइट, द पार्टिशन ऑफ इण्डिया, पृ. 231–232
88. आर.पी. व्यास – आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास पृ. 190
89. उपरोक्त
90. महाराजा गंगासिंह का टेलीग्राम ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्से मैकडोनल्ड के नाम दिनांक 21 नवम्बर 1931
91. एस. के बोस – आधुनिक भारत के निर्माता – सर तेजबहादुर सप्रु पृ. 92–93

92. एडवर्ड थाम्सन – द मेंकिग ऑफ द इण्डियाज प्रिंस पृ. 200
93. चेतना मुद्गल – बीकानेर में जन आंदोलन पृ. 36
94. दाऊदयाल आचार्य – भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ. 86– 87
95. जरमनीदास – महाराजा पृ. 331
96. आर.जे. मूर– द मेकिंग ऑफ इण्डियाज पेपर फेडरेशन इन फिलिप्स एण्ड वेनराइट, द पार्टीशन ऑफ इण्डिया पृ. 231–32
97. जरमनीदास – महाराजा पृ. 336
98. उपरोक्त
99. उर्मिला फड़नीस – टूवर्ड्स द इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेटस पृ. 101– 02
100. A करणीसिंह – रिलेशन विथ द हाऊस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पॉवर, पृ. 306 – 7
B महाराजा गंगासिंह का वायसराय लार्ड लिनलिथगो को पत्र दिनांक 27 जनवरी 1939
101. मोहनलाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन ने राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ. 305
102. जरमनीदास – महाराजा, पृ. 332 –33
103. उपरोक्त
104. माइकल ब्रीचर – नेहरू –ए पॉलिटिकल बायोग्राफी पृ. 203 – 4
105. a कोनार्ड कोरफील्ड– द प्रिंसली इण्डिया आई न्यू
b मोहनलाल गुप्ता–ब्रिटिश भारत में राजपूताना की रोचक एवं महत्वपूर्ण घटनाऐं 335–36
106. चेतना मुद्गल– बीकानेर में जन आंदोलन पृ. 54
107. हरिजन – फरवरी 1940
108. फाइल न0 432(S)33, चेम्बर ऑफ प्रिंसेज का रिकॉर्ड, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
109. उपरोक्त
110. हरिजन में प्यारेलाल का लेख दिनांक 20 अप्रैल 1940
111. आर.पी. व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास पृ. 192
112. मोहनलाल गुप्ता – ब्रिटिश शासन में राजपूताना की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाएं पृ.364
113. उर्मिला फड़नीस– टूवर्ड्स द इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स
114. 12, मार्च 1946 का लार्ड वैवेल का राजाओं के नाम पत्र
115. a वी.पी. मेनन– ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया पृ. 35
b लक्ष्मणसिंह राठौड़ – पॉलिटिकल एण्ड कॉन्सटीट्यूशनल डवलपमेंट इन द प्रिंसली इण्डिया पृ.122
116. लक्ष्मण सिंह राठौड़ – पॉलिटिकल एण्ड कान्सटीट्यूशनल डवलपमेंट इन द प्रिंसली स्टेट पृ.132–133

117. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 22 मई 1946
118. रघुवीर सिंह – पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. 337
119. उपरोक्त पृ. 337– 38
120. एस.एल. सीकरी– भारतीय संविधान का इतिहास पृ. 221–279
121. रघुवीर सिंह – पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ. 341
122. लक्ष्मण सिंह राठौड़ – पॉलिटिकल एण्ड कॉन्सटीट्यूशनल डवलपमेंट इन द प्रिसंली स्टेट्स पृ. 12
123. a जॉनसन केंपबेल– मिशन विद माउंटबेटन पृ.354
b लक्ष्मण सिंह राठौड़–पॉलिटिकल एण्ड कान्सीट्यूशन डवलपमेंट इन द प्रिसंली स्टेट्स पृ.122
124. लियोनार्ड मोसले – लास्ट डेज ऑफ द ब्रिटिश राज पृ. 68
125. स्ट्रगल फॉर फ्रीडम– भारतीय विद्या भवन सीरीज भाग II पृ.721 – 767
126. वी.बी कुलकर्णी– ब्रिटिश स्टेटसमैन इन इण्डिया पृ.483
127. जरमनीदास – महाराजा पृ. 337
128. माईकल एडवर्ड्स – द लॉस्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया पृ. 197
129. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ.55
130. नारायण भास्कर खरे– गत बारह वर्षों की मेरी देश सेवा, उत्तरार्ध पृ.51
131. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंशन पृ. 89
132. वी.बी. कुलकर्णी– आधुनिक भारत के निर्माता के0 एम0 मुंशी, पृ. 197
133. उपरोक्त पृ0 158
134. a सप्रू पेपर्स, जी 90, 29 अगस्त 1946
b एस.के.बोस –तेगबहादुर सप्रू पृ. 185
135. वी.पी. मेनन – दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स पृ.88
136. लक्ष्मण सिंह राठौड़ – महाराजा सादुलसिंह ऑफ बीकानेर पृ.500
137. नारायण भास्कर खरे– गत बारह वर्षों की मेरी देश सेवा पृ. 52–53
138. दुर्गादास – इण्डिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर, पृ.241
139. जरमनीदास – महाराजा पृ. 338
140. महाराजा बड़ौदा द्वारा 2 नवम्बर 1947 को गृहमंत्री सरदार पटेल को लिखा पत्र जरमनी दास द्वारा उद्धत पृ.337
141. जरमनीदास – महाराजा पृ. 337–38
142. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ.56
143. दुर्गादास – सरदार पटेल्स कॉरसपोंडेंस, जिल्द 5 पृ.342
144. के.एम. मुंशी– पिलग्रिमेज टू फ्रिडम पृ. 161–162

145. बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 95

146. नारायण भास्कर खरे– गत बारह वर्षों की मेरी देश सेवा पृ. 53

147. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 109

148. लियोनार्ड मोसले – लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ0 132

149. उपरोक्त पृ. 136

150. माईकल एडवडर्स – द लास्ट इयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया पृ. 197

151. लैरी कालिंस व दॉमिनिक लैपियर – फ्रिडम एट मिडनाईट पृ.

152. लियोनार्ड मोसेल – लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 138

153. दुर्गादास– इण्डिया फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर पृ. 241

154. a भारतीय रियासतों के विषय में श्वेतपत्र पृ. 33

b उर्मिला फड़नीस– टूवर्ड्स द इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स (1919–1947) पृ0 190

155. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ0138

156. जरमनीदास – महाराजा पृ. 386

157. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ0 138

158. एलन जॉनसन कैम्पबेल – मिशन विद माउंटबेटन पृ0 77

159. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ.138

160. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स, पृ0 94

161. सरदार पटेल का वक्तव्य–बॉम्बे क्रानिकल 5 जुलाई 1947,महाराष्ट्र राज्य अभिलेखागार मुंबई

162. माईकल एडवर्ड्स – द लास्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया पृ0 203

163. रीमा हूजा – प्रिंस, पेट्रियोट, पार्लियामेटेरियन डॉ0 करणीसिंह पृ.96

164. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 54

165. वी.पी. मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेटस पृ.106

166. उपरोक्त पृ.110

167. माईकल एडवर्ड्स– द लास्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, पृ.204

168. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 104

169. जरमनीदास – महाराजा पृ0 282

170. एच.वी.हडसन– द ग्रेट डिवाइड, – ब्रिटेन–इंडिया–पाकिस्तान पृ.373

171. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिशराज पृ. 130

172. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ इण्ड़ियन स्टेट, पृ. 104

173. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 124

174. जानसन कैम्पबेल – मिशन विद माउंटबेटन पृ0 333

175. कोनार्ड कोरफील्ड – प्रिंसली इण्डिया आई न्यू पृ. 127
176. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टे्ट पृ. 104–5
177. बीकानेर बुलटेन, जिल्द 5 सं. 1 अगस्त 1947 पृ0 33
178. ओंकार सिंह – एक महाराजा की अंतर्कथा, पृं. 55–56
179. जरमनीदास – महाराजा, पृ. 393
180. सी.एस. वेंकटाचार (आई.सी.एस.) – द हिन्दु ,11 जुलाई. 1999
181. जरमनीदास – महाराजा, पृ.394
182. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में संग्रहित सामग्री
183. रीमा हूजा – प्रिंस पेट्रियोट, पार्लियामेंटेरियन पृ. 105
184. जरमनीदास – महाराजा, पृ. 390
185. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 55
186. लैरी कॉलिंस एवं डॉमिनिक लैपियर– फ्रिडम एट मिडनाइट पृ. 171
187. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 144
188. माईकल एडवर्ड्स –द लास्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, पृ. 205
189. मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 145
190. उपरोक्त
191. वायसराय द्वारा भारत सचिव को भेजी गयी रिपोर्ट मनसेर्ज, वही वॉल्यूम XII
192. दुर्गादास – सरदास पटेल्स कॉरसपोन्डेंस, जिल्द 5 पृ. 242
193. मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 142–43
194. माईकल ब्रीचर – नेहरू पॉलिटिकल बायोग्राफी पृ. 62
195. a वी.पी.मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट पृ. 76
b करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पॉवर पृ. 307
196. उपरोक्त, पृ. 312–313
197. के.एम. पणिक्कर का सरदार पटेल को 5 जुलाई 1947 का पत्र, महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की पत्रावली सं. 2696 बी भाग–2 (भाखरा बांध परियोजना) लालगढ़ महल, बीकानेर
198. लाला कंवरसेन – एक अभियंता के संस्मरण पृ.121
199. चेतना मुद्गल – बीकानेर में जन आंदोलन पृ.176
200. एम.एस.जैन– आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ. 382
201. के.एम. मुंशी– पिलग्रीमेज टू फ्रीडम पृ. 484 – 85

202. महाराजा सादुलसिंह का 6 अगस्त 1947 को मेनन को पत्र फाइल क्रमांक 8 (105) पी.आर. शीर्षक बीकानेर गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया पॉलिटिकल एण्ड मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स, स्टेट मिनिस्ट्री डिपार्टमेंट फाईल, 1947 राष्ट्रीय अभिलेखागार।
203. बीकानेर बुलटेन वर्ष, 5 अंक 1 अगस्त 1947 पृ.10–16
204. वही फाइल रियासती विभाग के अधिकारी सी.सी. देसाई का 22 अगस्त 1947 को सादुलसिंह को पत्र
205. लियोनार्ड मोसले– द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 144
206. करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पॉवर पृ. 379–380
207. सरदार पटेल का सादुलसिंह को 5 सितम्बर 1947 का पत्र, बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की पत्रावली सं. 1252 IX, सन् 1947 लालगढ़ महल बीकानेर।
208. करणीसिंह– द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पॉवर पृ. 393 –94
209. ये शब्द बीकानेर में उसी मूर्ति के नीचे उत्कीर्ण कर दिये गये है।
210. दाऊदयाल आचार्य– भारत में स्वंतत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ. 301– 302
211. उपरोक्त
212. पत्रावली संख्या 9 वर्ष 1947, एस.एम,एम, जी एस, टी, लालगढ़ पैलेस बीकानेर
213. द स्टेट्समैन 28 नवम्बर 1947 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
214. सत्यनारायण पारीक– भारत में स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान, भूमिका
215. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की पत्रावली सं, 412/GNXXV, 14 नवम्बर 1948 को सादुलसिंह की वी.पी. मेनन से मींटिग के नोट्स
216. रामप्रसाद व्यास– राजस्थान के लोकनायक जयनारायण व्यास पृ. 116
217. सक्रेटरी टू द रेजीडेंट फॉर राजपूताना आर.के.एम. बैली द्वारा 5 अगस्त 1947 को वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पॉलेटिकल ऐजेन्ट को पत्र, फाइल क्रमांक – 76पी/47 डेथ ऑफ महाराजा उम्मेदसिंह ऑफ जोधपुर एण्ड सक्सेशन ऑफ हनुवंतसिंह राजपूताना स्टेट एजेंसी, पोलिटिकल ब्रांच भाग– प्रथम, 1997
218. वायसराय द्वारा भारत सचिव को भेजी गयी रिपोर्ट मनसेर्ज, वही वॉल्यूम XII
219. ओंकारसिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 75
220. माईकल एडवर्ड्स – द लॉस्ट ईयर्स, ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, पृ. 206
221. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 145–146
222. वी.पी. मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्ट्टेस पृ. 112
223. ओंकार सिंह – एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 73
224. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 111
225. ओंकार सिंह – एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ.13

226. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 111

227. ओंकार सिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 13

228. उपरोक्त

229. महाराजा उम्मेदसिंह तथा हनुवंतसिंह के निजी स्टाफ के अधिकारी चंद्रसिंह लोड्सर से एफ.के. कपिल की 1977 में हुई वार्ता के अनुसार

230. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 112

231. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 146–147

232. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 112

233. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 146–147

234. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 112

235. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 146–147

236. वायसराय द्वारा 8 अगस्त 1947 को भारत सचिव को भेजा गया प्रतिवेदन, मनसेर्ज,Vol XII

237. उपरोक्त

238. वायसराय द्वारा 11 अगस्त 1947 को भारत सचिव को भेजा गया प्रतिवेदन।मनसेर्ज vol xII

239. ओंकार सिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 79

240- वायसराय द्वारा 16 अगस्त 1947 को भारत सचिव को भेजा गया प्रतिवेदन, मेनसेर्ज,बही VOL xII

241. ओंकार सिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 78

242. उपरोक्त

243. रियासती, दिनांक 20 अगस्त 1947 पृ. 1

244. उपरोक्त

245- वायसराय द्वारा राज्य सचिव को भेजा गया प्रतिवेदन, दिनांक 16अगस्त1947 मेनसेर्ज, xII

246. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्ड़ियन स्टेट्स पृ. 113

247. लियोनार्ड मोसले – द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 147

248. लैरी कॉलिंस एवं डॉमिनिक लैपियरे – फ्रिडम एट मिडनाइट पृ. 172–73

249. ओंकार सिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 89

250. फाइल संख्या 8 (47) पी.आर. स्टेट मिनिस्ट्री डिपार्टमेंट फाइल 1947 भारत सरकार राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली।

251. उपरोक्त

252. रियासती, 20 अगस्त 1947 पृ. 9

253. रियासती, 20 अगस्त 1947 पृ. 3–4

254. उपरोक्त

255. (अ)मानसिंह पुस्तक प्रकाश जोधपुर के पूर्व निदेशक महेन्द्रसिंह नगर ने अपनी पुस्तक राजस्थान के पाग–पागड़ियां पृ. 16 पर महाराजा सज्जनसिंह, मेहरानगढ़ ट्रस्ट जोधपुर से साक्षात्कार के हवाले से लिखा है कि हनुवंतसिंह ने भारतीय गणतंत्र में जिस दिन जोधपुर का विलय स्वीकार किया, काले रंग का साफा पहना था।

(ब) ओंकार सिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा के लेखक के अनुसार अक्षयसिंह रत्नू की एक कविता में उल्लेख किया गया है कि महाराजा उस दिन काली अचकन पहन कर परेड की सलामी लेने गये।

(स) स्वतंत्रता सेनानी, जोरावरमल बोड़ा के अनुसार महाराजा तथा उनके आदमियों ने उस दिन काली पट्टियां बांध कर अपना विरोध दर्ज करवाया। राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर में संरक्षित ऑडियो टेप के आधार पर।

256. रियासती, दिनांक 20,अगस्त 1947 पृ. 2

257. ओंकार सिंह– एक महाराजा की अन्तर्कथा पृ. 81 तथा 130

258. उपरोक्त पृ. 102

259. दुर्गादास (सं) – सरदार पटेल कॉरसपोण्डेन्स जिल्द 5 पृ. 412

260. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 91 तथा 247

261. के.एम. मुंशी – पिलग्रीमेज टू फ्रिडम पृ. 482–84

262. बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 120–21

263. मेवाड़ गजट – असाधारण अंक, 23 मई. 1947

264. के.एम. मुंशी – पिलग्रीमेज टू फ्रिडम पृ. 161–62

265. डी.आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 56

266. के.एम. मुंशी – पिलग्रीमेज टू फ्रिडम पृ. 163

267. दुर्गादास – सरदार पटेल कॉरसपोन्डेन्स पृ. 242

268. ड़ी आर. मनकेकर – एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ. 57

269. महाराणा द्वारा हस्ताक्षरित प्रविष्ठ संलेख की प्रति फाइल क्रमांक 8 (101) पी0आर0 शीर्षक मेवाड़/उदयपुर, भारत सरकार स्टेट मिनस्ट्री डिपार्टमेंट फाईल 1947 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।

270. जयपुर गजेटियर पृ. 13

271. गायत्री देवी– ए प्रिंसेज रिमेम्बर्सः द मेमोरीज ऑफ दी महारानी, जयपुर पृ224

272. कृष्णामाचारी द्वारा 10 अगस्त 1947 को सी.सी. देसाई को पत्र। भारत सरकार स्टेट मिनिस्ट्री डिपार्टमेंट फाइल 1947, फाइल क्रमांक 8(16) पी.आर. शीर्षक जयपुर। राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।

273. वही फाइल वी.पी. मेनन द्वारा 11 अगस्त को भारत सचिव पैट्रिक को भेजा गया तार।

274. वही फाइल भारत सचिव द्वारा 12 अगस्त 1947 को रियासती विभाग को भेजा गया तार

275. वही फाइल, भारत सचिव पैट्रिक द्वारा 12 अगस्त 1947 को वी.पी. मेनन को भेजा गया तार

276. वही फाइल, भारत सचिव पैट्रिक द्वारा 12 अगस्त 1947 को माउंटबेटन को भेजा गया तार

277. गायत्री देवी – ए प्रिंसेज रिमेम्बर्सः द मोमोरीज ऑफ दी महारानी जयपुर पृ. 225

278. पैट्रिक द्वारा – 14 अगस्त 1947 को मेनन को तार, फाइल क्रमांक 8 (16) पी.आर. जयपुर भारत सरकार, स्टेट मिनिस्ट्री डिपार्टमेंट फाई.ल 1947, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।

279. वही फाइल कृष्णामाचारी द्वारा 14 अगस्त 1947 को मेनन को पत्र सं 330

280. वही फाइल कृष्णामाचारी द्वारा 21 अगस्त 1947 को मेनन को पत्र

281. उपरोक्त

282. गायत्री देवी – ए प्रिंसेज रिमेम्बर्सः द मेमोरीज ऑफ दी महारानी पृ. 221

283. राजकीय अभिलेखागार जयपुर में संग्रहीत महाराजा मानसिंह का अपने पुत्र भवानींसिह को पत्र

284. गायत्री देवी – ए प्रिंसेज रिमेमबर्सः द मेमोरीज ऑफ दी महारानी पृ. 237

285. जरमनी दास – महाराजा पृ. 144–45

286. वायसराय माउंटबेटन द्वारा 8 अगस्त 1947 के भारत सचिव को भेजा गया प्रतिवेदन मनसेर्ज वही वाल्यूम xII

287. महाराजराणा धौलपुर द्वारा वायसराय को लिखा पत्र दिनांक 20 जुलाई 1947 रियासती विभाग डिपाटमेंट फाइल 1947, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली

288. वायसराय द्वारा राजराणा धौलपुर को 29 जुलाई 1947 को लिखा गया पत्र। वही फाइल

289. उपरोक्त

अध्याय : तृतीय

विलीनीकरण में जनमानस की भूमिका

"................ लेकिन जब उनकी (रियासती राजा–महाराजा) ज्यादतियाँ ज्यादा हो गई और यह महसूस किया जाने लगा कि वे किसी भी प्रकार से उत्तरदायी शासन को ठीक प्रकार से नहीं चलने देंगे तो उनका जुआ भी कन्धे से उतार फेंकने में जनता ने ढील नहीं दी।"

–राम पाण्डे

किसी भी देश के जनमानस में राजनैतिक चेतना का विकास किसी आकस्मिक घटना का परिणाम न होकर विगत शताब्दी अथवा अर्द्धशताब्दी में घटित विभिन्न घटनाओं की सम्मिलित प्रतिक्रिया होती है।[1] राजनैतिक चेतना के परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन के लिये सबसे अधिक गहरी भारतीय प्रतिक्रिया भारत में एक प्रभावी और राष्ट्रवादी जन आंदोलन के विकास में दिखाई देती है। एक संगठित आंदोलन के रूप में भारतीय राष्ट्रवाद का उदय 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जा सकता है। यद्यपि इस राष्ट्रवाद की जड़े 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए कुछ आंदोलनों और कुछ व्यक्तियों के प्रयासों में तलाशी जा सकती है और अधिक निश्चित्ता के साथ यदि कहा जाये तो भारतीय राष्ट्रवाद का प्रारंभ और भी पहले का माना जा सकता है।[2] और इस तथ्य की पुष्टि के प्रमाण भारतीय इतिहास में देखे जा सकते हैं कि वे परिस्थितियां और दृष्टिकोण भारत में पहले से ही मौजूद थे जो आधुनिक राष्ट्रवाद के जटिल स्वरूप के निर्धारण में सहायक सिद्ध हुए।

भारत में राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक स्वरूप प्रादेशिक स्तरों पर भी उभरता दिखाई देता है, क्योंकि भारत के अनेक भागों में प्राचीन गौरव और शक्ति की ऐसी सशक्त परम्पराऐं देखने को मिलती हैं जो सम्मिलित धाराओं के रूप में राष्ट्रवादी आंदोलन में भी परिलक्षित हुई।[3] इस कड़ी में वीर प्रसूता भूमि कहलाने वाले राजपूताना तथा इसकी

विभिन्न रियासतों में राजनैतिक चेतना एवं जागृति के स्वरूप एवं प्रभाव का विश्लेषण करने पर कई महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आते हैं।

राजपूताना में देशी रियासतों की राजनीतिक स्थिति

साइमन कमीशन ने भारतीय रियासतों के विषय में टिप्पणी करते हुए कहा था कि ''वे ब्रिटिश क्षेत्र नहीं हैं तथा उनकी प्रजा ब्रिटिश प्रजा नहीं है।''[4] भारत में स्थित 562 देशी राज्यों में भारत का 2/5 क्षेत्र और 25 प्रतिशत जनसंख्या सम्मिलित थी।[5] देशी राज्यों का क्षेत्र ब्रिटिश भारत के प्रांतों के क्षेत्रों में घुला मिला था। समस्त राज्यों का संयुक्त क्षेत्र 7 लाख 20 हजार वर्ग मील था और उनकी आबादी 9 करोड़ 30 लाख थी। आबादी कहीं अधिक और कहीं कम थी। 2/3 या 6 करोड़ 20 लाख आबादी केवल 20 राज्यों में थी। शेष 3 करोड़ 10 लाख आबादी 542 राज्यों में थी।[6] इन सभी देशी रियासतों में राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी और इन पर विभिन्न महाराजाओं, नवाबों, राजाओं तथा जागीरदार और जमींदारों का प्रत्यक्ष शासन था। कुछ रियासतें इतनी बड़ी थी जितने फ्रांस और इंग्लैण्ड जैसे देश तथा कुछ इतनी छोटी थी कि उनको नाखूनी राज्य अथवा बौनी रियासतें कहा जा सकता है जिनका क्षेत्रफल एक वर्गमील से भी कम था।[7]

देशी रियासतें समस्त भारत में बिखरी हुई थी। इनका सबसे बड़ा भू–भाग राजपूताना के अन्तर्गत आता था किन्तु ये भी छोटी बड़ी रियासतों में विभक्त था।[8] राजपूताना में 19 राज्यों के शासकों को तोपों की सलामी लेने का अधिकार था। इनमें उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ एवं शाहपुरा गुहिल शासकों के अधीन थे। बूंदी, कोटा एवं सिरोही पर हाड़ा चौहानों का शासन था। जयपुर एवं अलवर पर कच्छवाहा राजाओं का शासन था। जोधपुर, बीकानेर एवं किशनगढ़ पर राठौड़ों का शासन था। भरतपुर एवं धौलपुर पर जाटों का शासन था। झालावाड़ झालों के अधीन था। टोंक पर पिंडारियों का शासन था। दांता, कुशलगढ़, नीमराणा तथा लावा को गैर सलामी रियासत कहा जाता था। इनके अतिरिक्त केन्द्र शासित प्रदेश भी राजपूताना के अंतर्गत आता था।

जैसा की पूर्व में बताया जा चुका है कि **इन राज्यों का स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व था किन्तु यह अस्तित्व नियंत्रण युक्त था। शासन व्यवस्था वंशानुगत थी। शासक अपने राज्य की जनता के प्रति नहीं बल्कि अंग्रेज सरकार के प्रति उत्तरदायी थे।**[9]

रियासती शासकों का आन्तरिक प्रशासन

बीसवीं सदी का रियासती राजस्थान अतीत की वैभवशाली ईमारतों के बचे–खुचे अवशेषों के समान था।[10] जहाँ गरीब जनता सामन्तशाही के बोझ तले दबी हुई थी। यहाँ न तो किसी प्रकार की वास्तविक प्रतिनिधियात्मक संस्थाऐं विद्यमान थी न ही मूल अधिकार और न ही कानून व्यवस्था का कोई नामो निशान था।[11]

देशी रियासतें, निरंकुश, स्वेच्छाचारी ब्रिटिश साम्राज्य के अनियंत्रित राज्यक्रम की दासता को बनाये रखने के यंत्र के समान कार्य कर रहीं थीं। तथा भारतीय प्रगति के मार्ग में एक बड़ी बाधा के समान थीं।[12] अंग्रेज रेजिडेन्ट रियासतों के वास्तविक शासक और राजाओं के मालिक के समान व्यवहार करते थे।[13] उनके पास विस्तृत अलिखित अधिकार थे।[14] ''देश गुलाम था अंग्रेजों का, देशी नरेश गुलाम था ब्रिटिश साम्राज्य का और नरेश के भाई बंधु गुलाम थे– नरेश के। रियासत में बसने वाला और कड़ी मेहनत से खेती करने वाला असली अन्नदाता किसान और समाज की सेवा करने वाला आम नागरिक गुलाम थे इन तीनों के। [15]

राज्य की समस्त आय पर राजा का पूर्ण अधिकार था। जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा इत्यादि पर नाममात्र खर्च किया जाता था, राज्य की आय का अधिकांश भाग शासक अपने व्यक्तिगत ऐशो आराम पर उड़ाते थे।[16] यदि औसत निकाले तो प्रत्येक भारतीय राजा के पास 11 पदवियां, 5.8 पत्नियां, 12.6 बच्चे, 9.2 हाथी, 2.8 निजी रेल डिब्बे, 3.4 रॉल्स राएस कारें थीं। और प्रत्येक ने 22.9 शेरों का शिकार किया था।राजाओं की आय की कोई सीमा नहीं थी।[17] इंग्लैण्ड के राजा को कुल राजस्व में से प्रत्येक 16,000 में से एक अंश मिलता है, बेल्जियम के शासक को 1,000 में से एक, इटली के शासक को 500 में से एक, डेनमार्क के राजा को 300 में से एक और जापान के सम्राट को 400 में से एक, इसके विपरीत बीकानेर के महाराजा

5 में से एक अंश लेते हैं। समस्त संसार यह जान कर निंदा करेगा कि बहुत से राजा लोग ऐसे हैं जो रियासत के राजस्व का एक तिहाई या आधा भाग अपने निजी खर्च पर व्यय करते हैं।[18] यदि हम देशी रियासतों की आम जनता तथा उनके राजाओं के जीवन स्तर की तुलना करें तो निश्चित रूप से हम पाते हैं कि विश्व का कोई देश ऐसा नहीं है जहां धन और वैभव की पराकाष्ठा और भीषण गरीबी के मध्य इतना बड़ा विरोधाभास हो।[19] रियासती जनता अंग्रेजी दासता तथा रियासती शासकों और उनके जागीरदारों की दोहरी गुलामी के जुए से पीड़ित थी। जो कि आम जनता के उत्पीड़न निर्दयता और शोषण के प्रतीक थे।[20] जागीरदारों की ज्यादतियां राजाओं से भी अधिक अमरियादित थी। वे राजा प्रजा दोनों के अप्रिय बन कर लोकहित के लिये निकम्मे हो गये।[21] ब्रिटिश संरक्षण ने हमारे राजाओं को अंग्रेजों के सामने भेड़ और प्रजा के आगे शेर बना दिया था। अधिकांश को भोग विलास के अतिरिक्त दूसरे किसी शगल में दिलचस्पी नहीं रही।[22] राजाओं ने अपने लिये कुछ निश्चित कर्त्तव्य निर्धारित कर लिये थे। अपने राज्य में महत्वपूर्ण अंग्रेज अफसरों व ब्रिटिश राजपरिवार के लोगों को आमंत्रित करना उनकी आवभगत करके तमगे और उपाधियां अर्जित करना तथा गोरी सरकार से तोपों की सलामी की संख्या में वृद्धि करवाना ही उन दिनों अधिकांश राजाओं के मुख्य कर्त्तव्य हो गये थे।[23] राजा सम्मान और अलंकरण पाने के लिये एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने में तथा अपने आमोद प्रमोद के कार्यों में इतना व्यस्त रहते थे कि उनके पास अपने राज्य के शासन को चलाने तथा अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिये समय नहीं था।[24] हमारे भारतीय जागीरदारों से बढ़कर किसी अधिक संवेदनशील समुदाय की कल्पना करना असंभव है। वे लोग आपस में श्रेष्ठता के प्रश्नों पर सलामियों के विषय में अपनी फौजी ताकत के बारे में एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं।[25]

लार्ड कर्जन रियासती राजाओं को शासन के अयोग्य अज्ञानी तथा अनुशासनहीन छात्र कहते थे।[26] राजा की सत्ता को राज्य के भीतर कोई चुनौती देने वाला नहीं था ऐसे में उनकी बर्बर निरंकुशशाही राज्य व्यवस्था जारी थी। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधियात्मक संस्थाओं का कही नामों निशान तक नहीं था।[27] जन प्रतिनिधियों द्वारा किसी प्रकार के विरोध प्रदर्शन, शासन में सुधार की मांग को शासक के विरुद्ध

षड्यन्त्र की संज्ञा दी जाती थी। .... देशी रियासतों में राजनीतिक गतिविधियां चलाना अत्यधिक कठिन था।[28] अंग्रेज सरकार ने देशी राजाओं को यह समझाने का प्रयास किया कि वे अपने राज्यों में जनता को अच्छा प्रशासन प्रदान करें।[29] किन्तु भारतीय नरेश केवल अच्छे प्रशासन का दिखावा करते रहे वे कभी भी इस दिशा में गंभीर नहीं हुये।[30] लार्ड मेयो ने अजमेर में राजपूताना के शासकों को संबोधित करते हुये कहा था कि।

"If we respect your rights and privileges, you should also respect the rights and privileges of those who are placed beneath your care. If we support you in power we expect in return good government."[31]

इसी प्रकार 1903 ई. में लार्ड कर्जन ने देशी राजाओं को अच्छे प्रशासन की नसीहत देते हुए कहा कि '' राजाओं को अपनी प्रजा का स्वामी होने के साथ साथ अपनी प्रजा का सेवक भी होना चाहिये। राज्य का राजस्व केवल शासक के आमोद प्रमोद के लिये सुरक्षित नहीं है अपितु प्रजा के कल्याण के लिये भी है।''[32]

जवाहर लाल नेहरू ने रियासतों के आंतरिक प्रशासन की स्थिति पर लिखा है कि ....''उत्पीड़न की अनुभूति आती है, वह दम घोटने वाली है, साँस लेना कठिन है और स्थिर या धीमे बहते हुए पानी के नीचे प्रवाहहीनता और दुर्गन्ध है। शरीर और मन दोनों से बलात झुका दिये गये हैं। लोगों का नितांत पिछड़ापन चमचमाते महलों का आडम्बर रियासत की कितनी ज्यादा दौलत एक राजा के ऐशो आराम और निजी आवश्यकताओं पर व्यय की जाती है। और कितनी कम दौलत सेवा की आकृति में जनता को वापस दी जाती है'' ।[33]

देशी राजाओं की निरंकुश प्रवृति पर महात्मा गांधी ने लिखा है– भारत का प्रत्येक राजा अपने राज्य में हिटलर जैसा तानाशाह है। वह अपनी प्रजा को गोलियों से उड़ा दे तो भी कानून उसी का साथ देगा।[34] रियासतों में न्याय की बहुत बुरी व्यवस्था थी। जिस व्यक्ति पर राजा को संदेह होता है उसके खिलाफ विशेष न्यायालय बिठाकर उसे मनमानी सजा दे दी जाती थी।[35]

जागीरदारों के जुल्म

ये राजा से अपने अधिकार प्राप्त करते थे। कई बार इतने शक्तिशाली हो जाते थे कि इन पर स्वयं राजा का भी नियंत्रण नहीं रहता था। जागीरों में आम जनता की हालत दयनीय थी।[36] लगान के अतिरिक्त अनेक प्रकार की लाग–बाग किसानों पर थोपी हुई थी। किसान अपना खून–पसीना एक कर कड़ी मेहनत करते लेकिन जागीरदार अपने मनमाने करों और लाग–बाग से उनकी पूरी कमाई लूट लेता था।[37] और किसान कर्ज के बोझ से दब जाता था। प्रत्येक जागीरदार अपनी जागीर में रहने वाले नाई, धोबी, दर्जी, कहार, कुम्हार, रंगरेज इत्यादि कामगारों से बेगार करवाने का अधिकार रखता था।[38] महात्मा गांधी ने जागीरदारी व्यवस्था को ''राज्य के अन्दर राज्य'' की संज्ञा दी थी। उन्होंने कहा था कि'' उनके यहां प्रशासन चलाने के लिए कोई कानून नहीं है। ब्रिटिश सत्ता के पास भी उन पर सीधा नियन्त्रण स्थापित करने की शक्ति नहीं है। राजा भी जागीरी इलाकों में जागीरदारों की सत्ता में कोई हस्तक्षेप नहीं करते।............भारतीय सामन्तवादी व्यवस्था में जागीरी क्षेत्रों में रहने वाली प्रजा की सबसे अधिक दयनीय स्थिति है।[39] जीवन और मृत्यु के अतिरिक्त अन्य सभी बातों में जागीरदार अपनी प्रजा के वास्तविक स्वामी और शासक थे और वे लोग अपनी प्रजा पर मनमाने अत्याचार करते थे।............ हर सम्भव तरीके से किसानों का शोषण करने का प्रयत्न करते थे।[40]

पहले लूटे शाहजी, दूजे जागीदार।
रहा सहा सो ले गये, इनसे मांगनहार।।[41]

जनमानस में राजनैतिक चेतना का अभाव

20 वीं शताब्दी के पूर्व तक राजपूताना की जनता में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का अभाव था तथा इसी शताब्दी के लगभग दो दशकों तक आम जनता सार्वजनिक जीवन से लगभग दूर ही रही। यह युग राजनैतिक जीवन के क्षेत्र में अत्यन्त निराशा का युग था तथा सामूहिक जन–जीवन तो निर्मित ही नहीं हो पाया था।[42] ब्रिटिश भारत की अपेक्षा रियासतों की स्थिति अधिक दयनीय थी क्योंकि यहां गरीबी उत्पीड़न व शोषण और अधिक था।.............. समाज व धर्म के क्षेत्र में रूढ़ियों, कुप्रथाओं व अन्धविश्वासों की जंजीरों में जनता जकड़ी हुई थी तथा ब्रिटिश भारत के

समान गोखले, तिलक इत्यादि या उन जैसे नेताओं का प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष नेतृत्व भी प्राप्त नहीं था।[43] 20 वीं शताब्दी के पूर्व तक मारवाड़ की जनता को अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता नहीं थी और न जनता को लेखन तथा संगठन के अधिकार ही प्राप्त थे। जागीरदारों के जुल्मों की कहानी तो अंतहीन थी।[44] रियासतों में अशान्ति तथा असंतोष पैदा करने वालों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही के प्रावधान थे। इस कारण प्रजा में भय व्याप्त था।लोग आपस में शासन की आलोचना करने से डरते थे और न कोई समाचार पत्र इनके शासन पर आलोचनात्मक लेख लिख सकता था।[45] लिखने–बोलने, अखबार निकालने और सभा–संस्था संगठित करने की आजादी न होने से निर्दोष प्रवृत्तिया भी बंद थी।[46] वास्तव में देशी रियासतों की एक ही वास्तविक समस्या थी। स्वतंत्र नागरिकता के अधिकार का अभाव'' परिणामस्वरूप सत्ता मदान्धों पर कोई नियंत्रण नहीं हो सकता था। वे सत्ता का पूर्णतया दुरूपयोग करने के लिये स्वतंत्र थे। ब्रिटिश भारत व रियासती भारत का स्वतंत्र सम्पर्क न होने की व्यवस्था के कारण इन राज्यों के बाहर बहुत कम लोग जानते थे कि एकतंत्री शासन व स्वतंत्र नागरिकता के अभाव में वहां कौन–कौन सी बुराईयां पैदा हो गयी, पुष्ट हुई है व हो रही है।[47]

19 वीं शताब्दी के अंत तक राजपूताना की रियासती जनता में जागृति उत्पन्न न होने के कारणों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि–

01. प्रथम– यहां की राजनैतिक व्यवस्था इसमें बाधक थी रियासती राजाओं ने यहां कभी राजनीतिक जीवन पनपने ही नहीं दिया।[48]

02. द्वितीय– जनता अपने राजा को ईश्वरीय रूप में ही देखती थी। कृषक आन्दोलनों में जागीरदारों के विनाश के नारे लगे किन्तु किसी भी रियासत के महाराजा के विनाश का जयघोष नहीं हुआ। जनता की मानसिकता परम्परागत विचारधारा पर आधारित थी।

अरज करां अन्दाता सू, सुणज्यों हाडा राव।

करसाणां को दूखड़ो मेटो, जी को करो उपाव।।[49]

03. तृतीय– यहां शिक्षा, ब्रिटिश भारत से राजनैतिक सम्पर्क तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभाव था।

04. चतुर्थत राजनैतिक जीवन को उत्पन्न करने के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन व प्रयासों का अभाव था।[50] 1935 तक अधिकांश राजस्थानी, राजनैतिक जीवन उत्पत्ति की दृष्टि से असंबद्ध ही थे व असंबद्धता को ही वे उचित मानते थे। रियासती जनता की स्थितियों पर विचार करना, उन्हें राजनैतिक अधिकारों का ज्ञान कराना, अधिकारों की प्राप्ति के लिए उनमें जागृति उत्पन्न करना इत्यादि विषयों को न तो कांग्रेस ने अपनी जिम्मेदारी माना और न ही इस क्षेत्र में कांग्रेस ने नरेशों के हितों की रक्षा के लिए दिलचस्पी दिखाई।[51]

1938 ई. के बाद राज्य की शक्तियों में साझेदारी करने तथा सरकार की नीतियों को प्रभावित करने का इच्छुक शक्तिशाली राजनैतिक समुदाय प्रभावी रूप से प्रकट हुआ।[52]

राजपूताना की रियासतों में जन–चेतना का संचार

विश्व के बदलते परिदृश्य तथा ब्रिटिश भारत के घटनाक्रम के प्रभावस्वरूप देशी रियासतों के राजनीतिक वातावरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।[53] परन्तु जनचेतना का मूल कारण शोषण पर आधारित मध्ययुगीन समाज व्यवस्था में देखने को मिलता है।[54] कृषक आंदोलनों ने राजपूताना की रियासतों में ग्रामीण स्तर पर विभिन्न राजनीतिक संगठनों की पहुँच को सुगम बना दिया।[55] राजपूताना में जनजागृति का प्रारम्भ इन्हीं कृषक आंदोलनों की देन है। इनके अतिरिक्त राज्य में जनजागृति के कुछ अन्य कारण भी थे जैसे–

01. रियासती जनता में जागरण का बीज बोने वाला शिक्षित मध्यमवर्ग था। यह मध्यमवर्ग आम जनता में राजनीतिक जागरण और राष्ट्रप्रेम की भावना का संचार करना चाहता था।[56] राजपूताना के नवजागरण का अग्रदूत यही वर्ग था।

02. स्वामी दयानंद सरस्वती और उनके आर्य समाज का भी राजपूताना की रियासती जनता के जनमानस पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।[57] स्वामी दयानन्द ने

राजपूताना में आगमन पर कहा था कि'' मेरी इच्छा है कि मैं रियासती राजा और महाराजाओं को सही मार्ग पर लाकर आर्य नस्ल को एकता प्रदान कर सकूँ।[58]

04. क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता ने राजपूताना की जनता को यह जता दिया कि शांति पूर्ण आन्दोलनों के माध्यम से ही राज्य में संवैधानिक प्रगति का मार्ग खुल सकता है।[59] गांधीजी का मानना था–'' रियासती जनता अपने पैरों पर स्वयं खड़ी होगी तभी रियासतों में जनजागृति आ सकती है। [60] गांधी का यही दर्शन रियासती जनता के लिए वरदान सिद्ध हुआ और राजपूताना की जनता स्वयं अपनी मुक्ति का मार्ग खोजने लगी।[61]

इस प्रकार राजपूताना की जनता के मानस में जनचेतना का संचार हुआ और अब प्रांतीय स्तर के संगठनों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। जिसके फलस्वरूप, 1919 में राजस्थान सेवा संघ,[62] 1918 में राजपूताना मध्य भारत सभा [63] इत्यादि राजनीतिक संगठनों की स्थापना हुई। **इन** संगठनों ने सराहनीय कार्य किया किन्तु राजपूताना में आधारभूत स्तर पर राजनीतिक चेतना जागृत करने का सर्वाधिक श्रेय राजस्थान सेवा संघ को है।[64]

राजपूताना के राज्यों में 1924 के बाद एक नया दमन चक्र प्रारम्भ हुआ। नीमूचाणा हत्या काण्ड, [65] सीकर के जाट आन्दोलन का दमन[66] इस दमनचक्र के प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस दमन का विरोध किया गया और राज्यों में उत्तरदायी सरकार की मांग की गयी। 1927 में जयपुर में जनजागृति का अच्छा उदाहरण देखने को मिला। जनता ने पुलिस एवं राज्य के निरंकुश शासन के खिलाफ भारी प्रदर्शन किया। अन्य रियासतों की जनता भी कोई न कोई बहाना खोजकर संघर्ष करने लगी।[67]

इस जन–जागृति को देखकर एक ऐसे केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी जो देशी रियासतों में चलने वाले आन्दोलन को दिशा निर्देश दे सके और इसकी चरम परिणती अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के गठन के रूप में हुई।[68] इसका प्रथम अधिवेशन 17–18 दिसम्बर 1927 को बम्बई में हुआ।[69] इसका मुख्य उद्देश्य देशी रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था।[70] इस

अधिवेशन में राजपूनाता की जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख नेताओं में विजय सिंह पथिक, रामनारायण चौधरी और जयनारायण व्यास प्रमुख थे।[71] राजपूताना में देशी राज्य लोकपरिषद की गतिविधियों का केन्द्र अजमेर को बनाया गया।[72] 1931 में रामनारायण चौधरी ने ''राजस्थान देशी राज्य परिषद'' की स्थापना की।[73]

1933 में राजपूताना की सभी रियासतों के लिये देशी राज्य लोक परिषद की क्षेत्रिय इकाई के गठन का प्रयास किया गया।[74] किन्तु स्थानीय नेताओं के आपसी सामंजस्य के अभाव में यह प्रयास विफल ही हुए[75] क्योंकि प्रत्येक देशी रियासत में विभिन्न राजनीतिक समस्याएं थी और वे अपने स्थानीय स्त्रोतों पर इतना अधिक निर्भर थे कि किसी बाहरी विचारधारा पर निर्भर रहना कठिन था। इसलिए राजपूताना की रियासतों में वास्तविक जनजागृति व जनचेतना का संचार अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थानीय शाखाओं ने किया जिन्हें हम'' प्रजामण्डल या लोकपरिषद'' के नाम से जानते हैं।[76] 1931 से 1946 ई. के बीच राजपूताना की लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डलों का गठन किया गया। इन प्रजामण्डलों ने राजपूताना के स्वतंत्रता संग्राम में अपना विशेष योगदान दिया।[77] ग्रामीण व दूर दराज के आदिवासी क्षेत्रों तक अपनी पहुंच बनाई तथा आम जनता को प्रजामण्डल की गतिविधियों से जोड़कर उनके अन्तर्मानस में जन चेताना का संचार किया।[78]

स्वतंत्रता पूर्व के विरोध आन्दोलनों का स्वरूप

राजपूताना की रियासतों में स्वतंत्रता आन्दोलन वस्तुतः सामन्तवाद व ब्रिटिश उपनिवेशवादी शक्ति के विरूद्ध किया गया संघर्ष था जिसे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्तरों पर लड़ा गया।[79] ब्रितानी, साम्राज्यवाद व देशी सामन्तवाद के दोहरे जुए के नीचे यहाँ की कष्ट भरी जिन्दगी चुप नहीं बैठी। यहाँ के शहरी मध्यमवर्ग, कृषक तथा बनवासियों ने एक अविरल व्यापक हलचलों की धारा प्रवाहित की जो अन्ततः राजशाही के विनाश व प्रजामण्डल के उत्थान का माध्यम बनी।[80]

देशी रियासतों में ब्रिटिश शासन एवं रियासती राजाओं के हित इस प्रकार पारस्परिक हित सम्बद्ध हो गये कि दोनों का यह संयुक्त प्रयास रहा कि रियासती प्रजा

की स्वातन्त्रय चेतना को न उभरने दिया जाये और साथ ही जनता की मूलभूत स्वतंत्रताओं पर हर तरह का अंकुश रखा जाये।[81] इस शोषण व दमन के विरूद्ध प्रदेश की जनता धीरे–धीरे संगठित हुई और संघर्षरत बन सफलतापूर्वक इन दमनकारी शक्तियों का प्रभावकारी सामना किया और अन्ततः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से कहीं न कहीं अपना सम्बन्ध भी स्थापित किया।[82]

राजपूताना के संघर्ष का एक स्वरूप यह था कि 1947 से पूर्व रियासतों में दो प्रकार के संघर्ष आन्दोलन उभरते दिखाई देते हैं– प्रथम प्रजामण्डल आन्दोलन व द्वितीय कृषक आन्दोलन ये दोनों प्रकार के आन्दोलन, जन–समर्थन, उद्देश्य, सदस्यता और संगठन की एकता की दृष्टि से भिन्न स्वरूपों के माने जा सकते हैं।

01. प्रजामण्डल संगठन मुख्य रूप से नगरीय क्षेत्रों तक सीमित थे। किसान आन्दोलन से सम्बंधित संगठन मूलतः ग्रामीण कृषक समुदाय द्वारा किये गये संघर्षों को अभिव्यक्ति देते हैं। इन दोनों प्रकार के आन्दोलनों में परस्पर औपचारिक सम्बंधों का लगभग अभाव रहा, सिवाय इसके कि कभी कभी अनौपचारिक रूप में ये नगरीय व ग्रामीण आन्दोलन एक दूसरे को सहयोग देते रहे। इसी तरह दोनों प्रकार के आन्दोलनों के गठन तथा समर्थकों के सामाजिक वर्ग की भिन्नताएं भी स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। 1920 के दशक से ही राज्य में प्रजामण्डल संगठनों का उद्भव होने लगा था और अधिकांश प्रजामण्डल इकाइयों का नेतृत्व मध्यमवर्गीय शिक्षित उच्च सामाजिक जातियों के ही हाथों में रहा।

दूसरी तरफ किसान सभाओं का गठन 1930 के दशक से होने लगा और शेखावाटी व पश्चिमी राजपूताना में इसका नेतृत्व जाट समुदाय तथा अन्य जगहों पर मिली जुली जातियों का नेतृत्व रहा। कुछ जाट किसान सभाओं के साथ प्रजामण्डलों के भी सक्रिय सदस्य रहे।

02. जहाँ ब्रिटिश भारत में शहर एवं कस्बों से जनचेतना गांवों तक फैली वहीं राजपूताना में राजनीतिक गतिविधियों का आरम्भ देहातों से होता है।[83] ये बात और है कि इस ग्रामीण जनचेतना को नेतृत्व शहरी मध्यमवर्ग ने प्रदान किया।[84]

बिजौलिया आन्दोलन (1897–1922) ने कई नए प्रतिमान स्थापित किए। विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा तथा हरिभाऊ उपाध्याय जैसे नेता इससे जुड़े।[85]

03. भारत गाँवों का देश रहा है। यहां की परम्परा में ग्राम पंचायतों के कारण प्रजातान्त्रिक प्रणाली कूट–कूट कर भरी थी। राजपूताना के जन आन्दोलन में इन पंचायतों का भी अपना योगदान रहा।[86] धर्म व जातिगत व्यवस्था के आधार पर भी जन–सामान्य में जन आन्दोलन के महत्व को समझाया गया। सेवा व सुधार भी जन–साधारण में जागृति का एक माध्यम बना।[87]

04. राजपूताना के जन–आंदोलन की तीसरी धारा जनजाति आन्दोलन के रूप में दिखाई देती है। सुर्जी भगत, गोविन्द गुरू और मोतीलाल तेजावत तथा भोगीलाल पाण्डया इत्यादि कुछ प्रमुख नेता इस जनजाति आन्दोलन के प्रमुख कर्णधार थे।[88] भील नेताओं ने जनजातियों में चेतना उत्पन्न करने का प्रशंसनीय कार्य किया। ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों के माध्यम से भील नेताओं के प्रभाव को काम करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रही।[89]

05. 1930 से 1940 के दशक में इन जन संगठनों द्वारा राजपूताना के विभिन्न नगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों में सफलता पूर्वक अनेक संघर्ष किए गए। परन्तु संगठन, संरचना, सदस्यता और अपनी संघर्ष गतिविधियों के प्रसार की दृष्टि से ये संगठन राजस्थान के अलग–अलग रियासती क्षेत्रों तक ही लगभग परिसीमित बने रहे, क्षेत्र विशेष तक सीमित इन संगठनों की प्रभावकारिता के कारण सम्पूर्ण राजपूताना प्रदेश स्तर पर एक सशक्त राजनीतिक आन्दोलन के गठन का लगभग अभाव निरन्तर बना रहा।[90]

06. यद्यपि 1947 से पूर्व का राजपूताना परम्परागत सत्ता संरचनाओं से सम्बद्ध सामाजिक रूप से जाति इकाइयों में जकड़ा हुआ था और राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में संघर्ष व टकराव की स्थितियां देखी गई।[91] तथापि राजपूताना जैसे पारंपरिक व सामन्ती समाज के लोगों में भी अपने उच्च राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संगठित व सामूहिक प्रयास करने तथा उसके अनुरूप राजनीतिक संस्थाओं

के निर्माण व प्रबन्ध एवं उनके लिए समुचित जन–समर्थन जुटाने की इसी राजनीतिक क्षमता व दृढ़ निश्चय का परिणाम था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत भी वह शेष भारत के समान एक आधुनिक लोकतन्त्रीय व्यवस्था का न सिर्फ निर्माण कर पाये बल्कि उसे बनाए रख पाने की अदम्य क्षमता का प्रदर्शन भी कर पाये।[92]

07. प्रजामण्डल आन्दोलन भी किसी सामान्य नाम से न जाने जाकर रियासतों के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न नामों से जाने गए। जैसे जोधपुर रियासत में यह आन्दोलन मारवाड़ लोक परिषद् के रूप में जाना गया।[93] तो भरतपुर और बीकानेर रियासतों में इन्हें प्रजा परिषद के नाम से जाना गया।[94] और राजपूताना की शेष रियासतों में इन नगरीय आन्दोलन संगठनों को प्रजामण्डलों के नाम से जाना गया।[95]

08. स्वतन्त्रतापूर्व के काल के दोनों नगरीय आंदोलन व ग्रमीण कृषक आन्दोलन क्योंकि रियासती शासन व्यवस्था व पारम्परिक राजनीतिक– आर्थिक, सामन्ती व्यवस्थाओं के विरोध में गठित हुए थे, **अतः य**ह आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि राजपूत शासक वर्ग के अधिकांश भाग की इन आन्दोलनों में सहभागिता लगभग नगण्य रही। [96]

रियासतों की जनता को तीन शक्तियों अंग्रेज, राजा और जमींदार का सामना करना पड़ा तीनों मिलकर जनता के आन्दोलन का दमन करते रहे। किन्तु जनता निर्भीकता से संघर्ष करती रही। राजपूताना के आन्दोलनों ने यह प्रमाणित कर दिया कि देशी रियासतों की जनता भी, ब्रिटिश भारत के साथ कन्धे से कंधा मिलाकर भारत को स्वतंत्र करवाना चाहती है।[97]

राजपूताना के जन–आन्दोलनों का उद्देश्य

ब्रिटिश भारत की जनता के समक्ष उसके जन–आन्दोलनों के संचालन को लेकर स्पष्ट उद्देश्य था, विदेशी शासन से मुक्ति। तब रियासती जनता के जन–आंदोलनों के क्या उद्देश्य रहे होंगे? रियासती जनता अंग्रेजी शासन के अधीन

भी नहीं थी, तो क्या वे निरंकुश राजतंत्र के प्रतीक अपने राजा महाराजाओं को पद से हटाना चाहती थी? या फिर उनका क्रोध सिर्फ ठिकानेदारों तक सीमित था। क्या वे प्रशासनिक व्यवस्था में सिर्फ सुधार चाहते थे या पूरी तरह व्यवस्था परिवर्तन के पक्षधर थे? क्या हम इसे स्वतन्त्रता का आन्दोलन कहें? इन सभी प्रश्नों के उत्तर के लिये यहाँ पर राजपूताना की जनता के जन–आंदोलनों के उद्देश्यों का विश्लेषण करने की कोशिश की गई है।

राजपूताना की रियासतों में चलाया गया यह जन–आंदोलन एक दिलचस्प विषय है। वास्तव में इस आन्दोलन का उददेश्य प्रारम्भ में सुधारों की मांग तक सीमित था, परन्तु जैसे–जैसे परिस्थितियाँ परिवर्तित होती गई तथा जनचेतना का संचार विस्तृत होता गया, राजपूताना की जनता के आन्दोलन के उददेश्य भी विस्तृत और परिष्कृत होते गये। अगर हम यहां के कृषक आन्दोलनों को देखें तो एक ही बात सामने आती है कि इन आन्दोलनों में या तो भूमि सुधारों की माँग थी, किसान 145 प्रकार के लाग–बागों से दबे हुए थे, उनका विरोध था, या फिर किसी स्थानीय अधिकारी या राज्य के दीवान का विरोध था। एक भी ऐसा आन्दोलन नहीं था। जिसमें किसी रियासत के राजा को हटाने की बात कही गयी थी बल्कि यही बात कही गयी थी कि महाराजा की छत्रछाया में ही उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाये और इस माँग पर ही जोर दिया जाता रहा।[98] राजा महाराजा विदेशी शासक नहीं थे इसलिए सत्ता के विरूद्ध किये जा रहे आन्दोलन में उनको शामिल नहीं किया जाना उचित ही था लेकिन जब उनकी ज्यादतियाँ ज्यादा हो गयी और यह महसूस किया जाने लगा कि वे किसी भी प्रकार से उत्तरदायी शासन को अच्छी तरह नहीं चलने देंगे तो उनका जुआ भी कंधे से उतार फैंकने में जनता ने ढील नहीं दी।[99]

राजपूताना के इन संघर्षों की दोनों धाराओं, कृषक व प्रजामण्डल आन्दोलन के अपने–अपने उददेश्य स्पष्ट थे। कृषक समाज मध्ययुगीन सामाजिक संरचना का भाग था। समाज न केवल पिरामिडीय था वरन उसका रूप पदसोपानी भी था। इसके शीर्ष शिखर पर महाराणा, महाराजा, महाराव या महारावल पाए जाते थे, जिन्हें जनता अन्नदाता समझती थी। उसके पश्चात् जागीरदार जो कि अपने ठिकाने के स्वामी थे। तब भी और अब भी अधिकांश लोग कृषि पर आधारित रहे हैं। और इन दीन–हीन

परिश्रमी कृषकों को सबसे अधिक जागीरदारी शोषण का शिकार बनना पड़ा।[100] इनमें शिक्षा और जागृति का अभाव था ऐसी स्थिति में उनमें जन–जागृति का मंत्र केवल आर्थिक प्रश्नों को लेकर फूँका जा सकता था। कृषकों को यह समझाया गया कि सर्व–साधारण की समस्याओं का स्थायी हल तभी निकल सकता है जब सत्ता पर जनता का अधिकार हो।[101] कृषक सुधारों का प्रारम्भ हो। ग्रामीण आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करने वाली किसान सभाएं संघर्ष के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि–सम्बन्धों में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए प्रयासरत थी। समय–समय पर कृषक निम्नलिखित जयघोष करके अपनी जन जागृति का परिचय देते थे।

किसानों की –– जय हो
जागीरदारों की –– खह हो
जागीरदारी प्रथा का –– नाश हो
राज किणरो –– करसां रो।[102]

इन जयघोषों से यह तो स्पष्ट होता है कि कृषक जागीरदार व जागीरदारी प्रथा में या तो पूरी तरह परिवर्तन चाहते थे या उसके सम्पूर्ण विनाश के पक्षधर थे। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि राजा, प्रजा के धन पर एश्वर्यपूर्ण जीवन जी रहा है। तथापि वे अपने शासक को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। तथा अपेक्षा करते थे कि उनका राजा उनकी स्थिति में सुधार करेगा।

जाग – जाग पति हाड़ा प्रजा दुखारी रे।
थारा नौकर मनमानी कर म्हांने घणी सतावे रे।
थे मोटर में खेल शिकांरा मौज उडावो रे।[103]

दूसरी तरफ नगरीय संघर्ष आन्दोलन को अभिव्यक्ति देने वाले प्रजामण्डल संगठन जहाँ मुख्यतः शासन के विभिन्न स्तरों पर जन–सहभागिता, नागरिक स्वतन्त्रताओं की सुनिश्चित्ता व रक्षा तथा देशी रियासतों के शासकों के अधीन उत्तरदायी शासन की स्थापना की मांगो तक सीमित थे।[104] रियासतों में गठित प्रजामण्डल संगठन तत्कालीन रियासती शासकों को लक्ष्य करके, अखबारों, गीतों, नारों तथा विभिन्न पैम्पलेटो के माध्यम से उत्तरदायी शासन की माँग करते तथा तत्कालीन निरंकुश शासन के दोष गिनाते थे। प्रजामण्डल कार्यकरताओं का उद्देश्य शासकों को

बदनाम करने या उन्हें मिटाने का नहीं था। बल्कि उनकी भूलों का दिग्दर्शन करा कर उनमें सुधार करने का था।[105] महाराजा की छत्र–छाया में जनता की सरकार की स्थापना, महाराजा–प्रजा के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना विभिन्न कानूनों व व्यवस्थाओं में सुधार करना व इसी प्रकार की अन्य समस्याओं के प्रति जागरूक रह कर उनका समाधान कराना। प्रजा मण्डल का उद्देश्य रहा।[106] प्रजा देशी राज्यों के शासन में अपना हाथ और आवाज चाहती है। वह चाहती है कि देशी राजा अपनी मनमानी कार्यवाही करने व फिजूलखर्ची करने से बाज आये। देशी नरेश अपनी प्रजा की सम्मति और सलाह के अनुसार शासन करे। प्रत्येक राज्य में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की एक व्यवस्थापिका सभा हो राज्य का शासन इसी सभा की सम्मति से हुआ करे।[107] राजपूताना के प्रजामण्डल आन्दोलन की विशिष्टता यह थी कि इसके आन्दोलन द्विउद्देशीय थे। इनका प्रथम उददे्श्य उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था और द्वितीय उददे्श्य भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करना था।[108]

राजपूताना के प्रजामण्डल आन्दोलन की प्रेरणादायी मातृ संस्था ''अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद'' को कहा जा सकता है। जिसका प्रारम्भिक उददे्श्य राजाओं की अधीनता में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था किंतु 1939 ई. तक आते–आते इसने अपना उददे्श्य पूर्ण प्रतिनिधियात्मक शासन के साथ–साथ, देशी रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित करवाना भी निर्धारित कर लिया था।

" The Object of the all India States, Peoples conference is the attainment by peaceful means and legitimate means of full responsible government by the people of the states as integral part of a free and federal India.[109]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 1940 तक आते–आते देशी राज्य लोक परिषद का उद्देश्य रियासती जनता को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिलवाना तथा उनका ब्रिटिश भारत की गतिविधियों के साथ तालमेल बिठाना था। राजपूताना की विभिन्न रियासतों में स्थापित प्रजामण्डल, प्रजापरिषद, लोकपरिषद के स्थानीय नेताओं ने देशी राज्य लोक परिषद व ब्रिटिश भारत में हो रही गतिविधियों के मार्ग दर्शन में तथा स्थानीय परिस्थितियों से जूझते हुए रियासतों में जन–आंदोलन के झण्डे को बुलंद रखा। 1931 से 1947 के मध्य चलाए जा रहे स्वाधीनता आन्दोलन के दो ही लक्ष्य थे – कृषि

सुधारों का श्रीगणेश करना तथा राजनीतिक सुधारों का सूत्रपात करना था।[110] एक तीसरा और महत्वपूर्ण कार्य ब्रिटिश भारत की स्वाधीनता के साथ रियासती भारत के भाग्य को जोड़ना था।[111] इस प्रकार सामान्य जनमानस ने प्रजामण्डल जैसी संस्थाओं से जुड़ कर देशी रियासतों के भारत में विलय के मार्ग को प्रशस्त करने का असामान्य कार्य किया।

विलीनीकरण में जनमानस की भूमिका

सन् 1935 तक आते–आते देशी रियासतों में जन जागृति के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने लगे थे। विभिन्न रियासतों व उनके ठिकानों में स्थान–स्थान पर कृषक आन्दोलन चल रहे थे, व जनता उद्वेलित होती जा रही थी। परन्तु देशी रियासतों के आन्दोलन सुदृढ़ केन्द्रीय संगठन व सही दिशा निर्देशन के अभाव में अस्त–व्यस्त थे। जनता के पास अपना कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं था। देशी राज्य लोक परिषद को भी स्पष्ट नहीं था कि प्रजा को विरोधस्वरूप कौन सा मार्ग ग्रहण करना चाहिये? अन्याय सहें या प्रतिकार करें। यदि कोई आन्दोलन किया जाये तो वह किस रूप में और किस ढंग से किया जाये। देशी राज्यों की प्रजा की सबसे बड़ी समस्या यह थी, की उसे कोई भी राजनीतिक दल सहायता नहीं देना चाहता था।[112] कांग्रेस व गांधी रियासती मामलों में पूरी तरह ''अहस्तक्षेप '' की नीति का अनुसरण कर रहे थे। गांधी का विचार था कि '' ब्रिटिश भारत को देशी राज्यों की नीति के निर्णय करने के अधिकार नहीं है।[113] उनके इस विचार की कठोर आलोचना की गई।'' हम लोगों ने अपने आंदोलन में देशी राज्यों के निवासियों से लाखों रूपये की मदद ली है और सैकड़ों देशी राज्य निवासी हमारे सत्याग्रह में सरकार के महमान रह चुके है। अब उन लोगों का साथ छोड़ना घोर कृतघ्नता होगी। [114]

अपनी स्थापना से लेकर 1920 ई. तक कांग्रेस की नीति देशी रिसायतों में अहस्तक्षेप की रही यहां तक की रियासती राजाओं के प्रति उसकी सहानुभूती रही।[115] 1920 ई. के बाद कांग्रेस ने देशी रियासतों के मामलों में सीमित रूचि दिखाई तथा रियासती शासकों से आग्रह किया कि वे अपनी रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना करें।[116] गांधी का मानना था कि रियासती जनता अभी आन्दोलन के लिए तैयार नहीं है। रियासती जनता को किसी बाहरी सहायता की अपेक्षा स्वयं अपने पैरों

पर खड़ा होना चाहिये।[117] 1938 ई. तक आते आते कांग्रेस के समाजवादी विचारधारा वाले वर्ग जिसमें जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण जैसे नेता थे इन्होंने देशी रियासतों के विषय में कांग्रेस की अहस्तक्षेप की नीति का विरोध किया।[118] जवाहरलाल नेहरू ने मारवाड़ जक्शन पर एकत्र जनता से कहा था कि ''रियासती मामलों में मुझे दिलचस्पी है और रियासतों में क्या–क्या होता है? यह मुझे मालूम रहता है।[119] इधर अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद ने कांग्रेस के समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि वह देशी रियासतों के विषय मे सोचे तथा इस विचार को मानने को तैयार हो कि ''देशी रियासतों की समस्या को सुलझाये बिना भारत की समस्या का समाधान संभव नहीं है।'' इधर गोलमेज सम्मेलन तथा संघीय शासन प्रणाली के विषय में राजाओं के नकारात्मक व अड़ियल रवैये के कारण कांग्रेस राजाओं की कटू आलोचक बन गयी। ऐसी स्थिति में 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस ने रियासतों से सम्बन्धित प्रसिद्ध प्रस्ताव पास किया कि– ''इसलिए कांग्रेस आदेश देती है कि रियासतों की कांग्रेस समितियां, कार्य समिति के निर्देशन में कार्य करें।........ रियासतों की भीतरी लड़ाई कांग्रेस के नाम पर नहीं लड़ी जानी चाहिए। रियासतों के संघर्ष को जारी रखने के लिए स्थानीय स्तर पर प्रजामण्डलों का निर्माण किया जाये।[20] रियासती आन्दोलन के प्रति कांग्रेस ने सहानुभूति जताई तथा कहा कि पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना अब दूर नहीं है।[121] ''दो रेलगाड़ियां अलग–अलग जा रहीं थी – उन्हें मिलाकर एक ही ट्रेन का वर्तमान रूप दे दिया गया और संचालन का दायित्व गाँधी के हाथों में सौप दिया गया।[122] हरिपुरा अधिवेशन के पश्चात् भी काफी समय तक कांग्रेस ने देशी राज्यों में गहरी रूचि नहीं ली जिसका प्रमुख कारण अखिल भारतीय स्तर पर उसे बड़ी समस्याओं का निराकरण करने में सक्रिय रहना था। अंततः 1939 ई. के त्रिपुरी अधिवेशन में अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने कहा कि ''देशी रियासतों की जनता में ''अभूतपूर्व जनजागृति '' देखने को मिली है। कांग्रेस को देशी रियासतों से सम्बन्धित हरिपुरा प्रस्ताव परिभाषित करने की आवश्यकता है।[123]

अन्ततः लुधियाना में देशी राज्य लोक परिषद ने जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार वैचारिकता व क्रियात्मकता के स्तर पर देशी राज्य लोक परिषद पूरी तरह कांग्रेस से जुड़ गयी।[124] अति–उत्साह से परिपूर्ण

देशी राज्य लोक परिषद के निर्देशन में राजपूताना की रियासतों में ''प्रजापरिषद'' और ''प्रजामण्डलों'' का गठन किया गया।[125] जिससे भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को व्यापक होने में बड़ी सहायता मिली।

रियासती प्रजा की जनचेतना में उत्तरोत्तर वृद्धि

यह देशी रियासतों के सामान्य जनमानस की बहुत बड़ी उपलब्धी थी कि जिस कांग्रेस ने अपनी स्थापना से लेकर लगभग 40 वर्ष तक देशी राज्यों के प्रति अहस्तक्षेप की नीति अपनाई, वही कांग्रेस अब रियासतों को स्वतंत्र भारतीय संघ का एक अभिन्न अंग'' मानते हुए देशी राज्यों में पूर्ण उत्तदायी शासन स्थापित करने की मांग कर रही थी।'' रियासती प्रजा की इच्छाओं को जानते हुए कहा गया कि पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है रियासतों सहित सम्पूर्ण भारत पर भारतीयों का राज्य क्योंकि भारत की पूर्णता और एकता स्वतंत्र होने पर भी उसी तरह स्थायी रखनी है जिस प्रकार वह पराधीनता में स्थायी रही है''[126] कांग्रेस की इस नीति से कि रियासतों में जो आन्दोलन चलाये जाएं वह कांग्रेस की ओर से न हो अपितु स्वतंत्र लोकप्रिय समुदायों की ओर से हो। इस निर्णय ने रियासतों में स्थानीय नेतृत्व के लिऐ मार्ग खोल दिये। राज्यों में स्वतंत्रता आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिये यह नीति उचित ही थी। इसका परिणाम भी आशानूकूल निकला ।[127] रियासती जनता के बढ़ते हुए आन्दोलनों के कारण राजाओं में बेचैनी दिखाई देने लगी।

अब तक रियासती आन्दोलन का उद्‌देश्य ''राजाओं की अधीनता में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था'' किन्तु देशी राज्य लोक परिषद के उदयपुर अधिवेशन के पश्चात् स्थानीय प्रजामण्डल आन्दोलन का उद्‌देश्य रियासतों को भविष्य में बनने वाले स्वतंत्र भारतीय संघ का एक अभिन्न अंग मानते हुए शांति पूर्ण एवं न्यायोचित उपायों से पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था।'' राजपूताना की रियासतों के प्रजामण्डल संगठनों ने अपने संविधान से ''राजाओं की छत्रछाया में''शब्द को हटा दिया। जयपुर प्रजामण्डल ऐसा करने वाली प्रथम संस्था थी।[128]

देशी राज्य लोक परिषद ने 1939 के अपने लुधियाना अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास करके भारतीय संघ में स्वतंत्र प्रशासनिक इकाई के रूप में देशी रियासतों की

जीव्यता 20 लाख जनसंख्या, 50 लाख वार्षिक राजस्व निर्धारित किया। जिसको बाद में 50 लाख जनसंख्या और 8 करोड़ राजस्व के रूप में बढ़ा दिया गया। वास्तव में यह मात्र एक छोटा सा प्रस्ताव था किन्तु प्रतिकात्मक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह रियासतों के जनमानस की स्वतंत्र भारत में एक बड़ी प्रशासनिक इकाई बनने की अकांक्षा का प्रतीक था।[129] 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध के समय भी कांग्रेस व देशी राज्य लोक परिषद के मध्य रियासतों से सम्बन्धित नीति निर्माण में सामंजस्य बना रहा। इस दौरान राजाओं[130] और युद्ध से संबन्धित समस्याओं पर लोक परिषद, कांग्रेस से दिशा निर्देश प्राप्त करती रही। कांग्रेस ने देशी रियासतों की जनता को प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों में जनसंख्या के आधार पर सीटों का आरक्षण प्रदान करने के लिए एक समिति का गठन किया, जिसमें जवाहरलाल नेहरू, भूलाभाई देसाई, वल्लभभाई पटेल और जे.बी. कृपलानी प्रमुख थे।[131] देशी राज्य लोकपरिषद की रियासती जनता में बढ़ती हुई प्रतिष्ठा के कारण ब्रिटिश सरकार ने कभी भी देशी राज्य लोक परिषद को रियासती जनता का प्रतिनिधि न मानकर, अपने कठपुतली राजाओं को ही रियासती जनता का प्रतिनिधि माना।[132] 1940 ई. तक आते–आते रियासती जनता का एकमात्र ध्येय बन गया, उत्तरदायी शासन की प्राप्ति। महात्मा गांधी राजाओं की कटु आलोचना करते थे 1916 ई. से ही वे राजाओं को जनता का ट्रस्टी बनने की सलाह देते थे।[133] उनका मानना था कि प्रत्येक राजा अपनी प्रजा का सेवक है और वास्तविक मालिक प्रजा है।[134] राजाओं को अपनी स्वेच्छाचारिता और शाहीतंत्र का परित्याग कर देना चाहिये। कुछ राजाओं की मनोवृत्ति तो गाधीजी के प्रति इतनी अधिक उपेक्षापूर्ण थी कि वे उनकी या उनके नाम से कही गयी किसी बात को सहन नहीं कर सकते थे।[135] 7 और 9 अगस्त, 1942 को बम्बई सम्मलेन में कांग्रेस ने भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया। देशी रियासतों के जन–प्रतिनिधियों ने भी इसमें भाग लिया। गाँधीजी ने इस सम्मेलन में रियासतों के प्रतिनिधियों को स्पष्ट किया की ब्रिटिश भारत में भावी संघर्ष का नारा ''**अंग्रेजों भारत छोड़ो**'' होगा तथा देशी रियासतों में **राजाओं अंग्रेजों का साथ छोड़ो** होगा। अगर शासक अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करने की मांग ना माने तो प्रजामण्डल आंदोलन आरम्भ कर दें।

इस प्रकार विभिन्न स्तरों से उठ रही मांगों और अपीलो का राजाओं पर कोई असर नहीं हुआ। वे प्रभूसत्ता और निरंकुशता के जिस उच्च शिखर पर आसीन थे वहाँ से हटने को तैयार नहीं थे। इस पर देशी राज्य लोक परिषद ने 6 अगस्त, 1945 ई. को श्रीनगर, कश्मीर में हुई स्थायी समिति की बैठक में दो प्रस्ताव पास किये। पहला यह कि राज्यों के जन–आंदोलन का लक्ष्य भारत के अभिन्न अंग के रूप में राज्यों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है। दूसरा यह कि उन छोटे राज्यों को प्रांतो में मिल जाना चाहिये, जिसकी जनसंख्या 20 लाख से कम और आय 50 लाख से कम हो। [136]

भारत के प्राय प्रत्येक वायसराय देशी नरेशों को हमेशा ही अच्छे प्रशासन की सलाह देते रहे।[137] वायसराय लार्ड वैवेल ने भी 1946 ई. में दिल्ली में नरेन्द्र मण्डल की बैठक में यही बात दोहराई।[138] इस पर चांसलर भोपाल नवाब ने घोषणा की कि नरेन्द्र मण्डल की नीति है कि प्रत्येक राज्य में मजबूत प्रशासन के आधारभूत सिद्धातों को अपनाया जाये तथा प्रशासन में आमजनता की प्रत्यक्ष सहभागिता के लिये राज्यों में बहुमत से चुनी हुई लोकप्रिय संस्थाओं का निर्माण हो।[139] देशी राजा प्रतिनिधियात्मक शासन का दिखावा तो करते रहे किन्तु वास्तविक रूप में वे पूरी तरह से इसके विरोधी थे। रियासत में जन–आंदोलन के उग्र रूप धारण कर लेने पर कुछ रियायतें प्रदान करके उसको शांत कर देते तथा शांति स्थापित हो जाने पर फिर से प्रजा का दमन और शोषण करने को तैयार रहते, इस प्रकार जनता के विरुद्ध उन्होंने ''लाभ और लात'' चलाने की नीति अपना रखी थी।[140] अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजपूताना प्रांतीय कार्यकारिणी ने 9 सितम्बर, 1946 ई. को एक प्रस्ताव पारित किया कि राजस्थान का कोई भी राज्य आधुनिक प्रगतिशील राज्य की सुविधा उपलब्ध करवाने की स्थिति में नहीं है। इसलिये राजस्थान की सभी रियासतों और अजमेर–मेरवाड़ा को मिलाकर एक इकाई बना दिया जाना चाहिये।[141] प्रांतीय कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव ने रियासतों के जन संगठनों की मूल नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। राजाओं के कान खड़े हो गये। परिस्थितियों से विवष होकर देशी शासकों ने उत्तरदायी शासन के नाम पर सामंती प्रभाव वाले मंत्रिमण्डलों का गठन

किया। जिसके कारण राजपूताना की प्रत्येक रियासत में विरोध व प्रदर्शन हुये। इसके चलते रियासती मंत्रिमण्डलों में लोकप्रिय प्रतिनिधियों की संख्या लगातार बढ़ती गयी।

देशी राज्य लोक परिषद ने 31 दिसम्बर, 1947 को एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसके अनुसार देशी राज्यों में उत्तरदायी सरकार के गठन के लिए 10 सिद्धांत प्रतिपादित किये गये तथा रियासतों के क्षेत्रीय इकाइयों में समूहीकरण के लिये सुझाव दिये गये।[142] परिषद ने कहा कि राजाओं द्वारा नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किये जाये एवं राज्यों में स्वतंत्र न्यायपालिका के माध्यम से उनकी सुरक्षा की जाये। न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करके भारत के संघीय न्यायालय से जोड़ा जाये। राज्य की मंत्रिपरिषद पूर्णतः चुनी हुई विधायिका के प्रति उत्तरदायी हो, व्यस्क मताधिकार व्यवस्था तथा संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की स्थापना हो, जिसमें हरिजनों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों, आदिवासियों, उपेक्षितों और श्रमिकों के लिए आरक्षण हो। निष्पक्ष अंकेक्षण तथा निश्चित प्रिवीपर्स की व्यवस्था हो। अकेली रियासत के शासक, एकीकृत रियासत के शासक अथवा रियासतों के समूह के शासक का प्रिवीपर्स प्रांतीय गवर्नर या स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति से अधिक नहीं हो अथवा रियासत के कुल राजस्व का पाँच प्रतिशत, जो भी कम हो। जागीरों, ठिकानों जमीदारों तथा अन्य मध्यस्थ सामंती हितों को समाप्त किया जाये तथा उन्हें न्यायसंगत मुआवजा दिया जाये। देशी रियासतों के शासक, देशी राज्य लोक परिषद की इन मांगों से सहमत नहीं थे। वे अपने राज्य के निरंकुश शासक थे तथा विरासत में मिले हुए अधिकारों और परम्पराओं से चले आ रहे कानूनों के अनुसार शासन चलाना चाहते थे।

राजाओं ने इस बात के पूरे प्रयास किए कि परमोच्च शक्ति उन्हें या तो लौटा दी जाए अथवा समाप्त कर दी जाए। उनके पूरे प्रयास रहे कि ब्रिटिश भारत में जिस प्रकार जनता का प्रतिनिधित्व, वहाँ के नेतागण कर रहे थे, उसी प्रकार रियासतों में प्रजा का नेतृत्व राजाओं के द्वारा मान लिया जाना उचित है। कैबीनेट मिशन के समक्ष दिखावा करने के उद्‌देश्य से नरेन्द्र मण्डल के चांसलर भोपाल नवाब ने जनता को कुछ अधिकार प्रदान करने की घोषणा की। इसे ''राजाओं की ओर से प्रजा को प्रदान किया गया अधिकार पत्र ''(बिल ऑफ पीपल्स राइट्स) कहा गया। नेहरू ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि ''इस घोषणा पत्र की जांच तो इसके वास्तविक क्रियान्वयन

पर होगी। राजपूताना की जनता में इस घोषणा के प्रति कोई उत्साह नहीं पाया गया क्योंकि एक तो ये बहुत देर से की गई घोषणाएं थीं वहीं विभिन्न राज्यों से दमन और शोषण की जो खबरें आ रहीं थीं उससे राजाओं की कथनी और करनी में अंतर दूर से ही दिखाई पड़ता था। ''जब राजाओं को लगने लगा कि अब अंग्रेज भारत से जाने वाले है और राजाओं पर से अंग्रेजों का संरक्षण हटने वाला है तब कहीं जाकर राजाओं की नींद खुली और उन्हें राजनीतिक विभाग द्वारा चार वर्ष पूर्व दी गयी चेतावनी का मतलब समझ में आया। इसलिये राजाओं ने इस तरह की सुधारवादी घोषणा कि किन्तु तब तक बहुत विलम्ब हो चुका था।''[143]

संवैधानिक प्रगति व रियासतों का भारतीय संघ में विलय

समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण ने कहा ''कि वायसराय तथा उनका राजनीतिक विभाग भारतीय राजाओं को भारतीय स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा के रूप में इस्तमाल करता रहा है। उन्होंने भारतीय राज्यों में प्रजातान्त्रिक आन्दोलन को कुचलने के लिये राजाओं के साथ मिलकर षड़यत्र किया है।[144] देशी रियासतों की जनता के प्रतिनिधि के रूप में अंग्रेजों ने हमेशा रियासती शासकों को प्राथमिकता दी। रियासती जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली देशी राज्य लोक परिषद को हमेशा हतोत्साहित किया तथा भारत के संवैधानिक विकास से सम्बन्धित किसी भी बातचीत में उसे शामिल नहीं किया। राजाओं ने देशी राज्य लोक परिषद द्वारा स्वयं को रियासती जनता का प्रतिनिधि बताने का घोर विरोघ किया।[145] तथा ''नरेन्द्र मण्डल'' को इसके विरोधी संस्थान के रूप में प्रश्रय दिया।[146] यहाँ तक की बटलर कमेटी ने भी रियासती जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली देशी राज्य लोक परिषद को रियासती जनता का प्रतिनिधि मानने से मना कर दिया। [147] अतः 1929 ई. के लोक परिषद के अधिवेशन में बटलर कमेटी की जमकर आलोचना की गयी।[148] इसी प्रकार साइमन कमीशन ने भी देशी रियासतों की समस्या को समझने का प्रयास नहीं किया। **देशी** रियासतों की जनता ने 1929 ई. में प्रारम्भ होने वाले गोलमेज सम्मेलन में प्रतिनिधित्व की मांग की तथा राजाओं के देशी रियासतों का प्रतिनिधि होने के दावे को खारिज किया ।[149] इसी सम्बन्ध में एक महाराजा ने अगस्त 1939 ई. को दिये अपने एक साक्षात्कार में प्रजामण्डल के कार्यकरताओं को धमकी देते हुए कहा कि–[150]

“My ancestors have won the state by the sword and I mean to keep it by the sword………… you stop your praja mandal activities, I shall resort to such repression that your generation to come will not forget it.”

1936 में देशी राज्य लोक परिषद के करांची अधिवेशन में पं. नेहरू ने कहा कि ''देशी रियासतों के शासक लोक परिषद से नहीं लड़ रहे अपितु देशी राजाओं की आड़ में ब्रिटिश सरकार परिषद का विरोध करती है।[151] कैबीनेट मिशन के भारत आगमन पर कैबीनेट मिशन योजना पर वार्ता करने के लिये लोक परिषद की दिल्ली में बैठक आयोजित की गयी तथा परमोच्च सत्ता को स्वतंत्र भारतीय संघ को प्रदान करने की वकालत की गयी।[152] नेहरू ने कहा की कैबीनेट मिशन ने रियासती जनता की अनदेखी की है। .... यह बहस का विषय है कि 1 करोड़ जनता के भाग्य का फैसला करने के लिये राजाओं को खुला छोड़ दिया गया है।[153] पं. नेहरू की इस बात में तर्क था रियासती जनता में इतनी जन–जागृति आ गई थी कि संविधान सभा में उनके प्रतिनिधित्व को नकारा नहीं जा सकता था तब उनको यह अभास हुआ कि संविधान सभा में एक रियासत के दो प्रतिनिधिमण्डल सम्मिलित होने चाहिये, जिसमें से एक रियासती जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों से मिलकर बना हो।[154] रियासतों में कार्य करने वाले प्रजामण्डल संगठनों को संविधान सभा के प्रतिनिधियों के चयन में सहयोग करने का प्रस्ताव पास किया गया।[155] इस प्रकार राजपूताना की लगभग सभी रियासतों यथा बीकानेर, जयपुर, जोधपुर इत्यादि ने अप्रैल 1947 तक संविधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेज दिये।[156]

लार्ड माउंटबेटन ने अपनी 3 जून, 1947 की घोषणा में परमोच्चसत्ता के विलोपन की घोषणा की तथा देशी रियासतों के शासकों को खुली छूट दे दी कि वे या तो भारत अथवा पाकिस्तान में विलय कर सकते हैं अथवा पूरी तरह स्वतंत्र रह सकते हैं।[157] किन्तु देशी रियासतों की जनता, उनके प्रजामण्डल तथा देशी राज्य लोक परिषद और उसके सहयोगी राष्ट्रीय दल के दबाव के फलस्वरूप रियासती शासकों को भारतीय संघ में विलय के लिये मजबूर होना पड़ा। रियासती जनता व उनके स्थानीय कार्यकर्ताओं ने अपने राजाओं और जागीरदारों पर दबाव बनाया कि वे भारतीय संघ से अलग रहने की सोच ही ना सकें। रियासतों में चल रहे लोकप्रिय प्रजामण्डल

आन्दोलनों विशेषकर राजस्थान के लोकप्रिय आन्दोलनों के कारण ही रियासतों का भारतीय संघ में विलय सम्भव हो सका।[158]

देशी रियासतों की जनता ने ब्रिटिश भारत की अपेक्षा अधिक विकट समस्याओं का सामना किया। उनकी यह लड़ाई दो मोर्चों पर एक साथ चली। वे अपने अधिकारों की मांग के लिये प्रत्यक्षतः तो देशी राजाओं और उनके तंत्र से लड़ते दिखाई देते थे किंतु इस राजतंत्र की पीठ पर ब्रिटिश सरकार का मजबूत हाथ था। यही कारण था कि देशी रियासतों के शासकों ने प्रजा को शासन में भागीदारी देने के लिए सैकड़ों प्रकार के दिखावटी जतन तो किये किन्तु वास्तव में वे प्रजा की आवाज को कुचलने में लगे रहे। अपने सिंहासन और राजमुकुटों को बचाने के लिये राजाओं ने देश के साथ भयानक खेल खेला किन्तु वे समय की धड़कन को नहीं पहचान पाये और अपने ही पापाचार में नष्ट हो गये।

राजपूताना की रियासतों के जन–आन्दोलन

जोधपुर

मारवाड़ में जन–जागृति के अग्रदूत जय नारायण व्यास रहे। वे न केवल मारवाड़ की आम जनता से जुड़े थे अपितु राष्ट्रीय स्तर पर भी अन्य स्वतंत्रता सेनानियों व बड़ें नेताओं से संपर्क रखते थे।[159] उन्होंने देशी राज्य लोक परिषद की एक शाखा जोधपुर में स्थापित करने का प्रयास किया किन्तु अंग्रेज प्रधानमंत्री डोनाल्ड एम.फील्ड की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण यह संस्था सफल नहीं हो सकी।[160] जयनारायण व्यास प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने राजपूताना की रियासतों का विलय करके, संयुक्त राजस्थान का स्वप्न देखा।[161] जोधपुर रियासत की जनता में जनचेतना के विस्तार हेतु पत्र–पत्रिकाओं, पैम्पलेट और विभिन्न प्रकार के साहित्य को माध्यम बनाया गया। 1929 में राज्य में गड़बड़ी फैलाने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

जोधपुर रियासत में सभी प्रकार की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध होने के कारण जयनारायण व्यास ने पुष्कर में 24 और 25 नवम्बर, 1931 ई. को मारवाड़ देशी

राज्य लोकपरिषद का अधिवेशन किया।[162] जिसमें रियासत में उत्तरदायी शासन की मांग, नागरिक अधिकार, शिक्षा इत्यादि विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रस्ताव पास किये गये।[163] मार्च 1932, में रियासत में किसी भी प्रकार की राजनीतिक संस्था गठित करने और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। तभी 1934 ई. में मानमल जैन द्वारा ''मारवाड़ प्रजा मण्डल'' का गठन किया गया। जिसमें अभयमल जैन तथा छगनलाल चौपासनीवाल भी सम्मिलित थे इसका उद्देश्य राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना व नागरिक अधिकारों की रक्षा करना था।[164] इसे रियासत के प्रधामंत्री डोनाल्ड एम.फील्ड ने अवैध घोषित कर दिया तब 1936 ई. में मानमल जैन और अभय मल जैन ने नई संस्था ''नागरिक अधिकार रक्षक सभा'' बनाई इसे भी अवैधानिक घोषित करके प्रतिबंधित कर दिया गया। तब बाबा नरसिंह दास ने कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष को गहरा दुःख व्यक्त करते हुए लिखा कि ''जब तक रियासत के तानाशाह अपनी अपवित्र गतिविधियां बन्द नहीं करते राज्य में कांग्रेस समितियों को चलाना असंभव है।[165]

ऐसी ही तनावग्रस्त परिस्थितियों में ''मारवाड़ लोक परिषद'' का 16 मई, 1938 ई. को गठन किया गया। स्थापना के समय इसका मूल उद्देश्य मारवाड़ के महाराजा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था।[166] मारवाड़ लोक परिषद के दो अन्य उद्देश्य राजा के निरंकुश शासन का विरोध करना और जागीरदारों के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना था।[167] ''प्रजा'' शब्द के स्थान पर ''लोक'' शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया था कि ''प्रजा'' शब्द राजा के सन्दर्भ में बना है जो कि दासत्व की मानसिकता को प्रकट करता है। जबकि 'लोक' शब्द का उपयोग ''जनता की इच्छा ही इस आन्दोलन की सर्वोच्च शक्ति है।'' ऐसा अर्थ प्रकट करता है।[168] यह वह समय था जब जयनारायण व्यास को जोधपुर रियासत में प्रवेश की अनुमति नहीं थी। जोधपुर प्रशासन, लोक परिषद को समाप्त करने के लिए पूरी तरह कटिबद्ध था। किन्तु लोक शक्ति भी पूरी तरह मारवाड़ में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के लिए दृढ़निश्चित थी।[169] अब तक जयनारायण व्यास मारवाड़ की जनता के प्रतिष्ठित [170] तथा सर्वमान्य नायक बन चुके थे।[171] 21 फरवरी 1937 ई. को जोधपुर के प्रधानमंत्री डोनाल्ड फील्ड को महाराजा बीकानेर गंगासिंह ने पत्र लिखकर जयनारायण व्यास पर से प्रतिबन्ध

हटाने को कहा उन्होंने लिखा कि ''रियासतों की वे हुकूमतें जिनकी आज हम निगरानी करते हैं। अन्त में हमारे इन्ही दुश्मनों के हाथों में जायेंगी। ऐसी स्थिति में हमारा कर्त्तव्य है कि हम यह ध्यान रखे कि विरोधी खेमे से भलें आदमी आगे आयें और जब हम हटें तो ऐसे ही लोग शासन की बागडोर संभालें।[172] परिषद के तत्वाधान में कार्यकर्ताओं ने पर्चों और पुस्तिकाओं द्वारा राज्य के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। इसमें ''गरीबों की बौखलाहट'' ''आमानत का हिसाब'' ''उत्तरदायी शासन की स्थापना'' ''जोधपुर नौकरशाही का अत्याचार'' आदि लेख प्रमुख थे।[173] जागीरी क्षेत्रों के अनुचित करों की ओर राज्य परिषद ने रियासती सरकार का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की। परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इतना ही नहीं जागीरदार करों में वृद्धि करते रहे और शासक उनका समर्थन करते रहे।[174]

जनचेतना के बढ़ते हुए दवाब के कारण 2 फरवरी, 1939 ई. को सरकार ने केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड और प्रत्येक जागीर में एक सलाहकार बोर्ड की स्थापना की घोषणा की।[175] जयनारायण व्यास को केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड में गैर–सरकारी प्रतिनिधि मनोनीत किया गया। लोक परिषद में इसको लेकर विवाद खड़ा हो गया।[176] वास्तव में यह लोक शक्ति की जीत और उत्तरदायी सरकार की ओर बढ़ता हुआ एक कदम था।[177] 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होते ही परिषद ने सरकार के विरूद्ध विरोध आरम्भ किया। अचलेश्वर प्रसाद, पुरूषोत्तम प्रसाद, किशोरी लाल मेहता, अभयमल जैन, सी.आर. चौपासनीवाल और गणेशलाल व्यास ने जमकर सरकार के विरूद्ध प्रचार किया।[178] लोक परिषद के कार्यकर्ता गाँवों और शहरों, दोनो में सक्रिय थे। राज्य सरकार ने परिषद की बढ़ती हुई लोकप्रियता से सहम कर परिषद के सभी प्रमुख कार्यकर्ताओं को जेल में डाल दिया तथा परिषद को अवैध घोषित कर दिया।[179] राजनीतिक वातावरण दम घोटने वाला था। एक'' टाईपराइटर' का भी रजिस्ट्रेशन करवाना पड़ता था।[180]

लोक परिषद के विभिन्न नेताओं को जिन्हें मारवाड़ के अलग– अलग किलों के कैद किया गया था। जालौर लाया गया जहाँ जयनारायण व्यास कैद थे। सरकार ने लोक परिषद से वार्ता प्रारम्भ की।[181] समझौते के फलस्वरूप लोकपरिषद ने आन्दोलन

समाप्त कर दिया सरकार ने राजनीतिक बंदियो को रिहा कर दिया। जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया।[182]

28 मार्च 1941 को मारवाड़ में ''उत्तरदायी शासन दिवस'' मनाया गया।[183] जोधपुर रियासत में पहली बार नगरपालिका चुनाव सम्पन्न हुए जिसमें लोक परिषद ने 22 में से 18 स्थान प्राप्त किये। व्यास जोधपुर नगर पालिका के प्रथम अध्यक्ष चुने गये।[184] सरकार ''लात और बात दोनों नीतियों का अनुसरण करते हुए परिषद के प्रभाव को कम करने में लगी थी।[185] जयनारायण व्यास ने 11 मई, 1942 को दूसरा सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा की।[186] जयनारायण, परिषद के प्रथम डिक्टेटर घोषित हुए और उन्होंने प्रधानमंत्री डोनाल्ड फील्ड को अपदस्त करने की मांग की इसके प्रतिउत्तर में सरकार ने द्वारकानाथ काचरू और कन्हैया लाल वैध को जोधपुर से निष्काषित कर दिया।[187] 12 जून, 1942 को बाल मुकुन्द बिस्सा की जेल में मृत्यु हो गयी।[188] गाँवों तथा छोटे कस्बों में भी समानान्तर कृषक आन्दोलन जारी थे चंदावल, नीमाज, सोजत और नागौर इत्यादि में जमकर विरोध प्रदर्शन हो रहे थे। नवयुवकों ने संगठित होकर प्रभात फेरियाँ और सभाएं करनी आरम्भ कर दी। इन सभाओं में छात्रों और राजकीय कर्मचारियों से हड़ताल पर जाने, राज्य की अनुत्तरदायी सरकार को समाप्त करने और अखिल भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन करने की अपील की।[189]

1944 ई. में जयनारायण व्यास व उनके सहयोगियों को रिहा कर दिया गया। सरकार ने सुधारों के लिए सुधालकर कमेटी का गठन किया।[190] 1945 ई. में सरकार ने डोनाल्ड फील्ड के स्थान पर सी.एस. वेंकटाचार्य को प्रधानमंत्री नियुक्त किया।[191] दिल्ली में अंतरिम सरकार बनी तथा संविधान सभा में जोधपुर का प्रतिनिधित्व जयनारायण व्यास और सी.एस वेंकटाचारी ने किया।[192]

जिस समय महाराजा हनुवंतसिंह ने मोहम्मद अली जिन्ना से जोधपुर के पाकिस्तान विलय के विषय में भेट की यह खबर जनता में फैलते ही जन–आन्दोलन छिड़ गया। इन विकट स्थितियों में जयनारायण व्यास तथा उनके सहयोगियों ने 'मारवाड़ लोक परिषद' के नेतृत्व में जमकर विरोध प्रदर्शन किए तथा जोधपुर के भारत

में विलय के लिये एडी–चोटी का जोर लगा दिया।[193] लोकप्रिय जनमत ने महाराजा के समक्ष भारत में विलय और लोकप्रिय उत्तरदायी सरकार प्रदान करने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं छोड़ा। जयनारायण व्यास को 3 मार्च, 1948 को मिली–जुली सरकार का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। 31 अगस्त, 1948 ई. को चौथे मंत्रिमण्डल का निर्माण किया गया। यह मंत्रिमण्डल अब राजस्थान में विलय की प्रक्रिया और स्थानीय समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हो गया।

इस प्रकार जोधपुर रियासत से राजतंत्र के अत्याचार समाप्त हुए तथा लोकतंत्र की ठंडी ब्यार बहने लगी अन्ततः जयनारायण व्यास की एक कविता के शब्द सत्य सिद्ध हुए।[194]

"कल ही तुझ पर गाज गिरेगा, तेरा सभी समाज गिरेगा।
तख्त गिरेगा, ताज गिरेगा, महल गिरेगा राज गिरेगा।।
नहीं रहेगी सत्ता तेरी, बस्ती तो आबाद रहेगी।
जालिम, तेरे सब जुल्मों की, उसमें कायम याद रहेगी।।

बीकानेर

बीकानेर रियासत की स्थापना 1488 ई. में जोधपुर के राठौड़ संस्थापक राव जोधा के छठे पुत्र राव बीका ने की थी।[195] बीकानेर रियासत के महत्वपूर्ण शासक महाराजा गंगासिंह (1880–1943) थे। वे न केवल भारत अपितु तत्कालीन विश्व के अत्याधुनिक विचारधारा वाले प्रसिद्ध शासक थे। उनका मानना था कि ब्रिटिश प्रान्तों में उठ रही उत्तरदायी सरकार की मांग एक न एक दिन देशी रियासतों को भी प्रभावित करेगी।[196] इसलिए उन्होंने देशी रियासतों में सबसे पहले 1913 ई. में बीकानेर में विधान सभा की स्थापना करवाई। वास्तव में गंगासिंह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति तो प्राप्त करना चाहते थे। किन्तु रियासत की अंतिम व सार्वभौम प्रभूसत्ता स्वयं में निहित मानते थे।[197] इस कारण उनके द्वारा स्थापित विधान सभा अधिकारों की दृष्टि से अपंग तथा सजावटी वस्तु बन कर रह गई। नागरिक अधिकारों का अभाव, पुलिस की तानाशाही, राजनेताओं की गतिविधियों पर नजर रखना, राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध इत्यादि बीकानेर की राजशाही की महान विशेषताएं थी।[198]

1913 ई. में चुरू में स्वामी गोपालदास ने 'सर्वहितकारिणी सभा' की स्थापना की, किन्तु कुछ ही समय बाद, सर्वहितकारिणी सभा' व इसके कार्यकर्ताओं को स्वच्छ व उत्तरदायी प्रशासन की मांग करने पर महाराजा विरोधी गतिविधियाँ करने के आरोप में बीकानेर षड़यत्र काण्ड में फंसा दिया गया। इन स्वतंत्रता सेनानियों का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के सामने महाराजा के प्रशासन की वास्तविक पोल खोलना था। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के समय जब महाराजा लंदन में थे, अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के क्षेत्रीय मंत्री जयनारायण व्यास ने गोलमेज सम्मेलन में महाराजा का भाण्डा फोड़ने के इरादे से बीकानेर और चुरू के कार्यकर्ताओं से महाराजा के निरंकुशतापूर्ण आचरण दमन, आंतक तथा मनमानी पर 18 पृष्ठों की एक पुस्तिका तैयार करवाकर, जन्मभूमि के संपादक अमृतलाल सेठ, सौराष्ट्र के बैरिस्टर पी.एल. चूड़गर और पूना के प्रो. अभ्यंकर के हाथों पुस्तिका को लंदन के गोलमेज सम्मेलन में भेजा। जिसके कारण महाराजा को सम्मेलन में शर्मीन्दगी झेलनी पड़ी। इसका मुख्य उद्देश्य देशी रियासतों के शासकों के मुकाबले वहां की जनता के दृष्टिकोण को सम्मेलन के सदस्यों के सम्मुख रखना था।[199] स्वदेश लौटकर महाराजा ने गुस्ताखी करने वालों को कठोर दण्ड देने के लिए ''बीकानेर षड़यत्र काण्ड में फंसाया । इस काण्ड से सम्बन्धित खबरे राष्ट्रीय सामाचारों की सुर्खियां बनी। [200] बीकानेर के वकील रघुवर दयाल गोयल और दाऊदयाल आचार्य ने 'बीकानेर षड़यंत्र काण्ड के आरोपियों का केस लड़ा तथापि वे सफल नहीं हो सके।[201]

1940 ई. के बाद राज्य में शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की जनता के जन–जागरण में वृद्धि होती गयी, लोग अब खुलकर राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने लगे।[202] 22 जुलाई, 1942 को रावतमल पारीक के घर कुछ कार्यकर्ता एकत्र हुए जिनमें मुक्ता प्रसाद सक्सेना, गंगादास कौशिक, दाऊदयाल आचार्य, रघुवर दयाल गोयल इत्यादि बहुत से व्यक्ति जो पेशे से दुकानदार, हलवाई, दर्जी अर्थात समाज का वह सामान्य वर्ग था जो आंतक और दमन से मुक्ति प्राप्त करना चाहता था। यहीं पर ''बीकानेर प्रजा परिषद'' की स्थापना की गई।[203] 29 जुलाई, 1942 ई. को राघुवर दयाल गोयल को बीकानेर से निर्वासित कर दिया गया।[204] इसी बीच छात्र व कृषकों के आन्दोलन भी बराबर उग्र रूप धारण कर रहे थे।

3 फरवरी, 1943 ई. को महाराजा गंगासिंह के देहांत के बाद सादुलसिंह बीकानेर के शासक बने उन्होंने भी अपने पिता की नीतियाँ जारी रखी। सादुलसिंह ने दावा किया की राज्य की अधिकांश जनता न केवल संतुष्ट है अपितु अपने शासक से प्रेम भी करती है। प्रजापरिषद के कुछ पागल लोग है जो उदारवाद व आधुनिकता का ढोल पीटते हैं।[205] प्रजापरिषद के कार्यकरता बीकानेर महाराजा को ''अन्नदाता'' के स्थान पर ''अन्नखोस' कहा करते थे। चारों ओर से दवाब बढ़ने पर महाराजा बीकानेर ने कुछ सुधारों की घोषणा की परन्तु अभी भी शासन की समस्त शक्तियां राजा में ही नीहित थी।[206] मार्च, 1946 में बीकानेर प्रेस एक्ट' पास किया गया जिसकी सर्वत्र आलोचना की गई।[207]

31 अगस्त, 1946 को महाराजा ने फिर से संवैधानिक सुधारों की घोषणा की प्रजा परिषद को यह पहले से ही आभास था कि इन सुधारों से जनता को कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। रघुवर दयाल गोयल के नेतृत्व में परिषद ने प्रदर्शन जारी रखा।[208] बीकानेर की जनता में सदैव ही तिरंगे झण्डे को लहराने का जूनून था क्योंकि जहां बीकानेर रियासत के झण्डे को जनता शोषण और उत्पीड़न का प्रतीक मानती थी। वहीं बीकानेर का आम नागरिक विशेषकर कृषक राष्ट्रीय तिरंगे को अपने अस्तित्व और मूलभूत अधिकारों का प्रतिनिधित्व करने वाला मानने लगे थे।[209] इस कारण बीकानेर में लंबे समय तक झण्डा विवाद बना रहा।[210]

इधर संविधान सभा में अपना प्रतिनिधि भेजने [211] तथा भारतीय संघ में विलय को स्वीकार करने वाला बीकानेर अग्रणी राज्य था।[212] उपरोक्त घटनाएं बताती हैं कि वास्तव में यह रियासत की जनता की जागृति का ही परिणाम था कि बीकानेर शासक ने भारतीय संघ में विलय को स्वीकार किया। 1947 तक आते–आते शासक ने तिरंगे झण्डे के महत्व को स्वीकार कर लिया था किन्तु इसके बावजूद वे बीकानेर रियासत के एक स्वतंत्र इकाई बने रह पाने के कारण राज्य के झण्डे से मोह भंग न कर सके।[213] महाराजा ने सोचा था कि विलय पत्र पर हस्ताक्षर करके वे रियासत को भारत में एकीकृत होने से बचा लेंगे। शासक ने अंतिम दम तक रियासत के राजस्थान में

एकीकरण का विरोध जारी रखा। अन्ततः 1949 ई. में बीकानेर रियासत का राजस्थान में विलीनीकरण कर दिया गया। इस प्रकार 500 वर्ष पुरानी बीकानेर रियासत का अस्तित्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया।[214]

वास्तव में बीकानेर रियासत में जन–संघर्ष आन्दोलन को दबाने में वहां के शासकों ने दोहरी नीति का प्रयोग किया। ''मुधर घोषणाएं और कठोर दमन''[215] यह उनकी नीति की अंत तक विशेषता रही।

जैसलमेर

जैसलमेर 20वीं शताब्दी के रियासत कालीन भारत की प्राचीनतम रियासतों में से एक था।[216] जब समस्त भारत में राजनीतिक जन आन्दोलन और विरोध प्रदर्शन चल रहे थे ऐसे में जैसलमेर में राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता व जन चेतना का अभाव था।[217] जैसलमेर पर भाटी राजपूत वंश का शासन था। महारावल रघुनाथ सिंह भाटी ने अपनी अत्याचारपूर्ण नीति और घोर दमन के बल पर जनता में जन चेतना का प्रादुर्भाव नहीं होने दिया।[218]

सागरमल गोपा प्रथम व्यक्ति थें जिन्होंने रियासत में जन–जागरण की अलख जगाने का प्रयत्न किया।[219] अतः उनको रियासत से निष्काषित कर दिया गया। ऐसे में उन्होंने नागपुर तथा कलकत्ता में रहकर रियासत की शासन व्यवस्था के विरूद्ध अखबारों के माध्यम से जमकर प्रचार प्रसार किया।[220] 1939 ई. में शिवशंकर गोपा, जीवनलाल कोठारी इत्यादि ने मिलकर जैसलमेर प्रजापरिषद का गठन करने की हिम्मत दिखाई। मार्च 1941 में अपने पिता की मृत्यु पर रेजिडेंट से एक पत्र लिखवाकर सागरमल गोपा ने जैसलमेर में प्रवेश की अनुमति प्राप्त की ताकि जैसलमेर प्रशासन उसे गिरफ्तार न करे।[221] इसके पश्चात् भी 22 जून, 1941 ई. को जैसलमेर पहुँचते ही उनको कैद कर लिया गया तथा महारावल जैसलमेर के शासन के विरूद्ध षड़यंत्र करने के आरोप में 6 वर्ष की कड़ी सजा सुनाई गई। जेल में पुलिस ने उसके साथ क्रूर व नृशंसतापूर्ण व्यवहार किया।[222] 3 अप्रैल 1946 को उन पर जेल में मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी गई और 4 अप्रैल, 1946 को उनकी मृत्यु हो गयी।

जेल की उनकी दैनिक डायरी और अखबारों में प्रकाशित समाचार तथा जेल से लिखे पत्रों से यह प्रमाणित होता है कि उनका जेल जीवन नारकीय था।[223] इस हत्याकाण्ड की देश भर में तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

इसी दौरान 1946 ई. में मीठा लाल व्यास ने जोधपुर में **''जैसलमेर प्रजामण्डल''** की स्थापना कर ली थी।[224] ताकि गिरफ्तारी से बच सके किन्तु जब सागरमल गोपा की मृत्यु का समाचार सुना तो मीठालाल व्यास, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, जयप्रकाश नारायण अपने कुछ साथियों के साथ 26 मई, 1946 को जैसलमेर पहुँचे। उन्होंने स्थानीय जनता के साथ मिलकर 27 मई, 1946 को जैसलमेर में राष्ट्रीय झण्डा फहराया तथा विरोध प्रदर्शन किया।[225]

यद्यपि स्वतन्तत्रा प्राप्ति तक जैसलमेर रियासत की जनता को निरंकुशता व दमन का सामना करना पड़ा किन्तु जैसलमेर के शासक ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने में बहुत अधिक प्रतिरोध नहीं किया। महारावल ने जिन्ना को पाकिस्तान में विलय के लिए मना कर दिया क्योंकि वे हिन्दुओं के हितों की अनदेखी नहीं करना चाहते थे। अतः उनके समक्ष भारत विलय के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं रहा।

उदयपुर

स्वतन्त्रता, देश प्रेम, धर्म व संस्कृति की रक्षा के लिए त्याग बलिदान व संघर्ष करना मेवाड़ की गौरवमयी परम्परा रही है। सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई मेवाड़ की जनता, अंग्रेज, शासक व सामन्तों की तिहरी दासता से ग्रस्त थी। इन परिस्थितियों में आन्दोलन की कल्पना नहीं की जा सकती थी। लेकिन ''सामान्य कष्ट सामूहिक चेतना'' की मनोवैज्ञानिक धारणा मेवाड़ में फलवती हुई सामन्ती अत्याचारों एवं शोषण के विरूद्ध मेवाड़ के किसानों ने जिस प्रकार निरन्तर संघर्ष किया वह कई दृष्टियों से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए प्रेरणा व आदर्श बना। इस प्रकार रियासती राजपूताना की आधुनिक जनचेतना का आरम्भ कृषक आन्दोलन से मानते हैं तो मेवाड़ राज्य को इस दिशा में अग्रणी मानना कोई अतिश्योक्ति नहीं है।[227]

विजयसिंह पथिक तथा माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में बिजौलिया [228] में कृषक आन्दोलन तथा मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भील आदिवासियों के आन्दोलन [229] ने मेवाड़ रियासत में जमीनी स्तर पर जन–जागृति का बीज बोया। 21 मई, 1921 ई. का मातृकुण्डिया मेले में मेवाड़ के विभिन्न जिलों से आए कृषक एकत्र हुए तथा उन्होंने तब तक सरकार को कर नहीं देने का फैसला किया जब तक की उनकी तकलीफों को कम करने के प्रयास नहीं किए जाते।[230] 2 जुलाई, 1921 ई. को लगभग 8,000 कृषक एक गांव में एकत्र हुए तथा राज्य के सभी आदेशों की अवमानना करने का निर्णय लिया जब महाराणा को लगा की स्थिति नियंत्रण से बाहर हो रही है तो उन्होंने अंग्रेज सेना की मदद मांगी।[231] मेवाड़ के अंग्रेज रेजिडेन्ट ने ए.जी.जी. राजपूताना को लिखा कि ''मेवाड़ में कानून व व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है, महाराणा को धमकियां दी जा रही हैं कि यदि उन्होंने प्रशासन में कोई सुधार नहीं किया तो उनकी स्थिति भी रूस के जार के समान होगी। आन्दोलन मुख्यतः महाराणा के विरूद्ध है किन्तु यह शीघ्र ही अंग्रेज विरोधी हो सकता है तथा ब्रिटिश अधिकार वाले क्षेत्रों में फैल जाएगा।[232] रियासत में कानून व व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति के कारण महाराणा को अपने पुत्र भूपालसिंह के पक्ष में गद्दी छोड़नी पड़ी। नए महाराणा ने गद्दी पर बैठते ही घोषणा की कि राज्य में जो कोई व्यक्ति अव्यवस्था फैलाएगा उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाएगी। [233]

कृषक तथा आदिवासी दोनों के उग्र आन्दोलनों के कारण मेवाड़ रियासत के शासकों को भारी कठिनाईयों का सामाना करना पड़ा और उन्होंने कठोर दमनात्मक नीति अपनाते हुए आन्दोलनकारियों पर जमकर गोलियां बरसाई। रियासत के प्रशासन ने जन–आन्दोलनों के प्रति कठोर नीति अपनाई। [234] राज्य का उद्देश्य भविष्य में बिजौलिया जैसे किसी भी आन्दोलन को नहीं पनपने देने का था। फिर भी 24 अप्रैल, 1938 ई. में मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना विधिवत रूप से हुई एवं बलवंतसिंह मेहता इसके अध्यक्ष तथा माणिक्यलाल वर्मा मंत्री नियुक्त हुए।[235] प्रजामण्डल की स्थापना के साथ ही इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। माणिक्यलाल वर्मा को उदयपुर से निष्काषित कर दिया गया। मेवाड़ प्रजामण्डल का उद्देश्य भी अन्य रियासती आन्दोलनों के समान महाराणा की छत्रछाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना

था। 4 अक्टूबर, 1938 ई. से मेवाड़ प्रजामण्डल ने अपना जन–आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इस आन्दोलन के आरम्भ होने से एक ओर राज्य पर प्रजामण्डल की मान्यता हेतु दबाब पड़ने लगा, वहीं दूसरी और प्रजामण्डल का सामाजिक आधार भी विस्तृत होने लगा। माणिक्य लाल वर्मा ने अजमेर से मेवाड़ की प्रजा में राजनीतिक चेतना विकसित करने हेतु कुछ परचे एवं विज्ञप्तियां प्रकाशित की। पहला पर्चा **''मेवाड़ प्रजामण्डल क्या चाहता है?** नाम से प्रकाशित हुआ।[236]

'' प्रजामण्डल, प्रजा की भलाई के ख्याल से कायम हुआ है।................ इस बात से कौन इन्कार करेगा कि प्रजा की भलाई में ही राज्य की भी भलाई है और इसलिए जब वह प्रजा की भलाई चाहता है, तो वह राज्य की भी भलाई चाहता है।

रियासती प्रशासन ने पुनः दमन की नीति अपनाते हुए प्रजामण्डल के उपाध्यक्ष भूरेलाल बया को सारारा के किले में बंद कर दिया।[237] कार्यकर्ता नरेन्द्र पाल सिंह तथा प्रो. नारायण दास सहित सम्पूर्ण उदयपुर में 238 लोगों को गिरफ्तार किया गया। 2 फरवरी, 1939 ई. को मेवाड़ पुलिस ने माणिक्यलाल वर्मा को गिरफ्तार करके लाठियों से पिटाई की तथा जेल में डाल दिया।[238]

अप्रैल, 1939 से प्रजामण्डल ने अकाल पीड़ित जनता की सहायता हेतु ''मेवाड़ अकाल राहत ''कोष' का निर्माण किया तथा अकाल प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों में जनता की सहायता हेतु अनेक राहत कार्यक्रम चलाए।[239]

इसी दौरान मेवाड़ रियासत के प्रधानमंत्री पंडित धर्म नारायण के स्थान पर टी. विजयराघवा चार्य नए प्रधानमंत्री बने वे पूर्व प्रधानमंत्री की अपेक्षा अधिक उदार थे। उन्होंने ''मेवाड़ विधान मण्डल की स्थापना की घोषणा की। 1941 ई. में मेवाड़ प्रजामंडल से प्रतिबंध हटा लिया गया। इसका प्रथम अधिवेशन नवम्बर, 1941 ई. में मणिक्यलाल वर्मा की अध्यक्षता में उदयपुर में हुआ। महात्मा गांधी के आह्वान पर बम्बई में प्रजामण्डलों के अध्यक्षों की एक मीटिंग बुलाई गई तथा उसमें महात्मा गांधी ने कहा की प्रजामण्डल के सभी अध्यक्ष अपनी–अपनी रियासतों के शासकों को पत्र भेज कर अनुरोध करें की वे अंग्रेजों का साथ छोड़ दें।[240] यह 1942, ई. का समय था जब देश पर जापानी आक्रमण का खतरा मण्डरा रहा था तथा क्रिप्स मिशन फेल हो

चुका था। उदयपुर प्रजामण्डल ने महाराणा को अंग्रेजों का साथ छोड़ने के लिए पत्र लिखा जिसका अंतिम भाग इस प्रकार था।[241]

'' हमें (प्रजामण्डल को) उम्मीद है कि महाराणा प्रताप के खून से उत्पन्न होने वाले सूर्यवंशी महाराणा सम्पूर्ण विश्व की नजरों में अपनी प्रतिष्ठा व सम्मान को बनाए रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रजामण्डल के अनुरोध को स्वीकार करेंगे।''

प्रशासन ने इसके प्रतिउत्तर में प्रजामण्डल के महत्वपूर्ण नेताओं को गिरफ्तार कर लिया लगभग डेढ़ साल बाद अचानक खारी नदी में बाढ़ आ जाने के कारण प्रजामण्डल के सभी कार्यकर्ताओं को रिहा कर दिया गया। प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं ने पुनः स्वयं को पुनर्निर्माण सम्बन्धित कार्यों से जोड़ लिया। मेवाड़ हरिजन सेवक संघ का पुनर्गठन किया गया। भीलों में जनजागृति स्थापित करने हेतु स्कूलों की स्थापना की गई। महिलाओं, किसानों तथा भीलों के लिए भीलवाड़ा, बिजौलिया तथा उदयपुर में छात्रावासों की स्थापना की गई। इन सब कार्यों के कारण आम–जनता में जागृति की लहर दौड़ गई।[242]

सितम्बर 1945 ई. में मेवाड़ सरकार ने प्रजामण्डल पर से पुनः प्रतिबन्ध हटा लिया। प्रजामण्डल द्वारा, तिलक जयंती, गांधी जयंती, स्वतन्त्रता दिवस मनाए गए तथा प्रभात फेरिया निकाली गई देशभक्ति के गीत गाना, मीटिंग करना, तिरंगा फहराना, तथा सरकार की जन–विरोधी नीतियों का प्रतिरोध करना इत्यादि कार्य प्रमुखता से किए जाने लगे।

''गांधी की आन्धी स्वराज का झण्डा।
गवर्नमेन्ट की टोपी में बम्बुल का डन्डा।।[243]

31 दिसम्बर, 1945 से 2 जनवरी 1946 ई. के बीच अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का 7 वां अधिवेशन, उदयपुर में हुआ जिसमें हजारों की संख्या में लोगों ने उत्साह के साथ भाग लिया। बड़ी संख्या में आम जनसभाएं की गई तथा उत्तरदायी शासन की मांग को दोहराया गया। देश में तेजी से राजनीतिक वातावरण बदल रहा था ऐसे में रियासती प्रशासन ने सुधारों की ओर कदम–बढ़ाए। 23 मई, 1947 [244] को के.एम. मुशी ने संवैधानिक सुधारों की घोषणा की यद्यपि जनता को ये सुधार पूरी तरह

पर्याप्त नहीं लगे तथापि प्रजामण्डल के नेताओं ने विधान सभा के चुनाव लड़े और अनेक सीटों पर विजय प्राप्त की।

आगे चलकर महाराणा ने भारतीय संघ में विलय स्वीकार करते हुए 18 अप्रैल, 1948 को राजस्थान में एकीकरण स्वीकार कर लिया। यद्यपि मेवाड़ रियासत की जनता ने लोकतंत्र की प्राप्ति के लिए अथक प्रयास किए तथापि यह कहना पड़ेगा की राजपूताना की अन्य रियासतों की अपेक्षा मेवाड़ के महाराणा की नीति अधिक उदार थी।

डूँगरपुर

उदयपुर रियासत की राजनीतिक सरगर्मियों के कारण डूँगरपुर की जनता ने भी जन–जागृति का बिगुल बजा दिया।[245] **य**हाँ पर भोगीलाल पण्डया के नेतृत्व में ''डूँगरपुर सेवा संघ' जन–जागृति का कार्य कर रहा था। 6 दिसम्बर, 1942 ई. को विशाल सार्वजनिक सभा की गई तथा जुलूस निकाला गया। महारावल ने आन्दोलन का कठोरता से दमन किया। जन–आन्दोलन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए राष्ट्रीय टोलियों को हरिदेव जोशी ने गाँव –गाँव भेजा तथा आम जनता की भी इसमें सक्रिय भागीदारी रही। 26 जनवरी, 1944 ई. को 'डूँगरपुर राज्य प्रजामण्डल' की स्थापना की गई जिसमें 400 व्यक्तियों ने भाग लिया।[246]

अप्रैल, 1946 ई. में प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन डूँगरपुर में हुआ जिसमें लगभग 30 हजार जनता ने भाग लिया। इस अवसर पर राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की माँग की गई। साथ ही डूँगरपुर रियासत के भारतीय संघ में विलय की भी मांग रखी गयी।[247] 1947 तक भी रियासत की सरकार ने अपनी दमनकारी नीति का परित्याग नहीं किया। सेवा संघ को समाप्त करने के लिए इसके नेताओं पर बलात्कार, लूटमार, मदिरा व मांस सेवन, आगजनी के झूठे आरोप लगवाकर मुकदमें चलाए गये, सेवा संघ द्वारा चलायी जा रही स्कूलों को बंद करवाया, अध्यापकों से मारपीट की गई। स्थानीय जमीदारों ने इसमें पूरा सहयोग दिया।[248] अन्ततः भीलों द्वारा उग्र आन्दोलन करने के फलस्वरूप महारावल को झुकना पड़ा।

1947 में महारावल ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। 10 नवम्बर, 1947 को गोरीशंकर उपाध्याय को अंतरिम सरकार का मंत्री बनाया गया।

सिरोही

सिरोही रियासत बम्बई प्रांत की सीमा से लगा था। यहां पर राजनीतिक जन–जागृति का प्रसार तेजी से हुआ। भीमशंकर शर्मा ने सिरोही संदेश नामक अखबार में सिरोही की घटनाओं को प्रकाशित करके बम्बई में प्रवास करने वाले सिरोही के कार्यर्ताओं में उत्साह का संचार किया। वृद्धिशंकर त्रिवेदी, भीमशंकर शर्मा, समरथमल सिंधी, टेकचंद सिंधी इत्यादि ने मिलकर 1935 ई. में बम्बई में प्रवासी सिरोही प्रजामण्डल की स्थापना की।[249]

22 जनवरी, 1939 ई. को सिरोही में गोकुल भाई भट्ट, ताराचन्द्र शर्मा, पुखराज सिंधी, धर्मचन्द्र सुराणा, धनराज तातेड़, कुशलचंद शाह और बाबूमल शाह ने 'सिरोही प्रजा मण्डल' की स्थापना की। इसी दौरान प्रशासन की ओर से एकत्र जनता पर लाठीचार्ज किया गया तथा सभी महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। मध्य रात्रि को सिरोही की महिलाओं ने प्रजामण्डल कार्यालय पर तिरंगा फहराया।[250] अगले पाँच दिन तक सिरोही में तनावपूर्ण स्थिति रही। गोकुल भाई ने राज्य के प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि वे महाराजा की छत्रयात्रा में ही उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते हैं।[251] राजनीतिक गतिविधियां लोकप्रिय होती गयी। भूमिगत गतिविधियाँ प्रारम्भ की गई जैन भवनों में सभाएं की जाने लगी, जिनमें महिलाएं भी उत्साह से भाग लेती थीं। प्रजामण्डल की प्रथम जयंती पर आबू रोड में 23 जनवरी, 1941 को चार दिवसीय प्रदर्शनी लगी। जिसमें महिलाओं सहित हजारों लोगों ने भाग लिया। प्रदर्शनी की सफलता और यहां अधिसंख्या में आने–वाले दर्शक प्रजामण्डल की लोकप्रियता को प्रमाणित कर रहे थे।[252] 1942 ई. के बाद सिरोही रियासत में राजनीतिक गतिविधियों का दौर कुछ कम रहा, स्वतंत्रता के पश्चात्, सिरोही को अपने अस्तित्व के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा।

बाँसवाड़ा

बाँसवाड़ा जैसे आदिवासी बहुल क्षेत्र में जन–जागरण लगभग 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में जाकर फैला और इसका श्रेय भूपेन्द्र नाथ त्रिवेदी को जाता है। उन्होंने धूलजी भाई भवसार, मनिशंकर जैन, चिमन लाल मलोत, ध्यानी लाल, मोतीलाल जड़िया और सिद्धि शंकर झॉ, के साथ मिलकर दिसम्बर 1945 ई. में प्रजामण्डल की स्थापना की।[253] महारावल चन्द्रवीरसिंह ने इसकी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाते हुए इसे कुचलने के पूरे प्रयास किये। इस सबके होते हुए भी कार्यकर्ताओं ने जन–आन्दोलन जारी रखे तथा आदीवासी भी इसमे सक्रिय भागीदारी करने लगे। इनमे प्रमुख थे चीप के दीला भगत, छोटी सरकरान के देवा मछार, तेजपुर के दीपा भगत इत्यादि। बाँसवाड़ा के इतिहास में पहली बार शानदार जुलूस निकाला गया। 26 जनवरी, 1945 को सभा करके स्वतंत्रता दिवस मनाया गया।[254] यद्यपि महारावल ने जुलाई, 1947 में विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे। तथापि वे सुधारों के घोर विरोधी थे उन्होंने अन्त तक अपनी दमनकारी नीति जारी रखी। जब उन्हें लगने लगा कि प्रजा का प्रतिरोध कम होने के स्थान पर बढ़ रहा है। तो उन्होंने 18 अप्रैल, 1948 ई. में शासन सुधारों की घोषणा की तथापि इसमें उत्तरदायी शासन का कही नामोनिशान नहीं था।[255] राजस्थान के एकीकरण के प्रयास के समय महारावल ने पुनः शक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु जनता ने उनके प्रयास विफल कर दिये, और बाँसवाड़ा का राजस्थान संघ में विलय हो गया।[256]

बूँदी

बूँदी की जनता में जागृति क कारण पड़ौसी कोटा रियासत में हुए बिजौलिया कृषक आन्दोलन का प्रभाव था।[257] 1922 ई. में बूंदी के शासक ने जनता पर अतिरिक्त कर लगाये।[258] बेगार का बोझ तो जनता पहले से ही झेल रही थी। उत्पीड़ित जनता ने विजयसिंह पथिक व रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में जन–आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। बूंदी प्रशासन परिषद ने आरोप लगाया कि बाहर के लोग आकर बूंदी रियासत की जनता को भड़का रहे हैं।[259] 'नमाना' गाँव में हुए पुलिस अत्याचारों के बाद यह आन्दोलन सम्पूर्ण रियासत में फैल गया। बूंदी महाराव बहादुर सिंह ने जनता को शान्त

करने के लिए बेगार पर प्रतिबन्ध लगा दिया, परन्तु जनता द्वारा सुधारों की मांग जारी रही।[260]

1931 ई. में कांतिलाल ने बूंदी प्रजामण्डल की स्थापना की। [261] उन्होंने अपने भाषणों में बार–बार रियासत के प्रशासन को उत्तरदायी शासन स्थापित करने की चेतावनी दी।[262] 1932 ई. में बूंदी प्रजामण्डल ने महाराव के समक्ष अनेक माँगे रखी। सरकार ने इन मांगो की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। 1935 में सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया। प्रजामण्डल के तत्कालीन अध्यक्ष ऋषिदत्त मेहता को राज्य से निर्वासित कर दिया गया, इस कारण कुछ समय के लिए बूंदी में राजनीतिक निष्क्रियता व्याप्त हो गई। 1940 में बूंदी लौटते ही ऋषिदत्त मेहता ने सरकार द्वारा प्रस्तावित नए संविधान को अस्वीकार कर दिया। [263] 1944 ई. में एक नई राजनीतिक संस्था बूंदी राज्य लोक परिषद का गठन किया गया। रियासत के प्रधानमंत्री रॉवसन ने सत्याग्रह की धमकी देने के बाद इसे पंजीकृत किया। परिषद ने उत्तरदायी शासन की मांग आरम्भ कर दी। 1945 में बूंदी में एक सभा के बाद जुलूस का आयोजन किया गया, इसमें जनता के कई अग्रणी नेता ऋषिदत्त, बृजसुन्दर शर्मा, रंगलाल अग्रवाल, रामचन्द्र सक्सेना और भँवरलाल शर्मा ने भाग लिया।[264]

अन्त में बूंदी शासक महाराव बहादुरसिंह ने लोक परिषद की मांग को स्वीकार करते हुए संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की। अन्ततः बूंदी रियासत भारतीय संघ में शामिल हो गई।

कोटा

कृषक आन्दोलनों का केन्द्र होने के कारण कोटा की सामान्य जनता राजपूताना की अन्य रियासतों की अपेक्षा अधिक जागरूक थी। यही कारण है कि 1918 ई. में कोटा में **'प्रजा प्रतिनिधि सभा'** का गठन किया गया जिसका उद्‌देश्य 'महकमा खास' के सामने जनता की तकलीफों को रखना और उनके अधिकारों की सुरक्षा करना था। किन्तु ब्रिटिश भारत के प्रभाव स्वरूप इनमें और अधिक जनजागृति का संचार हुआ। [265] अतः बदलते परिवेश में रियासत का प्रशासन भी इस संस्था के प्रति आशंकित हो गया तथा इसकी गतिविधियों पर नजर रखने लगा।[266] 1926 में कोटा की प्रजा ने

हाड़ौती प्रजा मण्डल स्थापित किया, 1927 में कोटा राज्य प्रजा मंडल स्थापित हुआ किन्तु ये सभी संगठन रियासत की दमनकारी नीति के समक्ष नहीं टिक सके। 1939 ई. में मांगरौल में कोटा प्रजा मण्डल का चौथा अधिवेशन हुआ जिसमें पंडित नयनूराम शर्मा को अध्यक्ष बनाया गया। अधिवेशन में उत्तरदायी शासन की मांग की गई और राज्य प्रशासन की आलोचना की गई। सुल्तानपुर में किसान सम्मेलन हुआ उसमें किसानों के लिए 22 प्रस्ताव परित हुए। [267]

1941 तक आते–आते कोटा में राजनीतिक सरगर्मियां बढ़ी स्थान–स्थान पर जन–आन्दोलन व जन–सभाएं होने लगी। कोटा का नेतृत्व अब अभिन्न हरि के हाथों में था। जनता को शान्त करने के लिए कोटा महाराव ने 1941 ई. में संवैधानिक सुधारों की घोषणा की, परन्तु वे अपूर्ण थे। कोटा शहर में 26 जनवरी, 1942 को स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर एक आम सभा का आयोजन हुआ जिसमें जोरदार शब्दों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांग की गई। [268]

'भारत छोड़ो' आन्दोलन की प्रतिध्वनि कोटा में भी सुनाई दी। 9 अगस्त, 1942 को राजकीय महाविद्यालय और सिटी स्कूल के विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में हड़ताल कर दी। शहर में जुलूस निकाला गया जिसमें छात्रों के अतिरिक्त राजनीतिक कार्यकर्ता और जनता भी सम्मिलित हुई। यह जुलूस अन्तः में सभा में परिवर्तित हो गया। सभा को छात्र नेताओं के अतिरिक्त प्रजामंडल के नेता शम्भूदयाल सक्सेना, बेनी माधव शर्मा ने भी सम्बोधित किया और अगले एक महीने तक प्रदर्शन जारी रहे।[269] 14 अगस्त, 1942 ई. को प्रजामण्डल नेता शम्भूदयाल और बेनीमाधव को बुलाकर गिरफ्तार कर लिया गया। [270] जनता ने पुलिस स्टेशन को घेर लिया, लाठी चार्ज हुआ। इस आन्दोलन में विष्णु प्रसाद शर्मा, गोपाल दत्त शान्त और छात्रनेता नन्दलाल के नाम उल्लेखनीय है। [271] प्रजामण्डल नेता अभिन्न हरि को भी गिरफ्तार कर लिया गया। कोटा शहर में धारा 144 लगा दी गई। [272] 14 अगस्त, 1942 को एकत्र जनता पर पुलिस ने गोलियां चला दी। गोली की आवाज के साथ ही जनता भड़क उठी। शहरपनाह के सब फाटक बन्द कर दिये गए। शहर की ओर आने वाले सड़कों पर गड्ढे खोद दिये गए। पुलिस को कोतवाली के बाहर नहीं निकलने दिया गया। [273] शहर पर पूरी तरह जनता का नियंत्रण रहा और कोतवाली पर घेरा 3

दिन तक चला।[274] कोटा शहर की इमारतों पर तिरंगा फहराया गया। कोटा सरकार ने देवली से ब्रिटिश क्रॉउन रिजर्व पुलिस को बुलवा लिया। कंवरलाल, प्रभुदयाल, बद्रीप्रसाद, भैरवलाल, काला बादल, विमल इत्यादि आन्दोलनकारी गिरफ्तार कर लिए गए। कोटा महाराव जनता के साथ अधिक सख्ती से काम नहीं लेना चाहते थे अतः उन्होंने जनता की कुछ मांगे मानते हुए प्रधान मंत्री हरिलाल गोसालिया को पदमुक्त कर दिया [275] तथा रियासत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करने की मांग भी स्वीकार कर ली।[276]

इसके पश्चात् भी कोटा राज्य में उत्तरदायी शासन के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहा। 26 जनवरी, 1944 को भी स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। कोटा की जनता व नेता राष्ट्रीय घटनाओं पर निरन्तर पैनी नजर बनाए हुए थे। मार्च 1946 में कोटा सरकार ने विवश होकर नया संविधान बनाने के लिए समिति का गठन किया तथापि महाराव अपने अधिकारों में कटौती करने के लिए तैयार नहीं थे। कोटा की जनता का विरोध प्रदर्शन अन्त तक जारी रहा।

झालावाड़

झालावाड़ रियासत की स्थापना 1938 ई. में कोटा राज्य के एक भाग को प्राप्त करके की गई। यहां पर झाला चौहान वंश का शासन था। द्वितीय विश्व युद्ध तक यह रियासत राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह शान्त बनी रही। 1940 ई. तक झालावाड़ के किसी भी नागरिक ने कांग्रेस दल की सदस्यता ग्रहण नहीं की थी।[277] 1944 में मांगीलाल भव्य, कन्हैयालाल मित्तल, मदनगोपाल, रामविलास आदि ने झालावाड़ राज्य में वैधानिक सुधारों की मांग प्रस्तुत की। बाध्य होकर राजराणा ने 1946 में विधान समिति का गठन किया। 1946 ई. में ही प्रजामण्डल की स्थापना की गई। प्रजामण्डल के लोकप्रिय होते ही सरकार का दमन चक्र आरम्भ हो गया। 1947 ई. में उत्तरदायी शासन की योजना बनाई गई। जिसके अनुसार 4 फरवरी, 1948 को स्वयं महाराजा हरीश्चन्द्र प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए। इस प्रकार जो मण्डल बना वह राज्य के विलीनीकरण तक चलता रहा।[278]

अलवर

1925 ई. में अलवर के नीमुचाणा काण्ड [279] जैसी वीभत्स घटना को अंजाम देने वाले अलवर के महाराजा और प्रशासन पर से रियासत के आम नागरिक का विश्वास उठ चुका था। इस काण्ड के पश्चात् जनता में अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी 1938 ई. में हरिनारायण शर्मा और कुन्जबिहारी लाल मोदी ने अलवर प्रजामण्डल का गठन किया। इसका आरम्भिक उद्देश्य महाराजा की छत्र छाया में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था। अलवर के महाराजा तेजसिंह प्रजामण्डल के उद्देश्य से सन्तुष्ट नहीं थे अतः प्रजामण्डल का पंजीकरण नहीं किया गया।[280] रियासती प्रशासन प्रजामण्डल व आम जनता की जागृति का दमन करने के लिए कटिबद्ध था। हरिनारायण शर्मा और अन्य नेताओं को जेल में डाल दिया। सरकार कुछ समय के लिए प्रजामण्डल की गतिविधियों का दमन करने में सफल हुई।[281] 1 अगस्त, 1940 को रियासत के अंग्रेज प्रधानमंत्री हार्वे ने कई शर्तों के साथ प्रजामण्डल का पंजीकरण कर लिया किन्तु प्रजामण्डल को अपना अलग झण्डा रखने की अनुमति नहीं दी गई। 1941 ई. में प्रजामण्डल के सहयोग से किसानों ने जागीरदारों के अत्याचारों के खिलाफ आन्दोलन आरम्भ कर दिया।[282] इस आन्दोलन के अन्तर्गत प्रजामण्डल के नेताओं ने रियासत के गांवों जैसे किरानगर, बहरोड़ जाट, खेड़ा मंगल सिंह, अलवर शहर इत्यादि स्थानों पर विशाल जन सभाओं का आयोजन किया।[283] रियासती प्रशासन को जागीरदारों के विरूद्ध प्रजा में जन–जागृति की अलख जगाना पसन्द नहीं था प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं का मानना था कि अच्छे शासकों का कर्त्तव्य, अन्याय का प्रतिकार करने वाले का दमन नहीं, अन्याय को रोकना होना चाहिए।[284] रियासती प्रशासन ने प्रजामण्डल के महत्वपूर्ण नेताओं शोभाराम, रामजीलाल अग्रवाल, कुन्जबिहारी लाल मोदी, हरिनारायण शर्मा, कृपादयाल माथुर, बद्रीप्रसाद गुप्ता, भोला नाथ और काशी राम को गिरफ्तार कर लिया गया। [285] अलवर में उग्र जन आन्दोलन व बिगड़ती हुई राजनीतिक व्यवस्था का जायजा लेने के लिये जवाहर लाल नेहरू ने हीरालाल शास्त्री को भेजा। हीरालाल शास्त्री और प्रधानमंत्री के मध्य समझौता हुआ जिसमें 10 फरवरी, 1946 को प्रजामण्डल के सभी नेताओं को छोड़ दिया गया तथा सरकार ने यह स्वीकार किया कि प्रजामण्डल का अपना झण्डा होगा तथा प्रजामण्डल

स्वतंत्रतापूर्वक अपनी गतिविधियां जारी रख सकेगा।[286] इस समय हीरालाल शास्त्री ने कहा था ''राजाओं को प्रजामण्डल के साथ सहयोग करना चाहिये– हम भारत को रियासत और राज्य में नहीं बंटने देंगे।''[287]

जन–आन्दोलन के बढ़ते दबाव से मजबूर हो कर महाराजा अलवर ने 3 अक्टूबर, 1946 को संवैधानिक सुधारों हेतु एक कमेटी का गठन किया। यह पत्र 'फरमान–ए–शाही' कहा गया। प्रजामण्डल के कार्यरर्ता इससे प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि ये मात्र सुधारों का दिखावा था वास्तविक सुधार करने का मानस तो महाराजा तेजसिंह का था ही नहीं। प्रजामण्डल ने सत्याग्रह हेतु अपने कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए शिविर लगाया। तथा उत्तरदायी सरकार के लिए संघर्ष जारी रहा। देश का घटनाक्रम तेजी से बदल रहा था। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् महाराजा ने राज्य की प्रशासनिक परिषद् में 3 चुने हुए सदस्यों को रखने की घोषणा की परन्तु प्रजामण्डल कार्यकर्ता इससे सन्तुष्ट नहीं हुए और पूर्ण उत्तरदायी सरकार की मांग करते रहे।[288] अंत में अलवर राज्य में उत्पन्न इस जन जागरण व जनचेतना का परिणाम यह हुआ कि अलवर महाराजा को पहले विलय–पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े बाद में उन्हें अलवर रियासत का राजस्थान में एकीकरण भी स्वीकार करना पड़ा।

भरतपुर

भरतपुर रियासत पर जाट वंश के शासक ब्रिजेन्द्र सिंह का शासन था। ये भी अपनी रियासत में किसी भी प्रकार के जन–जागरण तथा प्रशासन विरोधी आन्दोलनों को पनपने नहीं देना चाहते थे।[289] दिसम्बर 1938 में रेवारी में प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने एक सभा की जिसमें रेवती शरण उपाध्याय, ठाकुर देशराज, कृष्ण लाल जोशी, आदित्येन्द्र, जुगल किशोर चतुर्वेदी, गोपीलाल यादव, जगन्नाथ प्रसाद कक्कड़, बाबा दूधाधारी और हुकमचन्द सम्मिलित थे। इसी सभा में भरतपुर राज्य प्रजामण्डल की स्थापना की गई।[290] नवगठित प्रजामण्डल का महाराजा ने न केवल पंजीकरण करने से मना कर दिया अपितु इस पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया। 21 अप्रैल, 1939 ई. में प्रजामण्डल ने सत्याग्रह शुरू कर दिया तथा डीग, कामा, नगर तथा पहरी में जन सभाओं का आयोजन किया गया।[291] राज्य की दमनकारी नीती की आलोचना की गई।

11 मई, 1939 को प्रजामण्डल के महत्वपूर्ण कार्यकर्ता गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गए तथा उन्हें 18 माह की कैद की सजा सुनाई गई। अगले 8 माह तक प्रतिरोध तथा प्रदर्शन चलते रहे 600 कार्यकर्ताओं जिनमें 32 महिलाऐं भी सम्मिलित थी जेल में बन्द कर दिये गये।[292]

अन्ततः 1940 ई. में भरतपुर दरबार तथा कार्यकर्ताओं के मध्य एक समझौता हुआ। प्रजामण्डल का नाम बदलकर भरतपुर राज्य प्रजा परिषद् कर दिया गया। समझौते के अनुसार परिषद का कार्य जनता की समस्याओं को प्रशासन तक पहुंचाना, उनके निवारण के लिए सुझाव देना तथा राज्य में साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखते हुए राज्य के प्रशासनिक सुधार के लिए कार्य करना हो गया।[293]

प्रजा परिषद का प्रथम अधिवेशन वर्ष 1940–41 में जयनारायण व्यास की अध्यक्षता में हुआ।[294] इसमें उत्तरदायी सरकार की मांग को दोहराया गया। उग्र भाषण व भड़काउ बयान देने के आरोप में परिषद् के सचिव को धारा 124(A) के अर्न्तगत 1 वर्ष की कैद की सजा सुनाई गई।[295]

अगस्त 1942, ई. में परिषद की गतिविधियां और अधिक तेज हो गई। राज्य में पड़े सूखे, आवश्यक सामग्री की कमी, बढ़ती कीमतें और युद्ध कोष के लिए अनिवार्य योगदान के मुद्दों को परिषद् के कार्यकर्ताओं ने उछाला यहां तक कि सत्याग्रह की चेतावनी भी दी तथा उत्तरदायी शासन की मांग की। जन–आन्दोलन, प्रदर्शन, जुलूस, धरने का भी आयोजन किया गया, उग्र भाषण दिये गए व प्रशासन का भी अपमान किया गया। वनों के सीमा निर्धारण के स्तम्भों को तोड़ दिया गया। टेलीफोन व टेलीग्राफ के तार काट दिये गये।[296] अतः मुख्य परिषद् कार्यकर्ता मोती लाल लेखरा, कृष्ण लाल जोशी, गिरधारी सिंह, गौरी शंकर मित्तल, घनश्याम शर्मा, जुगल किशोर चतुर्वेदी, रेवती शरण, रोशन लाल आर्य, रमेश स्वामी, कालू राम वैश्य, मास्टर आदित्येन्द्र, देशराज, जगपत सिंह, ठाकुर जीवराम और गोपी लाल यादव इत्यादि को गिरफ्तार कर लिया गया। किन्तु इसके पश्चात् भी राज्य में उग्र आन्दोलन का दौर जारी रहा।[297] 1939 ई. की केन्द्रीय सलाहकार समिति के स्थान पर अक्टूबर 1942 ई. में ब्रज–जया समिती[298] का गठन किया गया। जिससे पिछली समिति की अपेक्षा

अधिक अधिकार दिये गये तथा जनता के प्रतिनिधियों की संख्या भी बढ़ा दी गई। किन्तु जनता इससे सन्तुष्ट नहीं हुई क्योंकि समिती के अधिकार सीमित थे। अप्रेल 1945 ई. में परिषद ने इस समिति का बहिष्कार कर दिया।[299]

भरतपुर प्रजा परिषद् का दूसरा अधिवेशन बयाना में 23 मई, 1945 को अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के सचिव जय नारायण व्यास की अध्यक्षता में हुआ। उन्होंने अपने भाषण में देशी रियासतों में व्यस्क मताधिकार पर आधारित, विधान सभा तथा पूर्ण उत्तरदायी सरकार की मांग रखी।[300] दिसम्बर 25, 1945 में उदयपुर में हुए अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के अधिवेशन में माणिक्यलाल वर्मा ने जयपुर और भरतपुर में प्रतिनिधि सभा की स्थापना के विषय पर चर्चा की उन्होंने कहा कि ''देशी रियासतों की जनता ऐसी सभा नहीं चाहती जिसके अधिकार सीमित हो तथा वे एक कॉलेज स्तर की वाद–विवाद समिति से अधिक महत्व न रखती हो। वे ऐसी विधान सभा का निर्माण करना चाहती हैं जिसके पास वास्तविक अधिकार और मनोनीत मंत्रीमण्डल के स्थान पर लोकप्रिय मंत्रिमण्डल हो।''[301] उन्होंने महाराजा भरतपुर से प्रार्थना की कि वे अपने मंत्रिमण्डल में जनता के दो प्रतिनिधि सम्मिलित करने के अपने वचन को पूरा करें।

दिसम्बर 1946 में प्रजा परिषद का तृतीय अधिवेशन कामा में सम्पन्न हुआ। जिसमें प्रशासन से बेगार प्रथा बन्द करने का अनुरोध किया। सरकार की ओर से कोई जवाब नहीं मिलने पर प्रजा परिषद्, किसान सभा और मुस्लिम लीग ने जनवरी में बेगार विरोधी आन्दोलन की शुरूआत की। 5 जनवरी को वायसराय लार्ड वेवल और बीकानेर महाराजा सादुल सिंह घना झील में बतखों का शिकार करने आए तो उन्हें काले झण्डे दिखाए गए उन्होंने मांग की कि शिकार के कार्य पर लगाए गए जाटव समाज के बंधुआ मजदूरों को मुक्त कर दिया जाए। प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज किया गया। इस घटना के परिणामस्वरूप भरतपुर में 17 दिन तक प्रदर्शन होते रहे।[302] अन्ततः भरतपुर प्रशासन ने जन–सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाते हुए एक सप्ताह तक भरतपुर शहर में करफ़्यू लगा दिया।[303] राज्य में जाट और मेवों के बीच साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा था और ऐसे में महाराजा भरतपुर ने 1 जनवरी,1943 को 4 जन–प्रतिनिधि आदित्येन्द्र, गोपीलाल यादव, हरिदत्त और ठाकुर देशराज को मंत्रिमण्डल

में सम्मिलित कर लिया। अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद के तत्कालीन उपाध्यक्ष डॉ. पट्टाभि सीतारामया ने इस घटना के सन्दर्भ में कहा कि ''सामंतवाद के दिन अब समाप्त हो गये हैं तथा लोकतन्त्र और जनता का शासन स्थापित हो गया है। भविष्य में यहां न तो जाट राज रहेगा ना ही राजपूत राज केवल जनता का राज रहेगा।''[304] दूसरी तरफ राज्य में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ता जा रहा था महाराजा भरतपुर राज्य में कानून व व्यवस्था बनाए रखने में असफल हो गए तथा स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय ध्वज की अवमानना करने और राष्ट्र–विरोधी गतिविधियों के कारण भरतपुर का प्रशासन भारत सरकार ने हस्तगत कर लिया।[305] इस प्रकार जनता को राजशाही से पूर्णतयाः मुक्ति मिली और भारत संघ में रियासत के विलय का उनका सपना साकार हो गया।

धौलपुर

धौलपुर रियासत में राजनीतिक प्रतिरोध व स्वशासन की मांग 1918 ई. में आर्य समाजी नेता स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में शुरू हुई।[306] इस आन्दोलन में बहुत से कार्यकर्ताओं को जेल में डाला गया। आन्दोलन का अंत स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु के साथ हुआ। 1936 ई. में धौलपुर प्रजामण्डल की स्थापना की गई। रियासती प्रशासन की नीति शुरू से ही दमनकारी रही राजराणा उदयभान सिंह ने प्रजामण्डल को समूल नष्ट करने की पूरी चेष्टा की। 29 अप्रेल, 1940 ई. में एक प्रस्ताव पास करके पूर्वी राजपूताना परिषद् द्वारा पूर्वी राजपूताना की रियासतों में उत्तरदायी सरकार की मांग की गई यह सम्मेलन भदाई नामक गांव में हुआ।[307] शासकों से आग्रह किया गया कि वे समयानुसार प्रशासन में जनता को भागीदार बनाने का प्रयास करें। धौलपुर सरकार पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 1941 में ही आचरण सम्बन्धी नियम बनाकर राजकीय कर्मचारियों को आन्दोलन में भाग लेने से रोक दिया गया।[308]

12 नवम्बर, 1946 ई. को धौलपुर प्रजामण्डल ने तसीमो गाँव में अपना अधिवेशन बुलाया। रियासती प्रशासन ने असामाजिक तत्वों और पुलिसकर्मियों की सहायता से उसे विफल करने का प्रयास किया।[309] प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं को तिरंगा नहीं फहराने दिया गया तथा पिटाई की गई। स्त्रियों को अपमानित किया गया

और निर्दोष किसानों के घरों को लूटा गया। प्रजामण्डल ने 23 दिसम्बर, 1946 को अपनी सभा में राज्य की दमनकारी नीति की आलोचना करते हुए भविष्य में गुंडागर्दी से बचने के लिए एक स्वयंसेवी दस्ते का गठन किया। चूंकि तसीमो गांव के लोगों ने प्रजामण्डल की सहायता की अतः सरकार ने 8 अप्रैल, 1947 को गांव में गोलियां चलवाईं जिसमें दो व्यक्ति मारे गये। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के उपाध्यक्ष पट्टाभि सीताराम्मया ने हीरालाल शास्त्री और गोकुल भाई भट्ट को राज्य की वास्तविक स्थिति के अध्ययन हेतु धौलपुर भेजा।

1947 ई. में भारत की स्वतन्त्रता के समय राजराणा धौलपुर उदयभान सिंह अन्त तक भारतीय संघ में विलय को तैयार नहीं थे किन्तु राज्य की बिगड़ती व्यवस्था और जन–आन्दोलनों के कारण उन्होंने विलय–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। प्रजामण्डल के सतत् प्रयास और बढ़ते दबाव के फलस्वरूप अन्ततः धौलपुर के राजराणा ने 4 मार्च, 1948 को राज्य में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के सम्बन्ध में प्रजामण्डल के नेताओं से विचार–विमर्श किया और संवैधानिक सुधारों के लिए सहमति प्रकट की।[310]

करौली

यहां पर यादव वंश का शासन था यद्यपि करौली प्रजामण्डल की स्थापना 1938 ई. में हो चुकी थी तथापि इन्होंने रचनात्मक सुधारों पर ही जोर दिया उत्तरदायी शासन की मांग नहीं की फिर भी राजा भीमपाल इस संस्था के दमन के हरसंभव प्रयास करते रहे।[311]

1939 ई. में प्रजामण्डल के नेताओं ने सरकार से मांग की कि 5 सदस्यों की एक समिति का गठन किया जाये, जिसमें तीन सदस्य जनता के प्रतिनिधि हों। यह समिति प्रशासनिक ढांचे की जांच करे और अपनी रिर्पोट सरकार के समक्ष प्रस्तुत करे। स्थानीय स्वशासन की स्थापना की जाये। सरकार ने प्रजामण्डल की मांगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।[312]

1946 ई. में पड़ौसी राज्यों के राजनीतिक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन करौली में हुआ, जिसमें प्रथम बार करौली में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए मांग

प्रस्तुत की गई। जब सरकार ने उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए 1947 ई. तक कुछ भी नहीं किया तो रियासत की जनता ने विलय की मांग शुरू कर दी।[313]

जयपुर

अन्य रियासतों के समान जयपुर रियासत के शासक भी प्रशासन विरोधी गतिविधियों पर अंकुश रखने के लिए अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगा कर बैठे थे। जयपुर दरबार ने राष्ट्रवादी समाचार पत्रों यथा कर्मयोगी, अमृत बाजार पत्रिका, राष्ट्रमत, काल केसरी इत्यादि के रियासत में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा रखे थे।[314] जयपुर में अर्जुन लाल सेठी के नेतृत्व में आरम्भिक जन–जागरण के बीज पड़े।

1 सितम्बर, 1927 ई. में हजारों की संख्या में जनता कुप्रशासन एवं नए कर लगाने के विरोध में सड़कों पर उतर आई पुलिस की गोलीबारी में एक व्यक्ति मारा गया तथा 37 गम्भीर रूप से घायल हो गये।[315] 2 सितम्बर को फिर से सभा हुई तथा पुलिस ज्याद्तियों की आलोचना करते हुए उत्तरदायी शासन की मांग की गई। पाँच दिन तक घटनाक्रम अनवरत चला और ब्रिटिश रेजिडेंट के आश्वासन के बाद स्थिति सामान्य हो पाई।[316]

अप्रेल 1931 ई. में 'मोती लाल दिवस'' मनाया गया खादी भण्डार के बहुत से कार्यकर्ताओं को बंदी बना कर अलग–अलग अवधि के कारावास की सजा सुनाई गई।[317] **रियासती प्रशासन के** दमन चक्र तथा हतोत्साहित जनता में जन–चेतना का प्रादुर्भाव करने हेतु 1931 ई. में ही कपूर चन्द पाटनी के नेतृत्व में प्रजामण्डल की स्थापना की गई।[318] तथा इसे राजनीतिक की अपेक्षा सामाजिक व आर्थिक जन–आन्दोलन के रूप में संचालित करने का कार्य किया गया। इसका उद्देश्य सामाजिक सुधारों की मांग करना और खादी को बढ़ावा देने तक सीमित हो गया।[319] यह प्रजामण्डल का निष्क्रियता काल था। 1938 तक जयपुर प्रजामण्डल राजनीतिक गतिविधियों से दूर रहा तथा किसी औपचारिक संविधान का भी अपने लिए निर्माण नहीं किया।[320]

जनवरी 1934 में जयपुर–सीकर विवाद का आरम्भ हुआ। सीकर में जाटों ने महायज्ञ के आयोजन की घोषणा की किन्तु सीकर के महाराजा ने आयोजन समिति को

सीकर छोड़ने का आदेश दिया परन्तु समिति द्वारा आदेश का पालन नहीं करने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। फलस्वरूप 200 कृषकों ने राज्य परिषद् को सीकर रावराजा के विरूद्ध ज्ञापन सौंपा। जयपुर व सीकर के मध्य एक समझौते पर सहमति हो गई किन्तु सीकर रावराजा द्वारा इसका पालन नहीं करने पर जाट कृषकों ने जन–आन्दोलन खड़ा कर दिया। अप्रेल 1935 में स्थिति के गंभीर होने पर पुलिस ने दो बार गोली बारी की जिसके कारण 12 जाट कृषक मारे गये।[321]

इस घटना की जाट महासभा, अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद्, राजपूताना–मध्य भारत सभा इत्यादि राजनीतिक संगठनों ने निंदा की तथा केन्द्र–सरकार से इसमें हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया।[322] जयपुर रियासत ने स्थिति की गंभीरता को देखते हुए कृषक प्रदर्शनों का दमन करने का हरसंभव प्रयास किया, बाहरी लोगों के आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया किन्तु आन्दोलन पूरे शेखावाटी क्षेत्र में तेजी से फेला।[323] 1937 में किसान सभा का जयपुर प्रजामण्डल में विलय हो गया। 1938 ई. में जमनालाल बजाज जयपुर प्रजामण्डल के अध्यक्ष बने। उनके नेतृत्व में जयपुर प्रजामण्डल ने संवैधानिक सुधार तथा कृषक अधिकारों के लिए विरोध प्रदर्शन शुरू किया।[324] इधर प्रजामण्डल की स्थापना के बाद शेखावाटी में कृषक समस्या फिर से उग्र हो गई।[325]

रियासती सरकार ने सम्पूर्ण जन–आन्दोलन को कुचलने के लिए 16 दिसम्बर, 1938 को जमनालाल बजाज जो कि प्रजामण्डल अध्यक्ष थे के जयपुर रियासत की सीमा में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। बजाज ने इस आदेश की अवहेलना करते हुए 1939 ई. से राज्य में सत्याग्रह के प्रारम्भ की घोषणा की।[326] राज्य में तनावपूर्ण माहौल बन गया यहां तक कि महात्मा गांधी ने जयपुर रियासत को चेतावनी दी कि ''जयपुर की समस्या को भारत की समस्या मानने के अलावा अब कांग्रेस के पास कोई विकल्प नहीं था।''[327] गांधी जी की चेतावनी के बाद प्रधानमंत्री ब्यूंचप ने न केवल बजाज को छोड़ दिया अपितु प्रजामण्डल के साथ समझौता वार्ता के लिए भी राजी हो गया।[328]

7 फरवरी, 1939 ई. को सरदार सभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई इस सभा के समस्त सदस्य अभिजात वर्गीय सामंत थे। उन्होंने प्रजामण्डल की

गतिविधियों की खुल कर आलोचना की तथा 1 मार्च को प्रजामण्डल द्वारा मनाये जाने वाले कृषक दिवस के कार्यक्रम का दमन करने की पूरी तैयारी की।[329] 1 मार्च, 1939 से 19 मार्च तक यह आन्दोलन चला जब तक की सरकार ने प्रजामण्डल को वैधानिक संस्था नहीं मान लिया तथा आन्दोलन के दौरान पकड़े गये लोगों को भी मुक्त कर दिया गया।[330] द्वितीय विश्व युद्ध के समय प्रजामण्डल ने रियासत की नीतियों की आलोचना करते हुए उत्तरदायी सरकार की मांग रखी। इसी कारण रियासत के नए प्रधानमंत्री राजा ज्ञान राय ने प्रजामण्डल को परिणाम भुगतने की धमकी दी[331] तथा फरवरी, 1940 ई. में पुलिस द्वारा प्रजामण्डल के कार्यालय पर छापा मार कर बहुत सारे कागजात जब्त कर लिए गए।[332] तथापि रियासत और प्रजामण्डल के बीच समझौता हो गया तथा 2 अप्रैल, 1940 को प्रजामण्डल को पुनः पंजीकृत कर लिया गया। जनता द्वारा पुनः सभाओं तथा प्रदर्शनों का आयोजन शुरू कर दिया गया। मई 25, 1940 में प्रजामण्डल के जयपुर के अधिवेशन में जमनालाल बजाज ने कहा कि ''सम्पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की प्राप्ति की ध्येय है हमें उत्तरदायी शासन का मात्र दिखावा नहीं चाहिए। उत्तरदायी सरकार अपने आप में एक ऐसी शक्ति है जो किसी एक व्यक्ति के हाथों में नहीं हो सकती क्योंकि वास्तविक शक्ति जनता में निहित है।''[333]

भारत छोड़ो आन्दोलन के समय रियासत से हुए समझौते के कारण हीरालाल शास्त्री ने व्यापक जन संघर्ष नहीं छेड़ा। प्रजामण्डल ने केवल अंग्रजों के विरूद्ध प्रदर्शन किया, रियासत व महाराजा के विरूद्ध कोई प्रदर्शन नहीं किया गया। कुछ लोगों द्वारा आजाद मोर्चे का गठन किया गया [334] जिसमें रामकरण जोशी, बी.एस. देशपांडे, लादूराम जोशी, पंडित हरिशचन्द्र, ओम दत्त शास्त्री इत्यादि थे इन्होंने आन्दोलन चलाया तथा गिरफ्तार किए गए।[335]

महाराजा जयपुर द्वारा अक्टूबर 1942 में संवैधानिक सुधारों की घोषणा करते हुए एक कमेटी का गठन किया गया।[336] कमेटी ने अप्रेल 1943 ई. में अपनी रिर्पोट प्रस्तुत की जिसकी सिफारिशों को दो साल तक लागू नहीं किया गया। अंत में 1945 में विधान सभा के चुनाव करवाए गए जिसमें प्रजामण्डल को जनता का खुला समर्थन प्राप्त हुआ।[337]

अगले 2 वर्षों 1945 से 1947 तक का समय केन्द्र में महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तनों का रहा। 25 जुलाई, 1947 की नरेन्द्र मण्डल की ऐतिहासिक सभा के पश्चात् बड़े बेमन से जयपुर के महाराजा जयसिंह ने विलय–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। तथा 1949 ई. में जयपुर रियासत राजस्थान संघ में एकीकृत हो गई। इस प्रकार जन–मानस को उनकी वास्तविक उत्तरदायी सरकार प्राप्त हो गई।

किशनगढ़, शाहपुरा, प्रतापगढ़, लावा तथा टोंक इत्यादि छोटी रियासतों के शासक भी अन्त तक आम जन के जागरण व चेतना का दमन करने के प्रयास करते रहे वे जनता में व्याप्त राष्ट्रीयता की भावना को समझने में नाकाम रहे। देशी राजाओं की जनता को संवैधानिक सुधार तथा उत्तरदायी शासन प्रदान करने में हिचकिचाहट व देरी अन्ततः उनके अपने अस्तित्व के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई।[338]

प्रजामण्डल, प्रजा परिषद्, लोक परिषद् और किसान सभा इत्यादि की स्थापना ने नागरिकों में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना उत्पन्न की। महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल तथा अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों के त्याग और बलिदान, राजस्थान की जनता के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने और इस प्रकार देशी रियासतों की जनता का एक लम्बा संघर्ष अन्ततः सफलता के साथ समाप्त हुआ।[339]

संदर्भ सूची

1. राधा कुमुद मुखर्जी– नेशनलिज्म इन हिन्दु कल्चर, लंदन, 1921 पृ. 50–52
2. वारेन हेस्टिंग्ज के विचारों का जवाहर लाल नेहरू की पुस्तक 'दि डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में उद्धरण न्यूयार्क, 1946 पृ. 270
3. बीकानेर राज्य में राजनैतिक जागरण–स्वरूप एवं प्रभाव – बेला भनोत, रामप्रसाद व्यास अभिनन्दन ग्रन्थ
4. a साइमन कमीशन रिपोर्ट,

   b जरमनी दास– महाराजा पृ. 358
5. मंजु गुप्ता – स्वतंत्रता संग्राम एवं जमनालाल बजाज पृ. 102
6. मोहनलाल गुप्ता– ब्रिटिश भारत में राजपूताने की रोचक व ऐतिहासिक घटनाऐं पृ. 246–247
7. जरमनी दास, 'महाराजा' पृ. 356
8. उपरोक्त पृ. 358
9. मंजू गुप्ता– स्वतंत्रता संग्राम एवं जमनालाल बजाज पृ. 102
10. एफ. के. कपिल – राजपूताना स्टेट्स (1817–1950) पृ. 121
11. आर. एल. हाड़ा (सं.)– जय नारायण व्यास कॉमिमोरेशन वॉल्यूम, एन आर्टिकल बाय यू. एन ढेबर
12. कार्ल मार्क्स–लैटर्स ऑन इण्डिया (द नेटिव स्टेट्स) पृ. 52
13. जी.एन. सिंह–इण्डियन स्टेट्स एण्ड द ब्रिटिश इण्डिया, पृ. 50
14. वी.पी.मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 11
15. दाऊदयाल आचार्य– भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ.355
16. राजस्थान सुजस, जून–जुलाई 1998 ई. पृ. 5
17. लैरी कॉलिंस एवं डॉमिनिक लैपियर–फ्रिडम एट मिडनाइट पृ. 172–73
18. जरमनीदास– महाराजा पृ. 382
19. पी.एल. छुग्गर– द इण्डिन प्रिंसेस अंडर ब्रिटिश प्रोटेक्शन
20. आर. एल. हाड़ा– जय नारायण व्यास कोमेमोरेशन वॉल्यूम, आर्टिकल बाय राजबहादुर पृ. 21
21. रामनारायण चौधरी – 20वीं सदी का राजस्थान पृ. 282
22. उपरोक्त पृ. 282
23. राजस्थान सुजस, जून–जुलाई 1998 का अंक पृ. 5
24. उपरोक्त
25. हेनरी कॉट्स– इण्डिया इन ट्रांजिक्शन

26. सी. एच. फिलिप– द इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान (1958–1947) स्लेक्ट डॉक्युमेन्ट्स पृ. 424
27. उर्मिला फडनीस– टूवर्ड्स द इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 80
28. आर. एल. हाड़ा– हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स पृ. 3
29. विद्या हेमचन्द्र छगानी– ओपन लैटर टू द वायसराय एण्ड गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया, दिनांक 22 नवम्बर 1929, अरविंद प्रिंटिंग प्रेस मुम्बई पृ 1–2
30. उर्मिला फड़नीस– टूवर्ड्स द इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 81
31. आर.सी. मजूमदार– ब्रिटिश पेरामाऊन्टेसी एण्ड इण्डियन रेंनेसा, बॉम्बे 1963 पृ. 960
32. a विद्या हेमचन्द्र छगानी– ओपन लैटर टु द वायसराय एण्ड गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया, दिनांक 22 नवम्बर 1929, अरविन्द प्रिटिंग प्रेस मुम्बई पृ. 2
    b वी. पी. मेनन– द स्टोरी ऑफ दि इन्टिग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स पृ. 12
33. जरमनी दास– महाराजा पृ. 381–382
34. हरिजन, दिनांक 7 अक्टुबर 1939
35. 1941 का गीत, गांवों की पुकार स्वाधीनता के गीत राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर, 1987ई.
36. जोधपुर जागीर रिकॉर्ड फाइल नं c/3/4, भाग–एक 1932, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
37. विक्रमाद्वित्य चौधरी –राजस्थान के किसान आंदोलन पृ. 25–30
38. बुलेटिन इस्यूड बाइ दी मारवाड़ किसान सभा 'एन अपील टू किसान्स' दिनांक 9 जून 1942 जोधपुर प्रजामण्डल रिकॉर्ड, फाइल नं0 3 रा.रा.अभिलेखागार बीकानेर ।
39. बोम्बे क्रोनिकल, दिनांक 12 मई, 1942 ई. 4
40. सारंगधरदास – रिपोर्ट आन एनक्वायरी इन टू दी रिलेशन्स बिटविन लैण्ड लौर्डस एण्ड टेनेन्ट्स, पृ0 86
41. प्रजासेवक, दिनांक 29 अप्रैल 1941, जोधपुर
42. पत्रों के प्रकाश में जनसेवक स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, गोविन्द अग्रवाल, पृ.30
43. उपरोक्त, पृ.34
44. भगवानदास केला– देशी राज्यों की जनजागृति, 1948 ई. 236
45. उपरोक्त पृ. 2
46. रामनारायण चौधरी – 20 वीं सदी का राजस्थान पृ. 279
47. विशाल भारत, नवम्बर, 1928 पृ. 589–91 लेख– देशी राज्यों की समस्या– रामनारायण चौधरी।

48. शंकरसहाय सक्सैना – पथिक पृ. 266
49. a स्वाधीनता के गीत– राज्य अभिलेखागार बीकानेर पृ.80,
b राष्ट्रीय गायन – किसानों की पुकार 1941
50. रामनारायण चौधरी– 20 वीं सदी का राजस्थान पृ. 278
51. एस.एच. पाटिल – दी कांग्रेस पार्टी एण्ड प्रिन्सली स्टेट्स, पृ. 14–15
52. रूडोल्फ व रूडोल्फ– राजपूताना अंडर ब्रिटिश पैरामाउन्टेसी, पृ. 16–17
53. जी.आर. अभ्यंकर– प्राब्लम ऑफ इण्डियन स्टेट्स पूना 1928 पृ. 22
54. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ. 13
55. राबर्ट. डबल्यू. स्टर्न.– अप्रोच टू पॉलिटिक्स इन द प्रिंसली स्टेट्स, द्वारा लेख रॉबिन ज्योफ्रि–पीपल, प्रिंस एण्ड पेरामाउन्ट पावर, आक्सफोर्ड 1978 पृ. 369
56. के.एम. पणिक्कर – द सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, 1957 पृ. 217–18
57. वी.डी.माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेन्स पृ. 16
58. हरविलास शारदा– लाईफ ऑफ दयानंद सरस्वती पृ. 284
59. कमल एण्ड जैन – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन–आंदोलन, निर्मला गुप्ता द्वारा लिखित लेख–''राजस्थान में राजनीतिक जनजागृति'' पृ. 157
60. एम. के. गांधी. –''इण्डियन स्टेट्स प्रोब्लम'' अहमदाबाद से प्रकाशित पेम्पलेट 1941 पृ. 7
61. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ. 21
62. के.एस. सक्सेना – दी पॉलिटिकल मूवमेंट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान पृ. 147– 48
63. a रामपाण्डे – पीपल्स मूवमेंट इन राजस्थान खण्ड। पृ. 53
b भगवानदास केला– देशी राज्यों की जनजागृति पृ. 46
64. a एस.एस. सक्सेना – हिस्ट्री ऑफ बिजौलिया पीसेन्टस मूवमेंट, बीकानेर 1972 पृ. 236
b राजस्थान सुजस, जून–जुलाई 1998
65. a रामनारायण चौधरी – 20 वीं सदी का राजस्थान पृ. 95
b प्रताप, जुलाई 27, 1925
66. रामनारायण चौधरी – 20 वी सदीं का राजस्थान पृ. 91– 93
67. पृथ्वीसिंह मेहता– हमारा राजस्थान , पृ. 388
68. वी.डी. माथुर– द रोल ऑफ ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेस विद स्पेशल रेफ्ररेन्स ऑफ राजस्थान ''शोधक' VOl–9 पार्ट A सिरियल न0 25, पृ. 25
69. रिपोर्ट ऑफ ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस, हेल्ड एट बोम्बे 1927, पृ. 1
70. रिजोल्यूशंस : ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेन्स, बम्बई 1927 रिलेटिड पेपर्स नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाईब्रेरी नई दिल्ली।

71. ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस फाईल न0 25/6 नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी नई दिल्ली।
72. वी.डी माथुर – स्टेट्स पीपल्स कांन्फ्रेस , पृ. 71
73. रामनारायण चौधरी– आधुनिक राजस्थान का उत्थान, अजमेर 1974 पृ. 104
74. कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस आर्टिकल II – ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पेपर्स– नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाईब्रेरी, नई दिल्ली।
75. सुमनेश जोशी – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, जयपुर 1976 पृ. 266
76. वी.डी.माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पृ. 70
77. कमल एण्ड जैन– भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आन्दोलन, निर्मला गुप्ता का लेख 'राजस्थान में राजनीतिक जनजागृति', पृ. 163
78. एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स 1817 – 1950 पृ. 154– 155
79. गुप्ता एवं श्रीवास्तव – स्वाधीनता आन्दोलन में बुद्धिजीवियों की भूमिका पृ. 136
80. राम पाण्डे– राजस्थान में जन आन्दोलन के विभिन्न आयाम व स्वरूप पृ. 178 द्वारा लेख कमल एंव जैन –भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आंन्दोलन
81. जय प्रकाश शर्मा– राजस्थान में स्वतंत्रता पूर्व विरोध आन्दोलनों की प्रकृति एवं उनका प्रभाव पृ. 138
82. उपरोक्त पृ. 140
83. देव कोठारी (सं.) – स्वतंत्रता आंदोलन में मेवाड़ का योगदान, बृजकिशोर शर्मा का लेख, मेवाड़ प्रजामंडल की सामाजिक व वैचारिक पृष्ठभूमि पृ. 83
84. कमल एवं जैन, (सं.) – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आन्दोलन पृ. 180
85. कमल एवं जैन (सं.)–भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन –आंदोलन, वी.डी. माथुर का लेख राजस्थान में स्वतंत्रता संग्रामः एक विहंगावलोकन पृ. 172
86. कमल एवं जैन (सं.) – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आन्दोलन पृ. 181
87. उपरोक्त पृ. 180
88. आर.पी. व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, VOL II पृ. 291
89. एम.एस.जैन. – आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ. 310–311
90. कमल एवं जैन (सं.) भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आन्दोलन पृ. 140
91. रिचार्ड सिसॉन– दी कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान पॉलिटिकल इन्टीग्रेशन एण्ड इन्स्टीट्यूशन बिल्डिंग इन एन इण्डियन स्टेट, यूनिवर्सिटी ऑफ ऑक्सफोर्ड प्रेस दिल्ली 1972, पृ. 24
92. 'उपरोक्त'
93. आर.पी. व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास पृ. 319

94. बी.एल.पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम – पृ. 66
95. कमल एवं जैन (सं.)– भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन–आंदोलन, जयप्रकाश शर्मा का लेख– स्वतंत्रता – पूर्व राजस्थान में विरोध आन्दोलनों की प्रकृति एवं उनका प्रभाव पृ. 143
96. रिचर्ड सिसॉन एवं लॉरेन्स एल. श्रेडर– लेजिस्लेटिव रिक्रूटमेंट एण्ड पोलिटिकल इन्टिग्रेशन पेटर्नस ऑफ पालिटिकल लिंकेज इन इण्डियन स्टेट रिसर्च न0 6 यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया, 1972 पृ. 19
97. विनीता परिहार– राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 141
98. रामपाण्डे – राजस्थान के जन– आंदोलन के विभिन्न आयाम व स्वरूप पृ. 179
99. उपरोक्त पृ. 180
100. जेम्स टॉड– एनल्स एण्ड एन्टिक्यूटिज ऑफ राजस्थान VOL I कलकत्ता 1884 पृ. 161
101. शंकर सहाय सक्सैना – जो देश के लिए जिए पृ. 101
102. जोधपुर कॉन्फिडेन्शियल रिकॉर्ड ग्रुप – एफ एडमिनिस्ट्रेशन, फाइल न0 132, बस्ता न0 25 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
103. रतनलाल मिश्र– राजस्थान का स्वतंन्त्रता संग्राम दुर्लभ दस्तावेज पृ0 148
104. कमल एवं जैन – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आन्दोलन, जयप्रकाश शर्मा का लेख, स्वतन्त्रता– पूर्व राजस्थान में विरोध आन्दोलनों की प्रकृति एवं उनका प्रभाव पृ. 142
105. a क्षात्र धर्म पत्रिका अंक 3 व 4 पृ. 51
b रतन लाल मिश्र – राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम दुलर्भ दस्तावेज पृ. 128
106. मंजू गुप्ता– स्वतंत्रता संग्राम एवं जमनालाल बजाज पृ. 118
107. विशाल भारत – सम्पादकीय लेख – जून 1929 पृ. 830
108. विनीता परिहार – राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 141
109. अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का संविधान 26 जून 1939 पृ. 1
110. कमल एवं जैन (सं.)– भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आन्दोलन, वी.डी.माथुर का लेख –राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम एक विहंगावलोकन पृ. 172
111. विशाल भारत में प्रकाशित ''रियासती प्रजा का स्वाधीनता संग्राम 'जुलाई 1946 पृ.41
112. श्री घनश्याम दास बिड़ला का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नयन में योगदान–अप्रकाशित शोध प्रबंध, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, मानव प्रकाश शर्मा पृ.204–5
113. महात्मा गांधी का एन.सी केलकर को पत्र, जून, 1934
114. विशाल भारत, संपादकीय विचार, अगस्त 1934 पृ. 238– 239
115. द कांग्रेस पॉलिसी टुवर्ड्स स्टेट् बम्बई 1938 पृ. 1

116. कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव – बम्बई 28 अक्टूबर 1934 पृ. 1
117. राजेन्द्र प्रसाद – ओटोबायोग्राफी पृ. 412
118. पट्टाभि सीताराम्मया– कांग्रेस का इतिहास भाग ॥ पृ. 79–80
119. दुलर्भ दस्तावेज – रतन लाल मिश्र पृ. 141
120. वी.डी.माथुर – स्टेट् पीपल्स काफ्रेंस पृ. 57
121. हरिजन, दिनांक 26 फरवरी 1938
122. पट्टाभि सीतारामया– कांग्रेस का इतिहास पृ.80
123. रिपोर्ट ऑफ द 52 इण्डियन नेशनल कांग्रेस, त्रिपुरी (जबलपुर) दिनांक 10 से 12 मार्च 1939 पृ.656, इण्डियन नेशनल कांग्रेस पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम नई दिल्ली।
124. ''द स्टेट्स पीपल्स'' भाग । न0 6 मार्च 1939 पृ.17
125. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पृ. 59
126. जरमनीदास– महाराजा पृ. 301
127. 'उपरोक्त'
128. a राजस्थान संघ के प्रथम प्रधानमंत्री गोकुल लाल असावा द्वारा 6 जनवरी 1979 को दिया गया साक्षात्कार वी.डी. माथुर द्वारा उद्धत – स्ट्रेट पीपल्स कॉन्फ्रेंस – पृ.60
b एन.एन मित्रा –द इण्डियन ऐनुअल रजिस्टर VOL। 1947 पृ. 218
129. वी.डी. माथुर– स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेंस पृ. 60
130. प्रिंसेज क्लेम रिप्यूडिकेटिक : पीपल नॉट बांउड बाय ट्रिटीज– द स्टेट्स पीपल भाग 2 न05 फरवरी 1940 पृ.13–14
131. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रस्ताव 1940 – 46 इलाहबाद पृ. 45, 66, 93, 94
132. टाईम ओनली टू लुक फॉरवर्ड – स्पीचिज ऑफ माउंटबेटन 1947–48 पृ. 13–18
133. एम.के.गांधी – द इण्डियन स्टेट्स प्राब्लम, अहमदाबाद 1941 पृ. 65
134. यंग इण्डिया, 8 जनवरी 1925
135. विश्वामित्र, दिनांक 4 अगस्त 1942 प्रेस कंटिग्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
136. ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस रिजोल्यूशन, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम नई दिल्ली।
137. विश्वामित्र दिनांक 4 अगस्त, 1942, प्रेस कंटिग राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर
138. 17 जनवरी 1946 ई. को नरेन्द्र मंडल की बैठक में वायसराय लार्ड वेवल द्वारा दिया गया भाषण।
139. नरेन्द्र मंडल के चांसलर नवाब भोपाल हमीदुल्ला का भाषण दिनांक 17 जनवरी 1946 ई.
140. कमल एवं जैन – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आंदोलन वी.डी. माथुर का लेख राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्रामः एक विहंगावलोकन पृ. 175

141. आल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पेपर्स नेहरू मेमोरियल म्यूजियम, नई दिल्ली।
142. आल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस, रिजोल्यूशन नेहरू मेमोरियल म्यूजियम नई दिल्ली।
143. माईकल एडवर्ड– द लास्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया पृ. 197
144. हिन्दुस्तान टाइम्स, 1947
145. दुर्गा प्रसाद द्वारा जी.आर. अभ्यंकर को लिखा पत्र दिनांक 14 जनवरी 1928
146. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ.33
147. रिपोर्ट ऑफ इण्डियन स्टेट्स कमेटी दिल्ली, 1929
वी.डी. माथुर– स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ.33
148. सी. वाई. चिंतामणी, का 1929 के बम्बई अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण, ए.आई. एस.पी.सी. पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम नई दिल्ली।
149. ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स रिजोल्यूशन बम्बई 1931
150. एम.के.गांधी– द इण्डियन स्टेट्स प्रोब्लम, अहमदाबाद पृ.29
151. रिपोर्ट ऑफ ऑल इण्डिया स्टेटस पीपल्स कॉन्फ्रेंस 1939 नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी नई दिल्ली।
152. एन.एन. मित्रा– द इण्डियन एन्यूअल रिजस्टर भाग I, 1946, पृ. 213
153. उपरोक्त पृ. 214
154. 'हिन्दुस्तान टाइम्स' 21 मार्च 1947
155. नेशन (कलकत्ता) दिनांक 21 अप्रैल 1947
156. वी.बी. कुलकर्णी – ' ब्रिटिश स्टेट्समैन इन इण्डिया' बम्बई 1961 पृ. 489
157. माउंटबेटन स्पीचिज– टाइम ओनली टू लुक फॉरवर्ड 1947 – 48 लंदन, 1949 पृ. 13–18
158. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पृ. 47
159. आल इण्डिया – स्टेट्स कॉन्फ्रेंस पेपर, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी नई दिल्ली।
160. 'द हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 सितम्बर 1929
161. 'तरूण राजस्थान– सितम्बर 29, 1929
162. 'त्याग भूमि' नवम्बर27 , 1931
163. उपरोक्त
164. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पृ.72
165. बाबा नरसिंह दास नवम्बर 4, 1937 को अखिल भारतय कांग्रेस समिति को लिखा पत्र
166. मारवाड़ लोक परिषद के संविधान की धारा न0 2 1938 ई
167. सौभाग माथुर – स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़ पृ. 59
168. नवज्योति नवम्बर 1, 1938 जयनारायण व्यास का लेख ' देशी राज्य लोक परिषद'

169. सौभाग माथुर – फॉरमेशन ऑफ मारवाड़ लोक परिषद, जयपुर 1968 पृ.1430
170. 'द' ट्रिब्यून ' अक्टूबर 1, 1929
171. रामनारायण चौधरी– आधुनिक राजस्थान पृ. 138
172. करणीसिंह – दी रिलेशन्स ऑफ हाउस ऑफ बीकानेर विद द सेन्ट्रल पावर्स पृ. 378
173. विनीता परिहार– 'मारवाड़ में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 53
174. फाइल क्रमांक 97,1941 जयनारायण व्यास और किसानों की समस्या पृ. 14, राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
175. आदेश क्र.सी. 2644, 8 दिसम्बर 1937 1937, न्याय मंत्री द्वारा प्रधानमंत्री जोधपुर को भेजा गया पत्र राजकीय अभिलेखागार बीकानेर।
176. बालकृष्ण थानवी–'मारवाड़ लोक परिषद का जन आन्दोलन' पृ.3
177. सौभाग माथुर – स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़ पृ. 67
178. सुमनेश जोशी – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, जयपुर 1976 पृ. 269
179. द जोधपुर गवर्नमेंट गजट (एक्सट्रा ऑर्डिनरी) मार्च 28, 1940
180. a हरिजन जून 20, 1940
b हिन्दुस्तान टाइम्स, अप्रैल 17, 1940
181. सौभाग माथुर – स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल मवर्नमेंट इन मारवाड़ पृ. 79
182. हिन्दुस्तान टाइम्स, 27 जून 1940
183. नेशनल कॉल, जनवरी 31, 1941
184. हिन्दुस्तान टाइम्स 18 जून 1941
185. सौभाग माथुर – स्ट्रगल फार रेस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़ पृ. 92–94
186. लैटन न0 टी/79 दिंनाक 12 मई 1942 आई.जी.पी. जोधपुर द्वारा प्रधानमंत्री डोनाल्ड को लिखा पत्र फाइल न 24/2 भाग । (पॉलिटिकल) गवर्नमेंट ऑफ जोधपुर राजकीय अभिलेखागार बीकानेर
187. 'जोधपुर अगेन' एडिटोरियल इन ' नेशनल हेराल्ड' जुलाई 11, 1942
188. द हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 22, 1942
189. गुप्त पत्र न. एस बी/108 अक्टूबर 10, 1942 आई. जी.पी. जोधपुर द्वारा प्रधानमंत्री को पत्र
190. विनीता परिहार – 'राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 65
191. सौभाग माथुर – स्ट्रगल फॉर रिस्पोन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़ पृ. 142–43
192. जोधपुर सरकार गजट 9 और 21 जून 1947 राजकीय अभिलेखागार बीकानेर।
193. वी.डी. माथुर – ग्रोथ एण्ड प्रोग्रेस ऑफ स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस इन जोधपुर, एक शोधपत्र 1982
194. प्रजा सेवक, दिनांक 20 अगस्त 1941

195. जी.एच. ओझा– बीकानेर राज्य का इतिहास भाग । पृ. 96
196. एन.एम.मित्रा– ' द एन्यूअल रजिस्टर' कलकत्ता 1920 पृ. 189
197. चेतना मुदगल– बीकानेर में जन –आन्दोलन पृ. 65
198. दामोदर प्रसाद सिंघल – ड्रिमलैण्ड ऑफ रेस्पान्सिबल गवर्नमेंट इन बीकानेर, 1 जुलाई 1946 अलवर पृ. 4–5
199. ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम, नई दिल्ली।
200. a द हिन्दुस्तान टाइम्स, अगस्त, 2, 1937'
b ट्रिब्यून' अगस्त 2, 1934
c अर्जुन' अगस्त 2, 1934
201. सुमनेश जोशी– 'राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ. 330
202. चेतना मुद्गल – बीकानेर में जन आन्दोलन पृ. 66
203. a बीकानेर प्रजा परिषद की स्थापना, 1942 गंगादास कौशिक संग्रह बस्ता न.2 पत्रावली संख्या 15 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
b सुमनेश जोशी– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ. 761
204. a होम डिपार्टमेंट, बीकानेर 1945 न0 101 (हिस्ट्रशीट ऑफ रघुवरदयाल गोयल) पृ. 1– 19
b सुमनेश जोशी – उपरोक्त पृ. 762
205. सादुलसिंह द्वारा जवाहरलाल नेहरू को लिखा पत्र दिनांक 15 जुलाई 1947
206. बीकानेर विधान सभा एक्ट– 1945
207. a नवजीवन अप्रैल 8, 1946
b विश्वामित्र अप्रैल 9, 1946
208. 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' सितम्बर 5, 1946
209. चेतना मुद्गल – बीकानेर में जन आंदोलन पृ. 160
210. a सादुलसिंह द्वारा जवाहरलाल नेहरू को लिखा पत्र दिनांक 15 जुलाई 1947
b के.एम.मुंशी–पिलग्रीमेज टू फ्रिडम पृ. 484–85
211. इण्डियन न्यूज क्रॉनिकल, 27 1947
उर्मिला फड़नीस – टू द इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स, 1968 नई दिल्ली पृ. 169
212. लियोनार्ड मोसले– द लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज पृ. 175
213. दैनिक हिन्दुस्तान, 27 अगस्त, और 12 सितम्बर 1947
214. करणीसिंह – रिलेशन ऑफ दी हाउस ऑफ बीकानेर विद सैंन्ट्रल पावर पृ. 417
215. दाऊदयाल आचार्य– भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ. 354
216. जेम्स टॉड – एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान पृ. 6

217. 'जैसलमेर का जन आंदोलन– प्रांतीय कांग्रेस समिति जैसलमेर द्वारा प्रकाशित फाइल न0 1/जे. एस.एल राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
218. द हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 28, 1940
219. एफ.के. कपिल – राजपूताना स्टेट्स (1817–1950) पृ. 150
220. फाइल न. 1/जे.एस.एल 'जैसलमेर का जन– आंदोलन, राजकीय अभिलेखागार बीकानेर
221. लैटर न0 1619/418/90 दिनांक 22 मार्च 1941, फ्रॉम द रेजिडेन्ट ऑफ वेस्टर्न राजपूताना स्टेट एजेंसी 'वही' फाइल, अभिलेखागार बीकानेर।
222. a फाइल न. 1/जे.एस.एल 'राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
b सागरमल गोपा की डायरी का सारतत्व
223. विनीता परिहार– ' राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष, पृ. 138
224. भगवान दास केला– देशी राज्यों की जन–जागृति पृ. 206
225. उपरोक्त, पृ. 266
226. वी.पी. मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 112–114
227. देव कोठारी (सं.) – स्वतंत्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान' पृ. 83
228. के.एस. सक्सैना – द पॉलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकिंग इन राजस्थान पृ. 151
229. राजस्थान केसरी , जून 26, 1921
230. उपरोक्त, 19 जून 1921
231. पेमाराम– राजस्थान में कृषक आंदोलन पृ. 51
232. फाइल न0 428 – पी (सीक्रेट) ऑफ 1923 फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेंट, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।
233. ' उपरोक्त'
234. फाइल सं 100, महकमा खास पृष्ठ सं. 17 राज्य अभिलेखागार, उदयपुर
235. a फाइल सं. 20/1938 महकमा खास, राज्य अभिलेखागार, उदयपुर
b रोबिन ज्योफ्री – पीपल, प्रिंस एण्ड पेरामांउट पॉवर पृ. 323, 1978
236. फाइल सं. 30/1995, महकमा खास उदयपुर प्रजामण्डल सम्बंधी कागजात, राज्य अभिलेखागार उदयपुर।
237. ' शोधक भाग – 7 बी क्रमांक 20 पृ. 81
238. उपरोक्त पृ. 82
239. उदयपुर राजस्थान डिस्ट्रीक्ट गजेटियर्स जयपुर 1978 पृ. 60
240. एम.एल. सुखाड़िया– मेवाड़ प्रजामण्डल (1938–42) उदयपुर नवजीवन प्रेस।
241. उपरोक्त

242. उपरोक्त

243. फाइल न0 30/1995, प्रजामंडल सम्बन्धी कागजात, श्री महकमाखास, राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर (मेवाड़)

244. के.एम.मुंशी – 'पिलग्रीमेज टू फ्रीडम' पृ. 160

245. एस.एस. सक्सेना – हिस्ट्री ऑफ बिजौलिया पीजेन्ट मूवमेंट पृ. 208

246. राजपूताना राज्य पाक्षिक रिपोर्ट 1945 उदयपुर सी.बी.बस्ता न01 क्रमांक 02, पृ. 64 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।

247. 'नवजीवन' 7 मार्च 1946

248. सुमनेश जोशी – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी0 पृ. 350

249. एस.एस.गहलोत –राजस्थान इतिहास गवेषणा पृ. 40

250. विजयकुमार – ''सिरोही राज्य में प्रजामण्डल की स्थापना' राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' 1975 पृ. 105

251. सिरोही राज्य के प्रधानमंत्री द्वारा महाराव को 3 फरवरी 1939 को लिखा पत्र

252. सिरोही प्रजामण्डल फाइल न0 26 पृ. 30 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।

253. a बांसवाड़ा प्रजामण्डल फाइल न0 3, 1946 पृ. 21 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
b राजपूताना पाक्षिक रिपोर्ट 1945 पृ. 106 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
c सुमनेश जोशी– स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ. 355–56

254. बांसवाड़ा प्रजामण्डल फाइल न. 3 1946 पृ. 25
राजकीय अभिलेखागार बीकानेर।

255. बांसवाड़ा डिस्ट्रिक्ट गजट, बांसवाड़ा पृ. 34–35 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।

256. 1) रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान 1950– 51
2) वी.डी.माथुर – स्टेट पीपल कॉफ्रेंस पृ. 108
3) विनीता परिहार– राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 128

257. एस.के.सक्सैना– हिस्ट्री ऑफ बिजौलिया पीजेंट मूवमेंट पृ. 261

258. बस्ता न0 28 फाइल न0 252, बूँदी रिकॉर्डस राज्य अभिलेखागार बीकानेर

259. a वी.डी.माथुर– स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेस पृ. 102
b विनीता परिहार– राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 124

260. 'उपरोक्त'

261. बस्ता न0 28, फाइल न. 252, राजकीय अभिलेखागार बीकानेर।

262. एफ.के.कपिल – फ्रिडम मूवमेंट एण्ड रूलरस एटीट्यूड इन राजपूताना पृ. 152

263. सुमनेश जोशी– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 84–85

264. एफ.के.कपिल– राजपूताना स्टेट्स (1817–1950) पृ. 152
265. कॉन्फिडेन्शियल फाइल न0 12/33 महकमा खास कोटा, राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
266. 'उपरोक्त'
267. 'उपरोक्त'
268. राजपूताना राज्यों की पाक्षिक इन्टेलिजेन्स रिपोर्ट 1940–41
वी.डी.माथुर– स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ. 106
269. कोटा प्रजामण्डल पत्रिका नं0 23, अगस्त 1943 अभिलेखागार बीकानेर।
270. उपरोक्त
271. राजपूताना रियासतों की पाक्षिक रिपोर्ट नवम्बर 1942 पृ. 40 कोटा, अभिलेखागार बीकानेर
272. विनीता परिहार – राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष– पृ. 122–123
273. भगवान दास केला – देशी राज्यों की जन–जागृति पृ. 269
274. उपरोक्त
275. उपरोक्त पृ. 269– 70
276. कोटा राजपत्र (एक्सट्रा आर्डिनरी) अगस्त 1942
277. बस्ता न0 51– बी फाइल न0 148, पत्र क्रमांक 74/155/51 बी जनवरी 21, 1941 झालावाड़ के प्रधानमंत्री द्वारा पॉलिटिकल एजेंट, इस्टर्न राजपूताना स्टेट को भेजा गया पत्र अभिलेखागार बीकानेर।
278. झालावाड़ प्रजामण्डल फाइल न0 4 पृ. 10 अभिलेखागार बीकानेर
279. a भगवनादास केला– देशी राज्यों की जन जागृति पृ. 210
b प्रताप' जुलाई 29, 1925
280. वी.डी. माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ. 116
281. विनीता परिहार – राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 128
282. कमल यादव – देशी रियासतों में राजनैतिक चेतना और जन–आंदोलन पृ. 80
283. 'उपरोक्त' पृ. 148 अलवर पत्रिका 5 जनवरी 1946
284. वीर अर्जुन, 8 फरवरी 1946
285. अलवर बस्ता न0 3, फाइल न0 104/107 ए पृ. 119, अभिलेखागार बीकानेर
286. फाइल न0 52 एल/पी/46 पृ. 118, अभिलेखागार अलवर
287. फाइल नं.34 एल/पी/46 पृ. 195 अभिलेखागर अलवर
288. भगवान दास केला– देशी राज्यों की जनजागृति पृ. 218
289. वी.डी.माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ. 121
290. डी.डी. गौड़– कॉन्स्टीट्यूशनल डबलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स।पृ. 173
सुमनेश जोशी– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ. 313–14

291. रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ भरतपुर रियासत 1939–40 पृ. 4–5
292. डी.डी. गौड़– कॉन्स्टीट्यूशनल डबलपमेंट इन इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 174
293. भरतपुर राज–पत्र भाग XXX दिसम्बर 25, 1939
294. फाइल न. सी.बी./बी.एन/13/222 फोर्ट नाइटली इन्टेलीजेंस रिपोर्ट ऑफ राजपूताना स्टेट्स भरतपुर अभिलेखागार बीकानेर।
295. रिपोर्ट आन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ भरतपुर स्टेट 1940–41 पृ. 7
296. रिपोर्ट आन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ भरतपुर स्टेट 1941–42 पृ. 3–4
297. डी.डी.गौड़– कॉन्स्टीटयूशनल डवलपमेंट इन इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 175
298. ब्रज–जया समिति का नाम भरतपुर के महाराजा ब्रजेन्द्र व महारानी जया के नाम पर रखा गया
299. वी.डी.माथुर – स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस, पृ. 124
300. फाइल न0 सी.बी./बी..एन.13/224–1944–45 फोर्टनाइटली इंटेलीजेंस रिपोर्टस ऑफ राजपूताना स्टेट्स भरतपुर अभिलेखागर बीकानेर।
301. द इण्डियन एन्यूअल रजिस्टर, भाग–I जनवरी–जून 1946, पृ353
302. वी.डी.माथुर –स्टेट्स पीपल्स कॉफ्रेंस पृ. 125
303. फाइल न. सीबी/बीएन/214– फोर्टनाइटली इन्टेलिजेन्स रिपोर्ट ऑफ राजपूताना स्टेट्स, भरतपुर, अभिलेखागार बीकानेर
304. हिन्दुस्तान टाइम्स, 5 मार्च 1948
305. फाइल न. 11(17)पी. 47 भरतपुर अफेयर्स अलिगेशन्स अगेन्स्ट हिज हाईनेश भरतपुर, 1948 अभिलेखागार बीकानेर।
306. गंगाप्रसाद कमठान– 'धौलपुर का राजनीतिक इतिहास' (1857–1948) धौलपुर महात्मा गांधी रोड़ पृ. 5–8
307. हिन्दुस्तान टाइम्स 3 मई 1940
308. डी.डी. गौड़ कॉन्सटीट्यूशनल डबलपमेंट ऑफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 180
309. उपरोक्त
310. धौलपुर प्रजामण्डल फाइल नं. 42 अभिलेखागार, बीकानेर
311. विनीता परिहार– राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष पृ. 132
312. सुमनेश जोशी– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी जयपुर पृ. 525
313. त्रिलोक चंद माथुर द्वारा 28 अप्रैल 1939 ई. को हरिभाऊ उपाध्याय को लिखा पत्र – शोधक भाग 4 (सी)सिरियल न. 12, 1975 भुसावर पृ. 597–598
314. डी.डी. गौड़ –कॉन्सटीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 182–83

315. फॉरेन एण्ड पालिटिकल इन्टर्नल प्रोसिडिंग्स, मार्च 1910 पृ. 82–87 भाग ए राष्ट्रीय अभिलेखागार
316. एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स (1817–1950) पृ. 135–36
317. 7 सितम्बर 1927 के पत्र के साथ संलग्न स्मरण पत्र रेजिडेंट जयपुर द्वारा ए.जी.जी राजपूताना को भेजा पत्र फाइल न.
318. त्याग भूमि 6 मई 1931
319. सुमनेश जोशी – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ. 253
320. उपरोक्त
321. उपरोक्त
322. हिन्दुस्तान टाइम्स 26 मई 1935
323. द बोम्बे क्रॉनिकल 14 मई 1935
324. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 9 मई 1935
325. के.एस. सक्सैना – द पोलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान पृ.198
326. वीर अर्जुन, 26 मई 1938
327. पेमा राम– राजस्थान में कृषक आन्दोलन पृ. 189
328. द हिन्दुस्तान टाइम्स 26, जनवरी 1939
329. a भगवान दास केला– देशी राज्यों की जन–जागृति पृ. 256

     b के.एस. सक्सैना – द पॉलिटिकल मूवमेंट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान पृ. 199
330. एफ.के.कपिल –राजपूताना स्टेट्स पृ. 137
331. भगवान दास केला– देशी राज्यों की जन–जागृति पृ. 256–57
332. रामकृष्ण बजाज'– पत्र व्यवहार पत्र संख्या 125, 18 जनवरी 1940 कपूरचंद पाटनी द्वारा जमनालाल बजाज को पत्र
333. नवजीवन दिनांक 4 मार्च 1940
334. a रामकृष्ण बजाज– पत्र व्यवहार जमनालाल बजाज द्वारा धनश्याम दास बिडला को 12 मई 1940 को लिखा पत्र

     b जुगल किशोर चतुर्वेदी – 1942 की क्रांति में राजस्थान का योगदान
335. एफ.के.कपिल– राजपूताना स्टेट्स पृ. 138
336. उपरोक्त
337. के.एस. सक्सैना – 'द पॉलिटिकल अवेकनिंग इन राजस्थान पृ. 239
338. एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स पृ. 155
339. के.एस.सक्सैना– पॉलिटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान पृ. 121

अध्याय : चतुर्थ
विलीनीकरण हेतु किये गये प्रयास

" आप भारतीय अद्‌भुत लोग हैं, किस कौशल से आपने बिना राजाओं को हटाये राजशाही को ही गायब कर दिया।"

–निकेता ख्रुश्चेव

1939 ई. में वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने नरेन्द्र मण्डल के अधिवेशन में छोटे राज्यों में बेहतर प्रशासन प्रदान करने के लिए दो सुझाव रखे थे। पहला सुझाव था छोटी रियासतों का अपनी निकटतम बड़ी रियासतों में प्रशासनिक विलय तथा दूसरा, प्रशासनिक उद्‌देश्य के लिये छोटे राज्यों द्वारा संघ का निर्माण। इनमें से पहला सुझाव उन रियासतों के लिये था जो आकार की दृष्टि से अत्यंत छोटी और महत्वहीन थी। इनकी संख्या वेस्टर्न इण्डिया स्टेट एजेंसी तथा गुजरात स्टेट्स एजेंसी में अधिक थी। मध्य भारत और राजपूताना में ऐसे कई राज्य स्थित थे। दूसरा सुझाव पूर्वी एवं दक्षिणी राज्यों के लिए था। मध्य भारत तथा पंजाब एजेंसी के अधीन भी ऐसी रियासतें आती थीं। ये रियासतें छोटी तो थी किंतु काठियावाड़ की तरह महत्वहीन नहीं थी।

1939 ई. में ही अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के लुधियाना सम्मेलन में राज्यों के पृथक अस्तित्व पर करारा प्रहार करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया कि जनसंख्या और राजस्व की न्यूनतम सीमाओं के होने पर ही किसी रियासत को जीवनक्षम माना जाना चाहिये। इस सम्मेलन में राज्यों की सक्षमता का मानदण्ड 20 लाख जनसंख्या और 50 लाख वार्षिक आय माना गया। इस प्रस्ताव में यह भी सुझाव दिया गया कि छोटी रियासतों को अपनी सीमा में स्थित बड़ी सक्षम इकाइयों में विलय कर लेना चाहिये।[1] सक्षम रियासतों की इस संकल्पना ने तत्कालीन राजनीतिक विभाग व स्वयं वायसराय का भी ध्यान आकर्षित किया।[2] आगे चलकर लोकपरिषद की स्थायी

समिति ने 6 अगस्त से 8 अगस्त, 1947 तक श्रीनगर की बैठक में लुधियाना अधिवेशन में पारित प्रस्ताव की पुष्टि करते हुए निर्णय लिया कि उन सभी छोटी रियासतों को जिनकी जनसंख्या 20 लाख और आय 50 लाख से कम है, उन्हें या तो प्रांतों में मिल जाना चाहिए अथवा आपस में मिलकर बड़े संघ का निर्माण कर लेना चाहिए ताकि वे भारतीय संघ में एक प्रभावी इकाई के रूप में भाग ले सकें। इस अधिवेशन में भारत के 562 राज्यों को 14 विभागों में बांटा गया। राजपूताना के समस्त राज्यों को एक ही वर्ग में रखा गया।[3]

30 सितम्बर, 1945 को राजाओं की स्थाई समिति में बीकानेर समिति की रिपोर्ट पर बोलते हुए महाराजा सादुलसिंह ने कहा कि अब अलग–अलग रहने के सिद्धांत से चिपके रहना संभव नहीं। राजा लोग समय रहते चेत जायें और कुछ व्यावहारिक कदम उठायें। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये छोटी रियासतें परस्पर मिलकर अथवा बड़ी रियासतों के साथ मिलकर इस प्रकार की इकाइयां बनाये जो आधुनिक परिस्थितियों में अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हो सके। यदि सिद्धांत रूप में यह बात मान ली जाये तो राजाओं के पद की सुरक्षा के लिये एक योजना बनाई जा सकती है। वायसराय और भारत सरकार के राजनैतिक सलाहकार इस बारे में विचार विमर्श के लिये सहमत हो गये हैं। यदि छोटी रियासतों ने समूह बनाकर जनता को आवश्यक सुविधायें प्रदान न की और वे समय के साथ नहीं चलीं तो वे समाप्त हो जायेंगी।

17 जनवरी, 1946 को लार्ड वैवेल की अध्यक्षता में नरेन्द्र मण्डल की बैठक हुई। इस बैठक में लार्ड वैवेल ने राजाओं का आह्वान किया कि वे अपनी प्रजा की भलाई के लिये अपने राज्यों की शासन व्यवस्था आधुनिक पद्धति पर लागू करें। ऐसा करना तभी संभव है जब कि राज्य में अच्छे प्रशासन की तीन मूलभूत आवश्यकताएं पूरी की जायें। राजनैतिक स्थिरता, पर्याप्त वित्तीय संसाधन तथा जनता का प्रशासन के साथ प्रभावी सहयोग। वैवेल ने छोटे राज्यों को सलाह दी कि वे अपने आर्थिक संसाधनों को मिला लें तथा पर्याप्त आकार की राजनैतिक इकाई का निर्माण करे ताकि जनता को अच्छी सरकार दी जा सके।

22 मई, 1946 को कैबिनेट मिशन की रिर्पोट के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने घोषणा कर दी थी कि भारत के भावी संवैधानिक ढाँचें में समुचित रूप से अपना भाग अदा करने के लिये छोटी–छोटी रियासतों को आपस में मिलकर बड़ी इकाइयां बना लेनी चाहिये या पड़ौस की बड़ी रियासतों या प्रांतों में मिल जाना चाहिये।[4] राजपूताना एजेंसी की लगभग दो दर्जन रियासतें अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखने योग्य नहीं थी। राजपूताना के राजाओं और जन नेताओं ने इस स्थिति को भली–भाँति समझ लिया था।[5] और सभी ओर से छोटी–छोटी रियासतों को मिलाकर बड़ी इकाइयों के निर्माण के प्रयास शुरू हुए। राजपूताना के शासकों ने भी अपने स्तर पर छोटी–छोटी रियासतों को मिलाकर बड़ी इकाई बनाने के प्रयत्न किये।[6]

संघ निर्माण की विभिन्न योजनाऐं

रियासती राजपूताना की रियासतों के एकीकरण के संबंध में यह सोचा जा सकता है कि संभवतः बड़ी सरलता और आसानी से एक योजना तैयार करके अंतिम रूप से उसे लागू कर दिया गया होगा। किंतु विषय का सूक्षमता व गहराई से अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि एक बार नहीं अपितु कई–कई बार चिंतन मनन करते हुए रियासतों के एकीकरण की योजनाएं बनी और बिगड़ी ये विभिन्न योजनाऐं इनके निर्माताओं की अकांक्षाओं और अभिलाषाओं को प्रकट करती थी। कभी–कभी इन योजनाओं का निर्माण विभिन्न संगठनों द्वारा अपने विरोधी को मात देने के लिये किया गया और ये योजनाएं खतरनाक रूप से महत्वाकांक्षी भी हो सकती थी। इन योजनाओं का संक्षिप्त उल्लेख यहां पर प्रासंगिक है ताकि हम तत्कालीन भावनाओं को समझ सकें, जान सकें और मन से ग्रहण कर सकें।

1. राजपूताना की विभिन्न रियासतों के प्रधानमंत्रियों ने मिलकर एक कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया और प्रधानमंत्रियों की एक कमेटी नियुक्त की जिसकी 15 मार्च, 1947 को जयपुर में एक बैठक आयोजित की गई। जिसमें अलवर, बूँदी और डूंगरपुर के प्रधानमंत्रियों ने भाग लिया। यहां पर राजनीतिक स्थिति पर चर्चा करते हुये सभी ने ये स्वीकार किया की राजपूताना की सभी रियासतों की परस्पर समान ऐतिहासिक परम्पराएं, सांस्कृतिक बाध्यताएं व आर्थिक संबंध हैं। अतः यहां की समस्त रियासतों को मिलकर एक संघ का निर्माण करना चाहिये और भारत संघ में एक इकाई के रूप में एकीकृत होकर सम्मिलित होना चाहिये।[7]

2. संघ निर्माण का एक अन्य प्रस्ताव अखिल भारतीय मारवाड़ी संघ की ओर से आया। इसके अंतर्गत उन्होंने प्राचीन चौहान वंश के शासन के अंतर्गत आने वाले प्रदेशों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव किया। इसमें सम्पूर्ण राजपूताना, मालवा, ग्वालियर, हिसार, लौहारू, रोहतक, नाभा, पटियाला, गुड़गांव और पंजाब के कुछ जिलों सहित दिल्ली को सम्मिलित किया गया था।[8]

3. के.एम. मुंशी ने राजपूताना, गुजरात और मालवा को इनके समान इतिहास और संस्कृति के आधार पर संगठित करने की योजना की वकालत की।[9]

4. मेवाड़ के महाराणा ने 25 व 26 जून, 1947 को उदयपुर में राजाओं का एक सम्मेलन आयोजित किया। इस संघ में मेवाड़ बूंदी, कोटा, डूंगरपुर, विजयनगर, करौली, किशनगढ़, प्रतापगढ़ रतलाम, झालावाड़, शाहपुरा, सीतामऊ, पालनपुर, ईडर, बांसवाड़ा, जैसलमेर, सैलाना और दांता इत्यादि रियासतों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव था। इस सम्मेलन में भावी संघ के उद्देश्यों और संविधान पर चर्चा की गई।[10]

5. जैसलमेर, जोधपुर व बीकानेर की सीमाऐं आपस में मिलती थीं। अतः रियासती विभाग और वी.पी. मेनन का यह विचार था कि इन रियासतों को आपस में मिलाकर एक संघ का निर्माण किया जाए।[11] और इसे सीधे केन्द्र के अधीन कर दिया जाये किंतु मेनन के अनुसार इस योजना के मित्र कम और शत्रु अधिक थे।[12]

6. कोटा, झालावाड़, टोंक इत्यादि रियासतों ने मिलकर अलग हाड़ौती प्रांत बनाने की सोची और भविष्य में जयपुर व बीकानेर को भी अपने साथ मिलाने की योजना बनाई। यह भी तय किया गया कि राजप्रमुख कोटा महाराव होंगे व राजधानी जयपुर को बनाया जाएगा। यह भी अफवाह फैली हुई थी कि बांसवाड़ा को बम्बई के साथ मिला दिया जाएगा।[13]

7. ऐसी सूचना थी कि पाकिस्तान द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण सीमा को सुरक्षित करने के लिए जैसलमेर व जोधपुर रियासतों को एकीकृत करके संघ बना दिया जाएगा।[14]

8. एक अन्य प्रेस रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान संघ के निर्माण को लेकर बहुत सी योजनाऐं और प्रस्ताव रखे गये जो इस प्रकार हैं–

   I. जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर को मिलाकर संघ का निर्माण।
   II. इस योजना के अंतर्गत प्रस्ताव था कि जयपुर को मत्स्य संघ की राजधानी बनाया जाए तथा इसमें अलवर, करौली, धौलपुर तथा भरतपुर को सम्मिलित किया जाए। सीमावर्ती राज्य जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर को साथ रखा जाए।
   III. एक अन्य महत्वाकांशी योजना वृहत्त राजस्थान निर्माण की थी। जिसमें जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा मत्स्य संघ सम्मिलित हों।[15]

9. 'द स्टेटसमैन' समाचार पत्र ने लिखा कि रियासती विभाग जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर रियासतों को मिलाकर एक पृथक इकाई के रूप में संगठित करने के लिए प्रयासरत है। साथ ही भरतपुर व धौलपुर को संयुक्त प्रांत तथा सिरोही को सौराष्ट्र के साथ सम्मिलित किया जाएगा। समाचार पत्र ने आगे यह भी लिखा कि जोधपुर रियासत के महाराजा सरकार में एक बड़ा पद प्राप्त करने की शर्त पर इसमें सम्मिलित होने के लिये तैयार हो गए हैं।[16] यदि इन सभी रियासतों को एकीकृत करने में सफलता प्राप्त नहीं होती है। तो रियासती मंत्रालय के पास और भी दूसरे प्रस्ताव हैं जैसे–

   I. जयपुर का मत्स्य संघ के साथ एकीकरण तथा जोधपुर बीकानेर और जैसलमेर का एक इकाई में समावेश।
   II. दो इकाइयों का गठन किया जायेगा जिसमें एक के अंतर्गत जयपुर को राजधानी बनाकर संयुक्त राज्य राजस्थान का गठन किया जायेगा। जिसमें जोधपुर, बीकानेर व जैसलमेर सम्मिलित होंगे। दूसरी इकाई के अंतर्गत मत्स्य संघ का गठन होगा। भरतपुर व धौलपुर को संयुक्त प्रांत में सम्मिलित कर दिया जाएगा।
   III. जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और संयुक्त राज्य राजस्थान को एक साथ मिलाकर एक इकाई के रूप में जबकि जयपुर व मत्स्य संघ दूसरी इकाई के रूप में संगठित कर दिये जायेंगे।

10. स्टेट्समैन के ही अनुसार एक नई योजना पर भी विचार किया गया जिसमें मत्स्य संघ के जाट बहुल क्षेत्र को संयुक्त प्रांत में मिलाने का प्रस्ताव था। सिरोही को महागुजरात के साथ तथा अजमेर– मेरवाड़ा शेष मत्स्य संघ तथा संयुक्त राज्य राजस्थान को एक साथ विलीन करने का प्रस्ताव रखा गया। राजप्रमुख का पद जयपुर को दिया जाए तथा जयपुर अजमेर व जोधपुर में से किसी एक शहर राजधानी के लिये निश्चित किया जाये।[17]

11. भोपाल के नवाब तथा जामनगर के जाम साहिब ने मिलकर भारत व पाकिस्तान के समक्ष एक तीसरे संघ, जाम संघ के पृथक निर्माण की योजना रखी। योजना में समस्त राजपूताना, मालवा व गुजरात, काठियावाड़ को मिलाकर भारत व पाकिस्तान से स्वतंत्र इकाई का प्रस्ताव था। उदयपुर के राणा को इस योजना का नेतृत्व स्वीकार करने के लिए दवाब डाला गया। किंतु बीकानेर के महाराजा ने उन्हें भारत की संविधान सभा में अपना प्रतिनिधि भेजने तथा भारत से जुड़ने की सलाह दी। तब जाकर जाम साहिब ने मारवाड़ से समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की ताकि छोटे स्तर पर ही पृथक संघ का गठन किया जा सके। उनके इस प्रयास को कैप्टन मोहन सिंह भाटी जो की महाराजा जोधपुर के मामा थे ने विफल कर दिया।[18]

12. यहां पर मरू प्रदेश के गठन की योजना भी थी जिसमें जोधपुर, जैसलमेर, सिरोही तथा बीकानेर सम्मिलित थे तथा जोधपुर के शासक को राजप्रमुख तथा जोधपुर शहर को राजधानी बनाने की योजना थी।[19]

इस प्रकार रियासतों के राजनीतिक वातावरण में चारों ओर अफवाहों से माहौल गर्म था। रियासती रजवाड़ों के अंतर्मन में अनिश्चितता का द्वंद विद्यमान था वे भविष्य को लेकर आशंकित थे और इसी उधेड़–बुन में लगे थे कि वे भारत सरकार के सामने ऐसी कौन सी चाल चलें? कि वे इस सौदे में लाभ की स्थिति में रहें। जन–प्रतिनिधि अपनी–अपनी रियासतों को किसी न किसी प्रकार भारत संघ में सम्मिलित करवाना चाहते थे। वहीं सामान्य जनमानस आशंकाओं के साथ चारों ओर के घटनाक्रम को दर्शक बना देख रहा था।

संघ निर्माण के संबंध में विभिन्न वर्गों का दृष्टिकोण

राजपूताना के एकीकरण के सम्बन्ध में बनने वाली विभिन्न योजनाओं के विषय में विभिन्न वर्गों के अलग–अलग दृष्टिकोण थे। जिन कारणों से विलय की योजनाएं क्रियान्वित नहीं हो पा रही थी उनमें एक प्रमुख कारण न सिर्फ राजाओं का नकारात्मक दृष्टिकोण था अपितु इससे भी बढ़कर उनके सामन्तों व जागीरदारों की प्रतिक्रियावादी नीति रही। ये भी शासकों के समान अपने पीढ़ियों से चले आ रहे सामंती अधिकारों को त्यागने को तैयार नहीं थे। जिसमें पुलिस, कानून व न्यायिक निर्णय करने का अधिकार, राजस्व संग्रहण व सीमा शुल्क इत्यादि विशेषाधिकार सम्मिलित थे। इसका उन्हें पहले से ही आभास हो चुका था कि नवीन संस्थागत व एकीकृत प्रशासन स्थापित हो इसके लिये उन्हें अपने इन सदियों से प्राप्त अधिकारों का परित्याग करना पड़ेगा। राजस्व के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव रखा गया था कि नई संघीय सरकार ही राजस्व संग्रह का कार्य करेगी तथा उसमें से कुछ निश्चित प्रतिशत जागीरदारों के लिए निर्धारित किया जाएगा। राजस्व का अधिकांश भाग शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरी राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में खर्च किया जायेगा। साथ ही दूसरे सामंती अधिकार भी सिर्फ पांच वर्ष के लिये ही सुरक्षित माने जा सकते थे। जिन्हें आने वाली नई सरकार समाप्त करने के लिये स्वतंत्र थी। राजस्थान में इस समस्या के आकार का इस तथ्य से अंदाजा लगाया जा सकता है कि राजपूताना की चार बड़ी रियासतों, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और अजमेर की कुल भूमि के 75 प्रतिशत भाग के मालिक जागीरदार थे।[20]

जोधपुर में क्षत्रिय परिषद की जब सभा हुई तो सत्र के दौरान निम्बाज के ठाकुर उम्मेद सिंह ने सभा में उपस्थित सदस्यों से अपील की कि वे यह सुनिश्चित करें की जोधपुर रियासत के किसी अन्य इकाई में विलय हो जाने पर यह लाभदायक होगा या फिर हानिकारक इस सभा में जागीरदार सर्वसम्मति से विलय के विरोधी थे।[21] बीच– बीच में जागीरदार विरोध प्रदर्शन करते रहे। जोधपुर रियासत के जागीरदारों ने सशस्त्र प्रदर्शन किया। इनमें सोजत परगने का अंदावल गांव, मेड़ता परगने का बूडसू गांव, पाली परगने का खरीता गांव और पहलौडी[22] इत्यादि बहुत से स्थानों पर जागीरदारों ने विलय के विरोध में प्रदर्शन जारी रखे।[23] ''जगह–जगह जागीरदारी–प्रथा

की जय हो के नारों के साथ–साथ कांग्रेस विरोधी नारे भी उछाले जाने लगे। ये प्रदर्शन मारवाड़ के भारत–संघ मे विलय के विरोध में हो रहे थे तथा उन्होंने शासक को राजपद से बहिष्कृत करने तक की धमकी दे डाली। पाली में भी सशस्त्र जुलूस 30 मई 1948 को निकाला गया। इनकी मांग थी कि मारवाड़ भारत संघ में सम्मिलित न हो।[24] बहुत से जागीरदारों ने धौलपुर के राणा के साथ मिलकर एक कांग्रेस विरोधी फोरम का गठन कर डाला।[25]

जागीरदार भारत सरकार के रियासती विभाग के समक्ष भी अपना पक्ष रखने के लिये उपिस्थत हुये। उन्होंने रियासती विभाग के समक्ष मांग रखी कि उन्हें राजस्थान के मंत्रिमण्डल और प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाये।[26]

20 जुलाई, 1948 को उदयपुर में किसान सभा और मेवाड़ के भीलों के संयुक्त तत्वाधान में एक सभा का आयोजन किया, जिसके अंतर्गत उन्होंने मेवाड़ के राजस्थान संघ में विलय के विचार को पूरी तरह खारिज कर दिया। तथा मांग की कि मंत्रिपरिषद को तुरंत प्रभाव से भंग कर दिया जाए। भीलों ने दृढ़तापूर्वक यह घोषणा की कि मेवाड़ के ऊपर उनके परम्परागत अधिकार हैं तथा मेवाड़ के राणा से, बप्पा रावल और महाराणाा प्रताप के नाम पर अपील की कि वे भी इस कार्य में भीलों का सहयोग करे।[27]

किसान सभा के नेतृत्व में जाटों ने भी अनेक सभाओं और प्रदर्शनों का आयोजन भरतपुर राज्य के संयुक्त प्रांत में विलय के विरोध में किया। इनका विरोध भरतपुर, अलवर, धौलपुर और करौली के साथ समूह बनाने को लेकर भी हुआ क्योंकि सरकार ने इस राजनीतिक विषय पर विचार करने के लिये किसी भी प्रकार का कोई मौका नहीं दिया। उन्होंने माँग रखी की राज्य का प्रशासन पूर्वत उनके परम प्रतापी महाराजा की देखरेख मे ही जारी रहने दिया जाए।[28]

प्रस्तावित मत्स्य संघ से संबंधित एक प्रतिनिधि मंडल वी.पी. मेनन से मिला उन्होंने रियासती विभाग से निवेदन किया कि मत्स्य संघ के लिये एक दीवान नियुक्त किया जाये तथा एक कैबिनेट की नियुक्ति भी कि जाये। जिसमें मुख्यमंत्री के

अतिरिक्त दो–दो प्रतिनिधि भरतपुर व अलवर और एक–एक धौलपुर और करौली से मनोनीत किये जायें। इस प्रतिनिधि मंडल के सभी सदस्य जनता के प्रतिनिधि थे।[29]

यद्यपि रियासतों के एकीकरण की कुछ योजनाओं का जनता के कुछ वर्गों ने विरोध किया तथापि इसके पीछे कुछ के निजी स्वार्थ थे, वहीं कुछ को स्वार्थी तत्वों ने अपने हित के लिये भड़काया था। सामान्य जनता राजशाही से मुक्त होकर भारत संघ में सम्मिलित होना चाहती थी। राम मनोहर लोहिया ने गिरडीकोट, जोधपुर में जनता से अपील की कि वे राजस्थान संघ के एकीकरण में भाग लें, सहयोग करें अन्यथा उन्हें सामंतों व राजवंशियों के वर्ग द्वारा गहरा आघात पहुंचाया जा सकता है। उन्होंने जाति के आधार पर टुकड़ियों का गठन करने के विरूद्ध जनता को चेताया और घोषणा की कि इससे जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा।[30]

जिन विभिन्न इकाइयों के एकीकरण के विषय में विचार चल रहा था उनकी भविष्य की भूमिका को लेकर आम जनता के भिन्न–भिन्न विचार सामने आ रहे थे। कुछ का मानना था कि एक प्रांत के निर्माण में ये इकाइयां बाधाएं डालेंगी, विघन्न उत्पन्न करेंगी तो कुछ का मानना था कि विभिन्न इकाइयों के एकीकरण से एक प्रांत का निर्माण सरल बन जाएगा।

जोधपुर रियासत के महाराजा संघ निर्माण के इच्छुक नहीं थे तथापि रियासत की जनता संघ निर्माण की इच्छुक थी। जनता ने वहीं से जोधपुर रियासत के भारत संघ में विलय को लेकर प्रयत्न करने प्रारम्भ कर दिये थे।[31]

जब दांता ठिकाने को बम्बई के साथ विलीन कर दिया गया तब प्रेस ने इस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की, सामान्य जन इस घटना क्रम से स्तब्ध रह गये। जन–प्रतिनिधियों ने भी इस घटना पर खेद व्यक्ति किया तथा इसे दुर्भाग्यपूर्ण बताया। ऐसे में आम जनता में यह धारणा बलवती हो गयी की सिरोही को भी शीघ्र ही बम्बई प्रांत में विलीन कर दिया जायेगा।[32]

राजपूताना के अत्यन्त अनुभवी और महान स्वतंत्रता सेनानियों ने भी समय–समय पर एकीकरण के विषय में अपने विचार व्यक्त किये। व्यावर (अजमेर) के श्री रामनिवास शर्मा ने घोषणा की कि उदयपुर रियासत जयपुर की अधीनता में रहकर

कार्य नहीं करेगी। परन्तु अन्ततः मोहन सिंह मेहता और राम गोपाल शर्मा ने उदयपुर के महाराणा को अपने प्रभाव मे लेकर पारस्परिक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिये राजी कर लिया। इस समझौते के तहत मेवाड़ के शासक को महाराजप्रमुख की गद्दी प्रस्तावित की गई। उपराजप्रमुख का पद अभी खाली चल रहा था जिसे जोधपुर के शासक को सौंपने का प्रस्ताव रखा गया। महाराजा जोधपुर ने इस प्रस्ताव को बाद में अस्वीकृत कर दिया तथा जवाब दिया कि ''महाराजप्रमुख महाढफोड़शंख, राजप्रमुख ढफोड़शंख है और वे इसी श्रृखंला में शंख की उपाधी धारण नहीं करना चाहते।''[33]

इसी प्रकार एक अन्य स्वतंत्रता सेनानी कृपा दयाल माथुर ने आह्वान किया कि अलवर में स्वतंत्रता दिवस पर कोई समारोह नहीं होगा। कोई अवकाश नहीं रखा जायेगा, ताकि मनोनीत सदस्य राष्ट्रीय ध्वज नहीं फहरा सके।[34]

राजनीतिक संगठनों की भूमिका

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1920 के नागपुर सत्र के दौरान इस बात पर बहस हुई कि देसी रियासतों की समस्या ब्रिटिश भारत की समस्या से अलग है।[35] लेकिन हरिपुरा कांग्रेस सत्र 1938 ई. के दौरान कांग्रेस अपनी इस पूर्ववर्ती नीति से पूरी तरह अलग हो गयी तथा देशी रियासतों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का पुरजोर समर्थन करने पर उतर आई। इसी समय उसने स्थानीय जनमानस को सलाह दी कि वे पूरी तरह कांग्रेस पर निर्भर नहीं रहें। इसी के परिणामस्वरूप देशी रियासतों में एक के बाद एक प्रजामण्डलों की स्थापना होने लगी। यह कांग्रेस के लिये आवश्यक भी था क्योंकि यदि कांग्रेस सीधे देशी रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप करती तो अंग्रेज सरकार के लिए कांग्रेस को रियासतों में उलझाने का सुविधाजनक अवसर मिल जाता।[36]

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राजपूताना में मुख्य रूप से तीन समूह, संघर्ष का संचालन और नेतृत्व कर रहे थे। जिनमें ''राजस्थान सेवा संघ'' जिसके प्रमुख संचालक विजय सिंह पथिक थे।' अर्जुन लाल सेठी के नेतृत्व में कांग्रेस, अजमेर तथा व्यावर में सक्रिय थी साथ ही ये औपचारिक रूप से केकड़ी पुष्कर, कोटा, करौली तथा जोधपुर में भी अपनी पहुँच बनाये हुये थी। और अंतिम समूह के रूप में जमनालाल बजाज

तथा हरिभाऊ उपाध्याय आते हैं जो राजस्थान में गांधीवादी विचारधारा का नेतृत्व कर रहे थे। आगे–चलकर उन्होंने स्थानीय प्रवक्ता तथा प्रतिनिधियों के रूप में भी कार्य किया। किंतु इन संगठनों में पारस्परिक सहयोग की भावना का अभाव था।[37] राजस्थान सेवा संघ ने गांधीवादियों के साथ मिल कर कार्य करने का प्रयास किया। जिसके लिये विजय सिंह पथिक ने साबरमती आश्रम जाकर गांधीजी और बजाज के साथ विचार विमर्श किया किंतु यह प्रयास भी निष्फल सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता सेनानी रामनारायण चौधरी ने इस घटना को दुर्भाग्यपूर्ण बताया।

इन तीन प्रमुख समूहों के अतिरिक्त भी कई ऐसी हस्तियां थी जिन्होंने स्वतंत्रतापूर्व के काल में कार्य किया। किंतु मुख्य रूप से इन स्वतंत्रता सेनानियों व इनके संगठनों के मध्य आपसी तालमेल, सहयोग तथा संप्रेषण का अभाव था यही कारण रहा कि एकीकरण की प्रक्रिया में इसके कारण देरी हुई और उन्होंने व्यर्थ ही अपनी उर्जा का व्यय किया। प्रत्येक संगठन एकीकरण के लिये रियासतों की इकाई बनाने के अपने ही प्रतिमान को लागू करने की वकालत करता रहा इन राजनीतिक संगठनों ने कदाचित ही कभी जनमानस की अंतर चेतना को पहचाना हो।

राजपूताना में कांग्रेस की सबसे बड़ी कमी यह थी कि उसने कभी स्थानीय समस्याओं और मुद्दों पर ध्यान ही नहीं दिया। इसलिए कांग्रेस को राजस्थान की रियासतों में कभी भी शोषित और गरीब जनता का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ तथा सामान्य जनता कभी भी कांग्रेस के बड़े नेताओं के विचारों और नीतियों से परिचित नहीं हो सकी।[38] तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक संगठनों और उनके नेताओं की जनता में गहरी पैठ नहीं थी फिर भी ये संगठन जनमानस की अभिलाषाओं को पूर्ण करने का दावा कर रहे थे। इन संगठनों का वास्तविक प्रतिरूप स्वतंत्रता के बाद पुनः तब सामने आया जब एकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई।

राजस्थान में कांग्रेस दल ने सरदार वल्लभभाई पटेल की योजना पर चिंता प्रकट की, पटेल ने राजपूताना की देशी रियासतों के शासकों को सलाह दी कि वे आपस में मिलकर संघ का निर्माण करने के लिये प्रयासरत हो। और लोकप्रिय जन–प्रतिनिधियों को मनोनीत करके स्वयं कार्यकारिणी का निर्माण करें।[39] लेकिन

स्थानीय कांग्रेस दल के नेता चाहते थे कि राज्यों का संघ बने न कि राजाओं का संघ। कांग्रेस का मानना था कि यदि गठित इकाइयों पर राजाओं का प्रभुत्व बना रहा तो वे फिर से प्रतिक्रियावादी तत्वों को ही बढ़ावा देंगे। वहीं राजपूताना ऐजेंसी की 25 छोटी–बड़ी रियासतों में से 14 ने राजस्थान संघ में सम्मिलित होने की मंशा प्रकट की और इनका कहना था कि समझौते पर हस्ताक्षर करने और संघ में सम्मिलित होने के बाद भी वे अपने अपने राज्यों में सरकार का स्वरूप राजतंत्रात्मक रखने को ही प्राथमिकता देंगे। राजस्थान संघ में सम्मिलित होने की इच्छा रखने वाले 14 राज्यों में से रतलाम और सैलाना राजपूताना क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आते थे वहीं विजयनगर राजस्थान संघ में सम्मिलित होना चाहता था किंतु वो गैर–सलामी प्राप्त रियासत थी अतः कांग्रेस ने आग्रह किया की शेष रियासतें दूर रहें। और यही कारण रहा कि प्रस्तावित संघ बड़ी इकाई का रूप धारण नहीं कर सका।[40] यहां पर यह भी स्पष्ट नहीं था कि प्रस्तावित संघ के प्रशासन की जिम्मेदारी किसके कंधों पर होगी। जैसा कि विभिन्न रियासतों के शासकों ने प्रस्ताव रखा था कि कार्यपालिका के चुनावों का अधिकार शासकों के पास होना चाहिये। यदि ऐसा होता है तो यह जनता के साथ धोखा होगा और कांग्रेस दल के लिये यह बड़े शर्म की बात होगी। केन्द्र में स्थिति कांग्रेस दल के नेता इस बात से आंशकित थे कि स्वतंत्रता संघर्ष में कांग्रेस का जम कर साथ देने वाली जनता का दल पर से भरोसा न उठ जाये। इसलिये कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व ने स्थानीय कांग्रेस दल को सावधान किया तथा सलाह दी कि वे जनता में आधार बनाएं तथा दलीय कार्य द्वारा जनशक्ति को सशक्त करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करें।[41] कांग्रेस प्रतिक्रियावादी विरोधी तत्वों की सेना से मुश्किल से ही मुकाबला कर पा रही थी। तभी इसने स्वयं को एक दूसरे विवाद में उलझा लिया और यह विवाद संगठनात्मक संकट में परिवर्तित हो गया। **ज**यनारायण व्यास ने सरदार पटेल द्वारा जयपुर में दिये गए भाषण का निर्भिकता से रेखाचित्र खींचा और इसे ''प्रतिघात'' की संज्ञा दी।[42] उनके अनुसार ये भाषण सामन्तवादी तत्वों को प्रोत्साहित करने वाला था। जिसके परिणामस्वरूप जनमानस का कांग्रेस में विश्वास खत्म हो रहा था। उन्होंने तर्क दिया कि इसमें कोई शक नहीं कि सामंतवाद का अंत निश्चित है इसे महिमामंडित करके जीवित नहीं रखा जा सकता किंतु कमजोर कांग्रेस के कारण राज्य में मार्क्सवादी और समाजवादी शक्ति का विस्तार होगा। जो पहले ही राष्ट्र के

लिए घातक सिद्ध हो चुके हैं। व्यास को यह महसूस करके बहुत दुःख हुआ कि राजस्थान संघ के उद्घाटन समारोह के समय राज्य के अधिकारियों ने राजस्थान कांग्रेस के मुखिया की अपेक्षा उन राजे रजवाड़ों को अधिक महत्व दिया जो सामन्तवाद के प्रतीक थे। उपरोक्त घटनाक्रम से यह तो निश्चित था कि व्यास के सरदार पटेल के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार और आरोप प्रत्यारोपों के कारण राज्य के एकीकरण में बांधाऐं ही उपस्थित हुई क्योंकि इसके कारण कांग्रेसी नेताओं की शासकों को सांत्वना देने, मनाने की नीति की काफी हद तक शासकों के सामने पोल खुल गई थी। व्यास ने यह भी आरोप लगाए कि पटेल यह सब जयपुर के महाराजा की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिये कर रहे हैं। उन्होंने यह भी आरोप लगाये कि राजस्थान की राजधानी का चुनाव करने के लिये जिस कमेटी का गठन किया गया। वह जयपुर के महाराजा से पूर्व में जो वादे किये गये उनको पूरा करने के लिये बनाई गयी है। ये आरोप यद्यपि पटेल पर न लगाकर मेनन, बिरला और कृष्णामांचारी पर लगाये गये।[43] सरदार पटेल ने भी व्यास की निंदा की और उनके लगाए आरोपों का खण्डन करते हुए उन्हें झूठा ठहराया तथा कहा कि कुछ कार्य उनके विवके व निर्णय के लिये छोड़ दिये जाने चाहिये। वे उनके हिसाब से ही निश्चित होंगे।[44] अत्यधिक वाद–विवाद के पश्चात् ही बड़ी मुश्किल से पटेल और व्यास का विवाद समाप्त हुआ।

इसी समय एक नया विवाद उठ खड़ा हुआ। नया विवाद ये था कि ''क्या कांग्रेस प्रांतीय कमेटी का राज्यों में बनने वाले मंत्रीमण्डल पर कोई नियंत्रण या अधिकार होगा? या फिर वे सीधे केन्द्र के प्रति उत्तरदायी होंगे।

11 जून, 1949 को राजपूताना प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की एक विशेष बैठक का आयोजन किया गया जिसमें एक प्रस्ताव पास किया गया इससे यह विवाद और तीव्र हो गया। इसमें गोकुल भाई भट्ट जो कि तत्कालीन प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे को बलपूर्वक त्यागपत्र देने के लिये बाध्य किया गया और जयनारायण व्यास को प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया। हीरालाल शास्त्री से भी बलपूर्वक राजस्थान के मुख्यमंत्री पद से स्तीफा दिलवाया गया। केन्द्र में कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व ने गोकुल भाई भट्ट को हटाये जाने का कोई विरोध नहीं किया और इसे स्थानीय विवाद कहकर अपना पल्ला झाड़ लिया। किंतु हीरालाल शास्त्री के इस्तीफे को

तकनीकी दृष्टि से गलत ठहराया क्योंकी शास्त्री प्रांतीय कांग्रेस कमेटी (पी.सी.सी.) के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। वे केवल स्टेट मिनिस्ट्री के प्रति ही उत्तदायी थे। प्रांतीय सरकारों के सम्बंध में कांग्रेस द्वारा लिया गया यह नीति निर्णय महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

इस प्रकार के मुद्दों व विवादों का प्रचार बड़े स्तर पर कांग्रेसी नेताओं द्वारा प्रतिबन्धित किया जाना चाहिये था क्योंकि ये संगठन को हानि पहुंचा रहे थे।[45] 23 जून, 1949 को दिल्ली में राजपूताना प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने एक बैठक का आयोजन करके एक प्रस्ताव पास किया। जिसमें यह घोषण की गई कि पटेल की नीतियां प्रशासन के जनतान्त्रिक सिद्धांतों का उल्लंघन करती हैं।[46] इसके जवाब में सरदार पटेल और रियासती मंत्रालय ने ''वर्किंग ऑफ स्टेट्स'' नामक अपने प्रकाशन में इस आरोप पर सफाई देते हुए यह व्यवस्था की कि जिन प्रांतों में विधानमण्डल नहीं है वहां पर शक्ति का प्रसार प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों में होगा। अब कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व ने स्वतः यह स्वीकार कर लिया कि प्रांतीय मंत्रिमण्डल सीधे प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के प्रति उत्तरदायी हैं।[47] अब प्रांतों में मंत्रीमण्डल के गठन में भूमिका निभाने हेतु प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को योग्य माना जाने लगा। प्रशासनिक व्यवस्था को संचालित करने के लिये रियासती मंत्रालय भी उससे सुझाव प्राप्त करने लगा।

तीसरा विवाद तब पैदा हुआ जब जोधपुर की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। जयनारायण व्यास ने इस बिगड़ती व्यवस्था पर चिंता जताते हुये कहा कि प्रशासकों की अधीनता में आतंक का राज्य पनप रहा है। 7 अप्रैल, 1949 को उन्होंने प्रधान के कार्यालय का परित्याग कर दिया। व्यास के विरूद्ध तब जाँच करने हेतु मैसर्स राऊ और पिल्लई की अधीनता में एक कमेटी का गठन किया गया।[48]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो चुका था कि कांग्रेस एक संगठन के रूप में पूरी तरह असफल हो चुकी है तथा नव राजस्थान के निर्माण की प्रक्रिया में वह एकीकृत हो कर पूरी तरह जुड़ भी नहीं पाई थी तथा आम जनता में उनके सामूहिक झगड़ों का क्या प्रभाव पड़ा होगा? इसका हम अंदाजा लगा सकते हैं। राज्य के एकीकरण की समूची प्रक्रिया कांग्रेसी नेताओं के बेमेल समूह की परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और कलह की साक्षी है।

अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद

अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद ने देशी रियासतों की इकाइयाँ बनाने के संदर्भ में कुछ प्रस्ताव पास किये।[49] लुधियाना के 1939 ई. के सत्र में यह प्रस्ताव रखा गया कि जिन रियासतों के पास 50 लाख रू का वार्षिक राजस्व और 20 लाख की जनसंख्या हो वह अपने आपको स्वतंत्र रख सकती है। उदयपुर प्रस्ताव 1946 के अंतर्गत इन्होंने व्यवस्था रखी की सुयोग्य प्रशासन और आर्थिक कल्याण को ध्यान में रखते हुए केवल वो ही रियासत या रियासतों का समूह जो 50 लाख की जनसंख्या और तीन करोड़ या इससे ज्यादा का राजस्व प्राप्त करता है को ही संघीय भारत में स्वतंत्र इकाई का दर्जा दिया जाएगा। अपने जून, 1946 के दिल्ली सत्र में लोक परिषद ने क्षेत्रीय परिषदों से आग्रह किया की वे एकीकरण के सम्बन्ध में क्षेत्रीयता, सांस्कृतिक आधार तथा भौगोलिक सम्पर्कों को ध्यान में रखकर योजना का निर्माण करें। अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद की राजपूताना प्रांतीय कार्यकारिणी समिति द्वारा 10 मई 1947 को आयोजित अपनी बैठक में एकीकरण से सम्बन्धित मुद्दों पर विचार–विमर्श किया गया। उदाहरण के लिये–

1. राजपूताना संघ का गठन
2. संविधान सभा में राजपूताना की रियासतों की सहभागिता।
3. जाम साहिब के संघ की योजना का विरोध। [50]

प्रजामण्डलों द्वारा एकीकरण के लिये किये गये प्रयास

राजपूताना के विभिन्न प्रांतो में प्रजामण्डल स्थापित हो गये थे। स्थानीय स्तर पर इन संगठनों ने एकीकरण और उससे सम्बंधित मुद्दों को लेकर जनता के मनोभावों और जनचेतना को अभिव्यक्ति करने में महत्वपूर्ण प्रयास किये। जयपुर प्रजामण्डल की कार्यकारिणी समिति ने मालपुरा में अपने 10 वें सत्र के दौरान बहुत से प्रस्ताव एकीकृत राजस्थान के गठन को लेकर पारित किये।[51] सिरोही प्रजामण्डल ने रेजिडेंट को रिजेंसी कांऊसिल बनाने को कहा, ताकि प्रशासन पर रेजिडेंट का वरचस्व खत्म हो। प्रजामंडल के नेता रेजिडेंट का ध्यान जनता के अधिकारों की ओर दिलाना चाहते थे। तथा कांऊसिल में लोकप्रिय प्रतिनिधित्व की मांग कर रहे थे।[52]

अन्य संस्थाओं द्वारा एकीकरण के प्रयास

अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजपूताना क्षेत्रीय परिषद कार्यकारिणी समिति ने नई दिल्ली में एक बैठक का आयोजन किया और प्रस्ताव पास करके मांग रखी कि एकीकृत राजपूताना प्रांत का गठन किया जाये।[53] महू में अजमेर पॉलिटिकल कांफ्रेंस शंकरराव देव मुख्य सचिव अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की देखरेख में आयोजित की गई। 7 अप्रैल, 1948 को दो प्रस्ताव पास किये गये। प्रथम प्रस्ताव राजपूताना और मध्य भारतीय रियासतों के एकीकरण के संबंध में था जबकि दूसरा प्रस्ताव अजमेर–मेरवाड़ा प्रदेश का भविष्य प्रांत के रूप में सुरक्षित रखने के संबंध में था।

संविधान सभा से यह अपील की गई कि प्रांतो के लिये ऐसा संविधान बनाया जाये जिसमें अजमेर–मेरवाड़ा के राजस्थान में विलय को लेकर आमजन से जनमत संग्रह करवाया जाये।[54] 29 जून, 1948 को व्यावर में एक दूसरे प्रस्ताव में कहा गया कि अजमेर–मेरवाड़ा सहित सम्पूर्ण राजपूताना को एक प्रशासनिक इकाई में परिवर्तित कर दिया जाना चाहिये तथा इसे प्रतिनिधियात्मक लोकतांत्रिक व्यवस्था के आधार पर प्रशासित किया जाना चाहिये।[55]

द यूनाइटिड राजस्थान कैम्पेन कमेटी ने रियासती मंत्रालय को एक प्रस्ताव भेजा जिसमें एक सम्मेलन आयोजित करने की मांग की गई ताकि जनप्रतिनिधियों और शासकों को एकीकृत राजस्थान प्रांत के संगठन पर निर्णय लेने का अवसर मिले।[56]

इसी प्रकार अखिल भारतीय मारवाड़ी संघ का भी छठा अधिवेशन 6 अप्रैल, 1947 को बम्बई में आयोजित किया गया जिसमें उन्होंने राजपूताना और पड़ौसी राज्यों को मिलाकर एक शक्तिशाली संघ के निर्माण की अपनी मांग को पुनः दोहराया। के.एम. मुंशी ने वृहत्तर राजस्थान के गठन की वकालत की, उन्होंने अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''राजपूताना की रियासतों और कुछ पड़ौसी राज्यों को मिलाकर एक शक्तिशाली संघ के निर्माण से ही इस प्रदेश का भविष्य सुरक्षित रह सकता है।''[57]

बूंदी की लोक परिषद ने बूंदी को अजमेर–मेरवाड़ा में विलय करने की मांग की तथा बूंदी महाराजा द्वारा संविधान बनाने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। परिणामस्वरूप

बूंदी प्रजामण्डल जो की लोकपरिषद का विरोधी संगठन था ने अपनी गतिविधियों को तेज करते हुए संविधान निर्माण का समर्थन किया। [58]

राजपूत जागीरदारों ने हमेशा से ही कांग्रेस और प्रजामंडल के विचारों का विरोध किया क्योंकि उनका हित विशेषाधिकारों को बनाये रखने में था। दूसरी तरफ एकीकरण के पक्षधर विभिन्न समूहों के मध्य आपसी गलतफहमियां विद्यमान थी। इस समूची प्रक्रिया को राजपूत बनाम गैर–राजपूत संघर्ष का रंग दे दिया गया था। मारवाड़ में एक राजपूत विरोधी कृषक–जाट समर्थक आंदोलन बलदेवराम मिर्धा ने चलाया। मिर्धा मारवाड़ में 1943–44 तक पुलिस अधीक्षक रहे तथा जोधपुर के दीवान सर डोनाल्ड फील्ड के विश्वासपात्र थे। इधर मेवाड़ में ट्रेंच ने ये कार्य किया, सेवानिवृति के पश्चात् भी वह पत्राचार द्वारा राजपूत प्रमुखों और व्यावसायिक जगत के प्रमुख व्यवसायियों के सम्पर्क में रहा और उनको दुष्कर्म के लिये प्रेरित करता रहा। ये जयचंद्र विद्यालंकार के ही प्रयास थे जिनके कारण मेवाड़ क्षत्रिय परिषद के इस आंदोलन का अंत हो गया।[59]

वीरसिंह मेहता ने ''राजस्थानी राष्ट्रीय दल'' बनाने का विचार किया जिसका उद्देश्य राजपूताना की देशी रियासतों को एकीकृत करना था किंतु इसे प्रजामंडल व कांग्रेस दोनों ने ही प्रतिक्रियावादी कहकर अस्वीकृत कर दिया। बाद में वीरसिंह मेहता ने विजयसिंह पथिक के साथ मिलकर ''संयुक्त राजस्थान संघ'' का निर्माण किया जिसका प्रस्ताव भाषायी आधार पर राजस्थान का गठन करना था। इसकी सभी ने प्रशंसा की।[60]

जयपुर के ब्रिटिश पॉलिटिकल रेजीडेंट विलियम्स ने राजपूत सभा को यह संदेश भिजवाया कि यदि उनका सगठन 20,000 राजपूत उपलब्ध करवा दे तो वह भारत से अलग एक स्वतंत्र राजस्थान राज्य का निर्माण करने से नहीं हिचकेंगे।[61]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी ऐसा संगठन नहीं था जिसकी विचारधारा सर्वहितकारी हो। न केवल वे अपने अपने राजस्थान संघ के प्रस्तावित एकीकरण की प्रकृति पर असहमत थे अपितु वे एक दूसरे के प्रभाव को भी काटने की

जुगत लगाते रहते थे। अंग्रेजों ने भी जाति के आधार पर राज्य को बांटने की कोशिश की जिसका प्रमाण विलियम्स के प्रयास थे।

राजस्थान के एकीकरण के संबध में रजवाड़ों का दृष्टिकोण

जब देशी रियासतों के शासकों को पहली बार ये पता चला कि ब्रिटिश प्रभुसत्ता का इरादा भारत से विदाई की घोषणा करने का है तब उनकी पहली प्रतिक्रिया थी कि स्वतंत्रता के पश्चात् भविष्य में उनकी स्थिति क्या होगी? उनमें से कुछ चाहते थे कि वे अपनी सम्प्रभुता बनाये रखे और इसके लिये उन्होंने प्रयास शुरू कर दिये ताकि प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार अपनी अधीनता में उनकी सम्प्रभुत्ता का विस्तार कर सके। राज्याभिषेक होते ही वे इस बात के लिये प्रयासरत रहते कि किस प्रकार वे महानता की प्रतिमूर्ति दिखें। इसके लिये वे ऐसे अनेक समूहों को जन्म देते जो उनकी राजनीति महत्वाकांक्षाओं को पोषित कर सके। विभिन्न शासकों ने एकीकरण के सम्बंध में क्या दृष्टिकोण अपनाया ? इस पर विस्तृत बहस की आवश्यकता है।

बीकानेर

राजस्थान के एकीकरण के संबंध में बीकानेर के शासकों ने एक चतुर, दक्ष व कार्यकुशल नीति को अपनाया। यद्यपि उन्होंने बहुत सी लोकतांत्रिक संस्थाओं का गठन किया लेकिन फिर भी लोकतांत्रिक विचारधारा नहीं पनपने दी। ये इसी प्रकार था जैसे कोई आस्था का प्रतीक मंदिर तो स्थापित कर देता है लेकिन उसमें ईश्वर की प्रतिस्थापना नहीं करता।[62] इसी प्रकार का प्रयास जब बीकानेर की जनता ने किया तो लोकतांन्त्रिक आधार पर संस्थाओं के गठन को कभी भी महाराजा ने हतोत्साहित और प्रतिबंधित नहीं किया। अपितु सिर्फ विचारधारा के स्त्रोत को पनपने नहीं दिया, और इसके कारण संगठन वक्त से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था।

महाराजा सादुलसिंह ऐसे पहले शासक थे जो संविधान सभा के सदस्य बने उन्होंने घोषित रूप से उन विशेषाधिकारों का लाभ उठाने की ठान रखी थी जिन्हें छोटे राज्यों को प्रदान किया गया था। बीकानेर के महाराजा को उम्मीद थी कि इससे वे संविधान सभा में राजाओं के बहुमत को अपनी तरफ कर सकेंगे और इस प्रकार वे चाहते थे कि शासन के राजतंत्रात्मक स्वरूप को महत्व मिले।

स्वतंत्रता से पूर्व जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के झण्डे को फहराने के संबध में राज्य में विवाद उठा और इस पर प्रतिबंध लगाने की मांग हुई तब महाराजा सादुलसिंह ने इसे गंभीरता से नहीं लिया और कहा कि तीन रंग के झंडे को किसी दल का झंडा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार इस मुद्दे को अनदेखा कर दिया।।[63] इसके साथ ही उन्होंने संवैधानिक सुधार करने की भी घोषणा की 1 अप्रेल 1947 को बीकानेर के महाराजा ने बम्बई में एक परिपत्र जारी करके भारतीय देशी रियासतों के शासकों से अपील की कि वे संविधान सभा की सदस्यता ग्रहण करें। उन्होंने भारतीय संविधान सभा से संबधित कुछ मुद्दे भी उठाये। उन्होंने ब्रिटिश भारत को दृढ़ता प्रदान करने वाले तत्वों के साथ सहयोग पर बल दिया।[64] उनको विश्वास था कि संविधान सभा में प्रवेश उनके लिये हितकर है ताकि वे राजाओं के हितों की रक्षा कर सकें संविधान सभा की सदस्यता ग्रहण करने के मुद्दे पर राजाओं की इंतजार करो और देखो की नीति उनके अनुसार नुकसानदायक थी वो ही एकमात्र ऐसे शासक थे जो सोचते थे कि संविधान सभा में सम्मिलित होकर ही वे सरकार से मौल भाव करने की स्थिति में होंगे।[65]

देशी रियासतें और प्रस्तावित भारत संघ दोनों अब आमने–सामने आ चुके थे। ये बात बीकानेर के महाराजा के 10 अप्रैल, 1947 को दिये उनके एक प्रेस साक्षात्कार से प्रकट होती है। उन्होंने इसमें कहा कि ''यद्यपि देशी रियासतें स्वतंत्र सम्प्रभु इकाइयां है तथापि वे भारत का एक आवश्यक हिस्सा है।[66] और ये तथ्य देशी रियासतों के लिये महत्वपूर्ण है यदि वे स्वतंत्र रहना चाहती हैं तो ये उन्हें भारत संघ के साथ सौदेबाजी करने की शक्ति प्रदान करता है।

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर जब प्रजा परिषद के सदस्यों ने बीकानेर में ईदगाह बाड़ी मैदान में तिंरगा फहराने की तैयारी की थी तभी महाराजा बीकानेर ने एक आदेश निकाल कर निर्देश दिये की वे तभी तिंरगा फहरा सकते हैं जब राज्य का ध्वज पहले फहराएं और वो तिरंगे झण्डे से ऊचा होना चाहिये। किंतु कार्यकर्ताओं ने वस्तुतः इस आदेश की अवहेलना की।[67]

स्वतंत्रता के पश्चात् बीकानेर के महाराजा ने राज्य को स्वतंत्र रखने और यहां तक की पाकिस्तान में विलय के लिये कई गुप्त गतिविधियां चलाई। साम्प्रदायिक स्थिति पर विचार करने के लिये बहाबलपुर के प्रधानमंत्री तथा केन्द्र के प्रतिनिधि बीकानेर में मिले। केन्द्र के प्रतिनिधि के वापस लौटने के पश्चात् बीकानेर और बहावलपुर दोनों ने मिलकर पाकिस्तान में सम्मिलित होने का षड़यन्त्र रचा। यह षड़यंत्र प्रेस के माध्यम से उजागर हो गया। यद्यपि रियासती विभाग बीकानेर के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं कर सकता था क्योंकि महाराजा ने अपने गृहविभाग से सम्बंधित मुद्दे केन्द्रीय न्यायपालिका को नहीं सौंपे थे। तथापि भारत के एकीकरण के प्रति चिंतित होने का जो ढोंग और नाटक बीकानेर के महाराजा कर रहें थे उस नाटक का झूठ सबके सामने आ गया था। केन्द्र ने सजग होते हुये एक अनुभवी सैनिक अफसर को बीकानेर की सीमाओं की चौकसी करने के लिये नियुक्त कर दिया।[68]

महाराजा साहब ने स्वतंत्रता प्राप्ति के उस नाजुक काल में भारतीय संघ में सम्मिलित होने मे दूसरे राजाओं को नेतृत्व प्रदान करके जो विपुल यश और राष्ट्र की कृतज्ञता अर्जित की थी उसको वे इस रूप मे भुनाने को तत्पर थे कि उनके राज्य की इकाई बनी रहे और उसके माध्यम से उनकी स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता में कोई बाधा न पड़ सके। पर राष्ट्र के लोकतांत्रिक ढांचे में यह संभव नहीं हो सकता था। अब महाराजा ने प्रजा परिषद में फूट डालकर, परिषद के उन नेताओं को खरीदने की प्रक्रिया शुरू कर दी जो किसी भी कीमत पर खरीदे जा सकते थे।[69] उन्होंने महाराजा के साथ मिलकर बीकानेर के स्वतंत्र सम्प्रभु रहने के दावे का समर्थन किया। राजपूताना की समस्त रियासतों के आपस में विलीनीकरण से नये एकीकृत राज्य की प्रक्रिया को रोकने में बीकानेर नरेश ने नई–नई अड़ंगेबाजियां शुरू कर दी। इस भभकी आग ने उत्सुक और आकुल जनता को स्वतंत्रता की भोर का आभास तो करवा दिया पर विलीनीकरण के सूर्योदय को अभी राजतंत्र के बादलों ने ढक रखा था।[70]

पूर्वी रियासतें (अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली)

रियासती मंत्रालय अलवर रियासत पर बराबर दबाव बनाये हुए था कि वह संविधान सभा को अंगीकार करे। अलवर के शासक का मानस संविधान सभा में जाने का था किन्तु वो कुछ शर्ते रख रहे थे। [71] अलवर के प्रमुख सलाहकार एन.बी खरे ने कहा कि पुर्वी रियासतों (जो कि संख्या में 13 थी) को संविधान सभा में तीन सीटें दी गई हैं जिसमें अलवर, भरतपुर व करौली भी सम्मिलित है किन्तु इन तीनों राज्यों को उनकी जनसंख्या के हिसाब से बाकी बचे 10 राज्यों के साथ बहुत कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हो रहा है। इन तीन राज्यों की जनसंख्या एक करोड़ से ऊपर थी जबकी बाकी दस राज्यों की जनसंख्या दो करोड़ के आस–पास थी। खरे ने अलवर की तरफ से सुझाव रखा कि पूर्वी राज्यों के समूह को दो उप समूहों में विभाजित कर दिया जाए एक बूँदी के नेतृत्व में जिसे संविधान सभा में दो प्रतिनिधि भेजने का मौका मिले। जबकी दूसरे में अलवर, भरतपुर, और करौली सम्मिलित हों तथा इन्हें एक प्रतिनिधि भेजने का मौका मिलें। भरतपुर ने घोषणा की कि वे इसी शर्त पर संविधान सभा में प्रवेश लेंगे।[72]

विलय की योजना से असन्तुष्ट होकर भरतपुर के महाराजा के छोटे भाई मानसिंह ने विद्रोह कर दिया। उसने समानान्तर सरकार स्थापित कर ली। [73] विलय के खिलाफ जनता को एकत्रित करने के लिए उसने जाट झण्डे को खतरे में बताया।

उदयपुर

मेवाड़ के राजवंश को लम्बे समय से राजपूताना की रियासतों का सिरमौर कहा जाता रहा। न केवल प्रताप और पद्मिनी की गौरव गाथा के कारण अपितु बहुत सी ऐसी घटनाएं है जो इसकी आभा में नया अध्याय जोड़ती हैं। लेकिन मेवाड़ की इस गाथा का अंत 1857 के पश्चात् तब हुआ जब ब्रिटिश सरकार ने सम्पूर्ण राजपूताना को शस्त्रहीन करने की सोची तब राजपूताना के शासकों ने सामूहिक रूप से जबाब दिया और उन्होंने अपने शस्त्र मेवाड़ को सौंप दिये और तय किया कि वे तभी समर्पण करेंगे जब सिर्फ मेवाड़ चाहेगा। महाराणा उदयपुर ने आत्मसर्पण की अपेक्षा सिर कटवाना बेहतर है ऐसा जवाब दिया।[74] लेकिन यह विषय वही समाप्त हो गया। 1875 में

महाराणा सज्जन सिंह बम्बई में होने वाले दरबार (प्रिंस एडवर्ड के सम्मान में) से वापस आ गये क्योंकि उन्हें आगे की पंक्ति में जगह नहीं दी गयी। दूसरा घटनाक्रम 1881 का है जब महाराणा सज्जनसिंह को **ग्रांड कमाण्डर ऑफ द स्टार ऑफ इण्डिया (GCSI)** की उपाधि देना प्रस्तावित हुआ तब महाराणा ने इसे लेने से इनकार करते हुये कहा कि वे पहले से ही 'हिन्दुआ सूरज' के नाम से विख्यात हैं। अतः वह 'सितारे' की छोटी उपाधि नहीं लेना चाहते। किंतु यदि वायसराय स्वयं उदयपुर आकर उन्हें उपाधि प्रदान करें तो वे इसे स्वीकार कर सकतें हैं।[75] नवम्बर 1881 में वायसराय लार्ड रिपिन ने चितौड़ में आकर उन्हें उपाधि प्रदान की। 1903 ई. की एक बहुत ही विख्यात घटना जिसमें महाराणा फतह सिंह एडवर्ड VII के दरबार में जा रहे थे किन्तु ठाकुर केसरी सिंह बारहठ द्वारा भेजे गए 'चेतावनी रा चूगटियां' को पढ़कर उनका अंतर्मन उद्देलित हुआ और वे दिल्ली पहुंचकर भी दरबार में सम्मिलित नहीं हुए।[76]

राजस्थान संघ के निर्माण के समय जब महाराणा ने संघ में सम्मिलित होने पर सहमती जताई तब नाथूराम नाम के एक भाट ने महाराणा उदयपुर की निंदा की और एक श्लोक लिख कर भेजा। इस निंदापूर्ण ताने को सुनकर भी महाराणा ने अपना निर्णय नहीं बदला। 22 मई, 1947 को प्रताप जयंती के अवसर पर के.एम. मुंशी द्वारा बनाया गया संविधान लागू किया गया किंतु इस संविधान का झुकाव सामंतवादी था अंत जनता के सभी वर्गों ने इसकी निंदा की। माणिक्यलाल वर्मा ने इस घृणित संविधान को पिछोला झील में फेंकने की धमकी दी।[77] 7 मार्च, 1948 को महाराणा भूपाल सिंह ने घोषणा की कि मंत्रीपरिषद जून में प्रस्तावित सभा के प्रति उत्तदायी होगी।[78] संविधान सभा को अंगीकृत करने के मेवाड़ के फैसले का प्रभाव राजपूताना की दूसरी रियासतों पर भी पड़ा।

झालावाड़

3 फरवरी, 1948 को झालावाड़ के शासक हरिशचंद्र बहादुर ने अपने एक भाषण में कोटा के साथ संघ में सम्मिलित होने की बात कही साथ ही उन्होंने हाड़ौती प्रांत के गठन की इच्छा भी व्यक्त की, जिसमें वे कोटा, बूँदी, झालावाड़, टोंक जो की राजपूताना के भाग थे, साथ ही नरसिंह गढ़, राजगढ़, खिलचीपुर, सैलाना, सीतामऊ जो की मध्य भारत का भाग थे को सम्मलित करना चाहते थे।[79]

जोधपुर

सम्भवतः रियासतों के विलय व राजस्थान के एकीकरण के काल में जोधपुर एक ऐसी रियासत थी जो सबसे ज्यादा विवादास्पद रही चारों ओर ये अफवाह फैली हुई थी कि जिन्ना ने जोधपुर को अत्यधिक रियायती शर्तों पर पाकिस्तान में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा है। लेकिन जिन्ना की यह योजना सफल नहीं हो सकी, क्योंकी महाराजा जोधपुर को राजपूत वर्ग का सहयोग नहीं मिला।[80] जोधपुर रियासत के महाराजा अंत तक राजस्थान संघ में विलिनीकरण की प्रक्रिया को बाधित करते रहे।

जयपुर

1944 में जयपुर के महाराजा ने राज्य में संवैधानिक सुधार करने का निर्णय लिया। 1945 में विधानसभा और प्रतिनिधि सभा का उद्घाटन महाराजा मानसिंह ने किया।

महाराजा भारत सरकार की एकीकरण की योजना से खुश नहीं थें उन्होंने अपने एक पत्र में तत्कालीन राजपूताने की स्थिति का चित्रण करते हुऐ लिखा है कि ''मेरा ह्दय फट रहा है। किंतु भय है, राजपूताना पिघलने वाले बर्तन के समान है और मैं देखता हूँ कि उसका भविष्य उज्जवल नहीं है जब तक कि उसका कोई राजा नेतृत्व और त्याग करने को तैयार न हो।[81] ऐसा कहा जाता है कि एक बार महाराजा ने स्वतंत्र रहने की भी सोची लेकिन फिर रक्तपात होने के भय से पीछे हट गये। उन्होंने अपने पत्र में राजपूताना की तत्कालीन रियासतों के विषय में भी लिखा है। जोधपुर रियासत के संबंध में लिखा है कि ''उनकी न केवल आर्थिक स्थिति खराब है अपितु राजा ने एक यूरेशियन सामान्य लड़की से विवाह करके अपनी रियासत के लोगों की नजर में स्वयं का कद छोटा कर लिया है। बीकानेर के महाराजा सादुलसिंह के विषय में लिखा है कि महाराजा बीकानेर अपने बारे में अच्छी राय रखते है किंतु पाकिस्तान में अपनी रियासत से माल की तस्करी ने राजा को बर्बाद कर दिया है। उदयपुर के भूपालसिंह ने स्वेच्छापूर्वक विलय कर लिया है और वह संयुक्त राजस्थान का भाग है। निर्बल महाराणा अपंग है और उनके सलाहकार उनके प्रति निष्ठा से काफी दूर और गलत सलाह देकर उनकी स्थिति का बेजा लाभ उठा रहें हैं। राजपूताना के राजपूतों का सिरमौर अब वैसा नहीं है। जयपुर जिस रियासत का होने का हमें गौरव प्राप्त है।

सबसे अलग है, भारत में आज कोई ऐसा नहीं है जो किसी प्रकार का दोष निकाल सकें।[82]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन देशी रियासतों ने विलय की प्रक्रिया में बाधाएं ही अधिक पैदा की राजे–रजवाड़ों में बहुत कम ऐसे थे जो राजपूताना का सच्चे दिल से एकीकरण चाहते थे विलय से पूर्व इन देशी शासकों ने अपनी रियासतों में किसी न किसी प्रकार का उत्तरदायी शासन स्थापित कर रखा था। इसका कारण स्वतंत्रता के पश्चात् के वातावरण से भयत्रस्त होकर ये कदम उठाना था और इसी उत्तरदायी शासन ने उनका परिचय स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत से करवाया। स्वंतत्रता के पश्चात् कुछ रियासतों ने भारत संघ से अपना अलग स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने का प्रयास करते हुये संवैधानिक राजतंन्त्रात्मक स्वरूप को धारण करना चाहा लेकिन आधुनिक राजनीति की वास्तविकताओं और बदलते परिदृश्य ने उनके दृष्टिकोण को प्रभावित किया। फिर भी उन्होंने अपने भूतपूर्व बलिदानों के लिये स्वयं को पुरस्कार का हकदार सिद्ध करने का जी–तोड़ प्रयास किया। अब यह स्पष्ट हो चुका था कि उनके पास अपने वंशानुगत दावों को छोड़कर, भारत संघ का चुनाव करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था। कुछ शासक ऐसे थे जो तत्कालीन परिस्थितियों को भली–भांति समझते थे और दूसरों से अधिक बुद्धिमान और तेज बनकर उन्होंने एकीकरण की ओर कदम उठाकर भारत संघ के साथ सौदेबाजी करके कुछ रियायतें प्राप्त करने की कोशिश की और इसके कारण लोकतंत्र की प्रक्रिया बाधित हुई। प्रिवीपर्स और अपने पुराने अधिकारों को अधिकतम रूप में धारण रखने का प्रश्न बेचैन होते शासकों के लिये महत्वपूर्ण बनता जा रहा था। उन्होंने इस शर्त पर अपनी सम्प्रभूता का समर्पण किया था ताकि वे आर्थिक रूप से सक्षम रहें अपने पुराने वैभव को इस नई व्यवस्था के अनुरूप बनाये रखें।

रियासती मंत्रालय की भूमिका

20 फरवरी, 1947 की ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली की भारत पर सम्प्रभूता की समाप्ति की घोषणा के साथ ही भारत में बालकन गणराज्यों जैसी समस्या उत्पन्न होने की खतरनाक संभावना उत्पन्न हो सकती थी।[83] यदि स्वतंत्र भारत का रियासती मंत्रालय देशी रियासतों के साथ सहयोग के स्थान पर कोई अन्य रास्ता अपनाता।

इसलिये स्वतंत्र भारत की नई सरकार का प्रथम कार्य 5 जुलाई 1947 को रियासती मंत्रालय की स्थापना करना रहा।[84] ताकि 25 जून, 1947 को जो फैसला मंत्रिमंडल की बैठक में लिया गया था उसके आधार पर देशी रियासतों के साथ सम्बन्धों का संचालन हो सके। इस विभाग का प्रमुख कार्य भारत सरकार और देशी रियासतों के मध्य उत्पन्न होने वाले विभिन्न मुद्दों पर समझौता वर्ता करना था। देशी रियासतों के साथ अपने सम्बन्धों का संचालन करने के लिये स्थानीय प्रतिनिधियों को नियुक्त किया गया ताकि देशी रियासतें उनके साथ समझौता कर सके।[85]

5 जुलाई, 1947 को पटेल ने देशी रियासतों के साथ अपने सम्बोधन में यह स्वीकार किया। कि ब्रिटिश परमोच्चता का सिद्धांत देशी रियासतों के संबंध मे अपरिभाषित रह गया है। उन्होंने कहा कि अपनी स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने की राजाओं की मांग के साथ उनकी सहानभूति है किंतु उन्हें इसके प्रयोग में सावधानी बरतनी होगी। ताकी इन रियासतों के हित भारत के सामान्य हित के विरूद्ध प्रयोग नहीं हो, साथ ही केन्द्र व क्षेत्रिय शक्तियों के सामूहिक हित के खिलाफ भी इसका प्रयोग नहीं किया जा सके। उन्होंने जोर दिया कि इस नये विभाग का कार्य भारत के हित में कार्य करना है न कि दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करना।

सरदार पटेल और उनके विभाग के ऊपर भूतपूर्व राजनीतिक अधिकारियों ने तीन अंतः सम्बंधित दोष लगाए। पहला आरोप पटेल और उनके प्रमुख सहायक वी.पी. मेनन के ऊपर ये लगाया कि उन्होंने 1947 की गर्मियों में राजाओं द्वारा अपने अभिषेक के अवसर पर हस्ताक्षरित समझौते में शामिल प्रतिरक्षा, विदेश और संचार से संम्बधित मसलों के अतिरिक्त दूसरे मामलों में भी हस्तक्षेप किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाजायज और कायरतापूर्ण तरीके अपनाये, राजाओं को धमकियां दी, ब्लेकमेल किया और बलपूर्वक अधीन किया। असंतुष्ट और पूरी तरह से विलय के अनिच्छुक शासकों को लाचार करके अपनी सत्ता को त्यागने पर विवश किया।

अंत में पटेल और मेनन पर राजाओं के साथ कुटिल और निंदाशील व्यवहार करने का आरोप लगाया गया। समझौते पर हस्ताक्षर करवाने के लिऐ उन्होंने राजाओं को पूरी तरह बहलाया फुसलाया।

लेकिन दूसरी तरफ जब हम विचार करते हैं कि पटेल और उनके कांग्रेसी सहयोगियों ने जुलाई और अगस्त, 1947 के समय जिस प्रकार की गम्भीर स्थितियों का समाना किया उसमे यह असम्भव प्रतीत होता है कि उन्होंने देशी रियासतों के विरूद्ध कोई विस्तृत और सुनियोजित योजना का निर्माण किया होगा। भारत संघ और देशी रियासतों के मध्य हस्ताक्षरित लिखित बन्ध पत्र एक अस्थाई दस्तावेज था जिसका उद्देश्य भारत के विखण्डन को तब तक के लिये रोकना था जब तक कि कार्यवाहक संवैधानिक ढांचा अस्तित्व में नहीं आ जाये । किसी भी प्रकार की कानूनी व्यवस्था न स्थापित हो जाये। पटेल और मेनन ने इसके अतिरिक्त कुछ सोचा हो इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिलते । वास्तव में देशी रियासतों के विलीनीकरण में जो भूमिका सरदार पटेल और मेनन ने निभाई वह भारतीय इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगी । भारत के अंतिम गर्वनर जनरल माउंटबेटन ने देशी रियासतों के एकीकरण में पटेल की भूमिका को सदा ही गर्व की दृष्टि से देखा उन्होंने कहा था कि देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय ही वर्तमान की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है यदि आप इसमें असफल हो गए होते तो इसके परिणाम खतरनाक हो सकते थे।.........वर्तमान सरकार ने रियासतों के विषय में उत्कृष्ट नीति का पालन किया है।[86] 1956 में भारत की यात्रा के समय जार और जारशाही दोनों को नष्ट करने वाले देश सोवियत रूस के नेता निकेता ख्रुश्चेव ने सरदार पटेल की उपलब्धियों पर आश्चर्य व्यक्त करते हुऐ कहा था कि–

"You Indian an amazing people! How on earth did you manage to liquidate the princely rule without liquidating the princes**?** [87]

संदर्भ सूची

1. ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस रिजोल्यूशन 1939 बोम्बे
2. वी.डी. माथुर–स्टेटस पीपल्स कॉन्फ्रेंस पृ.40
3. अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद द्वारा श्रीनगर में पारित प्रस्ताव, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, नई दिल्ली।
4. वी.पी. मेनन – द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स पृ.46 व 479–95
5. बी.एल पानगड़िया – राजस्थान में स्वतन्त्रता संग्राम पृ.120
6. आर.पी.व्यास आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास पृ.375
7. फाइल न.102 राजस्थान संघ के निर्माण से सम्बंधित विविध दस्तावेज इन्टर मिडायरी डिपोजिटरी, उदयपुर, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, उदयपुर
8. द टाइम्स ऑफ इडिण्या 2 अप्रैल 1947 पृ.7 पेपर कटिंग्स अभिलेखागार बीकानेर।
9. द हिन्दुस्तान टाइम्स पृ.10 नई दिल्ली पेपर कटिंग्स अभिलेखागार, बीकानेर।
10. फाइल न.102 कॉन्फिडेन्शियल मेमोरेन्डम इन्टरमिडायरी डिपोजिटरी उदयपुर राज्य अभिलेखागार उदयपुर।
11. फाइल न.c –16 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर सूचना एवं जनसंपर्क विभाग रियासती जोधपुर खण्ड I न. 130 दिनांक 7 मार्च 1948 पृ. 2 अभिलेखगार बीकानेर।
12. वी.पी. मेनन –द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इन्डियन स्टेटस पृ.300
13. फाइल न. c –7 प्रेस कंटिंग्स राजपूताना यूनियन सूचना एवं जन–संपर्क विभाग जोधपुर, वीर अर्जुन खण्ड 27 न. 218, 23 मार्च 1948 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
14. फाइल न. c –15 प्रेस कटिंग्स सूचना एवं जन संपर्क विभाग, दरबार, अजमेर 16 सितंबर 1948 पृ. 10 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
15. फाइल न. c –16 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर सूचना एवं जन संपर्क विभाग इण्डियन न्यूज क्रॉनिकल, दिल्ली खण्ड – 2, न.323, 26 नवम्बर 1948 पृ.5 राज्य अभिलेखागार बीकानेर ।
16. उपरोक्त, द स्टेटसमैन दिल्ली खण्ड –17 न.285 दिनांक 27 नवम्बर 1948 पृ.10 राज्य अभिलेखागार बीकानेर
17. 'उपरोक्त', द स्टेटसमैन 2 दिसंम्बर 1948 पृ.9 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
18. पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार– हमारा राजस्थान पृ.462 63 66
19. फाइल न. c –15 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग खण्ड–12 न.11 4 नवम्बर 1948, राज्य अभिलेखागार बीकानेर।

20. फाइल न. c –16 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर सूचना एवं जनसंपर्क विभाग इण्डियन न्यूज क्रानिकल, दिल्ली खण्ड–2 न.323 26 नवम्बर 1948 पृ. 5 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
21. फाइल न. डी–7 प्रेस कटिंग्स राजपूताना सभा जोधपुर सूचना एवं जनसंपर्क विभाग 1948 वीर अर्जुन, दिल्ली दिनांक 7 मई 1948 पृ.4 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
22. उपरोक्त, हिन्दुस्तान दिल्ली खण्ड 15 न.130 22 मई 1948 पृ.5 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
23. उपरोक्त, हिन्दुस्तान दिल्ली खण्ड 15 न. 133, 25 मई 1948 पृ.6 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
24. उपरोक्त हिन्दुस्तान दिल्ली खण्ड न.145 6 जुन 1948 पृ.7 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
25. पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार– हमारा राजस्थान पृ.460–61
26. फाइल न. c-16 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग द स्टेटसमैन दिल्ली खण्ड–2 न. 235, 27 नवम्बर 1948 पृ.10 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
27. फाइल न. c-7 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग विश्वामित्र दिल्ली खण्ड–7 न. 249, 9 अगस्त 1948 पृ.3 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
28. फोर्टनाइटली इन्टेलिजेन्स रिर्पोट ऑफ राजपूताना स्टेटस 1948, 1 हॉफ ऑफ मार्च 1948 बी. एन.कौल आई.जी.पी. अजमेर मेरवाड़ा, बीकानेर ग्रह विभाग, राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
29. न्यूज पेपर कटिंग्स, इण्डियन न्यूज क्रॉनिकल, दिल्ली खण्ड–II न.64, 6 मार्च 1948 पृ.7 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
30. फाइल न.सी–16 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन जोधपुर सूचना एवं जनसंपर्क कार्यालय, रियासत जोधपुर खण्ड–1 न. 134 15 मार्च 1948 पृ.3 राज्य अभिलेखागार बीकानेर
31. उपरोक्त विश्वामित्र, दिल्ली खण्ड–7 न. 248, 8 अगस्त 1948, पृ.5 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
32. फाइल न. सी –15 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन, जोधपुर सूचना एवं जनसंपर्क विभाग विश्वामित्र, दिल्ली खण्ड–7 न.350 19 नवंम्बर 1948 पृ.2 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
33. ओरल हिस्ट्री सैक्शन, राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
34. 'उपरोक्त'
35. रामनारायण चौधरी–20वीं सदी का राजस्थान पृ.55–56
36. उपरोक्त
37. उपरोक्त पृ.143
38. उपरोक्त पृ.262–63

39. दुर्गादास–सरदार पटेल कॉरस्पोंडेंस खण्ड–5 जयनारायण व्यास का पत्र, अध्यक्ष रातपूताना क्षेत्रीय सभा पृ.393
40. उपरोक्त पृ.396
41. उपरोक्त पटेल के व्यास को पत्र दिनांक 3 जुलाई 1947 पृ.397
42. उपरोक्त
43. उपरोक्त
44. उपरोक्त सरदार पटेल द्वारा लिखे गये पत्र, दिनांक 25 अप्रेल 1949 पृ.505
45. उपरोक्त पृ.557,
46. उपरोक्त पृ.565
47. उपरोक्त पृ.567
48. दुर्गादास–सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेन्स खण्ड–5 पृ.583–84
49. समाचार पत्रों की कटिंग्स, इण्डियन न्यूज क्रॉनिकल दिनांक 1 अगस्त 1947 पृ.5 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
50. समाचार पत्रों की कटिंग्स, द हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, दिनांक 18 मई 1946 पृ.6 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
51. फाइल न.सी–16 प्रेस कंटिग्स राजपुताना यूनियन /जोधपुर सूचना एवं प्रचार कार्यालय हिन्दुस्तान, नई दिल्ली खण्ड–15 न.69 दिनांक 11.3.1948 पृ.4 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
52. इण्डियन न्यूज कॉनिकल दिनांक 1.8.1947 पृ.5, राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
53. फाइल न. सी–16 प्रेस कंटिग्स राजपुताना यूनियन/जोधपुर सूचना एवं प्रचार कार्यालय, द हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली खण्ड xxv, न. 74 दिनांक 17.3.1948 पृ.6, राज्य अभिलेखगार बीकानेर।
54. फाइल न. सी 16, वही, द हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली खण्ड xxv न. 184 दिनांक 30.6. 1948, पृ.6 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
55. फाइल न. सी 16 वही, द हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली खण्ड xxv न. 184, दिनांक 30.6. 1948 पृ .6 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
56. फाइल न. सी–11 प्रेस कंटिग्स जैसलमेर जोधपुर सूचना एवं प्रचार कार्यालय, 1948 द हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली खण्ड 25, न. 74 पृ.4 सेठ दामोदर स्वरूप दास द्वारा संसद में प्रश्न, राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
57. हिन्दुस्तान टाइम्स 7 अप्रैल 1947
58. बीकानेर होम डिपार्टमेंट फोर्टनाइटली इन्टेलीजेंस रिर्पोट ऑफ द राजपुताना स्टेट–1948 फरवरी का प्रथम पखवाड़ा आई.जी.पी अजमेर– मेरवाड़ा राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
59. पृथ्वी सिंह मेहता विद्यालंकार–हमारा राजस्थान पृ.464–66
60. उपरोक्त पृ.503

61. उपरोक्त पृ.464
62. दाऊदयाल आचार्य–भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान– पृ.365
63. दुर्गादास–सरदार पटेल कॉरस्पोन्डेंस 1945–50खण्ड III पृ.352–53
64. उपरोक्त खण्ड v पृ.518
65. उपरोक्त पृ.521
66. न्यूजपेपर कंटिंग्स द स्टेटसमैन 12 अप्रैल 1947, राज्य अभिलेखागार बीकानेर
67. दाऊदयाल आचार्य–भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ. 366
68. उपरोक्त
69. उपरोक्त पृ.396
70. उपरोक्त पृ.432
71. दुर्गादास (सं)–सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेन्स 1945–50 खण्डV पृ.373–75
72. उपरोक्त पृ.377–78
73. फाइल न.डी/36 प्रेस कटिंग्स राजपूताना यूनियन, डॉन कराची, खण्ड 7 न. 78दिनांक 20. 3.1948 पृ.6 जोधपुर सूचना एवं प्रचार कार्यालय राज्य अभिलेखागार बीकानेर
74. पृथ्वी सिंह मेहता विद्यालंकार–हमारा राजस्थान पृ.257, 272 ,–73
75. गौरीशंकर हीराचंन्द ओझा – उदयपुर राज्य का इतिहास खण्ड–II पृ.824–25
76. पृथ्वी सिंह मेंहता विद्यालंकार–हमारा राजस्थान पृ.288–89
77. उपरोक्त पृ.464
78. फाइल न. सी–12 प्रेस कंटिंग्स उदयपुर, जोधपुर सूचना एवं जनसंपर्क कार्यालय 1948 वीर अर्जुन, दिल्ली खण्ड 27 न. 66 दिनांक 8 मार्च 1948 पृ.4 राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
79. झालावाड स्टेट गजेट एक्ट्राआर्डिनरी संवत, 2004 ब्रजनगर, मंगलवार 3 फरवरी 1948 लाइब्रेरी सेक्शन राज्य अभिलेखागार बीकानेर।
80. पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार–हमारा राजस्थान पृ.501
81. महाराजा जयपुर सवाई मानसिंह का अपने पुत्र भवानी सिंह को पत्र राज्य अभिलेखागार जयपुर।
82. 'उपरोक्त'
83. बी.कृष्णा–इण्डियाज बिस्मार्क पृ.79
84. करणी सिंह–द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पॉवर पृ.328
85. उपरोक्त
86. बी.कृष्णा–इण्डियाज बिस्मार्क पृ.149
87. के.पी.एस मेनन (ICS) द सण्डे स्टैंडर्ड 12 सितम्बर 1976

अध्याय : पंचम
विलीनीकरण के प्रारंभिक चरण

''छोटे राज्य अब बने नहीं रह सकते। उनके सामने एक ही विकल्प है कि वे बड़ी तथा समुचित आकार की इकाइयों में सम्मिलित हो जायें। जो अब राजपूत आधिपत्य की स्थापना का स्वप्न देख रहे हैं, वे आधुनिक संसार से बाहर है। अब शक्ति, प्रतिष्ठा या वर्ग का चिंतन उचित नहीं होगा।''

–सरदार पटेल

प्रविष्ठ संलेख पर हस्ताक्षर करके देशी रियासतों ने भारतीय संघ में प्रवेश कर लिया था। इस प्रकार रियासती मंत्रालय ने अपने उद्देश्य का प्रथम चरण सफलता पूर्वक पूर्ण कर लिया। अब भारत सरकार ने रियासतों के पूर्ण एकीकरण के उद्देश्य को सामने रखते हुए अपने कार्य के द्वितीय चरण को पूर्ण करने के प्रयास शुरू किये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही देशी रियासतों में राजनीतिक आंदोलन तीव्रता से फैलने लगे तथा जनता द्वारा उत्तरदायी शासन की मांग होने लगी। इन आंदोलनों पर टिप्पणी करते हुए सरदार पटेल ने 16 दिसम्बर, 1947 को कहा कि'' जब तक छोटी रियासतों के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटा नहीं दिया जाता तब तक उनमें जनतंत्रीय शासन की स्थापना असंभव होगी।[1]

एक प्रकार से यह भारत के गणतंत्रीय शासन का छोटे नरेशों के प्रति आदेश था जिसके सामने अपने अस्तित्व को विवश हो खो देने और जनतंत्रीय संस्थाओं का निर्माण करने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं रह गया था।[2] इस पर कई राजाओं ने सरदार पटेल को पत्र लिखकर स्थिति स्पष्ट करने को कहा। सरदार पटेल द्वारा 5 जनवरी, 1948 को बीकानेर नरेश सादुलसिंह को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि 'मैं

श्रीमान को यह बात साफ बता देना चाहता हूँ कि हम स्वयं एकीकरण के किसी प्रस्ताव को प्रेरणा या बढ़ावा नहीं देते। हम ऐसे किसी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे जब तक हमें संतोष न हो जाये कि इसे संबंधित जनता और शासक का समर्थन प्राप्त है।[3]

7 जनवरी, 1948 को लार्ड माउंटबेटन ने दिल्ली में राजाओं का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें जोधपुर, बीकानेर, भोपाल, रीवा, कोटा तथा अलवर के शासक एवं कश्मीर, इंदौर, कोल्हापुर, उदयपुर, बीकानेर, जयपुर, कोटा, अलवर तथा रीवा के दीवान एवं त्रावणकोर, कोचीन, पटियाला एवं जोधपुर के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। माउंटबेटन ने राजाओं को सलाह दी कि छोटे राज्यों को आपस में विलय करके संघ बना लेने चाहिये। केन्द्र सरकार बड़े राज्यों के विलय के पक्ष में नहीं है।[4] मेनन ने कहा कि एकीकरण का सिद्धांत उन रियासतों पर लागू नहीं किया जायेगा जिनके संविधान निर्मात्री समिति में अलग प्रतिनिधि हैं।[5] प्रत्येक रियासत के लिये एक कसौटी बनायी गयी है। जिसमें उसकी आय, जनसंख्या और विकास की संभावनाओं को ध्यान में रखा जायेगा।[6] 20 फरवरी, 1948 को पटेल ने पुनः बीकानेर नरेश को लिखा कि मैं इस बात को एक बार से अधिक बार स्पष्ट कर चुका हूँ कि रियासती मंत्रालय एकीकरण की योजना को तभी समर्थन करेगा जब इस विषय पर जनता और राजा दोनों सहमत हों। हमने इस स्थिति को लगातार बनाये रखा है।[7] 15 मार्च, 1948 को एन.बी.गाडगिल ने एकीकरण के मामले में पटेल द्वारा दिये गये आश्वासन को पुनः दोहराया। उन्होंने कहा कि विधान निर्मात्री सभा में जिन रियासतों के अलग प्रतिनिधि है, उन्हें समय समय पर भारत सरकार ने आश्वासन दिया है कि वे अलग रहने योग्य इकाइयां मानी जायेंगी। विलय या एकीकरण के लिये अपनी ओर से किसी प्रकार का दबाव, डालने या डराने की हमारी कोई इच्छा नहीं है।[8]

29 मार्च, 1948 को मेनन ने दिल्ली में एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि कोचीन त्रावणकोर, मैसूर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर और भोपाल जैसी बड़ी रियासतें स्वतंत्र इकाइयों के रूप में रहेंगी और ऐसे संघों और इकाइयों की संख्या 25 होगी। सरकार रियासती मंत्रालय द्वारा दिये गये इस वचन को मानती है कि अलग रहने योग्य इकाइयों को तब तक अलग रहने दिया जायेगा। जब तक कि वे स्वेच्छा से

शामिल न हो।[9] भारत सरकार की घोषणा यह थी कि स्वतंत्र भारत में 1 करोड़ वार्षिक आय और 10 लाख जनसंख्या वाली रियासत पृथक अस्तित्व रखने योग्य समझी जायेगी।[10] प्रारम्भ में भारत सरकार ने घोषणा की थी कि 18 रियासतें ऐसी हैं कि वे भारतीय संघ की पूर्ण इकाई की शर्तों को पूरा करती हैं। विधान निर्मात्री सभा के समक्ष रखे गये संविधान के मसौदे के सम्बन्धित भाग में इन 18 रियासतों के नाम भी दिये गये थे।[11] रियासती विभाग के मंत्री और सचिव के वक्तव्यों से सक्षम राज्यों के शासकों को लगा कि उनके राज्य स्वतंत्र रह सकेंगें जिससे उन्होंने जन अकांक्षाओं की अवहेलना आरंभ कर दी। वहीं कांग्रेस के प्रांतीय एवं स्थानीय नेताओं में राजस्थान के शीघ्र एकीकरण की मांग ने जोर पकड़ लिया। इस पर राजाओं ने राज्यों में प्रजा मंडलों तथा प्रजा परिषदों द्वारा चलाये जा रहे आदोलनों को मजबूती से कुचलने का प्रयास किया। वहीं झण्डा विवाद भी बड़े पैमाने पर मुखर हुए। आगे चलकर रियासती मंत्रालय को इन राज्यों के विलीनीकरण में इनके राजाओं का भारी प्रतिरोध झेलना पड़ा। कांग्रेस का स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात् से ही छोटी रियासतों को समाप्त करने का मानस रहा।

दीवान जरमनी दास ने लिखा है कि यह तय किया गया कि छोटी रियासतों को या तो बड़ी इकाइयों से अथवा पड़ौस के प्रांत से मिला दिया जाये। यद्यपि पहले ये निश्चय हुआ कि जिन रियासतों का वैयक्तिक प्रतिनिधित्व विधान मंडल में होगा, उनको पृथक इकाई माना जायेगा परंतु बाद में सपष्ट हुआ कि उनमें से अनेक रियासतों को संघ में अथवा प्रांतों में मिलाना आवश्यक होगा। इस नतीजे पर पहुँचने के कई कारण थे।[12]

1. बहुत सी रियासतों के क्षेत्र सिलसिले में न होकर बिखरे हुए थे अतः उनकी शासन व्यवस्था में कठिनाई होती थी।
2. बहुत सी रियासतों की संस्कृति और भाषा पड़ौस के राज्यों व प्रांतों की संस्कृति और भाषा जैसी थी। अतः उनका अलग रहना अनियमित था।
3. प्रशासन की अनेक इकाइयां रखने पर उन पर होने वाला व्यय एक आडम्बर मात्र था।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर उनके बड़ी इकाइयों में विलय की युक्तियां बनायी गयी।[13] राजाओं द्वारा अब तक एकीकरण के जो भी प्रयास किये गये थे उनमें जनमत को अपनी ओर करने अथवा जन नेताओं को इस कार्य के लिये तैयार करने का कोई उपाय नहीं किया गया था। अतः स्वाभाविक था कि जनसामान्य इन प्रयासों से दूर रहा तथा जन नेताओं ने इसका विरोध किया। राजाओं के परस्पर वैमनस्य को देखते हुए यह लगने लगा था कि ये लोग स्वयं कोई भी निर्णय लेने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए यह अनुभव किया जाने लगा कि इसके लिये सरकारी स्तर पर प्रयास किये जाने चाहिये।[14] भारत सरकार ने राज्यों के अधिग्रहण के लिये चतुष्कोणीय पद्धति अपनायी इसके तहत प्रांतो के साथ राज्यों का विलय, संगठन के माध्यम से केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के रूप में रियासतों का एकीकरण, नवीन संघ के रूप में रियासतों का एकीकरण तथा कुछ सक्षम राज्यों को पृथक इकाई के रूप में मान्यता देना सम्मिलित था।

16 दिसम्बर, 1947 को सरदार पटेल ने घोषणा की कि छोटी–छोटी रियासतों को आपस में मिलाकर एक संघ बनाया जायेगा। रियासती विभाग उन सभी छोटी–बड़ी रियासतों का विलीनीकरण अथवा समूहीकरण चाहता था जो अपने सीमित साधनों से प्रगतिशील शासन की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ थे। इन रियासतों का समूहीकरण इस प्रकार किया जाना था कि भाषा, संस्कृति और भौगोलिक सीमा की दृष्टि से एक संयुक्त राज्य में संगठित हो सकें।[15] राजपूताना की रियासतों के मामले में भी भाषा, संस्कृति, अर्थव्यवस्था व भौगोलिक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए एक नवीन सक्षम इकाई का गठन करके राजस्थान संघ के निर्माण की दिशा में प्रयास प्रारम्भ हुए।

रियासती मंत्रालय द्वारा एकीकरण के प्रारम्भिक प्रयास

भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम राजपूताना की रियासतों में से सबसे पहले किशनगढ़ तथा शाहपुरा रियासतों को केन्द्र शासित प्रदेश अजमेर–मेरवाड़ा में मिलाने का निर्णय लिया गया। किशनगढ़ के महाराजा सुमेरसिंह ने रियासती मंत्रालय के

आदेश से 26 सितम्बर, 1947 को विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। उसी दिन शाहपुरा के महाराजाधिराज सुदर्शन देव को भी रियासती विभाग में बुलाया गया। महाराजाधिराज सुदर्शनदेव ने कहा कि हम वैधानिक शासक हैं। अतः अकेले कोई निर्णय नहीं ले सकते। रियासती विभाग के अधिकारी ने धमकी भरे शब्दों में सुदर्शनदेव से कहा कि ऐसा न करने पर आपको दुष्परिणाम भुगतने होंगे, इसके जवाब में राजा ने कहा कि अलवर नरेश के विरुद्ध गंभीर आरोप थे, हमारे विरुद्ध कोई आरोप नहीं है। महाराजाधिराज सुदर्शनदेव ने अपने राज्य के मुख्यमंत्री गोकुललाल असावा को इन तथ्यों से अवगत करवाया। असावा ने राजपूताने के गणमान्य नेताओं को साथ लेकर वी.पी.मेनन तथा सरदार पटेल से सम्पर्क किया। इन नेताओं ने मेनन व पटेल को समझाया कि महाराजाधिराज सुदर्शनदेव की मंशा भारत सरकार की योजना का विरोध करने की नहीं है। जनप्रतिनिधियों की आम राय यह है कि राजपूताने की सभी छोटी–बड़ी रियासतों को मिलाकर एक संघ बनाया जाये। किशनगढ़ तथा शाहपुरा को भी उसमें सम्मिलित किया जाये। जनभावनाओं को देखते हुए पटेल ने अपना निर्णय बदल लिया।[16]

के.एम.मुंशी व गुजरात के अन्य नेता महागुजरात संघ के निर्माण के लिये प्रयत्नशील थे। इसी क्रम में नवम्बर, 1947 में सरदार पटेल को बताया गया कि पालनपुर, सिरोही, दांता, ईडर, विजयनगर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और झाबुआ ऐसे राज्य हैं, जहां अधिकांश लोग गुजराती भाषी हैं अतः इन रियासतों को राजपूताना एजेंसी से हटाकर पश्चिमी भारत और गुजरात एजेंसी के नियंत्रण में रख दिया जाये। राजपूताने के राजाओं और स्थानीय प्रजामण्डलों ने इस योजना का विरोध किया जिसके फलस्वरूप डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा को यथास्थिति में रखा गया किंतु 1 फरवरी 1948 को पालनपुर, ईडर, दांता एवं विजयनगर को राजपूताना एजेंसी से हटाकर गुजरात एजेंसी के अंतर्गत रख दिया गया। कुछ समय बाद सिरोही राज्य को भी गुजरात एजेंसी के सुपुर्द कर दिया गया।[17] 14 दिसम्बर, 1947 एवं बाद की तिथियों में छत्तीसगढ़ तथा उड़ीसा की रियासतों ने समझौते पर हस्ताक्षर करके भारतीय संघ को अपने शासन के पूर्ण अधिकार सौंप दिये। 1 जनवरी, 1948 को इन रियासतों का शासन मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा की सरकारों को सौंप दिया गया।[18] रियासती मंत्रालय

की एकीकरण नीति की अखबारों में कटु आलोचना हुई तो सरदार पटेल ने मेनन को गांधीजी और पंडित नेहरू के पास भेजा ताकि उन्हें इस कार्यवाही के औचित्य का विश्वास करा दिया जाये। मेनन के अनुसार गांधीजी को इस काम से पूरी तरह संतोष था।[19] भारत सरकार की इस कार्यवाही से राजाओं के मन में भय उत्पन्न हो गया। अलवर एवं भरतपुर में मेव जाति ने आंतक फैला दिया था। जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं ने भी मेवों पर आक्रमण किये। दंगों में भरतपुर रियासत के 209 गांव पूर्णतः नष्ट हो गये। मेव, भरतपुर रियासत का उत्तरी भाग, गुडगांव और अलवर रियासत के दक्षिणी क्षेत्रों को मिलाकर मेवस्तान बनाने का स्वप्न देख रहे थे।[20] अलवर राज्य के दीवान एन.बी.खरे ने मेवों को सख्ती से कुचला खरे हिन्दु महासभा के अध्यक्ष भी रहे इसलिये कांग्रेसी नेताओं ने खरे पर कट्टर हिन्दूवादी होने के आरोप लगाये। कांग्रेसियों का मानना था कि खरे ने हिन्दुओं को मेवों के विरूद्ध भड़का कर दंगा करवाया। अक्टूबर 1947 में सरदार पटेल ने रियासती प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाई। सभा में पटेल ने भरतपुर के राजा तथा अलवर के दीवान से कहा कि जो लोग सांप्रदायिकता फैलाने का काम कर रहे हैं, वे देश के शत्रु हैं। खरे ने पटेल की इस कार्यवाही को राज्य के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप माना।[21]

30 जनवरी, 1948 को गांधीजी की हत्या कर दी गयी जिसमें अलवर नरेश और उनके प्रधानमंत्री एन.बी.खरे का हाथ होने का संदेह किया गया । भारत सरकार ने 7 फरवरी, 1948 को अलवर नरेश तेजसिंह को दिल्ली बुलाकर कनाट प्लेस पर स्थित मरीना होटल में नजरबंद कर दिया तथा अलवर राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। खरे को पदच्युत करके दिल्ली में नजरबंद कर दिया गया।[22] अलवर नरेश की नजरबंदी से राजपूताना के राजाओं में भय व्याप्त हो गया और वे राष्ट्रीय नेताओं के दबाव में आ गये। अब वे अपने राज्यों को राजस्थान में मिलाने के लिये प्रस्तुत हो गये। अलवर तथा भरतपुर राज्यों की ही तरह, धौलपुर तथा करौली राज्यों में भी सांप्रदायिक दंगो की आशंका दिखाई देने लगी। अतः रियासती मंत्रालय ने इन चारों राज्यों के राजाओं को हटाकर इन राज्यों का एक संघ बनाने का निर्णय लिया।

राजपूताना में एकीकरण की प्रक्रिया लगभग सात चरणों में सम्पन्न हुई। भारत विभाजन और उससे उत्पन्न साम्प्रदायिक तनाव ने एकीकरण की प्रक्रिया को और अधिक गति प्रदान की।

मत्स्य संघ का निर्माण

मत्स्य प्रदेश के अन्तर्गत पूर्वी राजस्थान की चार रियासतें अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली सम्मिलित थी। स्वतंत्रता से पूर्व ही इन रियासतों में राजनीतिक रूप से उत्तेजनापूर्ण वातावरण था तथा प्रशासनिक रूप से ये अव्यवस्था का शिकार थीं। अलवर और भरतपुर में मेव मुसलमान जाती का आतंक फैला हुआ था।[23.] मेवों ने भारी संख्या में नरसंहार किया जवाब में हिन्दुओं ने भी बदले की भावना से मेवों को मारना और उनके गावों को लूटना प्रारम्भ कर दिया था।[24] अलवर के स्वाधीनता सेनानी मास्टर भोलानाथ ने अपने लेख 'अलवर प्रजामण्डल'' में लिखा था कि अलवर इन दंगो का प्रमुख केन्द्र रहा। महात्मा गांधी को इससे बड़ा दुख हुआ।[25] भरतपुर के सेनानायक राजा गिर्राज शरण सिंह जो कि तत्कालीन भरतपुर के महाराजा के भाई थे। उन्होंने एक प्रेस वक्तव्य में कहा कि उत्तरी भरतपुर के 209 गांव इन उपद्रवों में नष्ट हो चुके थे। भरतपुर के उत्तरी भाग गुड़गांव और अलवर के दक्षिणी क्षेत्रों को मिलाकर मेव, मेवस्तान बनाने का स्वप्न देख रहे थे।[26] 5 जुलाई 1947 को भरतपुर के महाराजा बृजेन्द्रसिंह ने हिन्दुओं व मुसलमानों के प्रतिनिधियों से शांति स्थापना में सहयोग मांगा तथा कहा कि यदि किसी भी संप्रदाय द्वारा हिंसा की जाती है तो उस समाज के प्रतिनिधि व नेता इसके लिए उत्तरदायी होंगे। उन्होंने चेतावनी दी कि दंगाईयों को देखते ही गोली मार दी जाएगी।[27] भरतपुर रियासत में घटित साम्प्रदायिक घटनाओं की प्रतिक्रिया अलवर राज्य में हुई। उस समय अलवर राज्य में डॉ. एन.बी. खरे दीवान के पद पर कार्यरत थे वे मुस्लिम विरोधी कट्टर हिन्दू थे। और हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी रह चुके थे। [28] उनके विरुद्ध आरोप था कि उन्होंने मेवों के विरुद्ध हिन्दुओं को भड़काया। उनके विरूद्ध यह भी शिकायत थी कि वे मेवों को मार कर उन्हें राज्य के बाहर निकाल रहे हैं उनकी मस्जिदें गिरा रहें हैं तथा उनके कब्रिस्तानों को नापाक कर रहे हैं।[29]

देश में व्याप्त साम्प्रदायिक उन्माद और बर्बरता से भारत सरकार चिन्तित थी। अक्टूबर 1947 में सरदार पटेल ने प्रांतो व देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें अलवर भरतपुर के शासक और डॉ. खरे को भी बुलाया गया। इसमें पटेल ने साम्प्रदायिक सौहार्द बनाए रखने पर बल दिया और सभी प्रतिभागियों ने सरदार को इस कार्य में पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।[30] परन्तु डॉ. खरे, जो सरदार पटेल के प्रति कोई अच्छी धारणा नहीं रखते थे ने पटेल की इस कार्यवाही को राज्य के आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप माना।[31]

अलवर व भरतपुर रियासतों के विरूद्ध शिकायतें दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही थी। ऐसे में वी.पी.मेनन को गुप्त रूप से अलवर भेजा गया ताकि वे वस्तुस्थिति का सही–सही अध्ययन कर सकें।[32] उन्होंने अलवर राज्य के प्रशासन का जायजा लिया तथा दिल्ली लौटकर सरदार पटेल को सुझाव दिया कि अलवर राज्य का प्रशासन भारत सरकार अपने हाथ में लेकर डॉ. खरे के स्थान पर अपने पसंद के व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करे। अलवर रियासत पहले ही सांप्रदायिक तनाव का शिकार थी। इस पर 30 जनवरी, 1948 को गांधीजी की हत्या कर दी गयी। उस समय ऐसी अफवाह बड़ें जोरों पर थी कि महात्मा गांधी की हत्या का षडयंत्र अलवर राज्य में रचा गया था।[33] अलवर रियासत उस समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का महत्वपूर्ण प्रशिक्षण स्थल था। डॉ. एम.वी.खरे. 1937 में मध्यप्रदेश की कांग्रेस सरकार के मुख्यमंत्री थे। गांधीजी से उनका मतभेद हो गया था। 1947 में अलवर रियासत के प्रधानमंत्री नियुक्त हुये। यहां पर षड़यंत्रकारियों को शरण दी गयी थी। हत्या के तीन महीने पूर्व गोडसे और परचूरे अलवर पहुँचे थे। उन्होंने खरे से गुप्त मंत्रणा की और गांधीजी को मारने का बीड़ा उठाया। गोडसे व परचूरे, खरे के गांव के ही रहने वाले थे।[34] महाराजा अलवर व खरे के विरूद्ध अनेक आरोप थे इसलिये 7 फरवरी 1948 को महाराजा तेजसिंह व खरे को जाँच पूरी होने तक दिल्ली में रहने के आदेश दिये।[35] खरे को पदमुक्त करके अलवर प्रशासन का कार्यभार भारत सरकार ने अपने हाथों में ले लिया।[36] अलवर रियासत में व्यवस्था बनाये रखने के लिए गुरखा फौज को अलवर में पहले ही भेज दिया गया था। अलवर का शासन प्रबंध अस्थायी रूप में के.बी. लाल को सौंपा गया। उन्होंने 7 फरवरी 1948 को अलवर रियासत का कार्यभार संभाला।[37]

25 फरवरी 1948 को अलवर में एक ऐतिहासिक घटना के रूप में सरदार पटेल का आगमन हुआ।[38] यहां पर एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में जयनारायण व्यास भी थे। पटेल ने यहां पर अपने भाषण में कहा कि "राजपूतों को समझना चाहिए कि तलवार से राज्य नहीं चला करते, ये तो जनता की सहानभूति और परस्पर एकता से ही चलते हैं। भारत सरकार ने परिस्थितिवश अलवर के महाराजा को गद्दी से हटाया है यदि वे निर्दोष सिद्ध होते हैं तो हम उनको आदरपूर्वक फिर से गद्दी पर बैठा देंगे।[39]

उधर रियासती विभाग भरतपुर राज्य की गतिविधियों से भी बड़ा खिन्न था। भरतपुर प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों का ढेर लगा था। भारत सरकार ने भरतपुर प्रशासन के विरूद्ध जो आरोप तय किये वे इस प्रकार हैं–[40]

01. भरतपुर के महाराजा ब्रजेन्द्रसिंह ने 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दिवस के रूप में नहीं मनाया। उन्होंने स्पष्ट रूप से भारतीय नेताओं को विभाजन के लिए उत्तरदायी बताया।
02. महाराजा ने 1 लाख मुसलमानों को मारकर अपने राज्य से भगा दिया। महाराजा को इस बात से बेहद प्रसन्नता थी कि उनके राज्य में एक भी मुसलमान नहीं बचा था।
03. भरतपुर राज्य में से निकल कर जाने वाली विशेषकर बांदीकुई से आगरा रेलवे लाइन को सुरक्षा प्रदान करने के लिये महाराजा ने कारगर कदम नहीं उठाये।
04. महाराजा की सेना में अनुशासन जैसी कोई चीज नहीं थी। सेना पूरी तरह अनुशासनहीन थी।
05. महाराजा ने राज्य में जाटवाद को बढ़ावा देने में कोई कसर नहीं रखी।
06. भरतपुर राज्य में शस्त्र व गोला बारूद तैयार करने के लिए अवैध कारखाना खोला गया था। राज्य में जाटों व राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को शस्त्र बांटे जा रहे थे।
07. महाराजा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों में रूचि लेते थे।
08. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने पत्र दिनांक 28 जनवरी 1948 के द्वारा सरदार पटेल को अवगत करवाया कि भरतपुर रियासत में राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को शस्त्र प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

भरतपुर में अशान्ति व तनाव का वातावरण बना हुआ था अतः 10 फरवरी 1948 को रियासती विभाग ने महाराजा बृजेन्द्रसिंह को दिल्ली बुलाया व उनके प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों का विवरण दिया उनसे कहा गया कि वे अपनी रियासत का प्रशासन भारत सरकार के सुपुर्द करने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें। महाराजा ने बड़ी ही अनिच्छा से राज्य प्रशासन भारत सरकार के सुपुर्द करना स्वीकार कर लिया।[41]

14 फरवरी, 1948 को भारत सरकार ने एस.एन.सप्रू को भरतपुर राज्य का प्रशासक नियुक्त कर दिया। कर्नल ढिल्लो को राज्य की सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया। महाराजा के भाई राव राजा गिरिराज शरण सिंह को, जिसके विरूद्ध पंडित नेहरू ने सरदार पटेल को लिखा था। उसे ब्रिटेन निर्वासित कर दिया गया। जांच में महाराजा के विरुद्ध कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए अतः उनको दोषमुक्त कर दिया गया। भारत सरकार द्वारा उपयुक्त कार्यवाही की गयी जिससे अलवर व भरतपुर राज्यों में साम्प्रदायिक झगड़े शान्त हो गये।[42]

रियासती विभाग द्वारा अब यह अनुभव किया गया कि भौगोलिक, आर्थिक व जातीय दृष्टिकोण से करौली, भरतपुर, अलवर व धौलपुर एक दूसरे से जुड़े हुये हैं, अतः यह सोचा गया कि इन चारों राज्यों को मिलाकर एक संघ का निर्माण कर दिया जाये।[43] इस विचार को मूर्त रूप देने के लिये 27 फरवरी, 1948 को इन चारों राज्यों के शासकों को दिल्ली बुलाया गया और उनके समक्ष संघ निर्माण का प्रस्ताव रखा गया जिसे स्वीकार कर लिया गया। उन्हें यह भी स्पष्ट किया गया कि भविष्य में यदि उपयुक्त समझा गया तो इसे राजस्थान या उत्तरप्रदेश में सम्मिलित कर दिया जायेगा क्योंकि प्रस्तावित संघ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं था। के.एम.मुंशी के सुझाव पर इस संघ का नाम मत्स्य संघ रखा गया क्योंकि महाजनपद काल में यह क्षेत्र मत्स्य जनपद के नाम से जाना जाता था।[44] 28 फरवरी, 1948 को संघ संबंधी दस्तावेज पर चारों शासकों ने हस्ताक्षर कर दिये। इस संघ का सबसे बड़ा राज्य अलवर था। अतः महाराजा तेजसिंह ने स्वयं को राजप्रमुख बनाये जाने की मांग रखी। किन्तु उनके विरुद्ध जांच का कार्य चल रहा है।[45] इस कारण भारत सरकार ने उनकी दावेदारी को खारिज कर दिया। उन्हीं की तरह भरतपुर महाराजा भी विवादास्पद हो चुके थे। अतः महाराजा धौलपुर उदयभानसिंह को जिनकी आयु सबसे अधिक थी को राजप्रमुख

बनाया गया।[46] भरतपुर और करौली के शासक तो इस विषय पर सहमत हो गये किंतु अलवर के शाासक ने कड़ी बहस की और उप राजप्रमुख का पद प्राप्त करने के बाद ही धौलपुर शासक को राजप्रमुख स्वीकार किया।[47] सौराष्ट्र मॉडल पर आधारित मत्स्य संघ के समझौते पर चारों राज्यों के शासकों ने 28 फरवरी, 1948 को हस्ताक्षर किये।[48]

इसके साथ ही रियासती मंत्रालय द्वारा संघ का प्रशासन चलाने हेतु एक प्रशासक की नियुक्ति कर दी गई और इनके सहयोग के लिए इन राज्यों के लोकनायकों को मिलाकर लोकप्रिय मंत्रिमण्डल का गठन किया गया। शोभाराम को मुख्यमंत्री बनाया गया। उनके मंत्रिमण्डल में जुगलकिशोर चतुर्वेदी, भरतपुर से, मास्टर भोलानाथ और गोपीनाथ यादव अलवर से, डॉ. मंगल सिंह धौलपुर से व चिंरजीलाल शर्मा करौली से इसमें सम्मिलित किये गये। प्रस्तावित संघ के लिए संविधान का निर्माण 20 सदस्यों वाली संविधान सभा द्वारा बनाया गया। जिसके सदस्यों का चुनाव चारों रिसासतों की जनता द्वारा करना निश्चित किया गया।[49] अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली के शासकों के लिये क्रमशः 52,000, 5,02,000, 2,64000 और 1,05,000 रूपये की प्रिवीपर्स राशी निश्चित् की गयी।[50] जैसे ही मत्स्य संघ के उद्घाटन की तिथि 17 मार्च 1948 घोषित की गयी। भरतपुर के महाराजा के छोटे भाई मानसिंह ने भरतपुर के मत्स्य संघ में विलय के विरोध में एक हिंसात्मक आंदोलन शुरू कर दिया। उसने अपने हित के लिये जाटों को भड़काना प्रारम्भ कर दिया तथा मत्स्य संघ को जाट विरोधी बताया। उन्होंने ''जाट झंडा खतरे में'' का नारा दिया।[51] मानसिंह भरतपुर में अपनी हुकूमत स्थापित करना चाहता था। इसके लिए समस्त सरकारी सेवकों को धमकी दी गयी कि यदि उन्होंने किसी भी रूप में प्रस्तावित संघ का समर्थन किया तो उन्हें इसके परिणाम भुगतने होंगे। उसने जाटों को सशस्त्र भरतपुर पहुंचने का आह्वान किया। यह भी सूचना थी कि जाटों ने बड़ी मात्रा में हथियार, गोला–बारूद व धन एकत्रित करना शुरू कर दिया जिससे भरतपुर पर अधिकार किया जा सके। भरतपुर राज्य पुलिस की खुफिया रिपोर्ट के अनुसार मानसिंह ने 12 मार्च, 1948 को बैर के निकट हैलेना गांव व अन्य निकटवर्ती गांवों का दौरा करके जाटों को मत्स्य संघ के उद्घाटन के दिन विरोध प्रदर्शन के लिये तैयार किया। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि उसने 17 मार्च को भरतपुर पर धावा बोलने के लिये एक लाख पचास हजार सशस्त्र जाट तैयार कर

रखे थे जो अंत तक डट कर भतपुर के किले में खून की होली खेलने की प्रतिज्ञा कर रहे थे। उन्होंने आह्वान किया कि वे किसी भी कीमत पर किले पर कांग्रेस का झण्डा नहीं फहराने देंगें।[52] इन कार्यों में मानसिंह का समर्थन किसान सभा के अध्यक्ष ठाकुर देशराज कर रहे थे क्योंकि किसान सभा को मत्स्य संघ के मंत्रिमण्डल में स्थान नहीं दिया गया था। अन्त में 14 मार्च, 1948 को राजा मानसिंह को गिरफ्तार करके दिल्ली भेज दिया गया। भरतपुर रियासत में धारा 144 लागू कर दी गयी। जिसके अन्तर्गत हथियार रखने और पांच से अधिक व्यक्तियों के एकत्रित होकर मंत्रणा करने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। भरतपुर शहर और दूसरे संवेदनशील कस्बों में चप्पे–चप्पे पर सेना व पुलिस तैनात कर दी गयी। 16 मार्च को ठाकुर देशराज व कुछ अन्य जाट नेताओं को गिरफ्तार करके सेवर सैन्ट्रल जेल भेज दिया गया।[53]

17 मार्च, 1948 की सुबह हजारों की संख्या में जाट समुदाय के लोग किले के भीतर प्रवेश कर गए। यहां पर 11 बजकर 30 मिनिट पर श्री एन.वी.गाडगिल द्वारा मत्स्य संघ का उद्घाटन होना था। प्रदर्शनकारी किला खाली करने को तैयार नहीं थे उन्होंने मांग रखी की–

01. रियासत की सभी इमारतों पर केवल भरतपुर का झण्डा ही फहराया जाएगा। भारत संघ का नहीं
02. भरतपुर से चुने जाने वाले दो मंत्रियों में से एक किसान सभा का होगा।
03. राजा मानसिंह व ठाकुर देशराज को मिलाकर गिरफ्तार किये गए सभी व्यक्तियों को मुक्त किया जाए।[54]

भीड़ को स्थान खाली करने के लिए कहा गया, किन्तु भीड़ टस से मस नहीं हुई। अलवर, भरतपुर, और धौलपुर में शासकों के कहने का भी उन पर कोई असर नहीं हुआ। अन्ततः ठाकुर देशराज को बुलाया गया। उसे उसकी शर्तें मानने का आश्वासन दिया गया। उन्होंने एकत्रित जाट समुदाय को सम्बोधित किया जिसका उन पर प्रभाव पड़ा व भीड़ तितर– बितर हो गयी। यह भी तय हुआ कि भारतीय संघ का झंडा केवल उन्हीं सरकारी इमारतों पर फहराया जाएगा जहां पर रियासत का झंडा नहीं लगा हो।[55] किसान सभा की शेष दो मांगों पर भी राजप्रमुख की ओर से

सहानुभूति पूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया गया। देशराज ने सरकार को धमकी दी कि यदि उनकी मांगे नहीं मानी गई तो एक सप्ताह के अंदर फिर से इससे भी अधिक शक्ति के साथ प्रतिरोध किया जाएगा। इन सब के बीच मत्स्य संघ का उद्घाटन दो घंटे देरी से दिन के लगभग 1.00 बज कर 15 मिनिट पर केन्द्रीय मंत्री एन.वी.गाडगिल द्वारा सम्पन्न हुआ।[56] इसके तुरन्त पश्चात् राजप्रमुख राजराणा उदयभान सिंह ने शपथ–ग्रहण की और अपने सम्बोधन में कहा कि ''नई साहसपूर्ण व्यवस्था में प्रवेश करते हुए मेरी यह वास्तविक इच्छा है कि मत्स्य संघ को खुशहाल बनाने के लिए सर्वश्रेष्ठ व लोकप्रिय प्रतिभा को राज्य के लिए कार्य करने का अवसर दिया जाये।[57]

मत्स्य संघ ने 18 मार्च, 1948 से कार्य करना आरम्भ किया। बाबू शोभाराम को मुख्यमंत्री मनोनीत किया गया।[58] मुख्यमंत्री के मंत्रिमण्डल में जुगल किशोर चतुर्वेदी, भोलानाथ, गोपीलाल यादव, डॉ. मंगलसिंह व चिरंजी लाल शर्मा को स्थान दिया गया। केन्द्र सरकार द्वारा प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए के.बी.एल. सेठ को प्रशासक एच.के.टन्डन को मुख्य सचिव व यू.सी. मल्होत्रा को पुलिस महानिरीक्षक नियुक्त किया गया।[59] इस प्रकार संयुक्त राज्य मत्स्य संघ अस्तित्व में आया जिसका क्षेत्र 7,589 वर्ग मील जनसंख्या 18,37,994 व वार्षिक राजस्व 183 लाख रूपये था।[60]

इस प्रकार पूर्वी राजपूताना की इन चारों रियासतों के एकीकरण से एक नई लोकप्रिय प्रशासनिक व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। नई लोकतान्त्रिक व्यवस्था बड़े स्तर पर आमजन को राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भागीदारी व विकास के लिये आश्वस्त करती थी। मत्स्य संघ के निर्माण से राजस्थान के एकीकरण का प्रथम चरण सम्पूर्ण होता है। इस संघ के निर्माण से सरदार पटेल का वह वक्तव्य सच सिद्ध हुआ जो उन्होंने 27 फरवरी, 1948 को अलवर के राजऋषि कॉलेज के प्रांगण में दिया था उन्होंने कहा था कि ''छोटे राज्य अब बने नहीं रह सकते। उनके सामने एक ही विकल्प है कि वे बड़ी तथा समुचित आकार की इकाइयों में सम्मिलित हो जायें। जो अब भी राजपूत आधिपत्य की स्थापना का स्वप्न देखते है, वे आधुनिक संसार से बाहर है। अब शक्ति प्रतिष्ठा या वर्ग का चिंतन उचित नहीं होगा।[61] आज हरिजन की झाडू राजपूतों की तलवार से कम महत्वपूर्ण नहीं है। जैसे माँ का झुकाव बच्चे की ओर होता

है वैसे ही जो लोग देश के हितों की देखभाल कर रहे हैं वे सबसे ऊपर है वे भी समान समर्पण तथा बराबर आदर सम्मान के अधिकारी हैं [62] सरदार ने लोगों का आह्वान किया कि वे सांप्रदायिक सदभाव, एकता तथा शांति बनाये रखें।[63]

संयुक्त राजस्थान का निर्माण

मत्स्य संघ के निर्माण के समय से ही राजपूताना की अन्य छोटी–छोटी रियासतें अपने भविष्य को सुरक्षित करने के लिए संघ के निर्माण हेतु आपसी विचार विमर्श में संलग्न थी। इन रियासतों में बाँसवाड़ा, बूँदी, डूँगरपुर, झालावाड़ किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, टोंक तथा लावा और कुशलगढ़ के ठिकाने सम्मिलित थे।[64] ऐसे में रियासती मंत्रालय ने राजस्थान के राज्यों के मध्यभारत और गुजरात के राज्यों के साथ एकीकरण का प्रस्ताव रखा किंतु राज्यों के प्रजामण्डलों एवं शासकों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। 3 मार्च 1948 को कोटा, डूंगरपुर और झालावाड़ के शासकों ने रियासती विभाग के समक्ष प्रस्ताव रखा कि बाँसवाड़ा, बूँदी डूँगपुर झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, टोंक, लावा और कुशलगढ़ को मिलाकर संयुक्त राजस्थान का निर्माण किया जाये।[65]

यद्यपि प्रस्तावित संघ की रियासतों में भौगोलिक एकरूपता नहीं थी। उदाहरण के लिए टोंक एक बिखरी हुई रियासत थी। जिसका कुछ भाग मध्य भारत में था वहीं शेष भाग राजस्थान में सम्मिलित था जहां तक आप कुछ दूसरी रियासतों को पार करने के पश्चात् ही पहुँच सकते थे। टोंक का जो भाग मालवा में था उसे भविष्य में कभी प्रस्तावित संघ में सम्मिलित किया जाएगा। इस बात पर सहमति बन चुकी थी। किशनगढ़ के अजमेर–मेरवाड़ा में विलय के रियासती विभाग के प्रयास का विरोध किया गया। इस कारण वी.पी.मेनन ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि '' किशनगढ़ व शाहपुरा के अजमेर–मेरवाड़ा में विलय की रियासती विभाग की योजना का जनता द्वारा प्रतिरोध करने के कारण इस योजना को छोड़ दिया गया है।'' किशनगढ़ को संयुक्त राजस्थान में इकाई के रूप में सम्मिलित कर दिया गया। इस प्रकार रियासती विभाग ने संयुक्त राजस्थान संघ के निर्माण की योजना को आगे बढ़ाया । इन सभी रियासतों का क्षेत्रफल लगभग 16,807 वर्गमील था। इनकी जनसंख्या 23 लाख 34 हजार 220

थी और औसत वार्षिक आय 1 करोड़ 90 लाख थी। यह निश्चित किया गया की प्रस्तावित संघ की संविधान सभा में 24 निर्वाचित प्रतिनिधि रखने का प्रस्ताव रखा गया। जिसमें संघ की जनसंख्या के एक लाख पर एक सीट का प्रतिनिधित्व देने का प्रावधान रखा गया। प्रस्तावित संघ की संविधान सभा में जागीरदारों को प्रतिनिधित्व देने की भी मांग की गई। इस प्रश्न पर यह तय किया गया कि राजप्रमुख को इस वर्ग से चार व्यक्तियों को मनोनीत करने का अधिकार होगा।[66]

4 मार्च, 1948 की वी.पी.मेनन की बूँदी, डूँगरपुर, झालावाड़ और कोटा के शासकों के साथ प्रस्तावित संघ के संविधान पर की गई बातचीत में यह भी तय किया गया कि प्रस्तावित संघ में सम्मिलित राजाओं की परिषद, कोटा, बूँदी और डूँगरपुर के शासकों का राजप्रमुख, वरिष्ठ उपराजप्रमुख तथा कनिष्ठ उपराजप्रमुख के पद पर चुनाव करेगी। [67]

प्रस्तावित संघ के हाड़ौती व बागड़ क्षेत्र के मध्य मेवाड़ राज्य स्थित था। रियासती विभाग के मापदण्ड के अनुसार मेवाड़ राज्य अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने में सक्षम था। इसलिए रियासती विभाग मेवाड़ रियासत पर विलय के लिये दबाव डालने के पक्ष में नहीं था। फिर भी नरेशों के आग्रह के कारण रियासती विभाग के सचिव वी. पी.मेनन ने मेवाड़ के प्रधानमंत्री सर राममूर्ति के समक्ष संघ में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा। किन्तु मेवाड़ के महाराणा भूपालसिंह और प्रधानमंत्री सर राममूर्ति नहीं चाहते थे कि 1300 वर्ष पुरानी मेवाड़ रियासत जिसका अतीत बड़ा गौरवमय रहा है का नाम भारत के मानचित्र से हटा दिया जाये।[68] इसलिये उन्होंने रियासती विभाग के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तथा सुझाव दिया कि प्रस्तावित संघ की सभी रियासतें मेवाड़ राज्य में विलय कर सकती हैं।[69] मेवाड़ सरकार के इस रवैये पर मेवाड़ प्रजामण्डल ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की [70] प्रजामण्डल के मुखपत्र' मेवाड़ प्रजामण्डल पत्रिका' के 8 मार्च और 15 मार्च 1948 के सम्पादकीय में भी मेवाड़ को प्रस्तावित संघ में विलय करने की मांग का जबर्दस्त समर्थन किया गया किंतु महाराणा अपने निश्चय पर अटल रहे। फलतः रियासती विभाग ने बिना मेवाड़ के ही संयुक्त राजस्थान के निर्माण का फैसला किया।

अब उदयपुर को छोड़कर दक्षिण–पूर्वी राजस्थान की सभी रियासतों ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। झालावाड़ जैसी कुछ रियासतों के शासक अपने लिए बेहतर भविष्य की उम्मीद में विलय के लिए उत्सुक थे। तो वहीं बाँसवाड़ा जैसी रियासतों के कुछ शासकों ने विलय–पत्र पर बड़े ही बे–मन से हस्ताक्षर किये।

प्रस्तावित संयुक्त राजस्थान संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों में कोटा रियासत सबसे बड़ी थी। अतः रियासती विभाग ने कोटा महाराव को प्रस्तावित संघ का राजप्रमुख बनाना तय किया और कोटा शहर को संघ की राजधानी घोषित किया। कोटा महाराव को राजप्रमुख बनाना बूँदी के महाराव बहादुरसिंह को पंसद नहीं आया। वस्तुतः कोटा महाराव बूँदी के महाराव से कुलीय गौरव व परम्परा में कनिष्ठ थे अतः कोटा महाराव का राजप्रमुख बनाना बूँदी के महाराव को खटक रहा था क्योंकि उन्हें उपराजप्रमुख का पद दिया गया था। अतः बूँदी के शासक महाराव बहादुरसिंह ने मेवाड़ के महाराणा भूपालसिंह से प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने का अनुरोध किया ताकि उनके कुलीय गौरव की रक्षा हो सके क्योंकि मेवाड़ के संयुक्त राजस्थान में शामिल होने पर मेवाड़ के महाराणा ही राजप्रमुख होंगे किंतु महाराणा ने बूँदी के शासक को भी वही उत्तर दिया जो उन्होंने रियासती विभाग को दिया था।[71]

कोटा में राजस्थान संघ के 25 मार्च 1948 को होने वाले उद्घाटन की तैयारियां जोर शोर से चल रही थीं। इसी बीच मेवाड़ के महाराणा ने वी.पी.मेनन को मेवाड़ के राजस्थान संघ में विलय के निश्चय की सूचना प्रेषित की। जो रियासती विभाग को 23 मार्च को मिली।[72] अतः मेनन ने महाराव कोटा को सुझाव दिया कि मेवाड़ के विलय के संबंध में निर्णय होने तक नये राज्य का उद्घाटन स्थगित कर दिया जाये। परन्तु कोटा महाराव समारोह की पूरी तैयारी कर चुके थे तथा विभिन्न रियासतों के राजा–महाराजाओं व अन्य अतिथियों को भी निमंत्रण भेजे जा चुके थे। इसलिए उन्होंने समारोह को स्थगित करने में असमर्थता व्यक्त की। रियासती विभाग ने भी परिस्थितियों को समझते हुए 25 मार्च को ही संयुक्त राजस्थान का उद्घाटन करना तय किया।

इस प्रकार 25 मार्च, 1948 को एन.बी.गाडगिल द्वारा इसका विधिवत उद्घाटन किया गया। कोटा नरेश को राजप्रमुख, बूँदी नरेश को उपराजप्रमुख और डूँगरपुर नरेश को कनिष्ठ उपराजप्रमुख बनाया गया। गोकुललाल असावा को मुख्यमंत्री मनोनीत किया गया।[73] राजस्थान के एकीकरण की दिशा में यह दूसरा महत्वपूर्ण कदम था।

संदर्भ सूची

01. प्रमोद कुमार अग्रवाल – नेहरू और भारतीय राजनीति पृ. 235

02. उपरोक्त

03. फाइल सं. 412 जी, एन II बीकानेर महाराजा के निजी सचिव का कार्यालय, लालगढ़ महल बीकानेर।

04. डी.आर.मनकेकर– एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ.123

05. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ.164

06. करणी सिंह– द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सैन्ट्रल पॉवर पृ. 419–420

07. फाइल सं. 1252–प 1947, बीकानेर महाराजा के निजी सचिव का कार्यालय, लालगढ़ महल बीकानेर।

08. फाइल सं. 412 जी, एन ग्ग्ए बीकानेर एन.बी.गाडगिल द्वारा 15 मार्च 1948 को संविधान सभा में दिया गया वक्तव्य। बीकानेर महाराजा के निजी सचिव का कार्यालय, लालगढ़ महल बीकानेर।

09. उपरोक्त

10. डी.आर.मनकेकर–एक्सेशन टू एक्सटिंक्शन पृ.123

11. करणी सिंह– द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सैन्ट्रल पॉवर पृ. 397

12. जरमनीदास – महाराजा पृ. 388

13. उपरोक्त'

14. बी.एल. पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 122

15. डी.डी.गौड़– कॉन्स्टीट्यूशनल डवलपमेंट इन इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 198

16. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान का इतिहास पृ. 315

17. आर.एल.हाड़ा – हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स पृ. 321–322

18. व्हाइट पेपर्स ऑन इण्डियन स्टेट्स पृ. 40–41

19. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ.163

20. स्टेट्समैन, 23 जुलाई 1947

21. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 241

22. उपरोक्त पृ. 242

23. व्हाइट पेपर्स ऑन इण्डियन स्टेट्स, रियासती मंत्रालय भारत सरकार नईदिल्ली।पृ.160–164

24. एल.एन.सरीन– फ्रीडम एण्ड आफ्टर, दिल्ली 1967 पृ.9

25. द स्टेटसमैन, दिल्ली, 31 मई 1948

26. व्हाइट पेपर ऑन इण्डियन स्टेट्स पृ.34

27. a डी.डी.गौड़ – कॉन्स्टीट्यूशनल डबलपमेंट इन इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 198–199 –
b द हिन्दुस्तान टाइम्स, 10 जुलाई 1947
28. तेज प्रताप, 15 अप्रैल 1947
29. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ.252
30. शोभा लाल गुप्ता– गांधी व राजस्थान पृ.278
31. द स्टेट्समैन 23 जुलाई 1947
32. द हिन्दुस्तान टाइम्स, 10 जुलाई 1947
33. a वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ.253
b द हिन्दुस्तान टाइम्स, 21 अक्टूबर 1967
34. आर.एल.हाड़ा – हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स पृ. 319
35. फाइल न. 15/178/ए, रामचन्द्र उपाध्याय का साक्षात्कार अभिलेखागर, बीकानेर।
36. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 252–254
37. जगदीश सिंह गहलोत – जयपुर व अलवर राज्य का इतिहास पृ. 294
38. a डी.डी.गौड़ – कॉन्स्टीट्यूशनल डबलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 199–200
b एम.एस.जैन– राजस्थान का इतिहास पृ. 383
39. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 290
40. नोट ऑफ सी.सी. देसाई, जोइन्ट सेक्रेटरी, स्टेट मिनिस्ट्री, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया 28, नवम्बर 1947, फाइल न. 11 (17)पी.47 भरतपुर अफेयर एलिगेशन्स 1948, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।
41. हिन्दुस्तान 17 फरवरी 1948
42. द हिन्दुस्तान टाइम्स, 21 अक्टूबर 1967 लेख गोडसे वाज ऑनली ए टूल
43. वी.पी.मेनन– दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 253–254
44. राजपूताना स्टेट गजेटियर, अलवर स्टेट पृ. 97
45. तेजप्रताप 26 फरवरी 1948
46. शोभालाल गुप्ता– गांधी व राजस्थान पृ. 281
47. तेज प्रताप, 26 फरवरी 1948
48. फाइल न0 11च–47 नोट ऑफ सी.सी. देसाई जोइन्ट सेक्रेटरी स्टेट मिनीस्ट्री गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया 28 नवम्बर 1948, राष्ट्रीय अभिलेखागार।
49. उपरोक्त
50. फाइल न. 48 भरतपुर अफेयर्स, भरतपुर महाराजा ब्रजेन्द्र सिंह द्वारा 10 फरवरी 1948 को वी.पी.मेनन को लिखा पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

51. a- राजस्थान डिस्ट्रिस्ट गजेट अलवर राज्य पृ.87

b - वी.पी.मेनन— द स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्ट्टेस पृ. 240—41

52. वी.पी.मेनन— दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 254

53. उपरोक्त

54. हिन्दुस्तान, 17 मार्च 1948 — फाइल न. सीबी/बी.एन.5/37 राष्ट्रीय अभिलेखागार।

55. डी.डी.गौड़ — कॉन्स्टीट्यूशनल डबलपमेंट इन इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 204

56. तेज प्रताप 17 मार्च 1948

57. द हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 मार्च 1948

58. फाइल न0सीबी/बी.एन.5/37 पेपर रिगार्डिंग किसान सभा अगेन्स्ट मर्जर इन्टू मत्स्य यूनियन।

59. इन्डियन न्यूज क्रॉनिकल, अप्रैल 5,1948

60. a हिन्दुस्तान टाइम्स 1 मार्च1948 आर्टिकल ॥ आफ द गवर्नमेंट ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ मत्स्य

b वी.पी.मेनन— द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 255

61. एल.एस.राठौड़ — महाराजा सादुलसिंह ऑफ बीकानेर पृ. 814

62. द इन्डियन न्यूज क्रॉनिकल, 27 फरवरी 1948

63. एल.एस.राठौड़ — महाराजा सादुलसिंह ऑफ बीकानेर पृ. 814

64. द हिन्दुस्तान टाइम्स, 17 मार्च 1948

65. वी.पी.मेनन— दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 244

66. वी.पी.मेनन— दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 293

67. उपरोक्त

68. एम.एस. जैन— आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ. 385—386

69. वी.पी.मेनन— दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 244

70. मेवाड़ प्रजामण्डल पत्रिका, 8 मार्च 1948

71. एम.एस. जैन— आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ0 385—386

72. वी.पी.मेनन— दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, पृ. 294

73. उपरोक्त

अध्याय : षष्ठम

विलीनीकरण में उत्तरोत्तर प्रगति

" राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया अभी चल रही है। हमें आशा है कि यह प्रक्रिया शीघ्र ही पूर्ण कर ली जायेगी तथा अति शीघ्र हम उस एकता को प्राप्त कर लेंगे जिसे इतिहास में शायद ही कभी प्राप्त किया गया हो।"

–सरदार पटेल

एकीकरण के अगले चरण में शेष बची उन सक्षम रियासतों की बारी थी जो सक्षमता के आधार पर अब तक अपना पृथक अस्तित्व बनाये हुए थी। रियासती विभाग अब भी यही कह रहा था कि केवल छोटी रियासतों को ही 7 बड़ी संघ इकाइयों– सौराष्ट्र, मत्स्य, मालवा, संयुक्त राजस्थान, विंध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा फुल्कियान में मिलाया जायेगा तथा 19 सक्षम रियासतों– कश्मीर, हैदराबाद, त्रावणकोर, कोचीन, मैसूर, बड़ौदा, कच्छ, ग्वालियर, इंदौर, भोपाल, बीकानेर, जोधपुर, कूचबिहार, त्रिपुरा, मणिपुर, जयपुर, उदयपुर, मयूरभंज तथा कोल्हापुर को अलग राज्य बने रहने दिया जायेगा।[1]

संयुक्त राजस्थान संघ (द्वितीय) का निर्माण

संयुक्त राजस्थान में मेवाड़ के विलय के विषय में अब तक महाराणा मेवाड़ की प्रतिक्रिया नकारात्मक ही थी। इसका मेवाड़ की जनता व प्रजामण्डल ने जमकर विरोध किया। मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रमुख नेता माणिक्य लाल वर्मा जो उस समय भारतीय संविधान सभा में मेवाड़ के प्रतिनिधि भी थे, ने दिल्ली से एक वक्तव्य जारी करके कहा कि ''मेवाड़ की 20 लाख जनता के भाग्य का फैसला अकेले महाराणा और उसके दीवान सर राममूर्ति नहीं कर सकते। प्रजामण्डल की यह स्पष्ट नीति है कि मेवाड़ अपना अस्तित्व समाप्त कर राजपूताना प्रांत का एक अंग बन जाये।''[2] किंतु महाराणा

अपने निश्चय पर अटल रहे। शीघ्र ही मेवाड़ की परिस्थितियों में परिवर्तन आया। रियासत में मंत्रिमण्डल के गठन को लेकर प्रजामण्डल और मेवाड़ सरकार के बीच गतिरोध उत्पन्न हो गया अंत में प्रजामण्डल की बात स्वीकार करके यह गतिरोध दूर किया गया तथा यह भी निश्चित किया गया कि मंत्रिमंडल में दीवान के अतिरिक्त 7 मंत्री होंगे जिनमें से 4 प्रजामण्डल द्वारा मनोनीत होंगे, 2 मंत्री क्षत्रिय परिषद से होंगे तथा एक का नामांकन महाराणा द्वारा किया जायेगा।[3]

प्रजामण्डल की तरफ से प्रेमनारायण, बलवंतसिंह, मोहनलाल सुखाड़िया और हीरालाल कोठारी को नामजद किया गया। निर्दलीय सदस्य के लिये महाराणा की तरफ से मोहनसिंह मेहता को नामजद किया गया। मेहता उस समय भी वित्तमंत्री का काम देख रहे थे। प्रजामण्डल को यह नाम स्वीकार नहीं हुआ क्योंकि मेहता ने 1942 में शिक्षामंत्री रहते हुए प्रजामण्डल के आंदोलन को कुचलने में अहम भूमिका निभाई थी। इस बात को लेकर महाराणा और प्रजामण्डल में फिर से गतिरोध उत्पन्न हो गया। 14 मार्च, 1948 को प्रजामंडल ने एक आवश्यक बैठक बुलाई और उसमें निर्णय लिया कि मौजूदा मंत्रिमण्डल से सुखाड़िया व कोठारी को त्यागपत्र दे देना चाहिये तथा शीघ्र ही प्रजामण्डल की महासमिति की असाधारण बैठक बुलाकर राज्य सरकार के विरुद्ध कार्यवाही करने पर विचार विमर्श किया जाना चाहिये।[4]

मेवाड़ सरकार प्रजामण्डल के इस निर्णय से घबरा गयी। उसने प्रजामण्डल के नेताओं को बातचीत करने के लिये आमंत्रित किया। प्रजामण्डल ने मेहता के स्थान पर एडवोकेट जीवनसिंह चौरड़िया का नाम सुझाया। महाराणा ने प्रजामण्डल के प्रस्तावित उम्मीदवार को मंत्री बनान स्वीकार कर लिया।[5] राज्य का मुत्सद्दी वर्ग और सामंती वर्ग, प्रजामण्डल की जीत को सहन नहीं कर सका। उन्होंने महाराणा को परामर्श दिया कि मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित कर दिया जाये क्योंकि यदि मेवाड़ बड़े राज्य में शामिल हो जाता है तो प्रशासन में मत्स्य संघ की भांति प्रजामण्डल के प्रतिनिधियों के स्थान पर भारत सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों का वर्चस्व रहेगा तथा बड़े राज्य में सम्मिलित होते समय सभी शर्तें रियासती मंत्रालय द्वारा निश्चित की जायेंगी। महाराणा को यह परामर्श उचित लगा। अतः महाराणा ने 23 मार्च, 1948 को एक विशेष गज़ट के द्वारा प्रेमनारायण माथुर को राज्य के प्रधानमंत्री के पद पर

पदस्थापित कर दिया तथा उनके साथी मंत्रियों के नाम की भी घोषणा कर दी किंतु उनके शपथ ग्रहण समारोह को कुछ दिन के लिये टाले रखा।[6] महाराणा ने मेवाड़ प्रजामण्डल को अंधेरे में रखकर 23 मार्च, 1948 को ही मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में शामिल करने के अपने निश्चय की सूचना भारत सरकार को दे दी। चूंकि अंतिम समय में उद्घाटन के कार्यक्रम में परिर्वतन संभव नहीं था अतः पूर्व निर्णय के अनुसार ही 25 मार्च 1948 को संयुक्त राजस्थान का विधिवत उद्घाटन किया गया। मेवाड़ को इसमे सम्मिलित नहीं किया गया। भारत सरकार की सलाह पर मंत्रिमंडल का गठन कुछ दिन के लिये स्थगित कर दिया।[7]

एम.एस. जैन ने बी.एल. पानगड़िया के इस तर्क से असहमति दर्शायी है कि जागीरदारों और प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं में झगड़ा हो जाने के कारण महाराणा ने उदयपुर राज्य को संयुक्त राजस्थान में विलय की स्वीकृति दी।[8]

संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के तीन दिन बाद संयुक्त राजस्थान में मेंवाड़ के विलय पर वार्ता प्रारम्भ हुई। मेवाड़ के दीवान राममूर्ति दिल्ली गये और भारत सरकार को महाराणा की तीन प्रमुख शर्तों से अवगत करवाया। पहली यह कि महाराणा को संयुक्त राजस्थान का वंशानुगत राजप्रमुख बनाया जाये दूसरी यह कि उन्हें 20 लाख रूपये प्रिवीपर्स दिया जाये, तीसरी यह की उदयपुर को संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनाया जाये।[9] भारत सरकार ने महाराणा की मांगों के संबंध में कोटा, डूंगरपुर व झालावाड़ के शासकों से विचार विमर्श कर मेवाड़ को संयुक्त राजस्थान में विलीन करने का निश्चय किया। यद्यपि प्रत्येक राज्य का भारत सरकार के साथ अलग समझौता हुआ किंतु सामान्यतः छोटे राज्यों के मामले में राज्य के कुल, राजस्व का 10 प्रतिशत तथा बड़े राज्यों के मामलें में राज्य के कुल राजस्व का 8 प्रतिशत प्रिवीपर्स देना निश्चित किया गया था[10] रियासती मंत्रालय ने यह नीति निश्चित कर ली थी कि किसी रियासत के शासक को 10 लाख रूपये से अधिक प्रिवीपर्स नहीं दिया जायेगा। किंतु महाराणा की मांग पूरी करने के लिये निश्चय किया गया कि महाराणा को 10 लाख रूपये वार्षिक प्रिवीपर्स, 5 लाख रूपये राजप्रमुख पद का वार्षिक भत्ता और शेष 5 लाख रूपये मेवाड़ के राजवंश की परंपरा के अनुसार धार्मिक कृत्यों में खर्च के लिये दिया जायेगा।[11]

महाराणा को संयुक्त राजस्थान का आजीवन राजप्रमुख बनाना स्वीकार कर लिया गया किंतु राज्य के संविधान में संशोधन किया गया और नये संघ को यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ राजस्थान कहा गया। इसे द्वितीय संयुक्त राजस्थान भी कहते हैं। उदयपुर को संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनाना भी स्वीकार कर लिया गया। किंतु संविधान में तय किया गया कि विधान सभा का प्रतिवर्ष एक अधिवेशन कोटा में भी होगा। कोटा में कमिश्नरी कार्यालय रखा गया। फॉरेस्ट स्कूल, पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज, हवाई प्रशिक्षण कॉलेज आदि संस्थायें कोटा का महत्व बनाये रखने के लिये कोटा में ही रखे गये।[12] रियासती विभाग ने महाराणा की निजी संपत्ति के प्रश्न पर उदारतापूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया तथा उदयपुर में चुनावों के दौरान पुलिस द्वारा की गयी गोलीबारी की जाँच नहीं करवाने की मांग भी मान ली गई। रियासती विभाग ने महाराणा की मनचाही शर्तें स्वीकार कर ली।[13] उस समय तक संघ में विलय होने वाली किसी भी रियासत के शासक को इतनी रियायतें नहीं दी गयी थी। भारत सरकार के लिये उदयपुर राज्य द्वारा किसी संघ में विलय हो जाने का बहुत बड़ा महत्व था क्योंकि इससे बड़े राज्यों के भी संघों में मिल जाने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

संयुक्त राजस्थान की प्रसंविदा का निर्माण

10 अप्रैल, 1948 को प्रस्तावित संघ की प्रसंविदा, बनाने के लिये नई दिल्ली में बैठक बुलाई गयी। इसमें कोटा, बूँदी, डूँगरपुर, झालावाड़, प्रतापगढ़ तथा टोंक राज्यों के शासक उदयपुर की ओर से दीवान एस.वी राममूर्ति तथा राजस्थान संघ के मुख्यमंत्री गोकुललाल असावा उपस्थित हुए। यह प्रसंविदा इससे पूर्व बनाई गयी प्रसंविदाओं से भिन्न थी। इससे पूर्व की प्रसंविदाओ में राज्यों में से केवल तीन विषयों – रक्षा, विदेश मामले तथा संचार के संबंध में ही उपाय किये गये थे किंतु संयुक्त राजस्थान के गठन के लिये बनायी गयी प्रसंविदा में राजप्रमुख को शक्तियां दी गयी कि वह संयुक्त राजस्थान के लिये कर तथा शुल्क के अतिरिक्त संघीय तथा समवर्ती सूची के किसी भी विषय को कानून बनाने के लिये डोमिनियन संविधान को समर्पित कर सकता था। 11 अप्रैल, 1948 को प्रसंविदा को अंतिम रूप दे दिया गया तथा उपस्थित शासकों द्वारा इस पर हस्ताक्षर कर दिये गये। इस संघ का कुल क्षेत्रफल

29,977 वर्ग मील तथा जनसंख्या 42,60,918 तथा वार्षिक राजस्व 316 लाख रूपये था।[14]

मेवाड़ महाराणा भूपालसिंह को राजप्रमुख, कोटा के महाराव भीमसिंह को वरिष्ठ उप राजप्रमुख, बूँदी एवं डूँगरपुर के राजाओं को कनिष्ठ उपराजप्रमुख बनाया गया। मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रमुख नेता माणिक्यलाल वर्मा को राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। महाराणा ने वर्मा से आग्रह किया कि वे मंत्रिमण्डल में जागीरदारों को भी प्रतिनिधित्व दें। वर्मा ने महाराणा का सुझाव मानने से मना कर दिया। 18 अप्रैल, 1948 को जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राजस्थान का विधिवत उद्घाटन किया। तभी वर्मा ने नेहरू के सामने किसी ऐसे मंत्रिमण्डल के निर्माण में असमर्थता व्यक्त की जिसमें जागीरदारों का प्रतिनिधित्व हो। नेहरू ने वर्मा से कहा कि इस संबंध में महाराणा तथा अन्य व्यक्तियों से विचार विमर्श करें, किंतु अंतिम निर्णय स्वयं प्रधानमंत्री को ही लेना चाहिये। नेहरू ने वर्मा को सलाह दी कि इस समय तो प्रधानमंत्री तथा राजप्रमुख अपने पदों की शपथ ले लें तथा यदि मंत्रिमण्डल बनाने में कठिनाई हो तो वे तथा राममूर्ति दिल्ली आकर रियासती विभाग से वार्तालाप कर लें। नेहरू के आग्रह पर वर्मा ने प्रधानमंत्री पद की तथा महाराणा ने राजप्रमुख के पद की शपथ ग्रहण की । प्रधानमंत्री का पद भार ग्रहण करने के बाद वर्मा दिल्ली जाकर सरदार पटेल से मिले। पटेल ने महाराणा को पत्र लिखकर सलाह दी कि वे वर्मा की बात मान लें।[15]

इस प्रकार महाराणा भूपालसिंह को माणिक्य लाल वर्मा की बात माननी पड़ी। अब जो मंत्रिमण्डल बना उसमें जागीरदारों को प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। मंत्रिमण्डल में गोकुललाल असावा (शाहपुरा) प्रेमनारायण माथुर, भूरेलाल बया और मोहनलाल सुखाड़िया (उदयपुर) भोगीलाल पांड्या (डूँगरपुर) अभिन्न हरि (कोटा) और बृजसुंदर शर्मा (बूँदी) सम्मिलित किये गये।मंत्रिमण्डल ने 28 अप्रैल, 1948 को शपथ ली।[16]

उदयपुर को विलय से रोकने के महाराजा बीकानेर के प्रयास

उदयपुर रियासत राजस्थान की उन चार रियासतों में से एक थी जो सक्षम राज्य की श्रेणी में आते थे। किंतु महाराणा उदयपुर के संयुक्त राजस्थान संघ में मिलने के निर्णय से जोधपुर बीकानेर तथा जयपुर रियासतों को भारी आघात पहुँचा। महाराजा

बीकानेर सादुलसिंह ने मेवाड़ महाराणा को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि मेवाड़ राजस्थान में सम्मिलित न हो। महाराजा बीकानेर ने अपने प्रधानमंत्री कुंवर जसवंतसिंह दाउदसर को उदयपुर भेजा ताकि वह महाराणा से व्यक्तिगत भेंट करके उदयपुर को राजस्थान में मिलने से रोके। जसवंतसिंह ने महाराणा से कहा कि 'मेवाड़ एक ऐसी रियासत थी जो मुगलों के सामने भी नहीं झुकी, आज वही रियासत कांग्रेस सरकार के सामने कैसे झुक रही है? महाराणा ने महाराजा सादुलसिंह के इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया और सादुलसिंह को कहलवाया कि ''वह तो अपनी रियासत कांग्रेस को समर्पित कर चुके हैं, अन्य राज्यों का समर्पण भी अवश्यंभावी है।[17] महाराणा के इस जवाब से बीकानेर नरेश के मनोबल में बहुत गिरावट आई।[18]

राममूर्ति विवाद

संयुक्त राजस्थान द्वितीय का उद्घाटन होने के बाद 29 अप्रैल, 1948 को वी.पी. मेनन उदयपुर आये। महाराणा ने मेनन से अनुरोध किया कि मेवाड़ के पूर्व प्रधानमंत्री सर राममूर्ति को संयुक्त राजस्थान सरकार का सलाहकार नियुक्त किया जाये। मेनन ने माणिक्यलाल वर्मा से पूछे बिना ही यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। महाराणा ने भी वर्मा को बताये बिना राममूर्ति की नियुक्ति के आदेश जारी कर दिये। इस पर राममूर्ति ने यह कहना आरंभ कर दिया कि राजप्रमुख के सलाहकार होने के नाते वे मंत्रिमण्डल से ऊपर हैं। प्रधानमंत्री माणिक्यलाल वर्मा ने 13 मई, 1948 को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि जो अधिकारी सरकार का सलाहकार होगा, वह मंत्रिमण्डल के अधीन रहकर कार्य करेगा। राजप्रमुख को राज्य संबंधी सलाह देने की जिम्मेदारी मंत्रिमण्डल की है। यदि सलाहकार जैसी एक और एजेंसी राजप्रमुख को सलाह देना आरंभ कर देगी तो राज्य में दोहरा शासन आरंभ हो जायेगा जो जनतंत्र के सर्वसम्मत सिद्धांतों के विपरीत होगा। वर्मा ने राममूर्ति से कहा कि वे प्रधानमंत्री के लिये आवंटित आवास खाली कर दें क्योंकि उनको दूसरा आवास आवंटित कर दिया गया है।[19]

राममूर्ति ने वर्मा का पत्र राजप्रमुख के सम्मुख रखा तो राजप्रमुख इससे बड़े खिन्न हुए। उन्होंने उसे अपना अपमान समझा। राजप्रमुख ने 15 मई, 1948 को सरदार पटेल को एक पत्र लिखा कि आप से अधिक कोई नहीं जानता कि मैंने अपनी

रियासत का संयुक्त राजस्थान में विलय अपनी स्वयं की तरफ से पहल कर पूरी तरह स्वेच्छा से किया है। मुझे विश्वास है कि आप सहमत होंगे कि मेरे साथ जो व्यवहार किया जा रहा है वह मेरे द्वारा प्रदर्शित सद्भावना और सहयोग के अनुरूप नहीं है।.... ....मैं आपसे हृदय से निवेदन करूंगा कि सर राममूर्ति की सलाहकार के पद पर की गयी नियुक्ति में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये।[20] पटेल ने वर्मा को दिल्ली बुलाकर कहा कि सर राममूर्ति को लिखे गये पत्र को वापस ले लें। वर्मा ने सरदार के आदेशानुसार अपना पत्र वापस ले लिया। सरदार ने महाराणा को लिखा कि वर्मा ने मेरी सलाह पर 15 मई का पत्र वापस ले लिया है। मेरा विश्वास है कि प्रधानमंत्री के निवास स्थान को लेकर राममूर्ति अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बना सकते। आप उन्हें इस संबंध में मंत्रिमण्डल के निर्णय को स्वीकार कर लेने की सलाह दें। बार– बार इस प्रकार की घटनायें होना बताता है कि सर राममूर्ति अपने आपको देश के बदले हुए हालात में ढाल नहीं पाये हैं। राममूर्ति को बता दें कि अपने तौर तरीकों में परिवर्तन करें अन्यथा यह संभावना है कि उनकी गलतियों के कारण आपके और मंत्रिमण्डल के संबंध बिगड़ जाये और बेकार में ही आपकी प्रतिष्ठा और पद को आंच पहुँचे।[21]

आई.सी.एस अधिकारी की नियुक्ति को लेकर विवाद

रियासती विभाग रियासतों के विलय से बने हर नये राज्य संघ में एक या दो आई.सी.एस अधिकारी, मुख्य सचिव या सलाहकार के रूप में नियुक्त करता था। माणिक्यलाल वर्मा ने एक स्थानीय अधिकारी बी.एस मेहता को संयुक्त राजस्थान सरकार का मुख्य सचिव नियुक्त कर दिया। रियासती विभाग ने वर्मा की इस कार्यवाही को पसंद नहीं किया तथा एक वरिष्ठ आई. सी.एस. अधिकारी एल.सी.जैन को संयुक्त राजस्थान का मुख्य सचिव नियुक्त करके उदयपुर भेज दिया। वह अधिकारी कई दिनों तक अपने सैलून में उदयपुर के रेलवे स्टेशन पर ही रूका रहा। उसे मुख्य सचिव के पद का कार्यभार नहीं दिया गया। पटेल ने वर्मा को दिल्ली बुलवाया। वर्मा ने सरदार से कहा कि यदि उनकी इच्छा के विपरीत उन पर आई.सी.एस. अधिकारी थोपा गया तो रियासती विभाग को किसी अन्य प्रधानमंत्री की तलाश करनी होगी। सरदार ने वर्मा की बात मानी ली और जैन को अन्यत्र भेज दिया।[22]

वृहद राजस्थान का निर्माण

मई 1948, ई. तक सिरोही रियासत का प्रबंधन बंबई सरकार को सौंप देने के साथ ही राजपूताना की चार रियासतों को छोड़कर समस्त रियासतें एकीकृत की जा चुकी थीं। इन चार रियासतों में से एक जैसलमेर रियासत का शासन प्रबंध भारत सरकार पहले ही अपने हाथ में ले चुकी थी, शेष तीन सक्षम रियासतों बीकानेर, जोधपुर व जयपुर का अधिग्रहण मात्र कुछ दिनों की बात रह गई थी। उदयपुर जैसी सक्षम रियासत के संघ में विलय के पश्चात् भारत सरकार की नीति में आए परिवर्तन जनता में रियासतों के एकीकरण के लिये दिन–प्रतिदिन बढ़ते जन आन्दोलन और शेष बची रियासतों के शासकों के गिरते मनोबल के कारण इन सक्षम रियासतों का अस्तित्व भी समाप्ति की ओर था।

भारत सरकार की नीति में परिवर्तन

18 अप्रैल, 1948 को संयुक्त राजस्थान का उद्घाटन करने के बाद दिल्ली लौटकर नेहरू ने पटेल को पत्र लिखा कि मेरे उदयपुर प्रवास के दौरान प्रजामण्डल के कई नेताओं ने प्रबल इच्छा प्रकट की है कि जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर को यूनाईटेड स्टेट्स ऑफ राजस्थान में मिलाया जाये। नेहरू ने अपने पत्र में राजस्थान के लोगों की उस मांग का भी उल्लेख किया जो सिरोही राज्य को राजस्थान में मिलाये जाने के संबंध में थी।[23]

प्रत्युत्तर में 22 अप्रैल, 1948 को पटेल ने नेहरू को लिखा कि जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर का राजस्थान में विलय निस्संदेह एक आदर्श स्थिति है किंतु यह तभी संभव है जब इन राज्यों के लोग स्वयं इस कार्य के लिये आगे आयें।[24] तेजी से बदलते राष्ट्रीय परिदृश्य एवं पाकिस्तान के शत्रुवत् व्यवहार के कारण इन राज्यों को स्वाधीन भारत के अंतर्गत स्वंतत्र रखा जाना संभव नहीं रह गया था। जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर की सीमायें पाकिस्तान के साथ लगती थी। इस सीमा के कारण भविष्य में किसी भी समय आक्रमण होने का खतरा बना हुआ था। यह समस्त क्षेत्र रेगिस्तानी था, आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से भी इस क्षेत्र में विपन्नता थी, संचार के साधन भी पर्याप्त नहीं थे।[25] इस कारण भारत सरकार ने एकीकरण से शेष बचे तीन सक्षम

राज्यों जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर एवं चौथे छोटे राज्य जैसलमेर को संयुक्त राजस्थान में मिलाकर वृहत् राजस्थान के निर्माण करने का निर्णय लिया। इन राज्यों के शासकों को पूर्व में दिये गये वचनों के कारण ऐसा करना सरल नहीं था। फिर भी मेनन को विश्वास था कि कोई हल निकल ही आयेगा।

वी.पी.मेनन का विचार था कि इन तीनों सीमावर्ती राज्यों को कच्छ के साथ मिलाकर केन्द्र शासित प्रदेश बना दिया जाये जिस पर चीफ कमिश्नर का नियंत्रण हो। ऐसा करने से पाकिस्तान की सीमाओं से लगने वाला पूरा क्षेत्र केन्द्रीय शासन के अधीन हो जायेगा।[26] यदि इन राज्यों को राजस्थान में मिलाया गया तो सीमाओं की रक्षा का विशाल व्यय प्रदेश पर आ पड़ेगा तथा यह राजस्थान पर बड़ा भारी दबाव होगा। इन राज्यों का विशाल क्षेत्र अविकसित था अतः इन रियासतों को राजस्थान को न दिया जाकर भारत सरकार अपने पास रखे और इनकी विकास योजनाओं के लिये सहायता करे।[27]

पंडित नेहरू ने भी इस संबंध में पटेल को लिखा कि पणिक्कर ने सुझाव दिया है कि इस सीमावर्ती पट्टी को केन्द्र सरकार अथवा हमारे रक्षा मंत्रालय के अधीन रखा जा सकता है तथा यह सुझाव मानने योग्य है।[28] राष्ट्रीय सुरक्षा तथा आर्थिक विकास, दोनों ही दृष्टि से इन राज्यों को एक केन्द्र शासित क्षेत्र के अधीन रखा जाना उचित जान पड़ता था किंतु मेनन की इस योजना को जयनारायण व्यास व अन्य नेताओं ने स्वीकार नहीं किया।[29] इस योजना के मित्र कम और शत्रु अधिक थे। अतः इस विचार को छोड़ देना पड़ा, मेनन ने पटेल को सुझाव दिया कि इन चारों राज्यों को राजस्थान में मिला दिया जाये। पटेल ने इस विचार का स्वागत किया । पटेल 14 जनवरी, 1948 को उदयपुर जाने वाले थे। उन्होंने मेनन से कहा कि मैं इस यात्रा के दौरान ही वृहद राजस्थान के निर्माण की घोषणा करना चाहूंगा, अतः मेनन इन रियासतों के राजाओं से बात करके उन्हें इस कार्य के लिये तैयार करें।[30]

एकीकरण के लिये जन–आंदोलन

अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजस्थान इकाई राजपूताना के सभी राज्यों को एक इकाई के रूप में संगठित करने के पक्ष में थी। इसके समर्थन में

मार्च 1948 में उसने मांग की कि अजमेर–मेरवाड़ा सहित प्रदेश की सभी रियासतों को मिलाकर वृहद राजस्थान का गठन किया जाये।[31] मई, 1948 में मध्यभारत संघ का निर्माण होने पर समाजवादी दल ने वृहद, राजस्थान के निर्माण की मांग की तथा अखिल भारतीय स्तर पर **''राजस्थान आंदोलन समिति''** का गठन किया। समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण ने 9 नवम्बर, 1948 को उदयपुर में आयोजित एक आमसभा में वृहद राजस्थान के निर्माण की मांग की। आंदोलन समिति ने एक प्रस्ताव पारित किया कि राजपूताने की सभी रियासतों और केन्द्र शासित प्रदेश अजमेर–मेरवाड़ा को मिलाकर अविलम्ब वृहत राजस्थान का निर्माण किया जाये।[32] समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने भी जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और मत्स्य संघ को संयुक्त राजस्थान में मिलाकर वृहद राजस्थान का निर्माण करने की मांग की ।[33]

राजाओं की विचारधारा में परिवर्तन

संपूर्ण देश में तेजी से चले घटनाक्रम में बड़ी–बड़ी रियासतें एकीकरण के दायरे में ली जा चुकी थीं, साथ ही देशी राज्यों में जनता द्वारा रियासतों के एकीकरण की मांग जिस बड़े स्तर पर उठने लगी थी। उससे जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के राजा भी स्वयं को इस बात के लिये मानसिक स्तर पर तैयार कर चुके थे कि उनके राज्य भी राजस्थान में मिला दिये जायें। अब देश उस दौर में प्रवेश कर चुका था जहाँ या तो राजा लोग अपनी रियासतों को एकीकरण के लिये प्रस्तुत कर दें या फिर सत्ता से वंचित हो जायें। यहाँ तक कि यदि वे अपने राज्यों को राजस्थान में विलीन होने की सहमति न भी दें तो भी उन्हें अपनी सत्ता से हाथ धोना पड़ सकता था। अपने ही राज्य में सत्ता विहीन होकर रहने से बेहतर था कि संयुक्त राजस्थान में सत्ता विहीन होकर रहा जाये अर्थात संयुक्त राजस्थान में सत्ता विहीन होकर रहना कम अपमानजनक था अपेक्षा इसके कि वे अपने ही राज्य में सत्ता विहीन होकर रहें।

यदि ये शासक अपने व्यक्तिगत अधिकार एवं प्रयास से विलयन की प्रक्रिया को कुछ समय के लिये टाल भी देते तो भी उन्हें वह सम्मान और अधिकार उतनी सरलता से और उस सीमा तक नहीं मिलते जितने कि उन्हें विलय के लिये तैयार होने पर मिलते। दिल्ली, बीकानेर, जयपुर और जोधपुर में मेनन और इन राज्यों के शासकों के

बीच अलग अलग और साथ– साथ कई बैठकें हुई। यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गयी कि इन राज्यों का मिलना अवश्यंभावी है और इस आशा से कि यह रियासती जनता तथा देश के व्यापक हित में होगा, चारों शासक वृहद राजस्थान संघ बनाने के लिए सहमत हो गये।[34]

जयपुर रियासत का विलय

इस समय जयपुर रियासत के महाराजा मानसिंह थे। महाराजा मानसिंह का वास्तविक नाम मोरमुकुटसिंह था किंतु उन्हें उनके मित्रों द्वारा 'जय' के नाम से संबोधित किया जाता था। महाराजा जयपुर विलय के प्रस्ताव से प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी राजकुमार भवानीसिंह जिसे वे प्यार से बबल्स कहते थे को अपने एक पत्र में लिखा है कि ''मुझे डर है कि यदि राजपूताना का कोई राजा त्याग और बलिदान करने के लिये नेतृत्व करने आगे नहीं आया तो प्रदेश का भविष्य अंधकार में है।'' इस पत्र में उन्होंने उदयपुर, जोधपुर और बीकानेर के राजाओं की कमजोरियों पर भी प्रकाश डाला। [35] पर महाराजा स्वंय इसके लिये आगे आने से झिझके। महारानी जयपुर गायत्री देवी के अनुसार ''यद्यपि जय ने मुझे यह समझाने का प्रयास किया था कि वृहद राजस्थान में मिलना क्यों आवश्यक है किंतु मुझे उनका जयपुर रियासत का शासक न रहने का विचार अच्छा नहीं लगा। वृहद राजस्थान में जयपुर का विलय जय के लिये राजनीतिक एवं ऐतिहासिक रूप से अपरिहार्य था। वह केवल अकेले ही राजपूत रियासत के शासक नहीं बने रह सकते थे। उन्हें जयपुर का शासन छोड़ने तथा अपनी प्रजा के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी त्याग देने से घृणा थी किंतु उन्हें पता था कि देश का हित उनकी व्यक्तिगत भावना से ऊपर है।''[36]

11 जनवरी, 1949 को वी.पी.मेनन ने महाराजा जयपुर और उनके दीवान सर वी.टी. कृष्णामाचारी से राज्य के विलय पर वार्ता की। कृष्णामाचारी बड़े राज्यों के विलय के पक्ष में नहीं थे। उनका तर्क था कि ऐसा करने से राजस्थान राज्य में राजपूतों की प्रधानता बनी रहेगी जैसे पूर्वी पंजाब में सिक्खों की प्रधानता थी। ऐसा करना देश के लिये हितकर प्रमाणित नहीं होगा।[37] कृष्णामाचारी राजस्थान को तीन

इकाइयों में विभाजित रखने के पक्ष में थे। उनके अनुसार संयुक्त राजस्थान यथा स्थिति में रहे। दूसरी इकाई में जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर राज्यों को रखा जाये और इसे पश्चिमी राजस्थान का नाम दिया जाये। राजस्थान की तीसरी इकाई जयपुर अलवर और करौली रियासतों को मिलाकर बनाई जाये। भरतपुर और धौलपुर राज्यों को उत्तरप्रदेश में सम्मिलित कर दिया जाये। कृष्णामाचारी का अनुमान था कि भरतपुर और धौलपुर के शासक जाट होने के कारण संयुक्त प्रांत में मिलना चाहेंगे।[38]

मेनन, कृष्णामाचारी के इस सुझाव से सहमत नहीं हुए। इस समय तक समाजवादी दल द्वारा राजस्थान के निर्माण के लिये आंदोलन प्रारंभ करने की घोषणा की जा चुकी थी। मेनन राजस्थान के निर्माण का श्रेय उन्हें नहीं देना चाहते थे तथा उनका आदोलन प्रारंभ होने से पहले ही राजस्थान के निर्माण की गुत्थी सुलझा लेना चाहते थे।[39] विचार विमर्श के दौरान महाराजा जयपुर ने शर्त रखी कि उन्हें इस नये राज्य का वंशानुगत राजप्रमुख बनाया जाये व जयपुर नये राज्य की राजधानी बने। मेनन ने महाराजा को जवाब दिया कि इन बातों पर तब विचार किया जा सकता है जब इन मुद्दों पर विस्तार से वार्ता की जायेगी। मेनन का तत्कालीन उद्देश्य राजाओं को उनके राज्य के राजस्थान संघ में विलय के लिये सैद्धांतिक तौर पर सहमत करने का था। इससे सरदार 14 जनवरी को वृहद राजस्थान के निर्माण की योजना की घोषणा कर सकते थे। मेनन ने एक प्रारूप तैयार किया जिसे महाराजा और उनके दीवान दोनों ने स्वीकार कर लिया। इसका मसौदा, तार द्वारा जोधपुर और बीकानेर के महाराजाओं को भी भेज दिया गया। उसी शाम जोधपुर के महाराजा ने इस घोषणा की सहमति के विषय में मेनन को सूचित किया । बीकानेर के महाराजा ने भी उस प्रारूप पर अपनी सहमति जताते हुए मेनन को वापस तार भिजवाया।[40]

12 जनवरी, 1949 को मेनन ने उदयपुर जाकर महाराणा से बात की, महाराणा ने इसकी स्वीकृति दे दी। 14 जनवरी, 1949 को पटेल ने उदयपुर में एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए वृहत राजस्थान के निर्माण की घोषणा कर दी।[41] सरदार पटेल ने अपने भाषण में कहा कि जयपुर जोधपुर, बीकानेर, एवं जैसलमेर के राजा सैद्धांतिक रूप से राजस्थान संघ के एकीकरण के लिये सहमति दे चुके हैं। अतः वृहद राजस्थान का निर्माण शीघ्र ही सच्चाई में बदल जायेगा। यद्यपि इस योजना के

विस्तार में जाना अभी शेष है। इस घोषणा का पूरे देश में स्वागत किया गया। इस घोषणा के बाद रियासती मंत्रालय ने वृहद राजस्थान के निर्माण पर कार्य करना प्रारंभ किया। इस कार्य से सम्बद्ध तीनों पक्षों से अलग–अलग तथा साथ–साथ बुलाकर वार्ता की गयी। पहला पक्ष जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर राज्यों के राजाओं तथा उनके सलाहकारों का था। दूसरा पक्ष संयुक्त राजस्थान संघ में पहले से ही सम्मिलित राज्यों के राजाओं का था तथा तीसरा पक्ष हीरालाल शास्त्री, जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा और गोकुल भाई भट्ट इत्यादि लोकप्रिय नेताओं का था।[42] वृहत राजस्थान का राजप्रमुख, मंत्रिमण्डल, प्रशासकीय स्वरूप तथा राजधानी आदि विषयों पर विचार विमर्श करने हेतु 3 फरवरी, 1949 को रियासती विभाग के तत्वाधान में दिल्ली में एक बैठक आयोजित की गयी जिसमें रियासती विभाग के सचिव वी.पी.मेनन, प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष गोकुलभाई भट्ट, संयुक्त राजस्थान के प्रधानमंत्री माणिक्यलाल वर्मा, जोधपुर राज्य के प्रधानमंत्री जयनारायण व्यास तथा जयपुर राज्य के मुख्य सचिव तथा प्रधानमंत्री हीरालाल शास्त्री ने भाग लिया।[43]

बैठक में सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह को जीवन पर्यन्त राजप्रमुख बनाया जाये। जोधपुर और बीकानेर के शासक इसके पक्ष में नहीं थे किंतु वे भारत सरकार के दवाब का सामना नहीं कर सके।[44] दूसरी तरफ महाराणा भूपालसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया महाराणा ने स्वयं को राजप्रमुख बनाये जाने का दावा किया। राजपूताना के अन्य शासकों, जननेताओं और भारत सरकार को भी महाराणा को राजप्रमुख बनाने में कोई आपत्ति नहीं थी किंतु महाराणा शारीरिक दृष्टि से अपाहिज थे और स्वतंत्रतापूर्वक बाहर आ जा नहीं सकते थे। भावानात्मक आधार पर लोकप्रिय नेताओं ने सुझाव दिया कि महाराणा को संघ के सामान्य प्रशासन से अलग कोई अलंकृत स्थिति प्रदान कर दी जाये तथा उन्हें महाराज शिरोमणी की उपाधि दी जाये। महाराणा ने इसे स्वीकार नहीं किया और जोर दिया कि उन्हें महाराज प्रमुख ही कहा जाये। तब यह निश्चय किया गया कि महाराणा को महाराज प्रमुख बनाया जायें किंतु यह पद तथा उन्हें दिये जाने वाले भत्ते उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जायेंगे। महाराणा को आश्वस्त किया गया कि उन्हें समारोहों और उत्सवों पर 21 तोपों की सलामी वाले राजाओं की श्रेणी में शामिल किया

जायेगा। जयपुर के महाराजा भी महाराणा के सम्मान को देखते हुए स्वेच्छा से इस पर सहमत हो गये। महाराणा भूपालसिंह ने भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि उनका पद तथा उनको दिये जाने वाला भत्ते उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जायेंगे। उन्हें महाराज प्रमुख बना दिया गया।[45] करणीसिंह ने भारत सरकार के इस काम की तुलना अंग्रेजों द्वारा राजाओं को तोपों की सलामी के रूप में दिये जाने वाले लालच से की है– ''बहुत से मामलों में आजीवन राजप्रमुख का पद देना एक शासक के लिये विलय–स्वीकार करने का बहुत बड़ा प्रलोभन था। कुछ राजाओं को जिनका स्वास्थ्य खराब था, विशेष प्रिवीपर्स दी गयी।''[46]

शासकों के प्रिवीपर्स का निर्धारण

शासकों के प्रिवीपर्स का निर्धारण करते समय लोकप्रिय नेताओं द्वारा सुझाव दिया गया कि जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर के राज्य इंदौर के समान ही स्थिति रखते थे जिसके महाराजा को 15 लाख रूपये प्रिवीपर्स तथा 2.5 लाख रूपये उपराजप्रमुख के पद के भत्ते के रूप में दिये गये थे। अतः जयपुर, जोधपुर तथा बीकानेर के शासकों को 17.5 लाख रूपये दिये जायें तथा जयपुर के महाराजा को 5.5 लाख रूपये राजप्रमुख पद के भत्त के रूप में दिये जायें। अंत में बीकानेर को 17 लाख रूपये जोधपुर को 17.5 लाख रूपये तथा जयपुर को 18 लाख रूपये प्रिवीपर्स देना निश्चित हुआ। राजप्रमुख को 5.5 लाख रूपये वार्षिक भत्ता दिया जाना निश्चित किया गया।[47]

सलाहकारों की नियुक्ति

3 फरवरी, 1949 की बैठक में यह निश्चित किया गया कि मंत्रिमंडल को सलाह देने के लिये केन्द्र सरकार से दो या तीन सलाहकार नियुक्त किये जायें तथा भावी वृहद राजस्थान राज्य की राजधानी का मसला सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा सुलझाया जाये। बैठक में यह भी तय किया गया कि राज्य के मंत्रिमंडल में नौ से अधिक मंत्री नहीं होंगे। उनमें से एक जागीरदारों का प्रतिनिधि होगा।[48] नये चुनाव होने तक राजस्थान सरकार पर भारत सरकार का नियंत्रण रहना निश्चित किया गया। राजाओं ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया किंतु जन नेताओं ने पहले इसका विरोध किया पर

समय रहते वे भी इससे सहमत हो गये।[49] मंत्रिमंडल पर नियंत्रण रखने के लिये राज्य सरकार के कतिपय महत्वपूर्ण विभागों में दो या तीन आई.सी.एस. अधिकारियों को परामर्शदाता के रूप में नियुक्त किया जाना निश्चित किया गया। यदि किसी विषय पर मंत्रिमंडल और सलाहकारों के मध्य मतभेद हो जाये तो इसका अंतिम निर्णय भारत सरकार द्वारा करवाया जाना था।

राजप्रमुखों की नियुक्ति

3 फरवरी की बैठक में यह भी निश्चित किया गया कि प्रस्तावित संघ में जोधपुर तथा कोटा के शासकों को वरिष्ठ उपराजप्रमुख और बूँदी तथा डूंगरपुर के शासकों को कनिष्ठ उपराजप्रमुख बनाया जाये। उपराजप्रमुखों का कार्यकाल पाँच वर्ष निश्चित किया जाये किंतु जयपुर के शासक को आजीवन राजप्रमुख बनाना निश्चित किया गया।[50]

जयपुर नरेश द्वारा प्रसंविदा पर हस्ताक्षर

इन समस्त विषयों के निर्धारण के पश्चात् जयपुर रियासत ने प्रस्तावित वृहत राजस्थान में विलय की अनुमति प्रदान कर दी तथा प्रसंविदा पर हस्ताक्षर कर दिये। वृहत राजस्थान में विलय के समय जयपुर राज्य ने राजस्थान सरकार को 4 करोड़ 58 लाख रूपये की पोते–बाकी प्रदान की।[51]

बीकानेर रियासत का राजस्थान में विलय

महाराजा बीकानेर सादुलसिंह ने अपनी रियासत को स्वतंत्र रखने का हर संभव प्रयास किया। महाराजा को पूरा विश्वास था कि वह स्वतंत्र भारत में बीकानेर रियासत का अलग अस्तित्व बनाये रखने में सफल हो जायेंगे। किंतु जब उदयपुर, जयपुर और जोधपुर नरेशों ने राजस्थान में विलय की स्वीकृति दे दी तो स्थिति पलट गयी। बीकानेर नरेश ने अपनी रियासत को विलय से बचाने के लिये खजाने की थैलियों के मुँह खोल दिये, पैसा पानी की तरह बहाया गया। परिणामतः बीकानेर में 'विलीनीकरण'' विरोधी मोर्चा खड़ा हो गया। अनेक डॉक्टर, प्रोफेसर, वकील, भूतपूर्व न्यायाधीश व अवकाश प्राप्त उच्चाधिकारी इस मोर्चे में शामिल हो गये। इस मोर्चे द्वारा कई

अजीबो–गरीब कदम उठाये गये। उनकी मान्यता थी कि युद्ध एवं प्रेम में उचित, और अनुचित नहीं देखा जाता।[52] इस मोर्चे द्वारा राजपूत सभा के नाम से जागीरदारों का एक संगठन खड़ा किया गया। इस समय प्रदेश के अन्य राज्यों में भी जागीरदार वर्ग राजपूत समाज के माध्यम से अपने आप को संगठित करने का प्रयास कर रहा था। अतः देश में यह धारणा बनती जा रही थी, कि इससे एकीकरण में रूकावट खड़ी हो सकती है। मोर्चे ने मुसलमानों को अपने राजा के प्रति वफादारी प्रदर्शित करने का आह्वान किया और इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये मुस्लिम लीग के मुखपत्र डॉन के संपादक को बीकानेर राज्य में आमंत्रित किया। उसने मुस्लिम क्षेत्रों और मस्जिदों में लीगी प्रचार किया। इस संपादक को बीकानेर रियासत में लीग की विचारधारा का प्रचार–प्रसार करने का सुंदर अवसर मिला जिसका लाभ उठाकर उसने मुसलमानों को इस बात के लिये प्रेरित किया कि वे अपने हितों की सुरक्षा के लिये पृथक निर्वाचन क्षेत्र और पृथक मताधिकार की मांग को बुलंद करें। मोर्चें ने बाकी बचे तबकों के लिये राजकीय डूंगर कॉलेज के प्रोफेसर श्री विद्याधर शास्त्री के नेतृत्व में प्रजा सेवक संघ नामक संस्था का निर्माण करवाया तथा बीकानेर लोकसेवा संघ खड़ा किया, जिसके सर्वेसर्वा रियासत के भूतपूर्व न्यायाधीश ब्रदीप्रसाद व्यास थे।[53]

राजपूत सभा का मोर्चा कोई बहुत बड़ी सफलता अर्जित नहीं कर सका क्योंकि इसमें जागीरदारों का वर्चस्व था, ग्रामीण जनता इनसे त्रस्त एवं आंतकित रहती थी। मुस्लिम मोर्चा भी महाराजा के लिये विशेष कुछ नहीं कर सका क्योंकि डॉन के संपादक ने इस अवसर का लाभ महाराजा के पक्ष में प्रचार करने की अपेक्षा लीगी विचारधारा के प्रचार में किया और पृथक निर्वाचन क्षेत्र व पृथक मताधिकार की मांग करवाई जो महाराजा के खिलाफ जाती थी। ऐसा कर पाना इसलिये भी संभव नहीं था क्योंकि अत्यंत निकट भविष्य में ही उत्तरदायी सरकार के लिये चुनाव होने वाले थे। प्रजा सेवक संघ का मोर्चा इसलिये विफल हो गया क्योंकि इसके संचालक प्रोफेसर साहब केवल विद्यार्थियों में अपनी छाप छोड़ पाये थे किंतु इन विद्यार्थियों को मतदान का अधिकार ही प्राप्त नहीं था। लोक सेवक मोर्चें ने अपने आपको अछूतोद्धार विरोधी गतिविधियों से जोड़ लिया जिससे जनता के बीच वे अपना प्रभाव स्थापित करने में असफल रहे और इसलिए ही जनता में महाराजा के प्रति आस्था का पुनर्निर्माण नहीं

किया जा सका।[54] नवम्बर, 1948 में रियासती मंत्रालय और इसके प्रतिनिधि वी.पी.मेनन द्वारा विलय के लिये वार्तालाप का प्रारम्भ किया गया।[55] 6 दिसम्बर, 948 को मेनन बीकानेर आये। उन्होंने राज्य के मुख्य नागरिकों से मिलकर बीकानेर के राजस्थान में एकीकरण के संबंध में उनकी इच्छा मालूम की। बीकानेर के लालगढ़ महल के दरबार हॉल में यह बैठक हुई बैठक में बीकानेर के प्रधानमंत्री सी.एस.वेंकटाचार भी उपस्थित थे। वी.पी.मेनन ने बैठक में उपस्थित व्यक्तियों को राज्य के एकीकरण से होने वाले लाभों से परिचित करवाया। उन्होंने कहा कि इससे प्रशासन के व्यय में कमी आयेगी। पंडित नेहरू और सरदार पटेल जैसे नेता ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि आम जनता का हित किस में है। जब ये नेता कहते हैं कि रियासत का एकीकरण यहाँ की जनता के हित में है तो वह वास्तव में हित में ही है और यहाँ के लोगों को उनके कथन का विश्वास करना चाहिये।[56]

बीकानेर राज्य के वकील पंडित लक्ष्मीनारायण ने इस बैठक में यह मुद्दा उठाया कि एकीकरण के सम्बन्ध में राज्य में जनमत संग्रह करके जनता की राय मालूम करना उचित होगा। इस पर मेनन ने यह कहकर इसका विरोध किया कि किसी भी अन्य राज्य में ऐसी मांग नहीं की गयी है। एक अन्य वकील पंडित सूरजकरण आचार्य ने मेनन से पूँछा कि क्या एकीकरण का मामला पहले ही तय किया जा चुका है या अभी सलाह लेनी बाकी है? इस पर मेनन ने जवाब दिया कि यह मामला पहले ही तय किया जा चुका है और भारत सरकार एकीकरण की योजना को पूरा करेगी।[57] मेनन ने यह भी कहा कि सुविधा के लिये प्रारंभ से ही भारत सरकार रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित करना चाहती थी। भारत सरकार 560 रियासतों को स्वंतत्र छोड़ना भी नहीं चाहती। भारतीय संघ में सम्मिलित होने के समझौतों का उल्लेख करते हुए वी.पी. मेनन ने कहा कि कोई भी जनतांत्रिक सरकार इस प्रकार के आश्वासनों से देश का भविष्य नहीं बांध सकती। जब यह प्रश्न किया गया कि जब इस मामले मे एकतरफा फैसला किया जा चुका है तो इस पर महाराजा के हस्ताक्षर कराने क्यों जरूरी है? मेनन ने बताया कि कानूनी दृष्टि से हस्ताक्षर कराने जरूरी हैं।[58]

बैठक के पश्चात् मेनन ने महाराजा से बीकानेर राज्य के राजस्थान में एकीकरण के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने का निवेदन किया। महाराजा ने मेनन को शर्तों की एक सांकेतिक सूची दी और कहा की यदि ये राजा एकीकरण के लिये सहमत हो जाये तो आप इन शर्तों को मान लें। मेनन सहमत हो गये।[59] और उन्होंने महाराजा से दिल्ली चलने का आग्रह किया। दिल्ली में भी महाराजा ने पटेल के समक्ष दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने में अपनी अनिच्छा प्रकट की। कहा जाता है कि सरदार पटेल ने महाराजा को बहावलपुर–बीकानेर व्यापार संधि और चने की निकासी के परमिट जारी करने के घोटालों की जांच करने वाली महाजन कमेटी की रिपोर्ट की अदालती जांच करवाने की बात कही तब जाकर महाराजा एकीकरण के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने को सहमत हो गये।[60] महाराजा द्वारा तैयार की गयी एक गोपनीय सूची में उन्होंने लिखा है कि ''बीकानेर को अलग रहने योग्य इकाइयों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। अब तक ऐसा ही माना जाता रहा है। एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया है? यह बलपूर्वक नियंत्रण क्यों ?'' सूची से पता चलता है कि अखिल भारतीय रियासती जनता की राजपूताना प्रादेशिक परिषद ने एकीकरण की मांग पर बल दिया था। संयोग से उसमें बीकानेर का एक ही प्रतिनिधि रघुवर दयाल गोयल था और वह भी बीकानेरी नहीं था।[61] समाजवादी दल जिसका कोई महत्व नहीं था, ने बीकानेर राज्य को पूर्वी पंजाब में मिलाने की मांग की। लोक परिषद, राज्य प्रजा सेवक संघ, करणीपुत्र संघ, अकाली जत्था तथा ऐसी ही अन्य अल्प संख्यक जातियों के संगठन बीकानेर के राजस्थान में विलय से सहमत नहीं थे केवल रघुवर दयाल गोयल ही बीकानेर के विलय के पक्ष में थे किंतु वे बाहर के आदमी थे। प्रजा परिषद की जाट लॉबी भी बीकानेर राज्य को अलग इकाई बनाये रखने के पक्ष में थी।[62] बीकानेर रियासत को अलग इकाई बनाए रखने के महाराजा सादुलसिंह के तमाम प्रयत्न नाकामयाब होते जा रहे थे। ऐसे समय में जयपुर और जोधपुर नरेशों की अपने– अपने राज्यों को नए राजस्थान राज्य में विलीन करने की स्वीकृति की घोषणा के बाद बीकानेर नरेश एकदम अलग–थलग पड़ गये थे।[63]

बीकानेर का राजस्थान में विलय

5 और 21 दिसम्बर, 1948 को सरदार पटेल एवं मेनन के साथ बीकानेर महाराजा की आगे की बातचीत हुई। फरवरी, 1949 में एक बैठक में महाराजा ने रियासती मंत्रालय के समक्ष कुछ मांगें रखी।उच्च न्यायालय, रेलवे तथा सेना के प्रशासनिक मुख्यालय बीकानेर में रखे जायें। बीकानेर में आयुर्विज्ञान महाविद्यालय, सिविल अभियांत्रिकी महाविद्यालय तथा कृषि महाविद्यालय खोले जाये। महाराजा द्वारा बीकानेर राज्य के लिये अगले 20 साल हेतु बनाये विकास कार्यक्रम जिसमें चिकित्सा संस्थाएं, शैक्षणिक संस्थाएं, ग्रामीण विकास आदि सम्मिलित है को छोटा न किया जाये। बीकानेर राज्य द्वारा एकीकरण से पहले जो कोष संचित किया गया है उसे बीकानेर राज्य की जनता पर व्यय किया जाये। एकीकरण से पूर्व जिन रियासती कर्मचारियों को पेंशन स्वीकृत की गयी है, उन्हें बनाये रखा जाये। बीकानेर राज्य के लोगों को राजस्थान राज्य की सेवाओं में समुचित भागीदारी दी जाये। मेनन ने इनमें से अधिकतर मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आवश्वासन दिया।[64] 17 फरवरी 1949 को आयोजित इस बैठक में महाराजा सादुलसिंह ने मेनन से यह मांग भी की कि सादुलनगर के बाजार में उनकी मूर्ति लगायी जाये। मेनन ने इन मांगों को सैद्धांतिक रूप से मान लिया।[65] मेनन द्वारा लगभग सभी शर्तें मान लिये जाने पर महाराजा सादुलसिंह ने वृहद राजस्थान के निर्माण के लिये तैयार की गयी प्रसंविदा पर हस्ताक्षर कर दिये। वृहत राजस्थान के उद्घाटन समारोह से ठीक एक दिन पहले महाराजा ने सरदार पटेल को पत्र[66] लिखकर सूचित किया कि मेरा परिवार विगत पाँच शताब्दियों से बीकानेर से अपने रक्त सम्बन्ध से जुड़ा रहा है। मेरे लिये यह दिन प्रसन्नता मानने का नहीं है अपितु यह अवसर मेरे लिये अत्यंत अवसाद और दुख का दिन है।[67] विलय के समय बीकानेर रियासत द्वारा संयुक्त राजस्थान को 4 करोड़ 87 लाख रूपये की नगद पोते–बाकी प्रदान की गयी। यह रकम राजस्थान की सभी रियासतों द्वारा दी गयी रकमों में सर्वाधिक थी। इसके अतिरिक्त बीकानेर स्टेट की सारी सम्पत्ति भी सरकार को सौंपी, लगभग एक करोड़ की इस सम्पत्ति में रेलवे लाइन, रेल के डिब्बे, इंजन आदि थे।[68]

जोधपुर राज्य का राजस्थान में विलय

जोधपुर नरेश हनुवंतसिंह को आशंका थी कि राजाओं से जो भी वायदे केन्द्र सरकार कर कर रही है, उन वायदों से वह समयांतर में मुकर जायेगी।[69] महाराजा को आशंका थी कि कालांतर में सक्षम इकाइयों को भी समाप्त कर दिया जायेगा। इन आशंकाओं के कारण ही वे अंगीकार पत्र पर हस्ताक्षर करने में अंतिम समय तक झिझकते रहे। जब परिस्थितियों का दबाव बढ़ने लगा तो उन्होंने यह मानस बनाया कि अपने राज्य व प्रजा के हितार्थ केन्द्र सरकार से जितनी भी सुविधायें प्राप्त की जा सकें, कर ली जायें।[70] महाराजा जानते थे कि केन्द्रीय नेता देशी राज्यों में अपने स्थानीय पिछलग्गुओं द्वारा आंदोलन व दंगे करवाकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जिससे केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप करके शासन अपने हाथ में लेने का औचित्य व अवसर प्राप्त हो जाये। उदयपुर, ग्वालियर व इंदौर जैसी सम्पन्न रियासतों के राजाओं द्वारा आत्मसमर्पण किये जाने के उपरांत भी महाराजा हनुवंतसिंह ने अपने मनोबल को बनाये रखा। ध्रांग्धरा के राजा मयूरध्वज सिंह, जयपुर नरेश मानसिंह एवं बीकानेर नरेश सादुलसिंह ने हनुवंतसिह को समझाया कि माउंटबेटन, पटेल तथा रियासती मंत्रालय ने जब लिखकर दे दिया है तो किसी भी राजा को अपने राज्य, प्रजा व स्वयं अपने हितों के प्रति आश्वस्त हो जाना चाहिये परंतु हनुवंतसिंह का कथन था कि नेताओं पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। वे अपने वायदों से कभी भी मुकर सकते हैं।[71]

जोधपुर राज्य का सेंदड़ा सम्मेलन

जोधपुर महाराजा ने 30 अक्टूबर, 1947 को सेंदड़ा में रावत एवं मेर जातियों का सम्मेलन आयोजित किया। महाराजा पर आरोप लागया गया कि उन्होंने अपने राज्य को राजस्थान से अलग इकाई बनाये रखने के लिये अपना समर्थन बढ़ानें व शक्ति जुटाने के उद्देश्य से इस सम्मेलन का आयोजन किया था। जोधपुर रियासत के उच्च रक्तवर्णी राजपूतों को महाराजा का यह कदम पंसद नहीं आया। महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश एवं शोध संस्थान जोधपुर में महाराजा के निजी सचिव की एक फाइल में गुप्त पत्र रखा हुआ है जो महाराजा के किसी निकटवर्ती राजपूत सरदार द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है इस पत्र में महाराजा को उलाहना दिया गया है कि जोधपुर

राज्य में तमाम क्षुद्र जातियां राजपूतों में से ही निकली हुई हैं। यदि महाराजा उनके साथ बैठकर भोजन कर लें तो उनका स्थान पक्का हो जाएगा लेकिन आपकी प्रजा को यह मंजूर नहीं है। यदि आप प्रजा के विपरीत आचरण करेंगे तो आपका भी वही हाल होगा जो लोहारू, जूनागढ़ तथा कश्मीर के शासकों का हुआ महाराजा को चाहिये कि वे अपने सलाहकारों को बदले। अपने भाई हिम्मतसिंह को सरदार पटेल व नेहरू को सौंप दें तथा अपने भाई हरिसिंह को कोतवाली से काम सिखाना आरंभ करें ताकि वे राजकाज के कामों को अच्छी तरह समझ लें।[72]

जोधपुर रियासत का अधिग्रहण

14 जनवरी, 1949 को उदयपुर में वृहत राजस्थान बनाने की घोषणा करने के बाद 25 जनवरी, 1949 को सरदार पटेल ने जोधपुर में आयोजित एक आम सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया अभी चल रही है। हमें आशा है कि यह प्रक्रिया शीघ्र ही पूर्ण कर ली जायेगी तथा अतिशीघ्र हम उस एकता को प्राप्त कर लेंगे जिसे इतिहास में शायद ही कभी प्राप्त किया गया हो। एक संघ बनाया गया है किंतु बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर तथा जयपुर इससे बाहर हैं। यद्यपि अभी इन राज्यों से समझौता वार्ता चल रही हैं किंतु यह निर्णय कर लिया गया है कि यूनाईटेड राजस्थान जितनी शीघ्र संभव हो सके अस्तित्व में आयेगा। राजस्थान के राजाओं ने एकता के लिये बहुत कुछ किया है तथा इस कार्य में हमारी सहायता की है कि हम स्वतंत्रता को फिर से न खो दें तथा हम अपनी कमजोरी से विदेशी सत्ता की गुलामी को फिर से न ले आयें।[73]

7 अपैल, 1949 को महाराजा जोधपुर ने राजस्थान के महाराज प्रमुख को दिल्ली से तार किया कि ''मैं हनुवंतसिंह, जोधपुर का महाराजा, हस्ताक्षरित प्रसंविदा के अनुसार मारवाड़ रियासत आपके सुपुर्द कर रहा हूँ।''[74] राजस्थान के राजप्रमुख ने पी. एस.राउ को तार भेजकर निर्देशित किया कि आप जोधपुर रियासत का प्रशासन तत्काल प्रभाव से ग्रहण कर लें।[75] पी.एस.राउ ने 7 अप्रैल 1949 को जोधपुर राज्य के प्रशासन का कार्यभार संभाल लिया।[76] विलय के समय जोधपुर राज्य ने राजस्थान सरकार को 4 करोड़ 75 लाख रूपये की पोते–बाकी सौपी।[77]

वृहत राजस्थान का निर्माण

मुख्यमंत्री का चुनाव – 14 फरवरी, 1949 को गोकुल भाई भट्ट और माणिक्यलाल वर्मा ने सरदार पटेल से भेंट की। हीरालाल शास्त्री को राजस्थान का मुख्यमंत्री बनाने का निश्चय किया गया।[78] इस निर्णय पर सर्वत्र आश्चर्य व्यक्त किया गया। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से जयपुर के प्रजामंडल को अलग रखने एवं सिरोही के संबंध में गोकुलभाई भट्ट के साथ तुष्टिकरण का रवैया अख्तियार करने के कारण जयपुर सहित प्रदेश में प्रायः सभी कांग्रेस कार्यकर्ता हीरालाल शास्त्री से नाराज थे। कांग्रेसजनों में जयनारायण व्यास सर्वाधिक लोकप्रिय थे। अतः कांग्रेसजन चाहते थे कि जयनारायण व्यास ही मुख्यमंत्री बनें पर सरदार पटेल के दबाव से प्रदेश कांग्रेस ने दिल्ली में चली कई दिनों की बैठक के बाद ''अगर–मगर' के साथ शास्त्री को मुख्यमंत्री बनाने के प्रस्ताव पर सहमति दे दी।[79]

जयपुर राजधानी के रूप में – राजधानी को लेकर विवाद उत्पन्न होने पर राजधानी का निर्णय सरदार पटेल पर छोड़ा गया। पटेल ने राजधानी निर्धारित करने हेतु एक विशेष समिति का गठन किया। मार्च 1949 में आई.सी.एस. अधिकारी वी.आर.पटेल की अध्यक्षता में कैपीटल कमेटी गठित की गयी। इस समिति में उप महानिदेशक स्वास्थ्य सेवाएं ले.कर्नल टी.सी. पुरी तथा केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग के मुख्य अभियंता श्री बी.एस.पुरी सम्मिलित किये गये।[80] समिति को राजस्थान के नगरों में से किसी एक नगर का चुनाव प्रांतीय राजधानी के लिये करना था तथा अपनी रिपोर्ट 1 अप्रैल 1949 तक भारत सरकार को सौंप देनी थी। रियासती विभाग ने समिति के अध्ययन के लिये पाँच विषम सुझाये–

01. प्रशासकीय सुविधाएं
02. भवनों की उपलब्धता
03. जलवायु से सम्बन्धित परिस्थितियां
04. उपलब्ध पेयजल एवं विद्युत की उपलब्धता
05. अन्य सम्बद्ध विषय जिसे समिति उचित समझे।[81]

इस समिति ने 17 व 18 मार्च 1949 को जयपुर का 19 और 20 मार्च को अजमेर का, 21 व 22 मार्च को उदयपुर का तथा 23 व 24 मार्च, 1949 को जोधपुर का दौरा किया।[82] समिति ने 5 प्रमुख विषयों पर आधारित 13 बिन्दुओं की विस्तृत प्रश्नावली तैयार की तथा उसे रीजनल कमिश्नर उदयपुर को भिजवा दिया।[83]

समिति ने जयपुर को राजधानी बनाये जाने के लिये सर्वाधिक उपयुक्त माना तथा बड़े नगरों के महत्व को बनाये रखने हेतु विभिन्न महत्वपूर्ण विभागों को राजस्थान के विभिन्न नगरों में स्थापित करने की अनुशंसा की। हीरालाल शास्त्री ने इस संबंध में लिखा है कि –''मेरे एक दूसरे बड़े साथी ने यह प्रस्ताव भी मेरे सामने रखा कि मुख्यमंत्री भले ही मैं बना रहूँ पर राजधानी जयपुर के अतिरिक्त किसी अन्य शहर को बनवा दूं। किसी समय साथियों की यह कोशिश हुई कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दूसरी जगह ले जाया जाये। हाईकोर्ट का जोधपुर में और उसकी एक बैंच का जयपुर में रखा जाना तय हो गया। बाकी विभागों का बंटवारा मैंने राजस्थान के मुख्य शहरों में जैसा हो सकता था कर दिया।''[84] 22 फरवरी, 1949 को एक पत्रकार सम्मेलन में जयनारायण व्यास ने यह कहा कि ऐसा सोचना ठीक नहीं कि जयपुर ने सभी कुछ ले लिया है। हमें अपने आप को एक वृहद इकाई का नागरिक मानना है। राजधानी के विषय में व्यास ने कहा कि अभी इसका निश्चय नहीं हुआ है, अजमेर के राजस्थान में विलय पर ही राजधानी की स्थायी समस्या का समाधान होगा। उन्होंने कार्यकर्ताओं और समाचारपत्रों से संयम रखने की अपील की।[85] जयपुर के राजधानी बनने की घोषणा होने के बाद अन्य नगरों की प्रजा एवं नेताओं को संतुष्ट रखने के लिये सरदार पटेल ने वक्तव्य दिया कि राज्य के कई महत्वपूर्ण विभाग जयपुर से बाहर अन्य प्रमुख नगरों में स्थापित किये जायेंगे। इस बारे में पहले से ही निर्णय लिया जा चुका है कि इस संबंध में भारत सरकार द्वारा लिया गया कोई भी निर्णय सभी पक्षों को मान्य होगा।[86]

जागीरदारों को मंत्रिमंडल में सम्मिलित करने का विरोध

वृहद राजस्थान के मंत्रिमण्डल में अपने प्रतिनिधित्व को लेकर जागीरदार लोग रियासती मंत्रालय को ज्ञापन देने लगे। इस पर राजपूताना प्रांतीय किसान सभा के

अध्यक्ष चौधरी बलदेवराम मिर्धा ने 10 फरवरी, 1949 को सरदार पटेल को एक पत्र लिखकर कड़ी आपत्ति व्यक्त की कि ''राजपूताना स्टेट्स यूनियन के लिये बनने वाली अंतरिम सरकार का कार्य निर्माणाधीन है जिसमें जागीरदारों द्वारा अपने प्रतिनिधित्व के लिये दिये जा रहे ज्ञापनों ने किसानों को उद्वेलित कर दिया है। जागीरदार लोग राजपूताना की रियासतों में दमनात्मक कार्यवाहियाँ करने तथा काश्तकार का शोषण करने के लिये जाने जाते रहे हैं। इनमें से कुछ लोग अब भी राजपूत आधिपत्य की शैली में सोचते हैं। सरकार में उन्हें सम्मिलित किये जाने का परिणाम भावी दमन तथा शोषण के लिये उनके हाथों को सशक्त करना होगा। इसलिये किसान इसका प्रबल विरोध करते हैं।''[87] 13 फरवरी, 1949 को राजस्थान जागीरदार सभा ने उदयपुर में एक प्रस्ताव पारित किया कि चूँकि निकट भविष्य में वृहद राजस्थान का निर्माण होने वाला है। जिसमें जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि रियासतें भी सम्मिलित की जायेगी। अतः अंतरिम सरकार बनायी जायेगी। उसके बाद चुनावों का कार्य आरंभ होगा। यह सभा महसूस करती है कि वृहद राजस्थान में यदि किसी एक दल की सरकार बनायी गयी तो चुनावों का कार्य निष्पक्ष नहीं हो सकेगा। इसलिये सर्वदलीय सरकार बनायी जाये अथवा नये चुनाव होने तक नयी सरकार न बनाकर राजप्रमुख अपने हाथ में ही शासनाधिकार रखें।[88]

एकीकरण समिति का गठन

14 जनवरी, 1949 को पटेल द्वारा राजस्थान के एकीकरण की योजना घोषित कर देने के बाद एकीकरण समिति का गठन किया गया। रियासती विभाग के अधिकारी के.बी. लाल को इसका सचिव बनाया गया। जोधपुर राज्य के दीवान पी.एस. राउ, बीकानेर राज्य के मुख्यमंत्री सी.एस. वेंकटाचार तथा राजपूताना के रीजनल कमिश्नर वी.के.बी पिल्लई को इस समिति का सदस्य बनाया गया। इस समिति को वृहद राजस्थान में मुख्य न्यायाधीश, मुख्य सचिव, अध्यक्ष लोक सेवा आयोग, वित्त सचिव, पुलिस महानिरीक्षक, महालेखाकार आदि पदों पर नियुक्त किये जाने के लिये अधिकारियों के नाम सुझाने थे।[89]

वायुयान दुर्घटनाओं से तनाव

वृहत राजस्थान के अस्तित्व में आने से पहले वायुयान दुर्घटनायें हुई जिन्होंने कुछ समय के लिये राजस्थान के राजनैतिक वातावरण में तनाव उत्पन्न कर दिया। पहली दुर्घटना जयपुर नरेश के साथ हुई। इसमें महाराजा का वायुयान जलकर नष्ट हो गया पर महाराजा बाल–बाल बच गये। उनके पैर में गंभीर चोट आयी।[90] दूसरी दुर्घटना तब हुई जब सरदार पटेल वृहत राजस्थान का उद्घाटन करने आ रहे थे। वे भी बाल–बाल बचे।[91]

वृहत राजस्थान संघ का उद्घाटन

30 मार्च, 1949 ई. को सरदार पटेल ने राजस्थान राज्य का उद्घाटन किया। उद्घाटन स्थल पर जयपुर प्रशासन की ओर से सामंतों और अधिकारियों को अगली पंक्ति में बैठने की व्यवस्था की गयी। जबकि जोधपुर राज्य के प्रधानमंत्री जयनारायण व्यास तथा उदयपुर राज्य के प्रधानमंत्री माणिक्यलाल वर्मा को पीछे की पंक्ति में बैठाया गया। इसे इन नेताओं ने अपना अपमान समझा और उन्होनें उद्घाटन समारोह का बहिष्कार कर दिया। समारोह में पटेल ने स्वतंत्र भारत की एकता सुदृढ़ करने में राजाओं के योगदान और त्याग की प्रंशसा करते हुए कहा ''कि राजस्थान का निर्माण कर हमने आज राणा प्रताप का स्वप्न साकार किया है।''[92] उन्होंने जनता से अपील की कि अब उन्हें जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि के बारे में न सोचकर संपूर्ण राजस्थान के बारे में सोचना चाहिये। पटेल ने कांग्रेस कार्यकर्ताओं को सलाह दी कि ''उन्हें सदभाव दिखाना चाहिये और सत्ता की अपेक्षा सेवा के बारे में सोचना चाहिये। मंत्री कौन बने और राजधानी कहाँ हो? यह छोटे लोगो की बातें हैं। अगर कांग्रेसी वास्तव में सच्चे हैं तो उन्हें जबरदस्ती सत्ता सौंपी जायेगी।''[93] उन्होंने बैठने की व्यवस्था को लेकर समारोह का बहिष्कार करने की प्रदेश कांग्रेस के नेताओं की भर्त्सना भी की।[94]

राजस्थान में पहले ही सम्मिलित हो चुके 19 राज्यों के शासकों में से केवल 8 ही इस समारोह में उपस्थित हुए। कुछ लोगों ने जयपुर की महारानी गायत्री देवी से इस समारोह में बाधा उत्पन्न करने की अनुमति मांगी किंतु महारानी ने उन्हें ऐसा करने

से मना किया।[95] यह तय किया गया था कि जोधपुर तथा कोटा के महाराजाओं को वरिष्ठ उपराजप्रमुख बनाया जायेगा तथा बूँदी और डूँगरपुर के राजाओं को कनिष्ठ उपराजप्रमुख बनाया जायेगा, जो पाँच साल के लिये अपने पदों पर रहेंगे।[96] जब 30, मार्च 1949 को सरदार पटेल ने वृहद राजस्थान का विधिवत् उद्घाटन किया तो बूँदी और डूँगरपूर के राजाओं ने कनिष्ठ उपराजप्रमुख के पद की शपथ नहीं ली।

पटेल द्वारा दिये गये उद्घाटन भाषण में राजस्थान में सम्मिलित होने वाले चारों राज्यों के राजाओं की प्रशंसा की गयी तथा कांग्रेस के नेताओं द्वारा की जा रही अप्रजातांत्रिक कार्यवाहियों की आलोचना की गयी। इस पर जयनारायण व्यास ने 2 अप्रैल, 1949 को सरदार पटेल को एक पत्र लिखकर अप्रसन्नता व्यक्त की, कि आपके द्वारा जयपुर में कांग्रेस जनों के विषय में जो कहा है उससे तो राजस्थान में कांग्रेस कमजोर ही होगी। आपने कांग्रेसी नेताओं के अच्छे कार्यों के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा। आपका भाषण गैर कांग्रेसी तत्वों का समर्थक है। आपने महाराजा, जयपुर को प्रसन्न करने के लिये कांग्रेसियों की आलोचना की है।[97]

इस प्रकार संयुक्त राजस्थान के साथ जयपुर, जोधपुर, बीकानेर एवं जैसलमेर राज्यों के विलय के साथ ही राजस्थान के एकीकरण का चतुर्थ चरण सम्पन्न हुआ। इस विलय में लावा ठिकाना भी सम्मिलित था।

एकीकरण का पंचम चरण मत्स्य संघ का विलय

पूर्वी राजस्थान के चार राज्यों को मिलाकर 18 मार्च, 1948 ई. को मत्स्य संघ का निर्माण किया गया था। अब तक मत्स्य संघ, सिरोही और अजमेर ही ऐसे क्षेत्र बचे थे जो वृहत राजस्थान से बाहर थे। जिस समय संयुक्त राजस्थान के निर्माण पर बातचीत चल रही थी। वी.पी. मेनन ने मत्स्य संघ के शासकों से संयुक्त राजस्थान संघ में विलय के लिये कहा था।[98] किंतु अभी रियासती विभाग के सामने दूसरे महत्वपूर्ण कार्य थे इसलिये मत्स्य संघ के प्रश्न को आगे के लिए टाल दिया गया।

मत्स्य संघ का लगभग 11 महीने का कार्यकाल संतोषजनक नहीं रहा। वास्तव में मत्स्य संघ में सम्मिलित चारों इकाइयों के राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक स्तर में भारी विरोधाभास था इसलिये यह संघ विपरीत गुणों वाले अर्द्धसम्प्रभु राज्यों का एक बेमेल गठजोड़ बनकर रह गया।[99] मत्स्य संघ की स्थापना के समय यह आशा की गई थी कि यह जनता को एक प्रभावी और स्वच्छ प्रशासन उपलब्ध करवाकर जनतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत करेगा किंतु यह संघ जन साधारण की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा।[100]

मत्स्य संघ की असफलता के कारण

राजाओं के आपसी मतभेद– मत्स्य संघ में सम्मिलित शासक अपने–अपने स्वार्थों को फलीभूत करना चाहते थे, किसी ने भी संघ की प्रगति के विषय में नहीं सोचा। धौलपुर के जाट राजा ने संघ से संबंधित किसी भी सार्वजनिक समारोह में अपनी उपस्थिति नहीं दी क्योंकि संघ की सरकार के साथ विभिन्न मुद्दों को लेकर उनके मतभेद थे। इसी प्रकार भरतपुर व धौलपुर के दोनों जाट शासक मंत्रीमण्डल में जाटों को सम्मिलित करने की किसान सभा की मांग को छुपे तौर पर समर्थन कर रहे थे। करौली के शासक ने मत्स्य संघ के उद्‌घाटन समारोह का बहिष्कार किया साथ ही स्वतंत्रता दिवस भी नहीं मनाया। [101]

2. **नीमराणा के शासक का विरोध–** नीमराणा ठिकाने के प्रमुख बिना उनकी मर्जी के उनके ठिकाने के मत्स्य संघ में विलय से नाराज थे। इनकी इच्छा थी कि इनकी रियासत को पंजाब के गुड़गांव में सम्मिलित कर दिया जाए।[102]

3. **मंत्रिमण्डल का अप्रतिनिधियात्मक स्वरूप–** मत्स्य संघ की जनता नवगठित मंत्रिमण्डल में अपने प्रतिनिधित्व को लेकर खुश नहीं थी। भरतपुर किसान सभा के सचिव रतनसिंह ने 4 अप्रैल, 1948 को मेनन को लिखा कि ''समस्त जनता विशेषकर किसान अंतरिम सरकार की कार्यशैली से खुश नहीं है। इस मत्रिमंडल से शहरी जनता खुश नहीं है। अतः वर्तमान मंत्रिमण्डल को तुरन्त प्रभाव से बर्खास्त करके जनता का उचित प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्रिमण्डल का गठन किया जाना चाहिये।''[103] 3 दिसम्बर, 1948 को भरतपुर की एक जनसभा को सम्बोधित करते

हुए समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने कहा कि ''मत्स्य संघ को बने 7 महीने हो गये हैं। और अब तक कोई विकास कार्य नहीं हुआ क्योंकि सरकार उनकी नहीं अपितु सरदार पटेल की चुनी हुई है वे सरदार के सेवक हैं यदि सरकार जनता द्वारा चुनी गई होती तो मंत्रिमण्डल के सदस्य जनसाधारण की अवहेलना नहीं करते।''[104]

4. **अनुभवी राजनेताओं की कमी–** मत्स्य संघ के मंत्रिमंडल में कोई भी राजनेता ऐसा नहीं था जिसे व्यापक राजनीतिक अनुभव हो और जिसने अपनी रियासत की सीमाओं के बाहर भी पहचान बनाई हो। मत्स्य संघ की रियासतों में प्रतिनिधियात्मक शासन का विकास नहीं हो पाया था, इसलिये ये राजनेता प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था के कर्त्तव्य को ठीक प्रकार से निर्वहन नहीं कर सके। ये राजनेता अपने चरित्र, क्षमता और दृष्टिकोण की सीमाओं का विस्तार करते हुए सामान्य जनमानस की अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतर सके नव गठित मंत्रिमण्डल को जाटों के कड़े विरोध का भी सामना करना पड़ा। जागीरदार, कृषक मजदूर, सरकारी कर्मचारी सबके अपने–अपने कारण थे तत्कालीन सरकार का विरोध करने के और इन सब परिस्थितियों का फायदा उठाते हुए कांग्रेस विरोधी तत्वों ने सरकार विरोधी भावनाओं को और अधिक हवा देने का कार्य किया।[105]

5. **सांप्रदायिक संगठनों की गतिविधियां–** मत्स्य संघ की असफलता का एक कारण मुस्लिम लीग, नेशनल गार्ड और 'खाकसार' जैसे सांप्रदायिक संगठनों की गतिविधियां भी थी। इनका प्रमुख उददेश्य 'मेवस्तान' का निर्माण करना था। अलवर व भरतपुर की सीमाओं पर इन मेवों ने लूट मार मचा रखी थी। इनसे परेशान होकर अलवर के तीजारा, और नीमली में सेना को मेवों की गतिविधियों पर नियंत्रण के लिये लगाया गया।[106]

6. **राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सरकार विरोधी गतिविधिया–** संघ के कार्यकर्ताओं ने सार्वजनिक जन–सभाओं, प्रदर्शनों और सरकारी आदेशों की अवहेलना करते हुए मत्स्य संघ की सरकार के लिए कठिनाइया उत्पन्न कर दी। वे अपने नेता गोलवलकर को जेल से मुक्त करने की मांग कर रहे थे अन्ततः 9 दिसम्बर, 1948

को मत्स्य संघ के पुलिस महानिरीक्षक ने जन सुरक्षा अध्यादेश [107] के तहत अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली के समस्त स्वयं सेवक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के आदेश दे दिये। 12 दिसम्बर 1948 को सरकार ने आदेश जारी किये कि जो भी सरकारी कर्मचारी, स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों में लिप्त पाए जायेंगे, उन्हें तुरंत प्रभाव से बर्खास्त कर दिया जाएगा।[108]

7. **विघटनकारी और प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ–** विघटनकारी शक्तियाँ कांग्रेस मंत्रिमण्डल को गिरा कर स्वयं सत्ता में आने को तत्पर थीं, संघवादियों, समाजवादियों और जनाधिकार समिति इत्यादि अलग–अलग राजनीतिक संगठनों ने सरकार को असफल बनाने के पूरे प्रयास किए। अलवर में इनका केन्द्र, राजगढ़ और नीमराणा थे, वहीं भरतपुर में किसान सभा व नागरिक अधिकार समितियों ने सरकार के विरूद्ध खुल कर कार्य किया। समाजवादियों ने नीमराणा में लगान' की समाप्ति का झूठा स्वप्न कृषकों को दिखाया। सरकार द्वारा 'अलवर पत्रिका' जो कि एक समाजवादी दल से संबंध रखता था, के एक लेख के कारण उस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस प्रतिबंध के विरुद्ध कुंज बिहारी लाल मोदी जो की समाजवादी दल का एक सक्रिय कार्यकर्ता था ने 26 जनवरी, 1949 को सरकार के निर्णय के विरुद्ध भूख हड़ताल शुरू कर दी। [109] समाजवादी दल ने सरकार के विरुद्ध जन सभा करके भरतपुर, धौलपुर को मिलाकर अलग बृज प्रदेश बनाने की मांग रखी।[110]

मत्स्य संघ का वृहत राजस्थान में विलय

मत्स्य संघ में चारों ओर अव्यवस्था फैल गई थी। भरतपुर तथा धौलपुर अंतरिम सरकार की कार्यप्रणाली से पूरी तरह असंतुष्ट थे। कांग्रेस कार्यकर्ता चाहते थे कि मत्स्य संघ को या तो उत्तर प्रदेश में मिला दिया जाये या फिर दिल्ली के साथ जोड़ दिया जाये। जबकि दूसरी तरफ जागीरदार वर्ग जयपुर के साथ मिलाना चाहता था। किसान सभा का मत था कि भरतपुर और धौलपुर क्षेत्र को एक पृथक इकाई के रूप में रखा जाये और इसका नाम 'बृज प्रद्रेश' रख दें।[111] भरतपुर और धौलपुर के शासक अत्यक्ष रूप से किसान सभा को इस सम्बन्ध में प्रोत्साहित कर रहे थे। अलवर और भरतपुर के मेव अभी भी मेवस्तान बनाने का स्वप्न देख रहे थे। मत्स्य संघ आर्थिक

दृष्टि से भी कमजोर था। वर्तमान स्थिति में संघ का विकास सम्भव नहीं था। [112] भारत सरकार को भय था कि कहीं संघ का विघटन न हो जाये।

अतः रियासती विभाग भी इस समस्या का समाधान खोजने में जुट गया। इस समय तक राजपूताना की लगभग समस्त रियासतों का राजस्थान संघ में विलय हो चुका था ऐसे में मत्स्य संघ को पृथक इकाई के रूप में रखने का कोई औचित्य नहीं था।[113]

13 फरवरी, 1949 ई. को अलवर, भरतपुर धौलपुर और करौली के शासकों व मत्स्य संघ के मंत्रियों को दिल्ली बुलाया गया तथा मत्स्य संघ के भविष्य के विषय में विचार विमर्श किया गया कि मत्स्य संघ को संयुक्त प्रांत में मिलाया जाए अथवा राजस्थान संघ में। अलवर और करौली के शासकों ने अपनी रियासतों के राजस्थान में विलय पर सहमति प्रकट की। जबकि भरतपुर और धौलपुर के शासक सर्वसम्मति से कोई फैसला नहीं कर पा रहे थे। प्रारम्भ में ये दोनों ही रियासतें राजस्थान में विलय पर सहमत नहीं थी। मंत्रियों में से कुछ इन्हें राजस्थान में मिलाने के पक्ष में थे, तो कुछ ने संयुक्त प्रांत में विलय के लिये अपना मत प्रकट किया।[114]

23 मार्च, 1949 ई. को इस विषम पर पुनः बैठक आयोजित की गयी इस बैठक में भरतपुर के शासक ने कहा कि उनकी रियासत की अधिकांश जनता राजस्थान में मिलने की इच्छुक है। धौलपुर महाराजा भी कुछ समय बाद राजस्थान के साथ विलय के लिये सहमत हो गये परन्तु उन्होंने एक शर्त रखी कि आगे चलकर यदि धौलपुर की जनता संयुक्त प्रांत में मिलना चाहे तो इसके लिये प्रावधान रखा जाना चाहिये। इस विषय पर सर्वसम्मति से फैसला करने के लिए रियासती विभाग ने 4 अप्रैल 1949 को शंकरराव देव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन कर दिया। आर. के सिद्धवा, प्रभुदयाल और हिम्मत सिंहका इस समिति के सदस्य थे।[115] इस समिति को अप्रैल माह के अंत में अपनी रिर्पोट प्रस्तुत करने को कहा गया। समिति के सदस्यों ने दोनों रियासतों का दौरा किया और निर्णय दिया कि भरतपुर व धौलपुर की अधिकांश जनता राजस्थान में विलय की इच्छुक है किंन्तु समिति ने यह भी सुझाव दिया कि कुछ समय बाद जनता को अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का अवसर देना उचित होगा। [116]

10 मई, 1949 को दिल्ली में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें मत्स्य संघ के चारों नरेशों ने भाग लिया। यहाँ सभी नरेशों ने राजस्थान संघ में सम्मिलित होने के लिये अपनी सहमति दे दी। उन्होंने तैयार किये गये विलय–पत्र के प्रारूप पर हस्ताक्षर कर दिये। राजस्थान संघ की ओर से राजप्रमुख ने हस्ताक्षर किये। तदनुसार 15 मई, 1949 को मत्स्य संघ का प्रशासन राजस्थान को हस्तान्तरित कर दिया गया। वहाँ के मुख्यमंत्री शोभाराम को शास्त्री मंत्रिमंडल में ले लिया गया।[117]

संदर्भ सूची

1. द इण्डियन न्यूज क्रॉनिकल, 28 मार्च 1948, द ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कान्फ्रेंस की कार्यवाही।
2. मेवाड प्रजामण्डल पत्रिका, 8 मार्च 1948
3. बी.एल.पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 130
4. उपरोक्त
5. उपरोक्त
6. उपरोक्त पृ. 353
7. गोपीनाथ शर्मा– राजस्थान के स्वंतत्रता संग्राम का इतिहास पृ. 407–408
8. एम.एस.जैन– आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ. 353
9. वी.पी.मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 247
10. गायत्री देवी– ए प्रिंसेज रिमेम्बर्स– द मेमोरीज़ ऑफ दी महारानी जयपुर पृ. 255
11. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 248
12. उपरोक्त
13. बी.एल.पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 130
14. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 249
15. दुर्गादास (सं.) – सरदार पटेल्स कॉरस्पोडेंस खण्ड –7 पृ. 396
16. बी.एल.पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 132
17. रिचार्ड सेशन – कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान पृ. 109
18. दाऊदयाल आचार्य– भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ. 415
19. दुर्गादास (सं.)– सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड– 7 पृ. 400–401
20. उपरोक्त पृ. 389–399
21. उपरोक्त पृ. 401–402
22. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 134
23. दुर्गादास (सं.)– सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड– 7 पृ. 395–396
24. उपरोक्त पृ. 396–97
25. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 250
26. उपरोक्त पृ. 251
27. उपरोक्त पृ. 250
28. सलेक्टिड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, खण्ड– 5 पृ. 297
29. रामप्रसाद व्यास– राजस्थान के लोक नायक जयनारायण व्यास पृ. 130

30. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 251
31. मेवाड़ प्रजामण्डल पत्रिका, 15 मार्च 1948
32. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 137
33. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 263
34. करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पावर पृ. 400
35. महाराजा मानसिंह द्वारा अपने पुत्र भवानी सिंह को लिखा पत्र– अभिलेखागार जयपुर।
36. गायत्री देवी– ए प्रिसेंज रिमेम्बर्स – द मेमोरीज ऑफ द महारानी ऑफ जयपुर।
37. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम
38. दुर्गादास (सं.)– सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड– 7 पृ. 428
39. उपरोक्त पृ. 428–430
40. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 251
41. दुर्गादास (सं.)– सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड– 7 पृ. 484
42. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 251
43. आर.एल.हाडा– व्यास स्मृति अंक पृ. 79
44. दुर्गादास (सं.) सरदार पटेल्स कॉरस्पोडेंस खण्ड–8 पृ. 504
45. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 252
46. करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पावर पृ. 422–423
47. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 252
48. आर.एल.हाडा – व्यास स्मृति अंक पृ. 79
49. दुर्गादास (सं.) सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड–7 पृ. 430, 435, 448
50. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 252
51. करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पावर पृ. 401
52. दाऊदयाल अचार्य– भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ.429
53. दुर्गादास (सं.) सरदार पटेल्स कॉरस्पोडेंस खण्ड–7 पृ. 408–411
54. दाऊदयाल अचार्य– भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ.429–30
55. करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पावर पृ. 414
56. फाइल सं. 412/1947 भाग–2 राजपूताना रियासतों का एकीकरण, बीकानेर महाराजा के निजी सचिव का कार्यालय लालगढ़ महल, बीकानेर।
57. उपरोक्त
58. करणीसिंह – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पावर पृ. 415

59. उपरोक्त पृ. 421
60. दाऊदयाल आचार्य के राजनैतिक संस्मरण का टेप, अभिलेखागार बीकानेर।
61. करणी सिंह– द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पावर पृ. 416
62. लक्ष्मण सिंह राठौड़ – महाराजा सादुलसिंह ऑफ बीकानेर पृ. 826
63. दाऊदयाल अचार्य– भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान पृ.429
64. लक्ष्मण सिंह राठौड़ – महाराजा सादुलसिंह ऑफ बीकानेर पृ. 844–845
65. फाइल सं. 412 वर्ष 1947, लालगढ़ पैलेस बीकानेर।
66. a –दुर्गादास (सं.)–सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड–8 पृ. 500–502
    b –29 मार्च 1949 को सादुलसिंह द्वारा पटेल को लिखा गया पत्र।
67. करणी सिंह– द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पावर पृ. 401
68. ओंकार सिंह– एक महाराजा की अर्न्तकथा पृ. 53
69. उपरोक्त पृ. 54
70. उपरोक्त पृ. 116
71. फाइल सं, सी–51 पार्ट –2 लैटर्स एड्रैस्ड टू हिज हाईनेस, बट ऑडर्ड टू बी फाइल्ड, – जोधपुर महाराजा के निजी सचिव की फाइल, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश– जोधुपर।
72. दी हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनांक 27 जनवरी 1949
73. दी जोधपुर राजपत्र, शनिवार, 9 अप्रैल 1949
74. राजप्रमुख द्वारा दिनांक 6 अपैल 1949 को राउ को भेजा गया तार, दी जोधपुर राजपत्र दिनांक 96.4.1949
75. a राउ द्वारा दिनांक 7.4.1949 को राजप्रमुख को भेजा गया तार,
    b दी जोधपुर राजपत्र शनिवार, दिनांक 9.4.1949
76. करणी सिंह–द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पावर पृ.401पाद टिप्ष्णी 2
77. माइनर वीनर– स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया पृ. 345
78. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान का इतिहास पृ. 137–138
79. रियासती मंत्रालय के उपसचिव का पत्र 2591–पी/49दिनांक 12 मार्च 1949, फाइल न0 82–पी/49 कैपीटल कमेटी ऑफ राजस्थान यूनियन, राजपूताना स्टेट एजेंसी, पॉलिटिकल ब्रांच पार्ट–1 वर्ष 1949, राष्ट्रीय अभिलेखगार।
80. उपरोक्त
81. फा.सं. 2–पी/49 कैपीटल कमेटी ऑफ राजस्थान यूनियन, राजपूताना स्टेट ऐजेंसी पोलिटिकल ब्रांच पार्ट–1, 1949
82. उपरोक्त
83. हीरालाल शास्त्री– प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ.78

84. प्रजा सेवक 25 फरवरी 1949
85. रियासती विभाग के उपसचिव सी.गणेशन का राजस्थान के मुख्य सचिव राधाकृष्णन को पत्र दिनांक 22 सितम्बर 1949 फाइल संख्या 82–पी/49 कैपीटल कमेटी, ऑफ राजस्थान यूनियन राजपूताना स्टेट एजेसी, पोलिटिकल, ब्रांच पार्ट–1 1949
86. उपरोक्त
87. उपरोक्त पत्रावली, राजस्थान जागीरदार सभा द्वारा पारित प्रस्ताव।
88. उपरोक्त
89. गायत्री देवी– ए प्रिंसेज रिमेम्बर्स– ए मेमोरीज ऑफ महारानी जयपुर पृ. 160
90. हीरालाल शास्त्री– प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ.76–77
91. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 138
92. सरदार पटेल के भाषण, सूचना मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 43
93. बी.एल.पानगड़िया– राजस्थान का इतिहास पृ. 138
94. गायत्री देवी– प्रिंसेज रिमेंबर्स – मैमोरीज़ ऑफ महारानी जयपुर पृ. 241
95. रामप्रसाद व्यास– राजस्थान के लोक नायक जयनारायण व्यास, पृ.393
96. दुर्गादास (सं.) –सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड–8 पृ. 503–505
97. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 305
98. डी.डी.गौड़– द कांस्टीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 212
99. उपरोक्त
100. फाइल सं. जी.ए. आई (33)/48–यूनाइटेड स्टेटस ऑफ मत्स्य, राष्ट्रीय अभिलेखागार
101. लैटर न0 डी/177/48 ऑफ 1.11.1948, टू इंटेलीजेंस ब्यूरों नई दिल्ली।
फाइल न0 जी.ए.आई (33)/48– यूनाइटेड स्टेटस ऑफ मत्स्य, राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली
102. फाइल न.सी.बी./बी.एन 5/37, किसान सभा से संबंधित पेपर राष्ट्रीय अभिलेखागार नईदिल्ली
103. फाइल न. 22/पीएल/48– अलवर राज्य, राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।
104. डी.डी.गौड़ – द कांस्टीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 216
105. उपरोक्त पृ. 214
106. फाइल न0 जीएआई/16/48 आर.एस.एस. अनलॉफुल ओर्गेनाइजेशन, राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली।
107. डी.डी.गौड़ – द कांस्टीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 213–14
108. फाइल न. 18/पीएल/48– अलवर राज्य, समाजवादी दल, राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली।
109. फाइल न. 22/पीएल/48– अलवर राज्य, कलेक्टर धौलपुर द्वारा 21.12.1948 को भेजी गयी रिपोर्ट, लैटर्स न0 8205 दिनांक 24.2.1948 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।

110. डी.डी.गौड़ – द कांस्टीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 216

111. उपरोक्त

112. उपरोक्त पृ. 216–17

113. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 305–306

114. उपरोक्त

115. उपरोक्त

116. डी.डी.गौड़ – द कांस्टीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेट्स पृ. 217–218

117. गोपनाथ शर्मा– राजस्थान का इतिहास पृ. 411–12

अध्याय : सप्तम

राजस्थान में प्रजातंत्र की स्थापना (1947–1952)

" दिखने में यह विरोधाभास सा लग सकता है लेकिन सत्य वास्तव में यही है कि क्या पुराने युग में और क्या वर्तमान जनतंत्र के युग में सत्ता और शक्ति का आधार जन–साधारण ही रहा है।"

–महाराजा हनुवंत सिंह

नवीन राजस्थान संघ का निर्माण जिन रियासतों के अस्तित्व की समाप्ति से हुआ था, उनके क्षेत्रफल, जनसंख्या, आर्थिक स्थिति, प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था, समाज एवं सस्कृति तथा बोली एवं भाषा में भारी अंतर था। यदि इन रियासतों में कोई समानता थी तो यही कि ये सभी रियासतें राजशाही व्यवस्था का प्रतीक थीं। और इनमें समस्त शक्तियां शासकों के हाथों में केन्द्रित थी। अतः स्वाभाविक ही था कि सदियों से चले आ रहे रियासती प्रशासनिक तंत्र के स्थान पर नव शासन इकाई के गठन तथा नवीन शासन व्यवस्था के उदय होने पर देशी रियासतों के तत्कालीन शासकों, जन–प्रतिनिधियों तथा जनमानस में व्यापक स्तर पर उद्वेलन, संघर्ष और टकराव होता। इसीलिए नव गठित राज्य में प्रजातंत्र की स्थापना व संचालन में प्रारंभिक स्तर पर कुछ समस्याएं महसूस की जा रही थीं।

नवीन राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना

एकीकरण की समस्त प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् राजपूताना की रियासतों के शासकों ने भारत सरकार के साथ हुए समझौते के अनुरूप अपना शासन त्याग दिया एवं नए चुनाव न होने तक प्रांत के प्रशासन पर भारत सरकार का नियंत्रण भी स्वीकार

कर लिया। जन नेता शुरू में इस व्यवस्था से सहमत नहीं हुए बाद में वे भी मान गए।[1]

1. राजप्रमुख एवं उपराजप्रमुख के पद का सृजन– भारत सरकार विशेषकर रियासती विभाग ने तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नवगठित प्रांत में सर्वोच्च पद के रूप में राजप्रमुख के पद का सृजन किया। 3 फरवरी 1949 को राजपूताना कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष गोकुल भाई भट्ट, राजस्थान संघ के प्रधानमंत्री माणिक्य लाल वर्मा, जयपुर रियासत के प्रधानमंत्री हीरालाल शास्त्री, जोधपुर के प्रधानमंत्री जयनारायण व्यास इत्यादि ने मिलकर दिल्ली में एक समझौता पत्र पर हस्ताक्षर करके महाराजा जयपुर को नवगठित संघ का राजप्रमुख स्वीकार कर लिया।[2] क्योंकि जयपुर महाराज ने इसी शर्त पर विलय स्वीकार किया था, कि उन्हें जीवन पर्यन्त राजप्रमुख बनाया जाए।[3] प्रदेश में राजशाही के अंतिम अवशेष के रूप में अब केवल राजप्रमुख का नव सृजित पद रह गया था। [4] यह पद भारतीय संघ के प्रान्तों के राज्यपाल (गवर्नर) के समकक्ष था। अतः जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह को जीवन पर्यन्त राजप्रमुख बनाया गया। उदयपुर के प्राचीन राजवंश की मान–मर्यादा को ध्यान में रखते हुए महाराणा भूपालसिंह को महाराज– प्रमुख का सम्मानीय पद दिया गया तथा कोटा महाराव भीम सिंह को उप–राजप्रमुख का पद प्रदान किया गया।[5] प्रारम्भ में राजस्थान संघ में सम्मिलित रियासतों के शासकों को राजप्रमुख एवं उप–राजप्रमुख चुनने के लिए एक–एक मत का अधिकार दिया गया। बाद में अनुभव किया गया कि राजस्थान संघ में प्रवेश करने वाली बड़ी रियासतों– जयपुर, जोधपुर एवं बीकानेर को कुछ अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। अतः राजाओं की परिषद के प्रत्येक सदस्य के पास उस राज्य की प्रति–लाख जनसंख्या के अनुसार मतदान का अधिकार दिया गया।[6]

परन्तु यह परिस्थिति जन्य व्यवस्था थी और 1956 में इसे समाप्त करके राज्यपाल का पद सृजित किया गया। इस प्रकार लोकतान्त्रिक राजस्थान के प्रथम राज्यपाल गुरमुख निहाल सिंह बने।

2. मंत्रिमण्डल का निर्माण– 14 फरवरी, 1949 को गोकुल भाई भट्ट और माणिक्य लाल वर्मा की सरदार पटेल के साथ एक मंत्रणा हुई जिसमें सरदार पटेल की सलाह पर हीरालाल शास्त्री का राजस्थान के मुख्यमंत्री पद के लिए नाम आगे बढ़ाने का निर्णय लिया गया।[7] पटेल के इस निर्णय पर सर्वत्र आश्चर्य व्यक्त किया गया क्योंकि ऐसी आशा थी कि नए प्रांत के प्रथम मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास होंगे।[8] व्यास उस समय राजपूताना के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे एवं उनके प्रति लोगों में आदर भाव था।[9] व्यास वर्षों तक अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के महासचिव रहे थे एवं वे प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के निकटतम सहयोगी माने जाते थे।[10]

हीरालाल शास्त्री को मुख्यमंत्री बनाये जाने के पीछे कुछ कारण थे क्योंकि सरदार पटेल के समक्ष समस्त राजस्थान के भविष्य का प्रश्न था वे इस नाजुक मोड़ पर आकर राजे–राजवाड़ों से कोई मतभेद नहीं चाहते थे। य़द्यपि व्यास ने राजाओं के विरूद्ध कड़ा संघर्ष किया था और स्वतन्त्रता के पश्चात् भी राजा–महाराजा जयनारायण व्यास की गतिविधियों से खुश नहीं थे।[11] जिस समय व्यास जोधपुर के प्रधानमंत्री थे व्यास का केन्द्र सरकार द्वारा भेजे गए अफसरों व सलाहकारों से मतभेद रहा इसलिए सरदार पटेल की जयनारायण व्यास के विषय में राय अच्छी नहीं थी।[12] घनश्याम दास बिड़ला से सरदार पटेल गहरे रूप से प्रभावित थे और घनश्याम दास बिड़ला तथा जयपुर के महाराजा मानसिंह हीरालाल शास्त्री को मुख्यमंत्री बनाना चाहते थे।[13]

राजपूताना कांग्रेस की 15 फरवरी, 1949 को दिल्ली में बैठक आयोजित की गई हीरालाल शास्त्री को सर्वसम्मति से पार्टी का नेता चुना गया।[14] माणिक्य लाल वर्मा ने उनके नाम का प्रस्ताव किया तथा जयनारायण व्यास ने उसका अनुमोदन किया।[15] इस प्रकार 30 मार्च, 1949 के दिन सरदार पटेल ने जब राजस्थान संघ का उद्घाटन किया। इसी दिन हीरालाल शास्त्री को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवायी गयी। [16] 4 अप्रैल को नयी सरकार ने अपना कार्यभार ग्रहण किया।[17] 7 अप्रैल, 1949 को शास्त्री मंत्रिमण्डल को शपथ दिलवायी गयी। इनमें सिद्धराज ढड्ढा (जयपुर) प्रेमनारायण माथुर, भूरेलाल बया (उदयपुर), रघुवरदयाल गोयल (बीकानेर) सम्मिलित थे।[18] बाद में मई, 1949 में नरसिंह कच्छवाहा और रावराजा हणूतसिंह (जोधपुर) और वेदपाल त्यागी (कोटा) को भी मंत्रिमण्डल में सम्मिलित किया गया। मत्स्य संघ के राजस्थान में

विलीन हो जाने पर शोभाराम (अलवर) को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार शास्त्री मंत्रीमण्डल में कुल 9 मंत्री [19] सम्मिलित किये गये।[20]

नव–गठित प्रांत और उसकी सरकार के सामने तीन प्रमुख उद्देश्य थे– प्रथम, राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को रियासती दौर से निकाल कर भारत संघ के दूसरे प्रांतों के समकक्ष लाना, द्वितीय प्रांत के विशाल भौगोलिक क्षेत्र में कानून व व्यवस्था स्थापित करना और सम्पूर्ण राज्य में खाद्यान्नों की अबाध आपूर्ति सुनिश्चित करना।[21]

वास्तव में प्रजातंत्र केवल सैद्धांतिक रूप से संवैधानिक अधिकार प्रदान कर देना नहीं है अपितु प्रदत्त अधिकारों की व्यावहारिक रूप में प्राप्ति सुनिश्चित् करना भी है। लोकतान्त्रिक आधार पर गठित राजस्थान में सदियों से समान्तशाही का बोझ ढो रही जनता को राहत प्रदान करने का कार्य शनैः शनैः ही सही लेकिन प्रारम्भ हो चुका था।

3. राजधानी का प्रश्न– प्रथम राजस्थान संघ की राजधानी कोटा में रखी गयी। इसके बाद जब द्वितीय राजस्थान अर्थात संयुक्त राजस्थान बना तो उसकी राजधानी उदयपुर में रखी गयी। तृतीय राजस्थान अर्थात वृहत राजस्थान की राजधानी जयपुर में रखी गयी। अब जबकि सम्पूर्ण राजपूताना एकीकृत हो चुका था ऐसे में नव गठित राज्य की राजधानी का प्रश्न सामने आया। राजधानी के विषय में सभी नेताओं के परस्पर भिन्न मत थे।

जयपुर के महाराजा मानसिंह ने जयपुर रियासत के राजस्थान संघ में विलय के लिए दो शर्तें रखी थीं। उसमे दूसरी शर्त यह थी कि **''जयपुर को राजस्थान की राजधानी बनाया जाए।''**[22] जोधपुर और बीकानेर के शासक इसके विरुद्ध थे।[23] साथ ही जयनारायण व्यास तथा रामनारायण चौधरी जैसे नेता अजमेर को राजधानी बनाने के पक्ष में थे। अतः 3 फरवरी, 1949 को वी.पी. मेनन द्वारा दिल्ली में बुलाई गयी प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक में राजधानी के प्रश्न को सरदार पटेल पर छोड़ दिया गया।[24] सरदार पटेल ने राजधानी चयन के लिये विशेषज्ञों की समिति नियुक्त की। इस सम्बन्ध में अखबारों में भी चर्चा का दौर शुरू हो गया। जयपुर को कुछ लोगों द्वारा वृहद राजस्थान की राजधानी तो माना जा रहा था, लेकिन उनका मानना था की यह व्यवस्था अस्थायी है।[25]

राजस्थान राज्य की राजनीति में तब उग्र ज्वार का आगमन हुआ जब 19 फरवरी, 1949 को गवर्नर जनरल भारत सरकार सी. राजगोपालाचारी ने घोषणा की कि ''जयपुर राजस्थान की राजधानी होगी।''[26] तब दूसरी रियासतों ने सोचा की जयपुर ने सब कुछ हस्तगत कर लिया है।[27] 22 फरवरी, 1949 को जयनारायण व्यास ने इस सम्बन्ध में कहा कि ''राजधानी का प्रश्न अभी विचाराधीन है अंतिम रूप से यह तभी हल होगा जब अजमेर का राजस्थान में विलय होगा।''[28] 28 और 29 मार्च को राजस्थान कांग्रेस कमेटी की किशनगढ़ में हुई बैठक में राजधानी के प्रश्न पर भारी बहस व हंगामा हुआ।[29]

कुछ लोगों का मानना था कि ''इतिहास, भूगोल, शिक्षा एवं संस्कृति और लोकतंत्र के आधार पर राजस्थान की राजधानी अजमेर को ही बनाया जाना चाहिये। परन्तु अजमेर प्रदेश कांग्रेस के अयोग्य नेतृत्व और कांग्रेसी सरकार के नेताओं की सत्ता लिप्सा तथा फूट के कारण अजमेर शहर अपने स्वाभाविक अधिकार से वंचित रह गया।[30] अन्त में राजधानी चयन के लिए विशेषज्ञों की समिति ने इतिहास, भूगोल, शिक्षा, भाषा एवं संस्कृति की दृष्टि से जयपुर को राजस्थान की राजधानी के लिए उपयुक्त पाया। इसी आधार पर जयपुर को 31 सितम्बर, 1949 को राजस्थान की राजधानी घोषित किया गया।[31] तथा जोधपुर में उच्च न्यायालय, बीकानेर में शिक्षा विभाग, उदयपुर में खनिज विभाग तथा भरतपुर में कृषि विभाग रखने का निर्णय किया गया।[32]

यद्यपि जयपुर को राजधानी बनाए जाने पर काफी विवाद हुआ। इस सम्बन्ध में हीरालाल शास्त्री ने कहा भी था कि ''जयपुर का महाराजा, राजप्रमुख, जयपुर का ही मुख्यमंत्री और जयपुर ही राजधानी यह सब कुछ कई लोगों को हजम होने वाला नहीं था।''[33] तथापि इस समस्या को धैर्य पूर्वक सुलझा लिया गया तथा जयपुर के राजधानी बनने के बाद यह समस्या स्वतः समाप्त हो गयी।[34]

4. राजाओं और जागीरदारों के विशेषाधिकारों की समाप्ति– रियासतों के राजस्थान में विलय के पश्चात् ही राजाओं के शासनाधिकार समाप्त हो गये थे। किन्तु उनके कुछ विशेषाधिकार और प्रिवीपर्स बने रहने दिये गये। बहुत से लोगों का मानना था कि अब

राजाओं के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये जाने चाहिये। जयपुर रियासत के सीकर, खेतड़ी व उणियारा ठिकानों के ठिकानेदारों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् उन्हें वापस लेने की बात उठी। मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री ने तीनों ठिकानेदारों को बुलाकर कहा कि आपके ये विशेषाधिकार वापस लिये जा रहे हैं। इनमें से एक ठिकानेदार बहुत राजी से, दूसरा तटस्थ भाव से और तीसरा कुछ हुज्जत के बाद अपने विशेषाधिकार छोड़ने के लिये मान गया।[35] जोधपुर के महाराजा हनुवंतसिंह का मानना था कि ''नरेशों को उन्हें दिये गये विशेषाधिकारों की रक्षा के लिए हाय–तौबा करने की क्या आवश्यकता है? जब रियासतें ही भारत के मानचित्र से मिटा दी गयीं तो खोखले विशेषाधिकार केवल बच्चों के खिलौनों का सा दिखावा है। सामंती शासन का युग समाप्त हो जाने के बाद भूतपूर्व नरेशों के सामने एक ही रास्ता है कि वे जनसाधारण की कोटि तक उठने कि कोशिश करें।[36] एक निरर्थक आभूषण के रूप में जीवन बिताने की अपेक्षा कहीं ज्यादा अच्छा होगा कि वे राष्ट्र की जीवनधारा के साथ चलते हुए सच्चे अर्थ में जन सेवक बनें और उसी आधार पर अपने बल की नींव डालें। दिखने में यह विरोधाभास सा लग सकता है। लेकिन सत्य वास्तव में यही है कि क्या पुराने युग में और क्या वर्तमान जनतंत्र के युग में सत्ता और शक्ति का आधार जन साधारण ही रहा है।''[37]

नए जनपद एवं नवीन विधान

हीरालाल शास्त्री मंत्रिमण्डल के कार्यकाल में मार्च, 1950 में बूँदी को पृथक जिला बनाया गया, 1 जुलाई को राजस्थान आबकारी कानून लागू हुआ, उसी दिन राजस्थान अफीम एवं धुम्रपान निषेध अधिनियम लागू हुआ। जबकि इससे पूर्व 1 जून को बाल धूम्रपान निषेध अधिनियम प्रभावी हुआ। [38]जयनारायण व्यास मंत्रिमण्डल के कार्यकाल में राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, केन्द्रीय बाल विवाह निषेध अधिनियम एवं राजस्थान भूमि सुधार तथा जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम लागू हुआ।[39]

प्रशासनिक एकीकरण

राजनीतिक एकीकरण के पश्चात सरकार के समक्ष पहला कार्य विलीन रियासतों की शासन व्यवस्था का एकीकरण कर राज्य में सुव्यवस्थित सुदृढ़ शासन

व्यवस्था स्थापित करना एवं घाटे के बजट को पूरा करना था। एकीकरण से पूर्व कुछ रियासतों में पड़ौसी अंग्रेजी प्रान्तों के आधार पर आधुनिक सरकारों की स्थापना हो चुकी थी। कुछ रियासती क्षेत्रों में मंत्री परिषद कार्यरत थी। जिनमे लोकप्रिय मंत्री कार्य कर रहे थे।[40] कुछ रियासतों में लोक सेवा आयोग के माध्यम से नियुक्तियां होती थी तथा सुस्पष्ट नियमों एवं योग्यता के आधार पर पदोन्नतियाँ दी जाती थी। कुछ रियासतों में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग किया जा चुका थां। कुछ रियासतों में भ्रष्टाचार से निबटने के लिये भ्रष्टाचार निरोधक विभाग बन चुके थे। राजकीय खातों से अंकेक्षण की भी व्यवस्था थी।[41] तथापि अधिकांश रियासतों में शासन का रूढ़िवादी रूप जारी था सत्ता केन्द्रित थी एवं कई रियासतों में लम्बे चौड़े भू–भाग जागीर के अन्तर्गत थे।[42] प्रशासकीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये पांच संभाग– जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, एवं कोटा बनाए गए तथा जिले, उप जिले एवं तहसीलें गठित की गई। [43] 29 अगस्त, 1949 को राजप्रमुख ने जोधपुर में उच्च्व न्यायालय का उद्घाटन किया[44] जबकि भारत सरकार की विशेषज्ञ समिति की सिफारिश पर 7 सितम्बर, 1949 को जयपुर को राजधानी बनाया गया।[45] न्यायाधीश के रूप में अमरसिंह कँवरपाल बाफना, त्रिलोचन दत्त, दुर्गाशंकर दवे, खेमचन्द गुप्ता, राणावत एवं कुमार कृष्ण की नियुक्ति की गई। [46]

30 अप्रैल, 1949 को राजस्थान लोक सेवा आयोग का गठन किया गया। जिसका अध्यक्ष शरत कुमार घोष को बनाया गया।[47] चुनाव विभाग नवम्बर 1949 में तथा शिक्षा विभाग फरवरी, 1950 में गठित किया गया।[48] राज्य सरकार ने जून, 1949 में प्रांत के लिये सिंचाई योजना, पंच वर्षीय सड़क योजना तथा खाद्य योजना स्वीकार करते हुए इस बारे में समिति गठित की जबकि 1 अगस्त, 1949 ई. से राजस्थान कि लिए हवाई सेवा शुरू करना तय हुआ। यह सेवा दिल्ली से बीकानेर, जोधपुर, अजमेर एवं उदयपुर तक शुरू किया जाना प्रस्तावित हुआ।[49] राज्य सरकार ने 18 दिसम्बर, 1949 को पांच सूत्री कार्यक्रम स्वीकारा – (1) प्रांत में शांति एवं व्यवस्था बनाना (2) अन्न तथा दूसरी आवश्यक वस्तुओं को बढ़ाना (3) जागीरी क्षेत्रों में समान भूमि व्यवस्था का आयोजन करना (4) प्रांत के अगले वर्ष की आर्थिक स्थिति को मजबूत करना एवं

(5) बड़ी योजनाओं के क्रियान्वित होने का इंतजार न करके जनहित के लिये एक तत्कालिक कार्यक्रम को अमल में लाना।[50]

राजस्थान सरकार ने अपने गठन के बाद 76 केन्द्रीय कानूनों को स्वीकार किया वहीं 66 अध्यादेश जारी किए जबकि प्रांत में प्रेस पर बेहतर नियंत्रण के लिये द राजस्थान प्रेस कंट्रोल आर्डिनेंस 1949 प्रसारित किया।[51]

1. रियासती कस्टम सीमाओं की समाप्ति– मंत्रिमण्डल का विस्तार होने के दिन अर्थात 7 अप्रैल, 1949 को राज्य सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर अंतर रियासती कस्टम सीमाओं को समाप्त किया।[52] इस प्रकार अब तक चली आ रही रियासत कालीन व्यवस्थाएं 7 अप्रैल, 1949 से पूर्णतः समाप्त हो गयी।

2. पाकिस्तान से लगी सीमा की सुरक्षा – वृहत् राजस्थान में सम्मिलित बीकानेर, जैसलमेर तथा जोधपुर रियासतों की सीमाएं पाकिस्तान से लगती थी। राजस्थान बनने से पूर्व सीमा की रक्षा का कार्य भारतीय सेना तथा केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के द्वारा किया जाता था। राजस्थान बनने के बाद इस सीमा की सुरक्षा के लिये राजस्थान सरकार पर जिम्मेदारी आ गयी कि वह इस कार्य के लिये पुलिस बल की भर्ती एवं प्रशिक्षण का प्रबंध करे तथा उसे सुसज्जित करे । यह कार्य अत्यंत शीघ्रता के साथ किया जाना था। ताकि इसे नये संविधान से पूर्व ही पूर्ण कर लिया जाये।[53]

3. संघीय इकाई का प्रशासन केन्द्र के हाथों में – देश के रियासती विभाग का ध्यान इस ओर गया कि देश के भीतर बनने वाले संघों की सरकारों पर भारत सरकार का नियंत्रण किस प्रकार रहे। ये संघ भारत सरकार की पहल पर बन रहे थे और इनमें अच्छी सरकार प्रदान करने की जिम्मेदारी भारत सरकार पर आ पड़ी थी। भारत सरकार का इन संघों पर कोई संवैधानिक नियंत्रण नहीं था। अप्रिय घटना होने पर भारत सरकार कानूनी रूप से कुछ नहीं कर सकती थी। अब तक जो नियंत्रण बनाया गया था। वह कांग्रेस पार्टी के तंत्र तथा सरदार पटेल के व्यक्तित्व के द्वारा बनाया गया था किन्तु कोई संतोषजनक व्यवस्था नहीं थी। इन संघों में मिलने वाले अधिकतर राज्यों में राज्य प्रशासन राजा के व्यक्तिगत एवं वंशानुगत तरीकों से चल रहा था। राजाओं को उस प्रकार की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता था जिस प्रकार

की कठिनाईयां संघीय सरकारों के सामने आ रही थी अथवा आने की संभावना थी। इन कठिनाइयों से निबटने के लिये संघीय सरकारों के पास किसी तरह के उपकरण नहीं थे। राजनैतिक संगठनों के पास भी प्रशासन चलाने के लिये अनुभवी एवं योग्य नेता नहीं थे।[54]

राजपूत राजाओं के राज्य संघ में मिल तो गये थे किन्तु इन राज्यों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की निष्ठायें रातों–रात नहीं बदली जा सकती थी। अनुभवहीन नेताओं तथा राजनैतिक अधिकारों से अनभिज्ञ जनता के भरोसे प्रशासन नहीं छोड़ा जा सकता था। विशिष्ट मार्गदर्शन दिया जाना आवश्यक था। ऐसे में बी. एन.झा. वरिष्ठ आई.सी.एस अधिकारी को सरकार का वरिष्ठ सलाहकार एकीकरण विभाग, कानून और व्यवस्था में डी.आर. प्रधान. आई.सी.एस अधिकारी को सलाहकार नियुक्त किया गया। सी.एस. वेंकटाचार आई.सी एस. अधिकारी को राजप्रमुख का सलाहकार व क्षेत्रीय आयुक्त नियुक्त किया गया।[55] यह भी देखना था कि राज्यों के एकीकरण एवं उनके प्रजातांत्रीकरण की प्रक्रिया पूर्ण गति एवं दक्षता से पूरी हो। मेनन ने सुझाव दिया कि जब तक राजस्थान की स्थानीय विधान सभा अपने लिये संविधान का निर्माण नहीं कर लेती तब तक राजप्रमुख तथा मंत्रिमण्डल भारत सरकार द्वारा समय–समय पर दिये जाने वाले निर्देशों की पालना करें।[56]

4. सरकार पर आई.सी.एस. अधिकारियों का नियंत्रण– भारत सरकार द्वारा राजस्थान सरकार के सलाहकार के रूप में नियुक्त आई.सी.एस. अधिकारियों को अधिकार दिया गया कि वे मंत्रिमण्डल, मुख्यमंत्री एंव मंत्री के किसी भी निर्णय पर वीटो कर सकते हैं।[57] इन अधिकारियों की सहमति के बिना मुख्यमंत्री अथवा मंत्री एक चपरासी तक की भी नियुक्ति अथवा स्थानान्तरण नहीं कर सकते थे। अतः ये सलाहकार ही राज्य के सर्वेसर्वा बन गये। [58] हीरालाल शास्त्री के अनुसार राजस्थान के एकीकरण की जिम्मेदारी निभाने के लिये तीन अनुभवी आई.सी.एस. अफसर केन्द्र से दिये गये थे। शास्त्री का उनसे कभी झगड़ा नहीं हुआ। शास्त्री ने आग्रह किया कि वित्त सचिव बाहर से नहीं आयेगा, अमुक स्थानीय व्यक्ति को वित्त सचिव बनाया जायेगा। झगड़ा दिल्ली तक पहुंचा अंत में पटेल ने मेनन की बात न मानकर शास्त्री की बात मानी। शास्त्री ने

इन सलाहकारों तथा मेनन की राय के विरूद्ध एक कांग्रेसी कार्यकरर्ता को लोक सेवा आयोग का सदस्य बनाया।[59]

5. रियासती सेनाओं का राष्ट्रीयकरण – 1939 ई. में इण्डियन स्टेट्स फोर्सेज स्कीम के तहत रियासती सेनाओं में तीन प्रकार की इकाइयाँ रखी गयी थी। फील्ड सर्विस यूनिट्स, जनरल सर्विस यूनिट्स तथा स्टेट सर्विस यूनिटस। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश के 44 राज्यों की सेनाएं स्टेटस फोर्सेज स्कीम के तहत थी जिनमें 75, 311 अधिकारी थे। शेष राज्यों में इस योजना से बाहर की सेनाएं थी। जिनमें अधिकतर पुलिस तथा अंलकरण इकाइयां थी। स्वतन्त्रता के बाद कश्मीर अभियान तथा अन्य कठिन परिस्थितियों में भारत सरकार को जब सेनाओं की आवश्यकता हुई तो भारतीय सेनाओं की कई टुकड़ियाँ नियत स्थानों पर नहीं पहुची। इस पर भारत सरकार ने राज्यों से अनुरोध किया कि वे अपनी सेनाएँ भेजें।[60]

अगस्त 1947 के प्रविष्ठ संलेख में राज्य की सुरक्षा का विषय केन्द्र सरकार को दिया गया था। इसलिये राज्यों की सेनाओं को भारत सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया। जो सेना जहाँ नियत थी उसे वहीं रखा गया, उनके कार्य की शर्तों तथा परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं किया गया। इसके बाद योग्य सैनिकों को सेना में ग्रहण करने का कार्य शनैःशनैः किया गया। जो सैनिक भारतीय सेना के मानको के अनुरूप नहीं पाये गये, उन्हें समुचित रियायत देकर सेना से मुक्त कर दिया गया। [61]

राजस्थान के राजप्रमुख को रियासती सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति बनाया गया। बाद में 1 अप्रैल, 1951 को ये सेनाएं पूरी तरह भारतीय सेना का हिस्सा बन गयी।[62]

6 राज्य अधिकारियों का एकीकरण– विभिन्न राज्यों के अधिकारियों के पदनाम तथा उनके वेतनमान के अंतर के कारण भारी विसंगतियां उत्पन्न हो गयी। कुछ बड़े राज्यों में राजस्थान बनने से पहले कर्मचारियों एवं अफसरों के वेतन मनचाही रीति से बढ़ा दिये गये। हीरालाल शास्त्री ने ऐसा नहीं किया जिससे जयपुर के अफसर घाटे में रह गये।[63] जोधपुर राज्य के क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी गणेशदत्त छंगाणी, जो उन दिनों राज्य के पैट्रोल राशनिंग ऑथ्योरिटी तथा राज्य के लोक सेवा आयोग के सचिव भी थे, ने अन्य राज्यों द्वारा कर्मचारियों के वेतनमानों में की गई वृद्धि का तुलनात्मक चार्ट

बनाकर जोधपुर राज्य के मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास के सम्मुख प्रस्तुत किया किन्तु व्यास ऐसा नहीं कर सके, जिससे जोधपुर राज्य के कर्मचारी अन्य राज्यों की तुलना में पिछड़ गये। यद्यपि विभिन्न रियासतों से आये हुए अधिकारियों एवं कर्मचारियों में भयंकर असंतोष फैल गया तथा सभी स्तरों पर राज्यकार्य ठप्पसा हो गया।[64] तथापि धीर–धीरे ये विसंगतियां दूर कर दी गयी।

7. वित्तीय एकीकरण– संविधान सभा द्वारा राज्यों के वित्तीय एकीकरण के उपाय सुझाने के लिये नलिनी रंजन सरकार की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने दिसम्बर, 1947 में अपनी रिपोर्ट दी। समिति द्वारा अनुभव किया गया कि राज्यों के वित्तीय एकीकरण की सबसे बड़ी बाधा वित्तीय आंकड़ों की अनुपलब्धता है। इस समिति ने सुझाव दिया कि समस्त राज्यों में संपूर्ण देश के समान कर व्यवस्था लागू होनी चाहिये। यह व्यवस्था 15 वर्ष के लिये लागू की जानी चाहिए। सभी राज्यों को निर्देशित किया जाना चाहिये कि वे राज्य के बजट का निर्माण आवश्यक रूप से कर लें तथा खातों व लेखों की अंकेक्षण व्यवस्था करें।[65] 22 अक्टूबर, 1948 को वी.टी. कृष्णामाचारी की अध्यक्षता में ''इण्डियन स्टेट्स फाइनेंसेज इंक्वायरी कमेटी का गठन किया गया। विभिन्न राज्यों तथा संघ राज्यों ने इस समिति का विरोध किया क्योंकि राज्य तथा राज्य संघ वित्तीय मामलों में केन्द्र का हस्तक्षेप नहीं चाहते थे।[66] 1 अप्रैल, 1950 ई. को राज्य का वित्तीय एकीकरण हुआ। इसके अनुसार राज्य सरकार द्वारा रेल्वे, सेना और ऑडिट विभाग तथा उससे सम्बंधित स्थावर और जंगम् संपत्ति भारत सरकार को बिना किसी मुआवजे के सौंप दी गयी। राज्य पर बाहरी आक्रमणों से निबटने का उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार पर चला गया।[67]

8. कानून व व्यवस्था का निर्माण – राजस्थान के अस्तित्व में आने के समय अधिकांश राज्यों में कानून व्यवस्था की स्थिति बिगड़ी हुई थी तथा प्रशासन अत्यंत बदत्तर अवस्था में था। कानून सतही तथा अपर्याप्त थे। प्रशसनिक प्रक्रियाएं सुस्पष्ट नहीं थी। बड़ी सीमा तक प्रशासन व्यक्तिगत प्रकृति का था तथा राज्य और उसके सलाहकारों की मर्जी से चलता था। नवनिर्मित राजस्थान में इन राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था को एक स्तर पर लाना सबसे बड़ी चुनौती थी। सबसे पहला कार्य डकैतों और लुटेरों पर

काबू पाकर कानून की पुनर्स्थापना का था जो कि गाँवों और दूर दराज के क्षेत्रों में आतंक मचाये हुए थे। यह कार्य बहुत शीघ्रता और अत्यंत दक्षता से किया गया।[68]

9. जागीरदारी व्यवस्था की समाप्ति– राजस्थान की रियासतों में राजस्व संग्रहण की दृष्टि से दो प्रकार की भूमि थी, खालसा भूमि तथा जागीरी भूमि।[69] खालसा भूमि के अन्तर्गत 50,126 तथा जागीरी भूमि के अंतर्गत 77,110 वर्गमील क्षेत्रफल था। राजस्थान के 16,638 गाँव खालसा तथा 16,780 जागीरों के अंतर्गत आते थे। राजस्थान संघ के बनने से चूंकि रियासतें ही नहीं रह गयी थी। इसलिये जागीरी प्रथा नितांत अप्रासंगिक हो गयी थी। विभिन्न राज्यों के प्रजामण्डलों एवं प्रजा परिषदों जैसी लोकप्रिय संस्थाओं ने जागीरों को समाप्त करने की मांग की।[70] समूचे राजस्थान का लगभग 59 प्रतिशत हिस्सा जागीरदारों के अधिकार में होने से किसानों के हितों की रक्षा करना नई सरकार के लिए बहुत जरूरी था।[71] 25 जनवरी, 1949 को सरदार पटेल ने जोधपुर में आयोजित सभा में कहा कि ''जागीरदार बदले हुए समय को पहचानें। आज के युग में बड़े और छोटे का अंतर तथा स्वामी और आम जनता का भेद समाप्त हो गया है।[72] नई सरकार ने 29 अप्रैल, 1949 ई. को पूर्व राजपूताना की विभिन्न रियासतों में प्रचलित भूमि भोगावधि, लगान और उनसे संबंधित विषयों की जांच के लिए एक समिति का गठन किया।[73] 21 जून, 1949 ई. को जागीरदारों द्वारा काश्त से बेदरवल करने की प्रवृति पर रोक के लिए ''द राजस्थान प्रोटेक्शन ऑफ टेनेन्ट आर्डिनेंस 1949 जारी किया गया।[74]

8 मई, 1949 को राजस्थान क्षत्रिय महासभा का जयपुर में अधिवेशन हुआ। जागीरदारों में अपने अधिकारों को लेकर बेचैनी उत्पन्न हो रही थी। इस अधिवेशन में कई प्रस्ताव पास किए गए। सभापति ठाकुर माधोसिंह संखवास ने कहा कि ''राजस्थान संघ के निर्माण के समय जब क्षत्रिय महासभा के पदाधिकारी रियासती विभाग के अधिकारियों से मिले थे तब हमें आश्वासन दिया गया था कि हमारी मांगों को स्वीकार किया जायेगा। कांग्रेस जागीरदारी प्रथा का नाश चाहती है किन्तु मैं इस अन्याय पूर्ण सिद्धांत के विरूद्ध हूँ......... आज हमारे सामने जीवन मरण का प्रश्न है।[75]

15 नवम्बर, 1951 ई. को ''राजस्थान भूमि सुधार और जागीरों का पुनर्ग्रहण अधिनियम राजस्थान सरकार ने गज़ट में प्रकाशित कर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया। 18 फरवरी, 1952 ई. को यह अधिनियम राजस्थान में लागू हो गया।[76] इसी बीच जागीरदारों ने इसकी वैधता को चुनौती दी परिणामस्वरूप जागीरी अधिग्रहण का कार्य रूक गया।[77]

अंत में जून 1954 ई. में विधान सभा में ''राजस्थान भूमि सुधार एवं जागीर पुनर्ग्रहण विधेयक 1954'' पेश किया गया, जिसे 15 जून, 1954 ई. को विधान सभा ने पास कर दिया। इसके अन्तर्गत जागीरदारों को मुआवजा देकर जागीर पुनर्ग्रहण का कार्य तत्काल शुरू कर दिया गया। 1 जनवरी, 1955 ई. तक 1000/— रूपये तक की आय वाली सभी जागीरों का अधिग्रहण कर लिया।[78]

राजस्थान की विषम एवं विकट परिस्थितियों को देखते हुए सचमुच में यह एक ''शांतिमय अहिंसक क्रांति'' थी। जिसमें भूमि के स्वामित्व का सत्ता परिर्वतन हुआ था।[79]

नवीन वित्तीय व्यवस्था

1. शासकों की निजी सम्पत्तियों का निर्धारण — 3 जून, 1948 ई. को महाराजप्रमुख महाराणा भूपालसिंह, मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री व उप मुख्यमंत्री के बीच राजाओं की निजी संपत्तियों के निर्धारण के लिये वार्ता हुई। मुख्यमंत्री ने सुझाव दिया कि सम्बन्धित राज्य के भीतर मूलतः शासकों तथा शासकों के परिवारों के लिये निर्मित भवन, जो उनके द्वारा प्रयुक्त हैं, शासकों की निजी सम्पत्ति माने जाने चाहिये। जो भवन एक पर्याप्त अवधि में उनके द्वारा प्रयुक्त किये गये हैं वे भी शासकों की निजी सम्पत्ति माने जाने चाहिये उक्त सिद्धांत के अनुसार शासक की निजी सम्पत्ति, राज्य के स्त्रोतों के अनुपात में होनी चाहिये। शासकों के अधिकार में आयी हुई भूमि का आकलन किया जाना चाहिये। शासकों से अनुरोध किया जाना चाहिये कि वे भू—राजस्व का भुगतान करें। शासकों को उतनी ही भूमि रखनी चाहिये जितना कि उनका स्तर है, तथा जितनी उनकी निजी आवश्यकताएं हैं। कृषि भूमि के संबंध में मंत्रिपरिषद ने सलाह दी कि यह राजाओं की गरिमा के अनुकूल नहीं होगा कि वे काश्तकार बने। शासकों को सहमति के आधार पर समुचित मूल्य चुकाकर उन आवासीय संपत्तियों को खरीदने का

अधिकार होगा जिन्हें राज्य संपत्ति घोषित किया गया है। इन सिद्धांतों के अनुसरण में सरकार प्रत्येक सम्पत्ति के निरीक्षण के लिये एक अधिकारी नियुक्त करेगी इस अधिकारी के साथ राजप्रमुख का प्रतिनिधि भी रहेगा।[80] शासकों द्वारा राजप्रमुख को निजी सम्पत्ति की सूचियाँ उपलब्ध करवायी गयी किन्तु उन पर शीघ्र निर्णय नहीं किया जा सका।

2. शासकों द्वारा की गयी वित्तीय अनियमितता – कुछ शासकों द्वारा अपनी रियासतों के राज्य इकाइयों में विलय से पूर्व कुछ वित्तीय अनियमिततायें की गयी। प्रसंविदा समझौते की शर्तों के अनुसार शासकों द्वारा अपनी रियासतों के प्रशासन के हस्तांतरण से पूर्व अपने विवेकाधिकार के तहत किये गये कार्यों के लिये उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो सकती थी। जब कुछ शासकों द्वारा जानबूझ कर की गयी वित्तीय अनियमितताएं सामने आयीं तो रियासती विभाग ने स्पष्टीकरण दिया कि यह प्रावधान शासकों द्वारा निष्ठापूर्वक की गयी कार्यवाही के सम्बन्ध में था न कि जानबूझ कर की गयी अनियमितता के कारण की गयी कार्यवाही के सम्बन्ध में। ऐसे प्रकरणों की जांच की जाये तथा उनके निष्कर्षों से रियासती विभाग को सूचित किया जाये।[81]

3 राजाओं द्वारा जारी वित्तीय आदेश – रियासती विभाग ने 11 फरवरी, 1949 ई. को जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, तथा जैसलमेर के प्रधानमंत्रियों तथा राजस्थान के मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि चूँकि वृहद राजस्थान के निर्माण का कार्य चल रहा है जो कि अत्यंत शीघ्र ही अस्तित्व में आ जायेगा इसलिये इसमें सम्मिलित होने वाली किसी भी इकाई द्वारा न तो नीति निर्धारण के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण निर्णय लिये जायें और न ही कोई नवीन संविधान लागू किये जायें। इन इकाइयों को कोई भी नवीन वित्तीय प्रतिबद्धता व्यक्त नहीं करनी चाहिये। विविध विषयों पर नयी सरकार द्वारा ही नीति सम्बन्धी निर्णय लिये जायेंगे। इस आदेश की अवहेलना करके कुछ शासकों द्वारा प्रशासनिक आदेश जारी किये गये किन्तु राजस्थान सरकार ने उन आदेशों को मान्यता प्रदान करने से मना कर दिया।[82] इस संबन्ध में रियासती मंत्रालय ने यह निर्णय लिया कि केवल वही आदेश मान्य होंगे जो कि महाराज द्वारा अपने प्रधानमंत्री की सहमति से जारी किये गये होंगे।[83]

4. जयपुर महाराजा का स्वर्ण विवाद – जयपुर महाराजा ने राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् कुछ स्वर्ण पर अपना दावा किया जिसका मूल्य एक करोड़ रूपये था। मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री ने उसे राज्य का बताते हुए देने से मना कर दिया। बात सरदार पटेल तक गयी। सरदार पटेल ने मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री से पूँछा कि सोना किसका है? इस पर शास्त्री ने जवाब दिया कि सोना पहले तो राजा का ही रहा होगा, पर बाद में राज्य के बजट में दर्ज हो गया। अतः अब राज्य का मानना पड़ेगा। सरदार ने पूँछा कि आपकी राय क्या है? शास्त्री ने कहा कि मेरी राय में सोना महाराजा को दे देना चाहिये। सरदार बोले क्यो? शास्त्री ने कहा इतना बड़ा राज्य किसी का आपने ले लिया है तब इतना सा सोना उसे दे देने में क्या संकोच करना चाहिये। सरदार ने सोना महाराजा को देने की अनुमति दे दी।[84]

5. राजाओं के प्रिवीपर्स से संबन्धित मुद्दों का निर्णय– एकीकरण के समझौते में यह कहा गया था कि राजा लोग अपनी निजी सम्पत्ति रख सकेंगे, उनकी गद्दी का उत्तराधिकार बना रहेगा, उनके अधिकार और विशेषाधिकार बने रहेंगे तथा उन्हें व उनके उत्तराधिकारियों को एक निश्चित प्रिवीपर्स मिलती रहेगी। राजाओं के प्रिवीपर्स निश्चित करने और उनकी निजी सम्पत्ति को रियासत से स्पष्टतः अलग करने के लिये आवश्यक कदम उठाये गये। निजी सम्पत्ति का निपटारा करते समय यह सिद्धांत अपनाया गया कि राजा द्वारा तैयार की गयी निजी सम्पत्ति की सूची पर वह राजप्रमुख (संघ में मिलने वाली रियासतों के लिये) अथवा प्रान्तीय सरकार का एक प्रतिनिधि (प्रांतो में मिलने वाली रियासतों के लिये) और रियासती मंत्रालय का एक प्रतिनिधि मिलकर विचार करें। सार्वजनिक हितों का पूर्ण ध्यान रखते हए मेल की भावना से समझौता किया जाये।[85]

शासनाधिकार छोड़ने के एवज में राजाओं को राज्य की औसत वार्षिक आय के प्रथम एक लाख का पंद्रह प्रतिशत, बाद के चार लाख का दस प्रतिशत और पाँच लाख से उपर साढ़े सात प्रतिशत प्रिवीपर्स निश्चित किया गया। किन्तु यह राशि दस लाख रूपये वार्षिक से अधिक नहीं हो सकती थी। कुछ बड़ी और अलग रहने वाली रियासतें इसका अपवाद थी। उनका प्रिवीपर्स 10 लाख से अधिक स्वीकृत किया गया था और वह भी समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले शासक के जीवन काल तक ही था।

उसके उत्तराधिकारी को प्रिवीपर्स कम करके 10 लाख रूपये वार्षिक दिया जाना था।[86] वृहत राजस्थान के निर्माण के समय लोकप्रिय नेताओं द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि जयपुर, जोधपुर एवं बीकानेर रियासतें इंदौर रियासत के लगभग बराबर ही हैं जिसके महाराजा को 15 लाख रूपये का प्रिवीपर्स दिया गया है तथा उपराज्य प्रमुख के भत्ते के रूप में ढाई लाख रूपये दिये गये हैं। अतः जयपुर, जोधपुर एवं बीकानेर के राजाओं का साढ़े सत्रह लाख रूपये का वार्षिक प्रिवीपर्स निश्चित कर दिया जाये। यह भी सुझाव दिया गया कि जयपुर के महाराजा को राजप्रमुख के नाते साढ़े पांच लाख रूपये दिये जाये।

अंत में बीकानेर नरेश को सत्रह लाख, जोधपुर नरेश को साढे सत्रह लाख तथा जयपुर नरेश को अठारह लाख रूपये का प्रिवीपर्स दिया जाना निश्चित किया गया। राजप्रमुख को साढे पाँच लाख रूपये का वार्षिक भत्ता दिया जाना निश्चित किया गया।[87] 25 दिसम्बर, 1950 को बीकानेर नरेश सादुलसिंह की मृत्यु होने पर उनके उत्तराधिकारी करणीसिंह को 10 लाख रूपये वार्षिक प्रिवीपर्स स्वीकार किया गया। अन्य रियासतों के शासकों की मृत्यु होने पर प्रिवीपर्स के मामले में यही सिद्धांत अपनाया गया।[88]

शास्त्री सरकार का पतन और जय नारायण व्यास सरकार की स्थापना

नव गठित राजस्थान की प्रथम लोकप्रिय सरकार का नेतृत्व हीरालाल शास्त्री को प्रदान किया गया। इसी के कारण कांग्रेस में सरदार पटेल का भारी विरोध हुआ क्योंकि ऐसी उम्मीद की जा रही थी कि जयनारायण व्यास ही राज्य के भावी मुख्यमंत्री होंगे, शास्त्री के नेता चुने जाने के ढंग पर प्रांत भर में कड़ी आलोचना की गई। आम कांग्रेसी कार्यकर्ता इस चुनाव से खुश नहीं था तथा इसे एक फासिस्टी चुनाव कहा गया, जिससे लोकतंत्र की हत्या हुई है।[89] तथा कांग्रेसी नेताओं द्वारा फैसले पर पुनर्विचार की मांग की गई।[90] शास्त्री, व्यास को गृहमंत्री बनाना चाहते थे लेकिन व्यास की सलाह पर उनके दो सहयोगियों को मंत्री बनाने के पक्ष में नहीं थे।[91] अतः व्यास गृहमंत्री बनने को भी तैयार नहीं हुए। व्यास को आशा थी कि शास्त्री उनकी सलाह से काम करेंगे।[92] किंतु शास्त्री ने अपने मंत्रिमण्डल के निर्माण में न तो जयनारायण व्यास

और माणिक्यलाल वर्मा को ही विश्वास में लिया और न ही अपने संभाग के सरदार हरलाल सिंह और टीकाराम पालीवाल जैसे लोकप्रिय नेताओं का सहयोग लिया।....... प्रतिभा की दृष्टि से यह एक अच्छा मंत्रिमण्डल था किंतु दुर्भाग्य से उनमें से अधिकांश सदस्यों का जनाधार नहीं था, न ही उन्हें अपने क्षेत्र के नेताओं का आशीर्वाद प्राप्त था।[93] ये सभी ऐसे व्यक्ति थे जिनका कांग्रेस संगठन में कोई प्रभाव नहीं था और न ही इन्हें कार्य का अनुभव था।[94] पार्टी के लोकप्रिय नेता बाहर रखे गये थे।[95] प्रांत में इसका विरोध हुआ और प्रांतीय कार्यसमिति के चार सदस्यों जयनारायण व्यास माणिक्यलाल वर्मा, गोकुललाल असावा तथा मीठालाल त्रिवेदी ने त्यागपत्र दे दिया।[96]

गोकुलभाई भट्ट के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव

हीरालाल शास्त्री को अपना मंत्रिमण्डल बनाये हुए दो सप्ताह भी नहीं हुए थे कि प्रदेश के कांग्रेसी नेताओं ने प्रदेश अध्यक्ष गोकुलभाई भट्ट एवं मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री के विरूद्ध अभियान आरंभ कर दिया। जोधपुर में मारवाड़ कांग्रेस कमेटी की बैठक में मथुरादास माथुर ने शास्त्री को पटेल की फासिस्टी विचारधारा का प्रतीक बताया जो व्यास और वर्मा को कमजोर करना चाहते हैं क्योंकि वे नेहरू की प्रगतिशील विचारधारा को मानते हैं। व्यास ने आरोप लगाया कि राजस्थान के निर्माण के बाद की कार्यवाही उनसे छिपायी गयी है। बैठक में पारित एक प्रस्ताव द्वारा मंत्रिमण्डल निर्माण, राजधानी और राज्य कर्मचारियों की अनिश्चितता पर असंतोष प्रकट किया गया।[97] बीकानेर, जयपुर और उदयपुर के कांग्रेसियों में भी मंत्रिमडल के गठन पर रोष था। यह निश्चय हुआ कि प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष भट्ट के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखा जाये।[98] गोकुलभाई भट्ट, हीरालाल शास्त्री के समर्थक थे, असंतुष्ट कांग्रेसियों को यह आशा थी कि भट्ट के हटते ही शास्त्री भी हट जायेंगे।[99] 25 अप्रैल, 1949 को सरदार पटेल ने जयनारायण व्यास को चेतावनी दी कि वे उनकी गतिविधियों को देख रहें हैं और व्यास को यह समझ लेना चाहिये कि वे गलत रास्ते पर हैं।[100] 30 अप्रैल, 1949 को प्रदेश कांग्रेस समिति ने गोकुल भाई भट्ट तथा हीरालाल शास्त्री के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिये 9 जून को एक बैठक बुलायी। इस पर पटेल ने कांग्रेसी नेताओं को पुनः चेतावनी दी कि यदि उन्होंने मंत्री बनने के लोभवश की जा रही हरकतों को बंद नहीं किया तो केन्द्रीय सरकार

शासन अपने हाथ में ले लेगी। भट्ट ने प्रांत के कांग्रेसी नेताओं को लिखा की अखिल भारतीय कांग्रेस अध्यक्ष पट्टाभि सीतारामय्या ने यह मामला पटेल पर छोड़ दिया है, अतः मंत्रिमंडल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के पूर्व प्रांतीय नेता पटेल से बात करें। 9 जून, 1949 को प्रांतीय कांग्रेस कमेटी में दोनों प्रस्ताव प्रचंड बहुमत से पारित हो गये। गोकुलभाई भट्ट ने 11 जून, 1949 को प्रांतीय कमेटी की बैठक बुलाई और कहा कि **यदि एक भी सदस्य उन्हें नहीं चाहेगा तो वे पद से हठ जायेंगे।**[101] प्रांतीय कार्यकारिणी के 80 सदस्यों ने गोकुलभाई भट्ट के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित किया। 11 जून को समिति ने जयनारायण व्यास को कांग्रेस का अध्यक्ष चुन लिया।

सरदार पटेल द्वारा सरकार विरोधियों की आलोचना

11 जून को ही जयनारायण ने तार द्वारा रियासती मंत्रालय के प्रभारी मंत्री सरदार पटेल को राजस्थान के मुख्यमंत्री के विरुद्ध प्रदेश कांग्रेस कमेटी में अविश्वास प्रस्ताव के पारित होने की सूचना दी। इस तार में कहा गया कि –"आज राजस्थान कांग्रेस की विशेष बैठक में गोकुलभाई भट्ट के त्यागपत्र को स्वीकार करके मुझे अध्यक्ष चुना गया है। कमेटी ने एक प्रस्ताव द्वारा हीरालाल शास्त्री और कांग्रेसी मंत्रियों से त्यागपत्र की मांग की है। 88 सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया 1 ने विरोध किया कुछ तटस्थ थे, जबकि भट्ट और उनके साथी मतदान के समय चले गये।[102] सरदार पटेल द्वारा 12 जून को इस तार का उत्तर दिया गया जिसमें कहा गया कि आपका तार दो बातों को सूचित करता है– प्रथम, भट्ट का त्यागपत्र और उनकी जगह आपका चयन, जो स्थानीय कांग्रेस का मामला है, जिससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। द्वितीय, शास्त्री और मंत्रियों से त्यागपत्र की मांग। मैं नहीं जानता की वैधानिक रूप से यह कार्यवाही ठीक है। लेकिन आपको समझना चाहिये कि राजस्थान में मुख्यमंत्री शास्त्री, प्रदेश के प्रति जिम्मेदार नहीं है। प्रदेश कांग्रेस विधान सभा का स्थान नहीं ले सकती। शास्त्री प्रधानमंत्री इसलिये नहीं बने के उन्हें प्रदेश कांग्रेस ने चुना है वरन् आप सबकी प्रार्थना पर मैंने चुना है। चुनाव होने तक वे अपने पद पर बने रहेंगे यदि इस बीच वे हमारा विश्वास न खो दें। इस स्थिति को जानते हुए आपका सतत् अनुचित और घातक गतिविधियों में लगे रहना आपके स्वयं के लिये नुकसान देय होगा।[103]

इस सम्बन्ध में हीरालाल शास्त्री ने लिखा है कि मैंनें व्यासजी, वर्माजी और जयपुर के कुछ साथियों के आग्रह करने पर भी कुछ भाईयों को मंत्रिमण्डल में नहीं लिया। मेरे कुछ कहने सुनने पर भी खुद व्यासजी ने भी मंत्रिमण्डल में आना मजूंर नहीं किया। प्रदेश कांग्रेस कमेटी की ओर से मंत्रिमण्डल का बकायदा विरोध शुरू हो गया। सरदार ने मुझसे कह दिया कि आप तो अपना काम किये जाओं। जब प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने मेरे विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करके सरदार को तार दिया तो उन्होंने बड़ा सख्त तार जवाब में दिया कि प्रदेश कांग्रेस कमेटी को इस काम में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेस वर्किंग कमेटी का निर्णय भी यही हुआ। गोकुलभाई भट्ट प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष थे उन्होंने त्यागपत्र दे दिया तब भी उनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास किया गया। पंडित नेहरू ने व्यास को पत्र लिखा कि उनकी ओर से जो कुछ किया जा रहा है वह अनुचित और हानिकारक है।[104] केन्द्रीय संचार मंत्री रफी अहमद किदवई ने पटेल को पत्र लिखकर उनके द्वारा व्यास को भेजे गये तार पर आश्चर्य और दुःख प्रकट किया। और कहा कि कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू और पट्टाभि सीतारामया अपने निर्देशों में बार बार यह कह चुके है कि कांग्रेसी सरकारों और संगठनों में सहयोग रखा जाये। जब मंत्रिमण्डल में ऐसे व्यक्ति हो जिनमें संगठन का विश्वास न हो तब यह कैसे संभव है। जब विख्यात नेता यह घोषणा करते हैं कि प्रांतीय मंत्रिमण्डल के निर्माण में कांग्रेस का हाथ नहीं है तो यह संस्था को समाप्त करने के समान ही है। रफी ने पटेल के तार के प्रचार पर कड़ी आपत्ति की।[105] जवाब में पटेल ने लिखा कि वह समझ नहीं सके कि रफी की शिकायत क्या है? शास्त्री को सर्वसम्ममति से नेता चुना गया, जब व्यास और वर्मा के प्रतिनिधियों को मंत्रिमण्डल में नहीं लिया गया तो हर प्रकार के उपाय काम में लिये गये। क्या कोई ऐसे संगठन को विश्वास से देख सकता है? क्या ऐसा संगठन कांग्रेस को शक्तिशाली बना सकता हैं? पटेल ने लिखा कि समझौते के अनुसार रियासती मंत्रालय को नियंत्रण और निर्देशन का अधिकार है।[106]

असंतुष्ट नेताओं की कार्यकारिणी

जयनारायण व्यास ने राज्य कांग्रेस कार्यकारिणी में प्रांत के प्रसिद्ध नेताओं को लिया। उदयपुर से माणिक्यलाल वर्मा और मोहनलाल सुखाड़िया बीकानेर से कुम्भाराम आर्य, अलवर से मास्टर भोलानाथ, भरतपुर से आदित्येन्द्र, जयपुर से टीकाराम

पालीवाल, डूँगरपुर से भोगीलाल पंड्या, झुन्झुनु से चौधरी हरलाल सिंह, शाहपुरा से गोकुललाल असावा, जोधपुर से मीठालाल त्रिवेदी और कोटा से अभिन्न हरी। इस कार्यकारिणी ने पटेल द्वारा व्यास को दिये गये तार की शैली पर आपत्ति की तथा इस बात को जनतंत्रीय सिद्धातों तथा परम्पराओं के विरूद्ध बताया कि पटेल का विश्वास न खो देने तक शास्त्री बने रहेंगे। कार्यकारिणी ने यह भी कहा कि शास्त्री का चयन सर्वसम्मति से न होकर बिना किसी विरोध के हुआ था। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेसी कमेटी को प्रतिनिधि सभा माना गया था। पटेल ने यह भी माना है कि यह सभी की प्रार्थना पर किया गया था। यह तर्क ठीक नहीं कि प्रदेश कांग्रेस कमेटी विधान सभा का कार्य नहीं कर सकती क्योंकि कमेटी ने नेता का चुनाव किया था। और मंत्रिमण्डल के निर्माण के बारे में निर्देश दिये थे।[107]

नेतृत्व के लिए खींच–तान

हीरालाल शास्त्री ने इस आरोप का खण्डन किया कि उन्होंने संगठन की उपेक्षा की है। वे कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रम को मानने के लिये बाध्य हैं, उनका दोष यही है, कि वे अपने उन मित्रों को संतुष्ट नहीं कर सके जो कुछ व्यक्तियों को मंत्रिमण्डल में लेने पर जोर दे रहे थे। राजस्थान के दौरे से यह स्पष्ट हो गया है कि जनता उनके साथ है। वे कुर्सी पर चिपके रहना नहीं चाहते लेकिन वे इसे छोड़ने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं।[108] जयनारायण व्यास ने शास्त्री के इस दावे का खण्डन किया कि जनसमर्थन उनके साथ है। उनका कहना था कि राजस्थान तो दूर जयपुर के कांग्रेसी नेता भी उनके साथ नहीं है। जोधपुर नगर परिषद द्वारा शास्त्री के अभिनंदन के प्रस्ताव का समर्थन करने वाले 15 सदस्यों में से केवल 5 निर्वाचित थे जबकि विरोध में 11 सदस्य थे। बीकानेर नगर परिषद के 40 सदस्यों में से केवल 4 ने ऐसे प्रस्ताव का समर्थन किया और 3 ने विरोध, शेष ने बहिष्कार किया।[109] 1 जुलाई, 1949 को जयनारायण व्यास ने सभी कांग्रेसियों से मंत्रियों का बहिष्कार करने की अपील की। इस बीच राजस्थान के व्यास समर्थक समाचार पत्रों में लगातार यह प्रचार किया जा रहा था कि नेहरू और पटेल के सम्बन्ध ठीक नहीं है और नेहरू स्वयं रियासती मंत्रालय संभाल रहें हैं। यह भी समाचार था कि रफी अमद किदवई, सुचेता कृपलानी और निजलिंगप्पा ने पटेल को राजस्थान के विषय में पत्र लिखे हैं, और कांग्रेस अध्यक्ष सीताराम्मया राजस्थान आ रहे हैं।[110]

16 जुलाई, 1949 को नेहरू ने जयनारायण व्यास को एक पत्र लिखकर आपत्ति की कि उन्हें इस विवाद में खींचा जा रहा है। नेहरू ने स्पष्ट किया कि इस तरह के प्रचार से व्यास, राजस्थान तथा कांग्रेस का नुकसान कर रहे है। 18 जुलाई 1949 को अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी ने सभी प्रांतीय समितियों को निर्देश दिये कि वे किसी कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित न करें। शिकायतें कार्यसमिति और संसदीय बोर्ड के समक्ष रखी जायें। कार्यसमिति ने ध्यान दिलाया कि दिल्ली में हुए समझौते के अनुसार राजस्थान का मंत्रिमण्डल केन्द्रिय सरकार के नियंत्रण में कार्य कर रहा है। इस समझौते पर व्यास और वर्मा ने भी हस्ताक्षर किये थे। इस पर राजस्थान कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर अखिल भारतीय कांग्रेस को सूचित किया कि स्वयं पट्टाभि सीतारामया ने अपने पत्र में व्यास को लिखा था कि अगर नेता प्रांतीय कांग्रेस द्वारा चुना जाये तो प्रांतीय कमेटी को अधिकार है कि वह अपना निर्णय बदल सके। अतः कमेटी यह मानती है कि वह अविश्वास प्रकट कर सकती है।[111]

असंतुष्ट नेताओं पर अभियोग

जब व्यास तथा उनके साथियों की कार्यवाही बंद नहीं हुई तो दिसम्बर 1949 में राजस्थान के राजप्रमुख ने अध्यादेश जारी करके एक विशेष अदालत नियुक्त की और इसमें जोधपुर राज्य के तीन भूतपूर्व मंत्रियों जयनारयण व्यास, द्वारकादास पुरोहित और मथुरादास माथुर पर भोजन, यातायात के झूठे बिलों और कीमती कारों को लेने के विषय पर अभियोग चलाये गये।[112] हीरालाल शास्त्री के अनुसार मुकदमे चलाने का फैसला करने से पहले पटेल को जितना सोच विचार करना चाहिये था उतना शायद उन्होंने नहीं किया और शास्त्री को भी जितना ध्यान इस तरफ देना चाहिये था नहीं दिया। शास्त्री को इस बात का बड़ा भारी खेद था कि उन्होंने दूसरे साथियों के खिलाफ मुकदमें चलाने का आरोप अपने ऊपर बेवजह आने दिया।[113]

जनवरी 1950 में संविधान लागू होने पर भूतपूर्व मंत्रियों ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील कि जिससे मुकदमें की कार्यवाही रोक दी गयी।[114] जयनारायण व्यास ने अपना विरोधजारी रखते हुए प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के नाम एक पत्र में केन्द्रीयकरण

की प्रवृत्ति की निंदा की और कहा की इन नये राजाओं से पुराने राजा ही अच्छे थे। शास्त्री ने इसके जवाब में व्यास को चुनौती दी कि वे उनके विरुद्ध शिकायतें प्रकाशित करें। शास्त्री ने आरोप लगाया कि व्यास दिल से राजस्थान का निर्माण नहीं चाहते थे।[115] मुकदमें चलाने के साथ–साथ व्यास पर मंत्रिमण्डल में शामिल होने के लिये भी दबाब डाला जा रहा था। [116] डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, वी.पी. मेनन आदि अनके व्यक्ति व्यास और उनके साथियों पर चलाये जा रह मुकदमों को ठीक नहीं मानते थे। पटेल के निजी सचिव शंकर और कुछ अन्य व्यक्तियों के कारण व्यास और उनके साथी पटेल को समझाने में सफल हुए।[117]

हीरालाल शास्त्री सरकार का पतन

रियासती मंत्रालय द्वारा बदले की भावना से की गयी इस कार्यवाही से प्रदेश कांग्रेस में शास्त्री का विरोध और भी बढ़ गया। शास्त्री ने कांग्रेस कार्यकर्ताओं को अपनी ओर मिलाने के लिये आदिवासी मण्डल, हरिजन मण्डल, गृह उद्योग मण्डल आदि कुल 12 मण्डलों का गठन किया तथा उनमें कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को सम्मिलित किया। इन कार्यकर्ताओं ने सरकार से वेतन और भत्ते तो उठाये किन्तु शास्त्री के विरुद्ध प्रचार जारी रखा। 14 दिसम्बर 1950 को सत्यदेव विद्यालंकार ने कन्हैया लाल सेठिया को लिखा कि राजस्थान की स्थिति फिर बिगड़ रही है। दलबंदी का नया दौर शुरू है। सरदार का स्वास्थ्य खराब होंने के कारण मामला और बढ़ गया। इसमें भी भला इतना ही है कि शास्त्रीजी अपने असली रूप में प्रकट हो रहे हैं।[118] इसी बीच जुलाई1950 में आरोपों और प्रत्यारोपों के बीच राजस्थान कांग्रेस कमेटी के सदस्यों का चुनाव हुआ जिसमें व्यास समर्थकों ने 131 में से 103 स्थान प्राप्त किये। सरदार पटेल पर इसका प्रभाव पड़ा।[119]

सितम्बर 1950 में नासिक में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के लिये सरदार पटेल पुरूषोत्तम दास टंडन का समर्थन कर रहे थे जबकि जवाहरलाल नेहरू आचार्य जे.बी. कृपलानी के साथ थे। जयनारायण व्यास इस समय राजस्थान कांग्रेस के एकछत्र नेता थे, वे कृपलानी को चाहते थे किन्तु पटेल चाहते थे कि व्यास टंडन का समर्थन करें। व्यास समझ चुके थे कि नेहरू उनकी कोई सहायता नहीं कर सकते

और नेहरू के साथ रहने में वे हानि में रहेंगे।[120] जबकि दूसरी ओर पटेल कह चुके थे कि वे राजस्थान की परिस्थितियों को समझ चुके है। हीरालाल शास्त्री भी त्यागपत्र के लिये तैयार थे।[121] राजस्थान के कांग्रेसियों का भारी बहुमत टंडन के पक्ष में गया और वही निर्णायक रहा।[122] इस सरकार ने व्यास तथा उनके साथियों के विरुद्ध चल रहे मुकदमे वापिस ले लिये। राजस्थान उच्च न्यायालय में सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध एक याचिका प्रस्तुत की गयी लेकिन न्यायालय ने इसे खारिज करते हुए कहा कि जब व्यास जैसे नेता यह कहते है, कि भूलवश बिलों पर हस्ताक्षर कर दिये गये तो हमें मान लेना चाहिये।[123]

टण्डन की जीत से पटेल का शास्त्री पर से भरोसा उठ गया।[124] उन्होंने शास्त्री को उनके पद से हटाने का निर्णय लिया पर इस निर्णय पर कोई कार्यवाही हो पाती इससे पहले ही 15 दिसम्बर, 1950 को सरदार पटेल का देहांत हो गया। पटेल की मृत्यु के बाद हीरालाल शास्त्री जवाहरलाल नेहरू से मिले और उन्हें कहा कि मैनें कृपलानी को समर्थन दिये जाने के कारण पटेल ने मुझे हटाने का निर्णय लिया था। अतः इस निर्णय पर पुनर्विचार किया जाना चाहिये। नेहरू, शास्त्री की बात से प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने शास्त्री को सलाह दी कि राज्य में उनका बहुमत नहीं है अतः वे त्यागपत्र दे दें।[125] साथ ही नेहरू ने रियासती मंत्रालय को शास्त्री मंत्रिमण्डल का इस्तीफा लेने के लिये कह दिया। नेहरू के कहने के पश्चात् भी शास्त्री ने त्यागपत्र नहीं दिया। एक ज्योतिषी की सलाह पर शास्त्री भूमिगत हो गये। खोज के बाद पता चला कि वे इंदौर में हैं, उनसे कहा गया कि वे अविलंब त्यागपत्र दें अन्यथा उन्हें अपदस्थ कर दिया जायेगा। अतः विवश होकर 3 जनवरी, 1951 को शास्त्री ने राजप्रमुख को अपना त्यागपत्र दे दिया।[126] 5 जनवरी, 1951 को शास्त्री के त्यागपत्र देने के पश्चात् एक आई.सी.एस अधिकारी सी.एस. वेंकटाचारी को राजस्थान का मुख्यमंत्री बना दिया गया परन्तु राजस्थान के कांग्रेस सदस्यों ने इसका विरोध किया और इस प्रकार 26 अप्रैल, 1951 को जयनारायण व्यास को मुख्यमंत्री बनाया गया। और इस तरह इस राजनीतिक खीचतान का अंत हुआ।[127]

जयनारायण व्यास के मंत्रिमण्डल का गठन

राजस्थान के कांग्रेसजन वेंकटाचारी की अंतरिम सरकार से संतुष्ट नहीं थे एवं उनका विरोध तीव्र होता जा रहा था। 5 जनवरी, 1951 से 26 अप्रैल, 1951 तक वेंकटाचारी की सरकार रही। अन्ततः 26 अप्रैल 1951 को जयनारायण व्यास को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई।[128] व्यास ने अपने मंत्रिमण्डल में टीकाराम पालीवाल, युगल किशोर चतुर्वेदी, बलवंतसिंह मेहता, मोहनलाल सुखाड़िया, मथुरादास माथुर, कुंभाराम आर्य, बृजसुदंर शर्मा तथा नरोत्तम जोशी को केबिनेट मंत्री और अमृत यादव को उपमंत्री के रूप में शामिल किया।[129] व्यास सरकार ने तत्पश्चात् अपने अल्प अवधि के शासन में प्रशासनिक सेवाओं के एकीकरण के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया एवं जागीरी उन्मूलन अधिनियम पारित कर महत्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित की।[130]

प्रजातंत्र की स्थापना हेतु व्यास सरकार के प्रयास

राजस्थान निर्माण के समय उसे विरासत में ऐसी सरकार प्राप्त हुई जिनकी समता देश में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं थी, विकास का स्तर देश के अन्य राज्यों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ था, साक्षरता 1941 में 5.51 एवं 1951 में 8.95 प्रतिशत ही थी। 1950–51 में 4336 प्राथमिक स्कूल, 139 हाई स्कूल 27 कॉलेज एवं 14 व्यावसायिक और विशिष्ट शिक्षा के कॉलेज थे। प्रदेश की 49 प्रतिशत भूमि पर जागीरदारों का अधिकार था, किसान स्वेच्छाचारित शोषण के शिकार थे।[131] प्रांत का आधे से अधिक भाग जागीरी क्षेत्र अर्थात 34 हजार 324 गांवों में से 17 हजार 355 गांव जागीरी भूमि के अन्तर्गत थे।[132]

व्यास के नेतृत्व में सरकार बनने के पश्चात् राजस्थान प्रदेश कांग्रेस समिति के सदस्यों ने प्रांत के पृथक–पृथक स्थानों की समस्याओं को बुलेटिन में प्रकाशित कर उन्हें प्रचारित करना प्रारम्भ किया, इससे उनकी ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ एवं उसने इन समस्याओं को दूर करने के प्रयत्न किए। इन समस्याओं में प्रमुख जागीरदारों के अत्याचार एवं अन्यायपूर्ण कार्य थे। कांग्रेस ने कुचामन के खारिया, मारवाड़ जक्शन के बिडोवा, बड़ा मेड़ता के खेडूली, रानौली हिंडौन के तालाचिड़ि आदि स्थानों पर जागीरदारों द्वारा किसानों पर हमले, उन्हें बेदखल कर उनकी भूमि, कुँओं

पर अधिकार करने और बेगार लेने जैसे मुद्दे उठाए।[133] इन्हीं के रहते जागीरी उन्मूलन विधेयक पारित किया गया।[134] इस अवधि में विकास की अनेक योजनाएं प्रारम्भ हुई। कई कार्यक्रम लागू किए गए साथ ही चुनाव की तैयारियां भी की गई। राज्य सरकार के समक्ष शरणार्थियों के पुनर्वास की गंभीर समस्या थी। देश के विभाजन पश्चात् बड़ी तादाद में सिंधी शरणार्थी यहां आ गए थे। सरकार ने सिंधी कैंप चयन किया तथा प्रारंभिक स्तर पर बारह लाख चौदह हजार रूपये की राशि व्यय की गई।[135] राज्य सरकार ने इस कार्य में सहयोग के लिए भारत सरकार से भी आग्रह किया।

न्याय, शिक्षा, खनिज, कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में कार्य, न्यायिक प्रणाली को और सुदृढ़ करने के ध्येय से 28 जिला एवं सत्र न्यायालय, 6 सिविल एवं अतिरिक्त सत्र न्यायालय, 28 मुख्य न्यायिक न्यायालय तथा 107 मुंसिफ न्यायालय खोले गए।[136] शिक्षा के क्षेत्र में पहल करते हुए राज्य में पांच सौ नए प्राथमिक विद्यालय खोले गए एवं पचास प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय में क्रमोन्नत किए गए। बीकानेर में 50, जयपुर में 125, जोधपुर में 200, उदयपुर में 25 तथा कोटा संभाग में 100 नए प्राथमिक विद्यालय प्रारंभ हुए।[137] वर्ष 1951–52 की अवधि में अकाल राहत कार्यों पर 37 लाख 63 हजार रूपये व्यय करने एवं किसानों को 18 लाख रूपए के ऋण देने का प्रावधान किया गया।[138]

राजस्थान में तेल एवं गैस मिलने की संभावना के दृष्टिगत राज्य सरकार के आग्रह पर भारत सरकार के भूगर्भ विभाग ने पश्चिमी राजस्थान में अन्वेक्षण कार्य प्रारंभ किया। इसी प्रकार दो अमरीकी विशेषज्ञ भूगर्भशास्त्रियों डॉ. जार्ज एम.टायरर एवं जॉन स्ट्रेक्जक ने प्रांत का छः सप्ताह का भ्रमण किया। इस अवधि में उन्होंने पानी तथा खनिज पदार्थों का विश्लेषण कर अपने निष्कर्षों से अवगत कराया। उन्होंने राजस्थान के विघटित सैनिकों के लिए गंगानगर के नहरी क्षेत्र में 25 हजार बीघा भूमि आवंटन का निर्णय किया। इस अवधि में ही सात वस्त्र मिलें स्थापित हुई। लाखेरी में सीमेन्ट कारखाना खोला गया। भूपालसागर एवं गंगानगर में चीनी मिलें और जयपुर, जोधपुर, कोटा, भरतपुर तथा उदयपुर में कांच कारखाने स्थापित हुए।[139]

जयनारायण व्यास मंत्रिमण्डल के कार्यकाल में राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, केन्द्रीय बाल विवाह निषेध अधिनियम एवं राजस्थान भूमि सुधार तथा जागीर पुनर्गहण अधिनियम लागू हुआ।[140]

राजस्थान में प्रथम निर्वाचन प्रक्रिया

अधिकांश देशी रियासतों में स्वतन्त्रता प्राप्ति अर्थात् 1947 ई. से लेकर भारतीय संघ में उनके विलीनीकरण तक के इस परिवर्तन काल में मनोनीत मंत्रिमण्डल कार्य कर रहे थे। नए प्रांत के रूप में उदय के लगभग तीन वर्ष पश्चात् ही राजस्थान में प्रथम आम चुनाव हुए। तब तक सभी राजनीतिक दल जनता में अपना–अपना आधार और पैठ बनाकर स्वयं को मजबूत करने की कोशिश करते रहे। इस परिवर्तित राजनीतिक परिदृश्य में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बंबई में प्रारम्भ हुआ इसमें कांग्रेस ने अपने संविधान में संशोधन किया ताकि सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ देशी रियासतों में भी उनका संगठनात्मक जनाधार मजबूत बन सके।[141] अब तक अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद से मान्यता प्राप्त इसकी स्थानीय इकाइयां लोक परिषद अथवा प्रजा मण्डल के नाम से स्थानीय स्तर पर स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहीं थी। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने यह निश्चित किया कि देशी राज्य लोकपरिषद से मान्यता प्राप्त प्रजा मण्डल अब स्थानीय कांग्रेस कार्यसमिति या कार्यकारिणी के रूप में कार्य करेंगी तथा प्रान्तीय परिषद प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के नाम से पहचानी जाएगी। ताकि ये आगे चलकर कांग्रेस के कार्यक्रमों व नीतियों की औपचारिक रूप से अनुपालना कर सके।[142]

दूसरे राजनीतिक दलों ने भी कांग्रेस के समान ध्रूवीकरण की प्रक्रिया को अपनाया। इससे पहले 1948 ई. में कुछ निश्चित संगठनों जैसे विद्यार्थी परिषद, हिन्दू महासभा, जनाधिकार समिति इत्यादि पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। इन दलों को गैर कानूनी संगठन घोषित किया गया था। इनके ऊपर से 1950 में प्रतिबंध हटा लिया गया।[143]

प्रथम निर्वाचन में भाग लेने वाले राजनीतिक दल

इस चुनाव में कांग्रेस ने सुव्यवस्थिति ढंग से भाग लिया और व्यापक स्तर पर चुनाव प्रचार भी किया। इसके विपरीत अन्य राजनीतिक दल अंसगठित थे और उनका चुनाव प्रचार भी बहुत कम रहा। इन चुनावों में निर्दलीय प्रत्याशियों के अतिरिक्त मोटे रूप से कुल मिलाकर 12 राजनीतिक दलों ने भाग लिया इसमें–

1	**भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस**	**7**	**समाजवादी दल**
2	**जनसंघ**	**8**	**किसान संयुक्त पार्टी**
3	**कृषक लोक परिषद**	**9**	**कम्यूनिस्ट पार्टी**
4	**रामराज्य परिषद**	**10**	**अग्रगामी दल**
5	**हिंदू महासभा**	**11**	**मार्क्सीसिस्ट ग्रुप**
6	**किसान मजदूर पार्टी**	**12**	**शिड्यूल कास्ट फेडरेशन**

सम्मलित हैं।[144]

1951 के प्रारंभ तक मतदान की तैयारियां पूर्ण कर ली गयी थीं। मुख्य चुनाव अधिकारी श्री स्वामी प्रकाश चन्द्र की देखरेख में मतदाता सूचियां छपवाने का कार्य पूर्ण कर लिया गया। राजस्थान में निर्वाचन की अवधि में व्यास सरकार कार्यरत थी और उसने निष्पक्ष एवं शांतिपूर्ण चुनाव करवाने में महत्वपूर्ण कार्य किया।[145] फरवरी, 1951 में श्री पी.एन. सिंघल को मुख्य चुनाव अधिकारी तथा कार्यकारी प्रमुख, चुनाव सचिव राजस्थान सरकार नियुक्त किया गया। तथा जिला कलेक्टरों को जिला निर्वाचन अधिकारी तथा कार्यकारी प्रमुख बनाया गया।

राज्य में प्रथम आम चुनावों में निर्वाचन क्षेत्रों के सीमा निर्धारण के लिए भारतीय संसद के अध्यक्ष ने राजबहादुर के संयोजन में एक समिति गठित की थी। इस समिति के सदस्य रामचंद्र उपाध्याय, बलंवतसिंह मेहता, जयवंतसिंह एवं सरदार सिंह थे। समिति ने 23 अप्रैल, 1951 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया।[146]

चुनाव के उद्देश्य से प्रत्येक जिले को उसके आकार के अनुपात में इकाइयों में विभाजित किया गया तथा प्रत्येक इकाई पर निर्वाचन अधिकारी, सहायक निर्वाचन अधिकारी तथा एक निरीक्षक नियुक्त किया गया।सम्पूर्ण राज्य को छः जोन में विभक्त करते हुए उनके ऊपर छः अधिकारियों को नियुक्त किया गया। इनमें चार जिला कलेक्टर स्तर के और दो उपखण्ड स्तर के अधिकारी थे। इन्हें प्रत्येक जोन का इनचार्ज नियुक्त किया गया। मतदाताओं को निर्वाचन प्रक्रिया से प्रशिक्षित करने तथा चुनाव से सम्बन्धित कार्य प्रणाली तथा तकनीक को सैद्धांतिक और प्रायोगिक दोनों तरीकों से समझने तथा सक्षम बनाने के लिये छदम मतदान तथा मतदान के पूर्व प्रयोग की अनेक स्थानों पर व्यवस्था की गई।[147] राजस्थान को लोकसभा में 20 सीटों पर प्रतिनिधत्व दिया गया। लोकसभा तथा राज्य विधान सभा दोनों के चुनाव साथ–साथ करवाए गए।

निर्वाचन से सम्बन्धित आंकड़े – मतगणना का कार्य 8 से 15 फरवरी तक चला प्रांत में प्रथम आम चुनाव 4 जनवरी, से 23 जनवरी, के बीच हुए। मतगणना का कार्य 8 से 15 फरवरी तक चला मतदाताओं की संख्या 80 लाख 5 हजार 903 थी।इनके लिए आठ हजार मतदान केन्द्र बनाए गए थे। राज्य के 35 लाख 76 हजार 334 अर्थात 37.22 प्रतिशत मतदाताओं ने मतदान किया। इन चुनावों में विधानसभा के 160 निर्वाचन क्षेत्रों के लिए 626 एवं लोकसभा के 20 निर्वाचन क्षेत्रों के लिए 74 प्रत्याशियों ने चुनाव लड़ा। इनमें से विधानसभा के लिये 228 तथा लोकसभा के लिये 25 प्रत्याशी निर्दलीय मैदान में थे।[148] 160 विधानसभा सीटों में से 7 सीटों पर कांग्रेस दल के उम्मीदवार निरविरोध चुने गये। जिसमें 2 सीटें सामान्य तथा 5 सीटें आरक्षित वर्ग की थी।626 उम्मीदवार मैदान में थे जिसमे से 153 विजयी हुए तथा 473 चुनाव हार गए।[149] प्रांत के प्रथम आम चुनावों में कांग्रेस ने लोकसभा के सभी 20 एवं विधानसभा के 156 निर्वाचन क्षेत्रों के लिए चुनाव लड़ा। राम राज्य परिषद ने 7 एवं 59, जनसंघ ने 4 एवं 50, कृषक लोक परिषद ने 7 एवं 47, हिंदू महासभा ने 1 एवं 8, किसान मजदूर पार्टी ने 1 एवं 12, अग्रमामी एवं मार्क्सिसिस्ट ग्रुप ने 1 एवं 1 तथा शेड्यूल कास्ट फेडरेशन ने 1 एवं 1 सीटों पर प्रत्याशी खड़े किये।[150]

इन चुनावों में कांग्रेस दल को सर्वाधिक सीटे प्राप्त हुई। कांग्रेस को विधानसभा के लिये डाले गए कुल मतों का 39.5 तथा लोकसभा के लिए कुल डाले गए मतों का 41.4 प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ। रामराज्य परिषद को 0.2, सोशलिस्ट पार्टी को 4.7 एवं 4.3, निर्दलीयों को 27.5 एवं 29.2 तथा अन्य को 9.6 एवं 11.3 प्रतिशत मत क्रमशः विधानसभा और लोकसभा के चुनावों में प्राप्त हुए।[151]

इन चुनावों में कांग्रेस ने 12 लाख 68 हजार 611, रामराज्य परिषद ने 3 लाख 96 हजार 860, जनसंघ ने 2 लाख 46 हजार 740, कृषक लोक परिषद ने 1 लाख 86 हजार 924, सोशलिस्ट पार्टी ने 1 लाख 17 हजार 299, किसान जनता पार्टी ने 73 हजार 325, हिन्दू महासभा ने 28 हजार 80, किसान मजदूर पार्टी ने 23 हजार 603 और निर्दलीयों ने 9 लाख 24 हजार 165 मत प्राप्त किये।[152]

प्रांत के प्रथम आम चुनाव में विभिन्न राजनीतिक दलों को लोकसभा एवं विधानसभा में प्राप्त स्थानों का विवरण इस प्रकार है—

क्र.स.	दल का नाम	विधान सभा (जीते हुए स्थान)	लोक सभा (कुल प्राप्त स्थान)
01	**भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस**	**82 (7 निर्विरोध को मिलाकर)**	**9**
02	**कृषिकार लोक पार्टी**	**7**	**1**
03	**राम राज्य परिषद**	**24**	**3**
04	**जन संघ**	**8**	**1**
05	**हिन्दू महासभा**	**2**	—
06	**समाजवादी दल**	**1**	—
07	**मार्क्सवादी दल**	—	—
08	**निर्दलीय**	**35**	—
09	**किसान जनता संयुक्त पार्टी**	—	**6**
10	**अनुसूचित जाति संघ**	—	—
11	**किसान मजदूर प्रजा पार्टी**	**1**	—
12	**फॉरवर्ड ब्लॉक**	—	—
	कुल स्थान	**160**	**20**

प्रथम विधान सभा–

प्रथम आम चुनाव पूर्ण हो जाने के पश्चात् 3 मार्च, 1952 को प्रांत के प्रथम निर्वाचित मंत्रिमंडल ने शपथ ग्रहण की। टीकाराम पालीवाल ने मुख्यमंत्री तथा मोहनलाल सुखाड़िया, मास्टर भोलाराम, भोगीलाल पांड्या, रामकिशोर व्यास, नाथूराम मिर्धा एवं अमृतलाल यादव ने मंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की। रामकरण जोशी मंत्रिमंडल में बाद में शामिल हुए आमेर से निर्वाचित रावल संग्रामसिंह अंतर्कालीन विधानसभा अध्यक्ष मनोनीत किए गए। तत्पश्चात् नरोत्तम जोशी अध्यक्ष एवं लालसिंह शक्तावत उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए। राज्य विधानसभा का शुभारंभ 29 मार्च, 1952 को हुआ।[153]

राजशाही के प्रतीकों का लोकतंत्र में विलय

सैंकड़ों वर्षों के वैभवशाली, अनैतिकता से परिपूर्ण, निरूद्देश्य जीवन व्यतीत करने के पश्चात् भारत की स्वतन्त्रता और देश में प्रजातंत्र की स्थापना के झटके से सुशुप्त अवस्था में पड़े राजशाही के प्रतीकों को गहरा झटका लगा। भारत संघ में रियासतों के विलय और एकीकरण ने उनको जागने और जीवन के यर्थात को स्वीकार करने को विवश कर दिया।[154] राजशाही के प्रतीक अधिकांश राजा महाराजाओं ने बदली हुई परिस्थितियों में एक सामान्य नागरिक की तरह अपना स्थान बनाने की चेष्टा की और जो प्रजांतत्र में रहकर भी स्वयं को विशिष्ट मानते रहे वे अपनी कल्पना के महाराजा स्थान में सदा के लिए खो गए।[155]

राजस्थान के गठन के बाद भी प्रांत के शासन में पूर्व रियासतों के राजपरिवारों का बोलबाला बना रहा। कई राजा–महाराजाओं, तथा रानी– महारानियों ने लोकसभा, विधान सभा के चुनाव लड़े और वे न केवल जीते अपितु मंत्री भी बनें और लोकतंत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा करते रहे। इनमें प्रथम आम चुनाव में भाग लेने वालों में जोधपुर के महाराजा हनुवंत सिंह, डूँगरपुर के महारावल लक्ष्मणसिंह, करौली के बृजेंद्रपालसिंह, शाहपुरा के राजाधिराज अमरसिंह, खेतड़ी के सरदारसिंह, मंडावा ठिकाने के ठाकुर देवीसिंह, बनेड़ा के अमरसिंह, बिजोलिया के राव केसरसिंह इत्यादि सम्मिलित हैं।[156]

1952 के प्रथम आम चुनावों के दौरान अपनी आन्तरिक कलह के कारण कांग्रेस के अनेक बड़े नेता चुनाव हार गये और भूतपूर्व राजा– महाराजा और उनके प्रतिनिधि चुनाव जीतकर लोक सभा और विधान सभा में पहुँचे। जोधपुर नरेश हनुंवतसिंह इन चुनावों में सरदारपुरा क्षेत्र से विधान सभा के लिए और जोधपुर क्षेत्र से लोकसभा के लिये खड़े हुए। विधान सभा सीट पर महाराजा के विरुद्ध राजस्थान के मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास खड़े किये गये। यद्यपि महाराजा की दुर्घटना में मृत्यु हो गई। तथापि वे दोनों स्थानों से चुनाव जीत गए तथा जयनारायण व्यास दोनों स्थानों से हार गए। व्यास ने सरदारपुरा व आहोर विधान सभा क्षेत्र से चुनाव लड़ा था।[157] पराजय के कारण 2 मार्च 1952 को उन्हें अपनी सरकार का त्यागपत्र देना पड़ा । उन्होंने बाद में किशनगढ़ विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से हुए उप चुनाव में विजय प्राप्त की और टीकाराम पालीवाल के अक्टूबर 1952 में त्यागपत्र देने के पश्चात् 1 नवम्बर 1952 को पुनः राजस्थान के मुख्यमंत्री पद की शपथ ली।[158] प्रथम चुनावों में गोकुलभाई भट्ट, माणिक्य लाल वर्मा, रघुवर दयाल गोयल जैसे कई दिग्गज नेता चुनाव हार गए एवं पूर्व नरेश एवं उनके द्वारा समर्थित प्रत्याशी चुनाव जीत कर विधान सभा में जा पहुंचे और देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने लगे।

जो भी हो राजतंत्र समाप्त हुआ प्रजातंत्र की स्थापना हो गयी। राजा–महाराजा इतिहास के पन्नों में सिमट गये। आज लगभग 70 वर्षों की अल्प अवधि के बाद भी नयी पीढ़ियों को इस बात पर विश्वास करना कठिन हो जाता है, कि किसी समय यहां चमकीली पोषाकों, हीरे– जवाहरातों से जगमगाती पगड़ियों और सोने चांदी के सिंहासन पर बैठकर राज्य करने वाले राजाओं और रानियों का शासन था।

संदर्भ सूची

1. a–दुर्गादास– सरदार पटेल्स कॉरेसपोंडेंस खण्ड 7 पृ. 428

   b–वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 253

   c–एफ.के.कपिल –राजपूताना स्टेट्स पृ. 168
2. एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स, पृ. 168
3. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट पृ. 251
4. बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 414
5. देवकिशन राजपुरोहित – राजस्थान शासन परिचयांकन पृ. 1
6. वी.पी.मेनन– द स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स पृ. 253
7. a मायरन वीनर – स्टेट्स पॉलिटिक्स इन इण्डिया पृ. 345

   b के.एल.कमल –पार्टी पॉलिटिक्स इन एन इण्डियन स्टेट्स पृ. 52
8. सत्यदेव विद्यालंकार (सं.)– धुन का धुनि, में ब्रजलाल बियानी का लेख पृ. 164
9. मायरन वीनर – स्टेट्स पॉलिटिक्स इन इण्डिया पृ. 332
10. सत्यदेव विद्यालंकार (सं.)–धुन का धुनि में गोकुल भाई भट्ट का लेख पृ. 151
11. दुर्गादास – पटेल्स कॉरसपोंडेंस खण्ड 7 पृ. 417 और 408
12. सत्यदेव विद्यालंकार – धुन का धुनी में कुम्भाराम आर्य पृ. 194
13. के.एम.कमल– पार्टी पॉलिटिक्स इन एन इण्डियन स्टेट्स पृ. 52
14. राजस्थान प्रांतीय कांग्रेस बुलेटिन वर्ष 2 पत्रांक 4, 1949
15. उपरोक्त
16. हीरालाल शास्त्री – 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 77
17. व्हाइट पेपर ऑन इण्डियन स्टेट्स पृ. 54
18. रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान (1949–1950) पृ. 4
19. दुर्गादास – पटेल्स कॉरसपोंडेंस खण्ड–7 पृ. 440–41
20. एफ.के.कपिल– राजपूताना स्टेट्स पृ. 170
21. रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान (1949–1950) पृ. 3
22. एफ.के.कपिल– राजपूताना स्टेट्स पृ. 167
23. उपरोक्त
24. बी.एल. पानगड़िया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ.116
25. नवज्योति, 17 फरवरी, 2 मार्च 1949
26. प्रजा सेवक 25 फरवरी 1949
27. एफ.के. कपिल– राजपूताना स्टेट्स पृ. 169

28. 'प्रजा सवेक 25 फरवरी 1949
29. हीरालाल शास्त्री – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 76
30. रामनारायण चौधरी – 20 वीं सदी का राजस्थान पृ. 216
31. रिपोर्ट ऑफ दी राजस्थान कैपिटल इन्क्वायरी कमेटी 1958, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाइब्रेरी, दिल्ली
32. a बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 116
b प्रकाश– पुरोहित – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता पृ. 182
33. हीरालाल शास्त्री – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 77
34. वी.पी.मेनन – दी स्टोरी ऑफ दी इण्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स पृ. 422
35. हीरालाल शास्त्री – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 81
36. हनुवंत सिंह का वक्तव्य, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 6 दिसम्बर 1951
37. उपरोक्त
38. प्रकाश पुरोहित – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता पृ. 210
39. सुखवीर सिंह गहलोत– राजस्थान का तिथिक्रम पृ. 143
40. रिपोर्ट ऑफ दी राजस्थान कैपिटल एंक्वायरी कमेटी, 1958 नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाइब्रेरी नई दिल्ली।
41. उपरोक्त
42. a - जयभूमि, जयपुर 1954
b – प्रकाश पुरोहित – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता पृ. 186
43. रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान 6 अप्रैल, 1949 टू 31 मार्च 1950 पृ. 7
44. उपरोक्त पृ.9
45. जय भूमि जयपुर 1954
46. रिपोर्ट ऑन द एडमिनीस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान 6 अप्रैल 1949 टू 31 मार्च 1950 पृ. 10
47. उपरोक्त पृ. 9
48. उपरोक्त पृ. 36
49. द स्टेट्स, 14 जुलाई 1949
50. लोकवाणी, 20 दिसम्बर 1949
51. रिपोर्ट ऑन एडमिनिस्ट्रेशन, पृ. 74–75
52. बी.एल. पानगड़िया– राजस्थान का इतिहास पृ. 139
53. वी.पी.मेनन – दी स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स, पृ. 422
54. उपरोक्त पृ. 253

55. रिपोर्ट ऑन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान (1949—1950) पृ. 5
56. वी.पी.मेनन — दी स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेंशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स, पृ. 253
57. क्विन्टन क्रू— द लास्ट महाराजा पृ. 180—181
58. बी.एल. पानगड़िया—राजस्थान का इतिहास पृ. 140—141
59. हीरालाल शास्त्री — प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 79—80
60. वी.पी.मेनन — दी स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ दी स्टेट्स, पृ. 428—429
61. उपरोक्त पृ. 430
62. उपरोक्त पृ. 431
63. हीरालाल शास्त्री — 'प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 77
64. बी.एल. पानगड़िया— राजस्थान का इतिहास पृ. 141—42
65. वी.पी.मेनन — दी स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स, पृ. 434
66. उपरोक्त
67. बी.एल. पानगड़िया, राजस्थान का इतिहास पृ. 141
68. रिपार्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्मस कमेटी 1963 नेहरू मेमोरियल म्यूजिम एण्ड लाइब्रेरी, नई दिल्ली
69. उपरोक्त
70. रिपोर्ट ऑफ दी राजस्थान मध्यभारत जागीर इंक्वायरी कमेटी पृ. 46, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश जोधपुर।
71. लैण्ड रिफॉर्म इन राजस्थान, पृ. 2
72. द हिन्दुस्तान टाइम्स, 27 जनवरी 1949
73. जोधपुर इग्लिश रिकार्ड, एडमिनिस्ट्रेशन, फाइल न. सी/98/15, भाग, 1, 1949 ई. अभिलेखागार बीकानेर । राजस्थान राजपत्र, दिनांक 9 अप्रैल 1949 ई.
74. राजस्थान राजपत्र, विशेषांक, 25 जून 1949 ई.
75. राजस्थान क्षत्रिय महासभा का प्रस्ताव दिनांक 08.05.1949 फाइल सं. 44—पी/49 ग्रेटर राजस्थान (फारमेशन ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन) राजपूताना स्टेट एजेंसी पॉलिटिकल ब्रांच, पार्ट—1 1949 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली।
76. प्रकाश पुरोहित — राजस्थान में किसान आन्दोलन पृ. 203
77. लैण्ड रिफार्म इन राजस्थान, पृ. 4—5 गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन
78. दूलसिंह— ए स्टडी ऑफ लैण्ड रिफॉर्म्स इन राजस्थान, पृ. 101
79. विक्रमाद्वित्य चौधरी— राजस्थान में किसान आन्दोलन पृ. 204

80. फाइल संख्या 291/ पी–48 प्रिवीपर्स ऑफ रूलिंग प्रिंसेज, राजपूताना स्टेट एजेंसी, पॉलिटिकल ब्रांच भाग–1 दिनांक 3 जुलाई 1948 की बैठक की कार्यवाही राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली।
81. एस. नारायण स्वामी द्वारा 30 सितम्बर 1948 को राजस्थान के मुख्य सचिव को पत्र फाइल सं. 291/पी–48 प्रिवीपर्स ऑफ रूलिंग प्रिंसेज, राजपूताना स्टेट्स एजेंसी, पालिटिकल ब्रांच पार्ट–प्रथम 1948, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली।
82. महाराजा बीकानेर द्वारा जारी आदेश क्रमांक ओ आर न0 233 –सी, दिनांक 6 अप्रैल 1949
83. रियासती विभाग के संयुक्त सचिव ए.बी.चटर्जी द्वारा 30.11.1949 को बीकानेर महाराजा को पत्र, फाइल सं. 292/पी–48, प्राइवेट प्रोपर्टीज ऑफ रूलर्स, राजपूताना स्टेट एजेंसी, पोलिटिकल ब्रांच भाग – प्रथम 1949
84. हीरालाल शास्त्री – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 80
85. व्हाईट पेपर ऑन इण्डियन स्टेट्स, पृ. 63–64
86. उपरोक्त
87. वी.पी.मेनन – दी स्टोरी ऑफ दी इन्टिग्रेशन ऑफ दी इण्डिटयन स्टेट्स, पृ. 252
88. करणी सिंह– द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विद सेन्ट्रल पॉवर पृ. 403
89. एफ.के.कपिल– राजस्थान के निर्माण पर नेतृत्व संघर्ष, प्रोसिडिग्स ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 1974 पृ. 78
90. a रियासती (साप्ताहिक) जोधपुर, 18 फरवरी 1949

    b नव राजस्थान 23 फरवरी 1949
91. हीरालाल शास्त्री–प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 78
92. एफ.के.कपिल– राजपूताना स्टेट्स पृ. 169
93. बी.एल. पानगड़िया– राजस्थान का इतिहास पृ. 139
94. एफ. के. कपिल– राजस्थान के निर्माण पर नेतृत्व संघर्ष, प्रोसिडिंग्स ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 1974 पृ. 67
95. a उपरोक्त पृ. 68

    b के.एल. कमल– पार्टी पॉलिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स, पृ. 52–53
96. प्रजा सेवक– 27 अप्रैल 1949
97. उपरोक्त
98. सत्यदेव विद्यालंकार – धुन के धुनी पृ. 194
99. दुर्गादास (सं.)– सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेन्स खण्ड – 7 पृ. 396
100. उपरोक्त खण्ड– 8 पृ. 505
101. प्रजासेवक, 11 मई 1949 और 8 जून 1949

102. दुर्गादास (सं.)– सरदार पटेल्स कॉरपोंडेन्स खण्ड– 8 पृ. 505
103. उपरोक्त पृ. 557
104. हीरालाल शास्त्री– प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 78
105. दुर्गादास (सं.) – सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड– 8 पृ. 558
106. उपरोक्त पृ. 559
107. a के.एल.कमल– पार्टी पॉलिटिक्स इन एन इण्डियन स्टेट्स पृ. 55
b एफ.के.कपिल – राजस्थान के निर्माण पर नेतृत्व संघर्ष, प्रोसिडिंग्स ऑफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 1974 पृ. 69
108. प्रजा सेवक, 22 जनू 1949
109. a उपरोक्त
b दुर्गादास – सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड– 8 पृ. 568
110. उपरोक्त पृ. 562
111. उपरोक्त पृ. 570
112. प्रजासेवक, 11 जनवरी 1950
113. हीरालाल शास्त्री – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 79
114. a राजस्थान लॉ वीकली 1951 पृ. 206
b एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स पृ. 175–76
115. प्रजा सेवक, 8 फरवरी 1949 और 15 फरवरी 1949
116. सत्यदेव विद्यालंकार – धुन के धुनि पृ. 92
117. दुर्गादास (सं.) –सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस खण्ड–9 पृ. 554, 473, 475
118. राधा भालोठिया (सं)– पत्र के प्रकाशन में कन्हैयालाल सेठिया, पृ. 19
119. सत्यदेव विद्यालंकार – धुन के धुनि पृ. 298
120. उपरोक्त पृ. 455
121. प्रजासेवक, 23 अगस्त 1950
122. सत्यदेव विद्यालंकार – धुन के धुनि पृ. 92
123. a राजस्थान लॉ वीकली 1951 पृ. 206
b एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स पृ. 176
124. बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान का इतिहास पृ. 140
125. हीरालाल शास्त्री – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 256
126. बी.एल. पानगड़िया – राजस्थान का इतिहास पृ. 140
127. एफ.के.कपिल – राजपूताना स्टेट्स पृ. 176

128. a धीरेन्द्र जैन–राजस्थान परिचायिका

b देव किशन राजपुरोहित–राजस्थान शासन परिचयांकन पृ.2

129. गुलाब चंद काला– राजस्थान परिचय ग्रंथ पृ. 50–51

130. उपरोक्त

131. मोहनलाल सुखाड़िया – राजस्थान निर्माण के सोलह वर्ष 1965 में प्रचारित एक लेख

132. प्रकाश पुरोहित– राजस्थान में स्वंतत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता पृ. 203

133. राजस्थान कांग्रेस बुलेटिन, जनवरी– फरवरी 1951

134. जयभूमि, 1954

135. राजस्थान राजपत्र 6 मई 1950

136. उपरोक्त, 25 मई, 1950

137. उपरोक्त, 3 जून, 1950

138. धीरेन्द्र सिंह – राजस्थान परिचायिका

139. गुलाबचंद काला– राजस्थान परिचय ग्रंथ पृ. 30–35

140. सुखवीसिंह गहलोत– राजस्थान का तिथिक्रम पृ. 143

141. परिपत्र न. 22, 13 मई, 1948, फाइल न. एफ94/1948 अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद/राजपूताना प्रांतीय सभा/प्रजामण्डल अलवर 90/94, अभिलेखागार बीकानेर।

142. परिपत्र न. 23, 25 मई, 1948, फाइल न. एफ 5/1948 अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद/राजपूताना प्रांतीय सभा/प्रजामण्डल अलवर 90/94, अभिलेखागार बीकानेर।

143. a राजनीतिक विभाग का नोटिफिकेशन (सी.) न. एफ 7(70)/पोलिटिकल (सी)/49 एण्ड न. एफ. 7(188) पोलिटिकल (सी)49 3 फरवरी 1950, राजस्थान सरकार, एक्स्ट्रा आर्डिनरी गजेट खण्ड प्रथम न. 164 4फरवरी 1950

b राजस्थान गजट एक्सट्रा आर्डिनरी खण्ड प्रथम न. 177, 17 मई 1950

144. रिपोर्ट– प्रथम आम चुनाव 1952

145. प्रकाश पुरोहित – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता पृ. 210

146. धीरेन्द्र जैन– राजस्थान परिचायिका

147. राजस्थान के प्रशासन पर रिपोर्ट 1951–52 (1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1952) राजस्थान सरकार जयपुर (1954) पृ. 44

148. ए स्टेटिस्टिकल स्टडी ऑफ द जनरल इलेक्शन इन राजस्थान, द ब्यूरो, ऑफ स्टेटिस्टिक राजस्थान जयपुर(1952) पृ. 45

149. राजस्थान के प्रशासन पर रिपोर्ट 1951–52 (1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1952) राजस्थान सरकार जयपुर, 1954 पृ.45

150. धीरेन्द्र जैन– राजस्थान परिचायिका

151. ए स्टेटिस्टिकल स्टडी ऑफ द जनरल इलेक्शन इन राजस्थान, द ब्यूरो, ऑफ स्टेटिस्टिक राजस्थान जयपुर(1952) पृ. 104
152. के.एल कमल – पॉलिटिक्स इन इण्डियन स्टेट्स पृ. 78–79
153. सुखवीर सिंह गहलोत– राजस्थान का तिथिक्रम पृ. 143
154. जरमनीदास–महाराजा पृ. 398
155. उपरोक्त पृ. 400
156. वर्णमाला, कैलाश एवं मधु – राजस्थान कांग्रेसी उम्मीदवार परिचय पुस्तिका
157. उपरोक्त
158. सत्यदेव विद्यालंकार– धुन के धनी, पृ. 165

अध्याय : अष्टम
विलीनीकरण का अन्तिम चरण व वर्तमान स्वरूप

"हमने राज्य तथा देष की समस्त कृत्रिम बाधाओं को दूर किया है ताकि एक सुसंगठित प्रषासन और मजबूत अर्थव्यवस्था की नींव रखी जा सके। किन्तु वास्तविक एकीकरण तो जनता के मन और मस्तिष्क में होना बाकी है।"

—वी.पी.मेनन

शनैः—शनैः सरदार पटेल और उनके रियासती विभाग को स्थानीय स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ मिल कर विखंडित राजस्थान को अपने भागीरथी प्रयासों से एकीकृत करने में सफलता प्राप्त होती जा रही थी। एकीकरण की प्रक्रिया अब अपने अंतिम चरण में आ पहुॅची थी। इस अंतिम चरण में दो मुद्दे ऐसे थे जो अभी भी अनसुलझे पड़े थे। प्रथम— सिरोही, द्वितीय— अजमेर ।

प्रथम मुद्दा सिरोही रियासत का था जिसके भविष्य का प्रश्न अभी बना हुआ था।[1] सिरोही रियासत के राजवंश का सम्बन्ध दिल्ली के चौहान शासक पृथ्वीराज चौहान के साथ था। सिरोही शहर सिरोही रियासत की राजधानी थी जिसकी स्थापना 1425 में हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि एक समय चितौड़ के महाराणा ने गुजरात के शासक कुतुबुद्दीन के आक्रमण के समय आबू में शरण ली। जब सेना वापस गुजरात चली गई तब राणा ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए आबू को छोड़ने से इन्कार कर दिया।[2] यद्यपि सिरोही के शासक ने चित्तौड़ के महाराणा को आबू से निकाल दिया तथापि उसके पश्चात् सिरोही रियासत में कभी भी किसी दूसरे शासक को आने की अनुमति नहीं दी गई। सिरोही का ये एकाकीपन 1823 में अंग्रेजों के साथ सहायक संधि करने के साथ ही खत्म हुआ। 1845 में कुछ शर्तों के साथ सिरोही के शासक ने 6 वर्ग मील भूमि अंग्रेजों को सेनिटोरियम के निर्माण के लिए पट्टे पर प्रदान की। आगे

चलकर 1917 में सम्पूर्ण आबू पर्वत को ए.जी.जी को स्थायी लीज पर दे दिया गया जो 4 अगस्त, 1947 को पुनः सिरोही राज्य को मिला।[3]

नवम्बर 1947 के अन्त में सरदार पटेल के सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि राजपूताना ऐजेंसी के अधीनस्थ कुछ क्षेत्रों को पश्चिमी भारत और गुजरात स्टेट एजेंसी को स्थानान्तरित कर दिया जाए क्योंकि इन रियासतों में गुजराती भाषी जनता का बहुमत था। के.एम. मुन्शी व गुजरात के अन्य नेता महागुजरात संघ के निर्माण के लिए प्रयत्नशील थे। यह सुझाव उक्त लक्ष्य की पूर्ति हेतु दिया गया था। जिन रियासतों को स्थानान्तरित करने का विचार किया गया उनमें सिरोही, पालनपुर, दांता, ईडर, विजयनगर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा और झाबुआ इत्यादि सम्मिलित थे। [4]

इस विषय पर स्थानीय नेता और क्षेत्रीय आयुक्त भारत सरकार से विचार विमर्श किया गया। राजस्थान के राजाओं और प्रजामंडल के नेताओं ने इस योजना का विरोध किया जिसके फलस्वरूप यह तय हुआ कि पालनपुर, दाँता, ईडर और विजयनगर को गुजरात स्टेट ऐजेंसी में सम्मिलित कर दिया जाए। झाबुआ, बाँसवाड़ा, और डूँगरपुर को मेवाड़ की शाखा मान लिया गया। इसलिए इन्हें राजपूताना स्टेट ऐजेंसी के अन्तर्गत ही बने रहने दिया गया। तदनन्तर सिरोही को भी पश्चिमी भारत और गुजरात स्टेट ऐजेंसी को हस्तान्तरित कर दिया गया [5] और ये परिवर्तन 1 फरवरी 1948 से लागू माना गया।

गुजरात राज्य के शासकों ने अपने राज्य को बम्बई प्रांत में विलय पर सहमति प्रदान कर दी। ऐसे में सिरोही के विषय मे भी विचार विमर्श किया गया।[6] सिरोही के विषय में निर्णय लेना कठिन था क्योंकि **"ए**क तो सिरोही का शासक अल्पवयस्क था और इसीलिए शासन कार्य डोवागर महारानी की अध्यक्षता में रीजेन्सी काऊंसिल चला रही थी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी, कि उत्तराधिकार को लेकर विवाद चल रहा था। ऐसे में सिरोही के विषय में निर्णय लेना कठिन था। 19 मार्च, 1948 को गुजरात स्टेट ऐजेंसी को बम्बई प्रांत में मिला दिया गया। रियासती विभाग के सचिव वी. पी. मेनन ने इस विषय पर गोकुल भाई भट्ट, जो उस समय डोवागर महारानी के सलाहकार और राजस्थान प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, से इस विषय पर विचार

विमर्श किया। अन्त में 8 नवम्बर, 1948 को महारानी सिरोही के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर करके इसे केन्द्र शासित प्रदेश बना दिया गया। दो महीने पश्चात् 5 जनवरी, 1949 को इसे भारत सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर बम्बई सरकार को प्रशासनिक कार्य सम्भालने के लिए दे दिया गया।

यहाँ पर सिरोही रियासत की गद्दी को लेकर विवाद चल रहा था। 23 जनवरी, 1946 को सिरोही के अंतिम महाराव स्वरूप राम सिंह की मृत्यु हो चुकी थी और उनके कोई पुत्र नहीं था। इसलिए तेज सिंह, लखपत राम सिंह और अभय सिंह ने उत्तराधिकार का दावा पेश किया। 10 मार्च, 1949 को भारत सरकार ने सौराष्ट्र के मुख्य न्यायाधीश एच. वी. देवातियॉ और महाराजा जयपुर तथा कोटा महारॉव को मिलाकर एक कमेटी का गठन किया जिसका कार्य उत्तराधिकार के मसले को सुलझाना था। कमेटी ने अभय सिंह को उत्तराधिकारी माना। भारत सरकार ने देवातियॉ कमेटी की सिफारिश को मानते हुए अभय सिंह को सिरोही का महाराव स्वीकार किया [7] तथा उन्हें 2,12,600 रूपये वार्षिक कर से मुक्त प्रिवीपर्स अनुदानित करने की घोषणा की।

जल्दी ही सिरोही के विलय को लेकर विवाद ने बड़ा रूप धारण कर लिया। एक तरफ गुजराती माँग कर रहे थे कि सम्पूर्ण सिरोही को बम्बई के साथ विलीन कर दिया जाए। दूसरी तरफ राजस्थान में भी सिरोही के राजस्थान में विलय की माँग को लेकर विरोध प्रदर्शन प्रारम्भ हो गए थे। राजस्थान के स्वतन्त्रता सेनानी सिरोही के, राज्य में विलय को लेकर उग्र होते जा रहे थे। समाचार पत्रों में भी सिरोही का प्रश्न बराबर उठ रहा था। ऐसे में सरदार पटेल ने वी. पी. मेनन को सिरोही जाकर वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के लिए कहा।[8] गुजरातियों का मानना था कि आबू पर्वत पारम्परिक और ऐतिहासिक दृष्टि से गुजराती संस्कृति से जुड़ा हुआ है। आबू–देलवाड़ा के सुप्रसिद्ध जैन मंदिर उनकी सुन्दर नक्काशी, जैन परम्परा से जुड़े हुए थे। गुजरात और काठियावाड़ की जैन आबादी हर वर्ष यहां की यात्रा करती थी। ऐसे में आबू पर्वत को राजस्थान को देने का वे विरोध कर रहे थे। सिरोही के राजवंश का भी काठियावाड़ और कच्छ के राजदरबार से घनिष्ठ संबंध था।[9] इसलिए सिरोही गुजरात के अधिक निकट था ऐसा गुजरातियों का मानना था। दूसरी तरफ राजस्थान की

जनता का तर्क था कि सिरोही सदियों से राजपूताना का भाग रहा है। सिरोही की अधिकतम आबादी गैर गुजराती भाषी थी। यह राजस्थान का एकमात्र पर्वत सैलानी केन्द्र था, यहाँ के शासक गर्मियों में आबू को अपना निवास स्थान बनाते थे। ये सब तथ्य वी. पी. मेनन के सामने दोनों पक्षों ने रखे।

इससे पहले 1 फरवरी, 1949 को सिरोही राज्य प्रजा मण्डल ने एक प्रस्ताव पास करके यह घोषित किया कि सम्पूर्ण सिरोही राज्य का राजस्थान संघ में विलय सिरोही की जनता के हित में है क्योंकि सिरोही राज्य के भूतपूर्व राजस्थान रियासतों से सदियों पुराने सम्बन्ध रहे हैं। बोली भाषा संस्कृति, वेशभूषा, इतिहास या भूगोल की दृष्टि से सिरोही राजस्थान के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। सिरोही की जनता ने मांग की कि सिरोही को बम्बई में न मिलाकर संयुक्त राजस्थान में मिलाया जाये। कुछ ही दिनों बाद उदयपुर ने भी संयुक्त राजस्थान में शामिल होने का फैसला किया। इस अवसर पर अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजपूताना प्रान्तीय सभा के महामंत्री हीरालाल शास्त्री ने अपने 10 अप्रैल, 1948 के तार में सरदार पटेल को लिखा "यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उदयपुर संयुक्त राजस्थान में शामिल हो रहा है इससे सिरोही का राजस्थान में शामिल होना और भी अवश्यंभावी हो गया है। फिर हमारे लिए सिरोही अर्थ है गोकुलभाई। बिना गोकुल भाई के हम राजस्थान को नहीं चला सकते।"[10]

शास्त्रीजी को इस तार का कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने सरदार पटेल को 14 अप्रैल को दूसरा तार भेजा जिसमें लिखा कि "हम लोग कोई कारण नहीं देखते कि क्षण मात्र के लिए भी सिरोही को राजस्थान की अपेक्षा रियासतों के अन्य किसी समूह में मिलाने की दिशा में सोचा जा सकता है इस प्रश्न पर मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा कि आप राजस्थान की जनता की भावनाओं की अनदेखी न करें। मुझे विश्वास है कि आप हमारी सर्वसम्मत प्रार्थना को स्वीकार कर हमारी सहायता करेंगे।"[11]

18 अप्रैल, को संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के अवसर पर उदयपुर में राजस्थान के कार्यकर्ताओं का एक शिष्टमण्डल जवाहर लाल नेहरू से मिला और उनको सिरोही के संबंध में प्रदेश की जनता की भावनाओं से अवगत करवाया। नेहरू

ने दिल्ली लौटते ही सरदार पटेल को पत्र लिखा जिसमें लिखा कि "समस्त राजस्थान के कार्यकर्ताओं में सिरोही के प्रश्न पर आक्रोश व्याप्त है अगर उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया गया तो ये आक्रोश बढ़ सकता है। मुझे इस सम्बन्ध में वस्तु स्थिति का ज्ञान नहीं है। परन्तु साधारणतया जहां मतभेद हो वहां जनता की राय ही मान्य होनी चाहिए।"[12]

सरदार पटेल चतुर थे उनके ऊपर गुजराती नेताओं का प्रभाव था अतः उन्होंने 22 अप्रैल, 1948 को पंडित नेहरू के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि "सिरोही के सम्बन्ध में मेरी राजस्थान के नेताओं से कई बार बातचीत हुई है। सभी संबंधित मुद्दों पर विचार करने के बाद ही हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि सिरोही गुजरात को दिया जाना चाहिए। राजस्थान को सिरोही नहीं चाहिए। उन्हें तो गोकुलभाई भट्ट चाहिए। उनकी यह मांग सिरोही को राजस्थान को दिये बिना ही पूरी की जा सकती है।"[13]

इधर वी. पी. मेनन लिखते है कि "इस विवाद में न तो गुजरात के नेताओं ने और न ही राजस्थान के नेतृत्व ने स्थानीय जनता की इच्छाओं को जानने का प्रयास किया। सिरोही के लोकप्रिय नेता भी आपस में एक मत नहीं थे। "एक गहन अध्ययन के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि सम्पूर्ण सिरोही को बम्बई में मिलाना सही नहीं होगा।[14]

सरदार पटेल ने अन्ततः गुजरात व राजस्थान दोनों के नेताओं को सन्तुष्ट करने हेतु सिरोही के विभाजन का निर्णय लिया। गोकुल भाई भट्ट और दूसरे नेताओं को विचार विमर्श के लिए दिल्ली बुलाया गया। कोई भी राजस्थान का नेता विभाजन को लेकर खुश नहीं था। इस समय रियासती विभाग पूरी तरह गुजराती नेताओं के प्रभाव में था और वे आबू पर्वत के सैलानी केन्द्र को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध थे। अतः जनता के विरोध के पश्चात् भी सिरोही का विभाजन कर दिया गया। चतुर सरदार ने जनवरी 1950 में माउण्ट आबू सहित सिरोही का एक भाग जिसमें आबू रोड और देलवाड़ा तहसील के 89 गाँव अर्थात् 304 वर्गमील भूमि को गुजरात में मिला दिया।[15] जबकि गोकुल भाई भट्ट के जन्म स्थान हाथल सहित सिरोही का शेष भाग राजस्थान को प्रदान कर दिया गया। गोकुल भाई भट्ट सिरोही के इस विभाजन से अत्यधिक द्रवित थे।

वी. पी. मेनन इस संबंध में लिखते है कि "मैं भी व्यक्तिगत रूप से सिरोही के इस प्रकार के समाधन से खुश नहीं था क्योंकि राज्यों के इस प्रकार के विभाजन प्रशासनिक और आर्थिक समस्याएं उत्पन्न करते हैं। यह विभाजन बम्बई राज्य एकीकरण अध्यादेश, 1950 के रूप मे सामने आया और इसे 25 जनवरी, 1950 से लागू किया गया। 26 जनवरी, 1950 को जोधपुर के कमिश्नर ने सिरोही के उस भाग का कार्यभार ग्रहण किया जिसे राजस्थान में सम्मिलित किया गया था। राजस्थान सरकार ने अधिसूचना जारी करके सिरोही के क्षेत्र पर, अपने क्षेत्राधिकार को परिभाषित किया तथा उन पर अपना अधिकार प्रस्तुत किया। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं।[16]

1. शिवगंज मुख्यालय के साथ शिवगंज तहसील।
2. पिंडवाड़ा मुख्यालय के साथ पिंडवाड़ा तहसील।
3. सिरोही मुख्यालय के साथ सिरोही तहसील।
4. भंवारी मुख्यालय, आबू रोड के उत्तर में स्थित ब्लाक नं. 2 भंवारी तहसील के साथ।
5. रेओदार तहसील अधिसूचना में जारी क्षेत्रों के साथ।

सिरोही शहर को सिरोही जिले का मुख्यालय बनाया तथा इसी नाम से उप–खण्ड भी बनाया गया। 18 मार्च, 1948 को मत्स्य संघ के उद्घाटन से राजस्थान के एकीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई वह अन्ततः 26 जनवरी, 1950 को कतरे हुऐ सिरोही राज्य के विलय के साथ अपने अंतिम स्वरूप के उच्च शिखर पर पहुंच गई थी। राजस्थान को "ब" श्रेणी के राज्यों में रखा गया।

1950 के वर्ष के दौरान दो महत्वपूर्ण कार्यों को पूर्ण किया गया। पहला सिरोही को राजस्थान में सम्मिलित करवाया गया जबकि दूसरा कार्य मध्य भारत व राजस्थान के मध्य कुछ क्षेत्रों की अदला बदली का था। सरकार ने एकीकरण की प्रक्रिया को आगे **बढ़ाते** हुए मध्यप्रदेश सरकार के साथ कुछ निश्चित अन्तः क्षेत्रों के विषय में जिनके कारण सीमा निर्धारण सम्बन्धित समस्या आ रही थी। समझौते की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और समझौते पर 20 जनवरी, 1950 को हस्ताक्षर किये गए। राजस्थान के कुछ अन्तः क्षेत्र जो मध्यप्रदेश में स्थित थे उन्हें राजस्थान को दे दिया गया वही

मध्यप्रदेश के क्षेत्रों को मध्यप्रदेश सरकार को सौंप दिया गया। सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद भी सुलझा लिए गए।[17]

आबू रोड़ और देलवाड़ा तहसील को बम्बई प्रांत में मिला देने के पश्चात् सिरोही में व्यापक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। 28 जनवरी, 1950 को आबू ताल्लुका में एक जनसभा का आयोजन किया गया जिसमें इस विभाजन का विरोध किया गया। इस आंदोलन में गोकुल भाई भट्ट के अतिरिक्त बलवंत सिंह मेहता ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह आंदोलन तब समाप्त हुआ जब भारत सरकार ने अपने निर्णय पर पुनः विचार करने का आश्वासन दिया।[18] अब बंबई प्रान्त को दिये गये सिरोही के भाग को गुजरात में मिलाने पर विचार हो रहा था। विभिन्न संगठनों ने इसे राजस्थान संघ को पुनः प्रत्यर्पित करने की मांग रखी।

सितम्बर, 1951 में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने भारत सरकार के रियासती विभाग को पत्र लिखकर[19] सिरोही के शेष भागों को राजस्थान संघ को पुनः लौटाने की माँग की। भारत[20] सरकार के रियासती विभाग ने इस पत्र के जवाब में सूचित किया कि सिरोही के आबूरोड़ व देलवाड़ा तहसील का राजस्थान संघ में पुनर्विलय का मुद्दा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 3 से संबंधित है और इस पर विचार का अधिकार सामान्य चुनाव के पश्चात नई व्यवस्थापिका को ही होगा।

राजस्थान प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने भी 10 मई, 1951 को आबू क्षेत्र को राजस्थान क्षेत्र में सम्मिलित करने की मांग की।[21] 22 अपैल, 1952 को अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की राजस्थान प्रदेश कार्यकारिणी समिति में सिरोही के राजस्थान में विलय के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किये।

राजस्थान की विधान सभा में भी 22 अप्रैल, 1952 को सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास करके मांग की, कि सिरोही के अलग हुए भाग का राजस्थान में विलय किया जाये।[22] इसी मध्य गुजरात प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने भी 22 जून, 1952 को एक प्रस्ताव पारित करके बयान जारी किया कि सम्पूर्ण सिरोही को बंबई राज्य में सम्मिलित कर देना चाहिए। किन्तु गोकुल भाई भट्ट की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें संतुष्ट और प्रसन्न रखने के लिये सिरोही का एक बड़ा भाग राजस्थान तथा आबू तालूका

का एक छोटा सा भाग बंबई प्रान्त में मिला देना चाहिए।[23] इसी प्रकार राजस्थान सरकार ने इतिहासकारों व विद्वानों को एकत्रित करके पूर्व मुख्य मंत्री टीकाराम पालीवाल की अध्यक्षता में 8 सितम्बर, 1952 को एक सभा का आयोजन किया ताकि आबू और देलवाड़ा तहसील को राजस्थान में एकीकृत करवाने हेतु ऐतिहासिक तथ्यों को एकत्रित और पुष्ट किया जा सके। इसके पश्चात् एक कमेटी का गठन किया गया जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन राजस्थान पुरातत्व मंदिर के निर्देशक मुनी जिन विजय को सौंपी गई। इस कमेटी के सदस्यों ने आबू और देलवाड़ा तहसील के आस पास के प्रदेशों का दौरा किया ताकि वे 303.8 वर्ग मील (786.8 वर्ग कि.मी.) क्षेत्र तथा इस पर निवास करने वाली 40900 की जनसंख्या के भाग्य का फैसला कर सकें। इस समिति के सदस्यों ने गांव–गांव घूमकर आम जनता तथा विशेषज्ञों से राय मांगी तथा सलाह मशवरा करके भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर आबू के राजस्थान के विलय के पक्ष में अपना निर्णय दिया।[24]

दूसरी तरफ महाराजाधिराज अजीत सिंह (पाली–सिरोही लोक सभा क्षेत्र से सांसद) ने 24 दिसम्बर, 1953 को राज्य पुनर्गठन आयोग को राजस्थान सरकार के पक्ष में एक ज्ञापन दिया जिसमें उन्होंने आरोप लागाया कि सिरोही की जनता को जनमत संग्रह के अधिकार अथवा स्वयं निर्णय से वंचित किया जा रहा है जबकि इससे पहले भरतपुर और धौलपुर की जनता को राजस्थान संध में विलय के संबंध में यह अधिकार दिया जा चुका है।[25]

भारत सरकार द्वारा स्थापित राज्य पुनर्गठन अयोग, को राजस्थान सरकार ने प्रार्थना पत्र भेज कर सूचना मांगी कि, यदि राजस्थान राज्य के किसी प्रदेश पर कोई दूसरा राज्य दावा कर रहा हो अथवा राज्य ने जिन प्रदेशों पर अब दावा कर रखा है उनके संबंध में कोई दूसरा राज्य आयोग के समक्ष वाद पेश कर रहा हो, तो उसकी सूचना राज्य को दी जाये ताकि सरकार उस संबंध में अपना पक्ष आयोग के सामने रख सके, किन्तु राज्य को इस संबंध में आयोग की ओर से कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। लेकिन बड़ी संख्या में आयोग को प्राप्त ज्ञापन स्मृति पत्रों में विभिन्न गैर सरकारी, निजी संस्थाओं और राज्यों ने राजस्थान के कुछ निश्चित भू भागों पर अपना दावा प्रस्तुत किया जिनकी प्रतियाँ सरकार को अनाधिकारिक तौर पर प्राप्त हुई और इन

ज्ञापन स्मृति पत्रों के आधार पर बड़ी संख्या में राज्य के जिलों पर अन्य राज्यों ने अपने दावे प्रस्तुत कर रखे थे। तब राज्य सरकार ने इन ज्ञापनों के विरोध में बचाव करते हुए आयोग के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत किया।

राजस्थान सरकार ने उन प्रदेशों पर, जिन पर वह दावा कर रही थी तथा उन क्षेत्रों के लिये जिन पर दूसरे राज्य दावा कर रहे थे। दोनों के लिये अपना बचाव करने हेतु एक उपसमिति का गठन किया, जिसका कार्य इस संबंध में तथ्यों की खोज करना था। इस संबंध में 20 अक्टूबर, 1955 को एक विशेष केबिनेट मिटिंग का आयोजन किया गया, जिसमें राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपार्ट के विषय में विचार किया गया।[26] इस प्रकार राजस्थान के जन मानस ने वो हर संभव प्रयास किया जिसमें आबू व देलवाडा का भू भाग राजस्थान को प्राप्त हो जाये।

अजमेर का विलय

ब्रिटिश काल में अजमेर चीफ कमिश्नर प्रांत कहलाता था। स्वतंत्रता से पूर्व के काल में अपनी इस विलक्षण स्थिति के कारण अजमेर एकीकरण की प्रक्रिया में राजस्थान संघ के निर्माण की रूपरेखा से बाहर रहा। अब इस क्षेत्र को राजस्थान संघ में विलीन करने के प्रयास शुरू हुए। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजपूताना प्रांतीय सभा की सदैव यह मांग रही कि वृहद राजस्थान में न केवल प्रांत की सभी रियासतें वरन् अजमेर का क्षेत्र भी शामिल होना चाहिए। परन्तु अजमेर का कांग्रेस नेतृत्व कभी इस पक्ष में नहीं रहा।

सितम्बर, 1951 में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने भारत सरकार के रियासती विभाग को पत्र लिखकर अजमेर राज्य के राजस्थान में विलय की मांग प्रस्तुत की। रियासती विभाग ने इस पत्र के जवाब में लिखा कि इस विषय पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है। संसद पूर्व में भी इस मुद्दे पर विचार कर चुकी है। जैसे ही विभाग किसी निर्णय पर पहुँचेगा इस विषय में राजस्थान सरकार को सूचित किया जायेगा।

भारत के संविधान के अनुसार भारत में तीन श्रेणी के राज्य थे। "अ" श्रेणी के राज्य वे थे जिन्हें ब्रिटिश शासन काल में प्रांत कहा जाता था। जैसे पू. पंजाब, बिहार, बंबई, उत्तर प्रदेश, मद्रास इत्यादि। "ब" श्रेणी के राज्य वे थे जिन्हें स्वंतत्रता के बाद छोटी बड़ी रियासतों के एकीकरण से बनाया गया था जैसे–राजस्थान, मध्यभारत, त्रावणकोर, कोचीन आदि। "स" श्रेणी में वे छोटे छोटे राज्य थे जिन्हें ब्रिटिश काल में चीफ कमिश्नर के प्रान्त कहा जाता था। जैसे अजमेर, दिल्ली आदि। भारत सरकार ने जब 1951 में वर्ग "स" से संबंधित राज्यों का अधिनियम पारित किया तब यह विधेयक अजमेर पर भी स्वतः ही लागू हो गया। अजमेर को "स" वर्ग का राज्य घोषित करके वहाँ [27] पर व्यवस्थापिका की स्थापना की घोषणा की गई।

1952 में अजमेर में प्रथम आम चुनाव हुए तथा हरिभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में कांग्रेस मंत्रिमंडल सत्ता में आया।[28] हरिभाऊ उपाध्याय अजमेर का विलय नहीं चाहते थे। इसलिये यह तर्क देने लगे कि प्रशासन की दृष्टि से छोटे राज्य ही बनाये रखना उचित है।

दूसरी तरफ राजस्थान सरकार ने भौगोलिक, भाषायी तथा प्रजातीय आधार पर अजमेर को हमेशा से अपना आंतरिक भू भाग बताते हुए इसे राजस्थान संघ में सम्मिलित करने का दावा प्रस्तुत किया। राजस्थान सरकार ने तर्क दिया कि स्वतंत्रता पूर्व की पुरानी व्यवस्था के अन्तर्गत जब बहुत से छोटे–छोटे राज्य अपना अलग अलग स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व रखते थे, ऐसे में किसी राज्य के अस्तित्व के लिये उसकी व्यवहार्यता या जीवन क्षमता को मुख्य कसौटी या मानदण्ड नहीं माना जाता था। उस समय अजमेर के चहुँओर बहुत सी छोटी बड़ी रियासतें मौजूद थी। इसलिए अजमेर भी एक अलग राज्य बना रहा। ब्रिटिश सरकार ने राजपूताना में अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु इसे एक चीफ कमिश्नर प्रांत बनाये रखा किन्तु अब न तो ब्रिटिश शासन रहा न उनके स्वार्थ। अतः अजमेर को राजस्थान में विलीन कर दिया जाना चाहिए। यदि केन्द्र सरकार अजमेर को विकास की ओर उन्मुख प्रशासन प्रदान करने के लिये उसे सीधे केन्द्रशासित प्रदेश बनाती है, तो यह अजमेर के पृथक अस्तित्व को बनाये रखने के लिये बहुत हद तक न्यायोचित कारण कहा जा सकता है। किन्तु यहां पर ऐसा

कोई विचार नहीं है।[29] राजस्थान सरकार ने अजमेर के राजस्थान संघ में विलय के पक्ष में अनेक कारण विस्तार पूर्वक लिखे जो निम्नलिखित है।

1. अजमेर राज्य और राजस्थान संघ के मध्य में जो सीमा बनाई गई है वह कृत्रिम है। राज्य को राजस्थान से अलग करने के लिये किसी प्रकार का कोई प्राकृतिक अवरोध नहीं है।

2. वर्षा, मृदा, जलवायु तथा वनस्पति इत्यादि की दृष्टि से अजमेर में वही स्थिति है जो कि शेष राजस्थान में है।

3. अजमेर व राजस्थान दोनों ही जगह की जनता के रीतिरिवाज, भाषा, खानपान, वेशभूषा, आभूषण, रहन–सहन, मेले तीज, त्यौहार, धार्मिक कृत्य, अंधविश्वास इत्यादि धारणाएं समान है।

4. यदि अजमेर को एक स्वतंत्र राज्य बने रहने दिया जाता है तो यह भारत सरकार की उस नीति के खिलाफ होगा जिसमें उन्होंने यह निर्धारित किया कि किसी ऐसे राज्य का निर्माण नहीं किया जायेगा जो अपना अस्तित्व बनाये रखने में समर्थ न हो। ऐसी राजनीतिक इकाई जो जीने योग्य नहीं है उन्हें सरकार समर्थन नहीं देगी।[30] अजमेर के राजस्थान में विलय के पक्ष में दिये कुछ अन्य कारणों में एक कारण यह भी दिया गया कि "स" वर्ग के राज्य ऐसे अनियोजित विदेशी अन्तः क्षेत्र बन जायेंगे जिनका अपने चहुँमुखी क्षेत्र से गहरा आर्थिक संबंध होगा। इसलिये आगे चलकर यह राज्य लोकतांत्रिक प्रक्रिया के निर्धारित परिणामों को प्राप्त करने में असफल सिद्ध होंगे।

अंत में राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि यदि हम अजमेर को सम्मानजनक स्थिति प्रदान करना चाहते हैं तो हमें राजस्थान व अजमेर के भाषायी सांस्कृतिक और भौगोलिक संबंधों को स्वीकार करते हुए, इनका सम्मान करना चाहिए।

एकीकरण का अंतिम चरण

राज्य पुनर्गठन आयोग, अधिनियम 1956 के अन्तर्गत राज्य को "ब" श्रेणी के राज्यों में रखा गया। राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए 1

नवम्बर, 1956 को राजस्थान राज्य का एकीकरण सम्पन्न हुआ।[31] जिसमें सिरोही के आबू रोड व देलवाड़ा तहसील के क्षेत्र को पुनः राज्य में सम्मिलित कर दिया गया। इस प्रकार पूर्व में राजस्थान के साथ किये गये अन्याय का निराकरण हो गया [32] तथा अजमेर राज्य भी राजस्थान को प्रदान कर दिया गया।

अब राज्य की सीमा में निम्न लिखित परिवर्तन किये गये

1. विद्यमान राजस्थान राज्य के कोटा जिले के सिरोंज सब–डिवीजन को छोड़कर संपूर्ण भाग राज्य को मिल गया तथा सिरोंज सब डिविजन को नवगठित मध्यप्रदेश राज्य में सम्मिलित कर दिया गया।
2. पुराने अजमेर राज्य का संपूर्ण भू भाग, राजस्थान में सम्मिलित कर दिया गया।
3. भूतपूर्व बंबई राज्य के आबूरोड तथा देलवाड़ा तहसील को भी राजस्थान के सिरोही जिले में सम्मिलित कर दिया गया।
4. मध्यप्रदेश राज्य के सुनेल टप्पा क्षेत्र को राजस्थान को प्रदान कर दिया गया।[33]

अजमेर के राजस्थान में विलय के साथ ही संभागीय आयुक्त के मुख्यालय को जयपुर से अजमेर स्थानान्तरित करके, 1 नवम्बर, 1956 से नई व्यवस्था को लागू कर दिया गया। किशनगढ़ सब डिवीजन को जयपुर जिले से अजमेर में सम्मिलित कर दिया गया।[34]

एक दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन राजप्रमुख के पद का अन्त था। "अ" श्रेणी के राज्यों के प्रमुख राज्यपाल कहलाते थे। जबकि "ब" श्रेणी के राज्यों के प्रमुख को राजप्रमुख कहा जाता था। राज्यपाल और राजप्रमुख दोनों की नियुक्तियां राष्ट्रपति ही करते थे। परन्तु राजप्रमुख की नियुक्ति राज्य में विलीन रियासतों के भूतपूर्व शासकों में से ही की जाती थी। राजस्थान में भूतपूर्व जयपुर रियासत के शासक राजा मानसिंह को पहला राजप्रमुख बनाया गया। वे 31 अक्टूबर, 1956 तक इस पद पर बने रहे। संविधान के सातवें, संशोधन द्वारा 1 नवम्बर, 1956 से राजप्रमुख के पद को समाप्त करके "अ" और "ब" श्रेणी के राज्यों का भेद समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार राजस्थान में राजशाही के अंतिम प्रतीक चिन्ह "राजप्रमुख" के पद के स्थान पर सरदार गुरूमुख निहाल सिंह को राज्य का पहला राज्यपाल नियुक्त किया गया।

राजस्थान के वर्तमान स्वरूप का विश्लेषण

इस प्रकार वर्ष 1948 से प्रारंभ होकर वर्ष 1956 तक की अवधि में अनेक परिवर्तनों के पश्चात राजस्थान का जो स्वरूप सामने आया वह 1991 तक बना रहा। राज्य में जिलों की संख्या अजमेर जिले के बनने से बढ़कर 26 हो गई थी। अब राज्य का क्षेत्रफल बढ़कर 1,33,212 वर्ग मील (3,42,429 वर्ग किमी) हो गया। और अब राजस्थान देश का तीसरा सबसे बड़ा राज्य बन गया था।[35]

राजनीतिक एकीकरण के कठिन कार्य को प्राप्त करने के पश्चात प्रशासनिक एकीकरण का कार्य पहली प्राथमिकता थी। प्रशासक, भारत सरकार के निर्देशन में संपूर्ण राज्य में एक सामान्य और एकीकृत प्रशासनिक ढांचा खड़ा करना चाहते थे। प्रशासनिक उद्देश्य से राज्य को 5 संभागों, 26 जिलों तथा 78 उपखण्डों में विभाजित किया गया जो कि आगे तहसील और उपतहसील में विभाजित कर दिये गये। कुछ प्रशासनिक अधिकारियों ने यह कार्य जिस धैर्य, प्रसन्नता, उत्साह व शीघ्रता के साथ किया वह स्मरणीय है।

राजस्थान के एकीकरण को हमने विभिन्न चरणों में प्राप्त किया। एकीकरण की यह प्रक्रिया न सिर्फ राजनैतिक चतुराई से फलीभूत हुई अपितु एकीकरण के वास्तुशिल्पकारों ने छल, कपट व प्रपंच का भी प्रयोग किया। विलक्षण बुद्धि वाले यह महानायक, मर्मज्ञता तथा विशेषज्ञता से परिपूर्ण होकर सक्रिय रहे। विलय का कार्य महानायकों के लिये दो– धारी तलवार से खेलने के समान था। एक तरफ सामान्य जनमानस उनकी आशाएं, अपेक्षाएं और स्वप्न थे, तो दूसरी तरफ शासकों के मान, अपमान व अहंकार से जुड़े मसले थे। इस संपूर्ण प्रक्रिया में विभिन्न राज्यवंशों की आत्मग्रंथियों व मनोविकारों का गहरा ज्ञान होना आवश्यक था। विशेषकर सरदार पटेल को इन शासकों की मानसिक स्थिति का गहरा ज्ञान था।[36]

उन्होंने एक तरफ तो रजवाड़ों को छोटी–मोटी रियायतें देकर उनकी भावनाओं का ध्यान रखा। वहीं स्वतंत्रता संग्राम में जमकर सक्रिय रहने वाले लोक नेतृत्व और सामान्य जनता को भी आश्वस्त किया, कि ये रियायतें राष्ट्र द्वारा एकीकरण के लिये अदा की जाने वाली छोटी–सी कीमत है। उन्होंने इन शासकों के विलय पत्र पर

हस्ताक्षर के कार्य को त्याग की संज्ञा दी। साथ ही इस बात के लिये भी आश्वस्त किया कि राष्ट्र उनके इस महान त्याग को हमेशा याद रखेगा। यथार्थ में वे यह महसूस करते थे कि प्रिवीपर्स और राजप्रमुख की गद्दी छोटी मोटी कीमत है, उस कीमती और महान योगदान के समक्ष जिसके कारण हम संयुक्त भारत का निर्माण करने में सफल हुए है। जब कभी सरदार पटेल का उदारवादी दृष्टिकोण आत्मसमर्पण करवाने में विफल हो जाता तब वे चतुराईपूर्ण नीति अपनाकर अपना उद्देश्य प्राप्त करते थे।

तथापि राजस्थान के शासकों के लिये यह दिल तोड़ देने वाला अनुभव था। भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने के अवसर पर रजवाड़े अपनी स्थिति कम या ज्यादा जो भी हो सुरक्षित अनुभव करना चाहते थे। ताकि अंग्रेजों के भारत से प्रस्थान के पश्चात् वे उत्तराधिकारी सरकार के समक्ष बिना किसी उपकार या वैधानिक बंधन के अपने आप को सम्प्रभु सत्ता सिद्ध कर सकें। किन्तु व्यवहार में इनके सामने संसाधनों रहित छोटे–छोटे राज्यों को जीने योग्य स्वतंत्र इकाई बनाने में कठिनाईयां पेश आ रही थी और इसी कारणवश वे अपने स्वतंत्र रहने के निर्णय पर दोबारा सोचने पर विवश हुए। या तो वे अपने आप को स्वतंत्र बनाये रखे और प्रतिरक्षा, संचार व अर्थव्यवस्था संबंधी कठिनाईयों का सामना करें यह एक विकल्प था। तो दूसरी ओर स्वतंत्र भारत का हिस्सा बनकर भविष्य के लिये भारत संघ से मोलभाव करें तथा अपनी शर्तों के साथ अपने लिये रियायतें सुरक्षित करें।[37]

अब उनके सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं था। एक एक करके शासक आये और गणतंत्रिय प्रक्रिया में सम्मिलित होने के लिये तैयार हुए। स्वतंत्रता से पूर्व जहां ये शासक अपने राज्य में लोकतांत्रिक व्यवस्था की मांग को अस्वीकार करते थे। वहीं अब आधुनिक राजनीतिक आचरण की प्रक्रिया में, ये मात्र तमाशबीन बनकर रह गये। आधुनिक राजनीतिक प्रक्रिया जो सामान्य से सामान्य जनमानस को भी आश्वस्त करती है कि राजनीतिक शक्ति व सत्ता को नियंत्रित करने में उसकी विस्तृत सहभागिता और हिस्सेदारी होगी।

इस प्रकार राजस्थान राज्य भी संपूर्ण देश के साथ प्रगति व लोकतन्त्रीकरण के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए तैयार हुआ। राजस्थान के एकीकरण का जो स्वप्न राज्य की जनता व नेताओं ने मिलकर संजोया वह अब पूर्ण हुआ। आधुनिकीकरण और गणतन्त्रीकरण के नए प्रतिमान स्थापित करके राज्य ने अपनी कदमताल शुरू की, इस निश्चय के साथ कि उनका भविष्य उज्ज्वल होगा। राज्य के रजवाड़ों की अपने अभिमान और अलग पहचान बनाए रखने की कोशिश ने, एकीकरण की प्रक्रिया को और अधिक पीड़ादायी और लम्बा बना दिया था। फिर भी समय की आवश्यकता और जनमत के दबाव के आगे उन्हें झुकना पड़ा। कलम के एक ही झटके ने उनके साम्राज्यों को मटियामेट कर दिया तथा "तलवार से ज्यादा शक्तिशाली कलम होती है" इस कहावत को चरितार्थ कर दिया। वी. पी. मेनन के शब्दों में "हमने राज्य तथा देश की समस्त कृत्रिम बाधाओं को दूर किया है ताकि एक सुसंगठित प्रशासन और मजबूत अर्थव्यवस्था की नींव रखी जा सके। किन्तु वास्तविक एकीकरण तो जनता के दिल और मस्तिष्क में होना बाकी है। यह एक रात में पूरा नहीं किया जा सकता क्योंकि इस पावन भूमि की जनता को अपनी क्षेत्रीय प्राथमिकताओं और वफादारियों से बाहर निकल कर एक विस्तृत दृष्टिकोण और गहरी सोच बनाने में थोड़ा वक्त देना चाहिए।"[38]

हस्तांतरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया अनेक बार विरोधाभासपूर्ण स्थितियों और भावनात्मक यातनाओं से होकर गुजरी, जो कि सम्भवतः इतिहास की अत्यधिक रोचक और उलझी हुई घटनाओं का वृतान्त प्रस्तुत करती है। राजतन्त्र से नई राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप अपने आपको ढालने में राज्य की जनता ने लचीलेपन और आत्मस्वीकृति का परिचय दिया। उनका यह कदम इतिहास में एक अत्याधुनिक और साहसपूर्ण निर्णय के रूप मे दर्ज हुआ।

इस प्रकार छह चरणों में वर्तमान राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ। राजस्थान के निर्माण में प्रजामण्डलों के कार्यकर्ताओं और नेताओं विशेषकर जयनारायण व्यास, माणिक्य लाल वर्मा, हीरालाल शास्त्री, गोकुल भाई भट्ट आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। देशी राज्यों का भारतीय संघ में विलय और लोकतंत्रीकरण की सफल प्रक्रिया में सरदार पटेल व उनके सचिव वी. पी. मेनन के नाम सदैव स्मरणीय रहेंगे। राजस्थान का जो स्वरूप हमारे सामने निखर कर आया है, वह हमारे हजारों कर्मठ स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान, त्याग और तपस्या का परिणाम है।

संदर्भ सूची

1. वी. पी. मेनन – इन्टिग्रेशन ऑफ दी इंडियन स्टेट पृ. 307
2. उपरोक्त – पृ. 307–308
3. बी. एल. पानगडिया – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 108
4. आर.पी.व्यास – आधुनिक राजस्थान का वृहद् इतिहास पृ. 382
5. a आर.एल.हाडा – हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल इन प्रिंसली स्टेट्स पृ. 321–22
   b बी.एल.पानगडिया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 108
6. वी.पी.मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 308
7. a आर.पी.व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास पृ. 201
   b बी.एन. ढोनडियाल– राजस्थान डिस्ट्रीक्ट गजेटियरस सिरोही पृ. 82
8. वी.पी.मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 310
9. a आर.पी.व्यास– आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास पृ. 395
   b वी.पी.मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 310
10. दुर्गादास– सरदार पटेल्स कोरस्पोन्डेंस, जिल्द–7 पृ. 397
11. हीरालाल शास्त्री– प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र पृ. 334
12. दुर्गादास– सरदार पटेल्स कोरस्पोन्डेंस, जिल्द–7 पृ. 396–397
13. उपरोक्त पृष्ठ 396–397
14. वी.पी. मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 310
15. आर.पी. व्यास–आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास पृ. 395
16. राजस्थान गैजट एक्टराऑर्डिनरी वाल्यूम I न. 166, दिनोक 7 फरवरी 1950, राजस्थान सरकार के प्रशासनिक विभाग की अधिसूचना न. एफ – 2(7) Pol.-B/50 दिनांक 7 फरवरी 1950
17. राजस्थान गजट एक्स्ट्राआर्डिनरी वॉलयूम । न. 110, दिनोक 24 नवम्बर 1949 संयुक्त राज्य राजस्थान सरकार – जयपुर।
18. a बी.एल. पानगडिया– राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम पृ. 143
    b आर.पी. व्यास– आधुनिक राजस्थान का बृहद इतिहास पृ. 395
19. गोपनीय डी. ओ. लेटर न. HCM/SC/F1(10)Pol.1 A 51, दिनांक 7 सितम्बर 1951 जयनारायण व्यास (CM) द्वारा श्री गोपालास्वामी अयंगर राज्यो के मंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली फाईल न. 2/SRC/54/claim

20. डी.ओ.पत्र क्रमांक एफ 10 (57) पी ए /51 दिनांक 21 सितम्बर 1951 श्री वी. शंकर संयुक्त सचिव, भारत सरकार, राज्य मंत्रालय नई दिल्ली द्वारा मुख्मंत्री, राजस्थान, वाईड फाइल क्रमांकः 2/src/54/claim ऑफ राजस्थान/इन्टर मिडइरी/डिपोजिटरी/ जयपुर/आरएसए
21. राजस्थान राज्य के आबू तथा देलवाड़ा क्षेत्र जो सिरोही के भाग हैं पर अपना दावा प्रस्तुत करता है। जो कि वर्तमान में बंबई में सम्मिलित हैं।
महाराजाधिराज अजीत सिंह (पाली–सिरोही क्षेत्र से लोक सभा के तत्कालीन सांसद) द्वारा राज्य पुर्नगठन आयोग को दिया गया ज्ञापन दिसम्बर 24, 1953
22. आबू समिति का प्रतिवेदन (सारांश) राजस्थान सरकार जयपुर (1955) पृ. 2 & 6–21
23. महाराजाधिराज अजीत सिंह द्वारा राज्य पुनर्गठन आयोग को दिया गया ज्ञापन, 24 दिसम्बर 1953
24. आबू समीति प्रतिवेदन (सारांश) राजस्थान सरकार जयपुर (1955) पृ. 2 & 6–21
25. महाराजाधिराज अजीत सिंह द्वारा राज्य पुनर्गठन आयोग को दिया गया ज्ञापन दिसम्बर 24, 1953
26. केबिनेट परिपत्र नं. एफ1/cab.sec/55 दिनांक– 19 अक्टूबर 1955 राजस्थान सरकार वाईड फाइल न. 24SRC/54/ड्राफट ऑफ जनरल डिफेंस मैमोरेडा टू SRC/इन्टरमिडाइरी डिपोजिटरी, जयपुर रा.रा.अ.
27. बी.एन.धोनियाल– राजस्थान डिस्ट्रीक्ट गजेटियरस अजमेर, अलवर – मार्च 1966. पृ. 93
28. अजमेर–मेरवाड़ा के मंत्रिमंडल में हरिभाऊ उपाध्याय के अतिरिक्त अन्य सदस्य बाल कृष्ण कौल और बृजमोहन शर्मा
29. उपरोक्त पृष्ठ 94–95
30. राज्य पुनर्गठन आयोग 1954 को राजस्थान सरकार के विचार एवं सुझाव अपेन्डिक्स – II पृ. 1–2
31. राजस्थान के प्रशासन के उपर एक रिपोर्ट 1956–57 (1 अप्रेल 1956 से 31 मार्च, 1957) राजस्थान सरकार जयपुर , पृ सं. 1 व 2
32. वी.पी.मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृष्ठ 270–73 राजस्थान डिस्ट्रीक्ट गजेटियर सिरोही पृ. 82–83
33. राज्य पुनर्गठन आयोग रिपोर्ट 1955 पृ 75, 136 वी पी मेनन इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 266
34. पेड नं. 17, ओल्ड एस आर नं. 417/22/6/56/कॉन्फ–1956 अजमेर राज्य की सेवाओं का राजस्थान के साथ एकीकरण से संबंधित पत्राचार/रा.रा. अभि. बीकानेर।

35. राजस्थान के प्रशासन पर एक रिपोट 1956–57 (1 अप्रेल 1956 से 31 मार्च 1957) राजस्थान सरकार जयपुर पृ. 1–2

36. वी.एस.गुप्त और मोहिनी गुप्त – सरदार वल्लभ भाई पटेल पृ 203

37. करणी सिंह – द रिलेशन्स ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ सेन्ट्रल पावर (1465 से 1946) पृ. 334

38. वी.पी.मेनन– इन्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स पृ. 469

अध्याय : नवम्

निष्कर्ष एवं आत्मकथ्य

पराधीनता के लगभग दो सौ वर्षों के काल में ''फूट ड़ालो और राज करो'' की नीति अंग्रेजों का मूल मंत्र रही। जाने–अनजाने इसी नीति का अनुसरण करते हुए उन्होंने समूचे भारत को राजनीतिक दृष्टि से ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों में विभाजित कर दिया। सदियों तक मुगलों की अधीनता में रह चुके राजपूताने के रजवाड़ों को ब्रिटिश ताज का आधिपत्य स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। भारतीय स्वाधीनता के मार्ग में राजा–रजवाड़ों को बाधा के रूप में इस्तेमाल किया गया। ब्रिटिश परमोच्चसत्ता का मूल लक्ष्य भारत में स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य को सुरक्षा प्रदान करना था। इसी उद्‌देश्य की पूर्ति हेतु देशी नरेशों के सम्मान और अधिकारो की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया। इस कारण 1857 के बाद ब्रिटिश सरकार की नीति भारतीय नरेशों, जागीरदारों और प्रतिक्रियावादी तत्वों के संरक्षण की रही। जिनका प्रयोग वह भारत के प्रगतशील तत्वों अर्थात भारत के स्वतंत्रता सेनानियों के विरोध में करती रही। समस्त अंग्रेजी शासन काल में देशी रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बनाए रखने के उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता रहा।

देशी नरेशों की स्थिति अब सामन्तों के समान हो गई थी। रजवाड़ों की शक्ति को कमजोर करने के लिये जनता व शासक वर्ग में कभी आपसी मेल या एकता न हो और अनभिष्ट लोगों के हाथों में शक्ति न जाने पाये इसका अंग्रेजों ने विशेष रूप से ध्यान रखा। वंशानुगत राजभक्त प्रधानों और सहायक वर्गों की प्रशासन में नियुक्ति के स्थान पर बाहर से अपने विश्वस्त लोगों को देशी रियासतों में उच्च पदों पर नियुक्त किया जो ब्रिटिश राजनीतिक विभाग के निर्देश पर कार्य करते और राजा व प्रजा के बीच गुप्तचरों की भूमिका निभाते थे। राजपूताना में जगह–जगह अंग्रेज अधिकारियों

की नियुक्ति हो जाने से राज्यों के नगण्य मामलों में भी हस्तक्षेप एक सामान्य बात हो गयी थी।

ब्रिटिश आधिपत्य से पूर्व राजा और सामन्तों की शक्ति का आधार सामान्य जन–मानस था अतः उन पर जनमत का अंकुश रहता था। अंग्रेज सरकार से संधियां करके उन्हें बाहरी आक्रमण और आंतरिक विद्रोह के खतरों से मुक्ति मिल चुकी थी। देशी नरेश अपने कर्त्तव्यों को भूल कर निरंकुश और स्वेच्छाचारी होते गये। एक देशी नरेश को मखमली डिबिया में बंद मोती के समान महल की चार दीवारी के भीतर रखा जाता और जनसाधारण की वहाँ तक पहुंच नहीं थी। ऐसे भी राज्य थे जहाँ, जानवरों की स्थिति मनुष्यों से बेहतर थी।

अंग्रेजी संपर्क के कारण पाश्चात्य जीवन पद्धति के रंग में रंगा शासक वर्ग पूरी तरह अकर्मण्य व विलासी हो गया। शासक वर्ग की बढ़ती आवश्यकताओं और नित नई मांगों के कारण किसानों के परम्परागत हित भी असुरक्षित हो गये थे। इसलिए ग्रामीण समाज में देशी राजाओं और उनके सामंतों के अत्याचारों के विरोध में धीरे–धीरे असंतोष पनपने लगा। यही करण है कि राजपूताना में सर्वप्रथम विद्रोह का झण्डा अशिक्षित और गरीब कृषक वर्ग ने सबसे पहले उठाया। इसी दिशा में आदिवासी भीलों ने भी अपनी आवाज बुलंद की। आर्य समाज के बढ़ते प्रभाव, प्रेस के आगमन, राष्ट्रीय नेताओं की गतिविधियों, सभा–सम्मेलन इत्यादि के कारण राजपूताना के जनमानस में चेतना का संचार हुआ। यह वे कारण थे जिन्होंने देशी रियासतों की शहरी व शिक्षित जनता के मन में रियासतों के कुशासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना का संचार किया।

राजपूताना की इन रियासतों में स्पष्ट रूप में राजनीतिक गतिविधियों का संचालन 20 वीं शताब्दी के दूसरे दशक से माना जा सकता है। यह प्रदेश लगभग 20 छोटी–बड़ी रियासतों में बंटा हुआ था यही कारण रहा कि प्रदेश स्तर पर यहां कभी भी संगठित राजनीतिक आंदोलन नहीं चलाया जा सका। इन रियासतों में न एक समान कानून व न्याय व्यवस्था थी न पुलिस प्रशासन, लेकिन एक बात सभी में समान थी– आलोचना को सहन करने की शक्ति किसी भी शासक में नहीं थी। इसलिए देशी रियासतों में शासन सुधार के लिये कोई भी आंदोलन चलाना ब्रिटिश भारत की अपेक्षा

अधिक कठिन था। ऐसा कोई भी आंदोलन राजद्रोह माना जाता था। परम्परागत सामाजिक व्यवस्था और सामंती प्रभाव के कारण इस प्रदेश की जनता मानसिक रूप से राजा को पृथ्वी पर ईश्वर का स्वरूप मानती रही इस कारण भी यहां के विरोध प्रदर्शनों की राजनीतिक सीमाएं मार्यादित कर दी गई। इन सब समस्याओं के अतिरिक्त एक सबसे बड़ी समस्या रियासती जनता के सामने यह थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधी जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेता देशी रियासतों के मामलों में किसी प्रकार का नेतृत्व अथवा मार्गदर्शन प्रदान करने को तैयार नहीं थे। रियासतों के मामालों को वे पूरी तरह रियासती शासकों का निजी मामला मानते थे।

ऐसी निराशापूर्ण परिस्थितियों में भी रियासती जनता ने अपने प्रयास जारी रखते हुए राजपूताना–मध्य भारत सभा और राजस्थान सेवा संघ जैसे संगठनों के माध्यम से राजनीतिक जन–जागरण का बीड़ा उठाया। राजपूताना में जन–जागरण की अलख जगाने वाले नेतृत्वकर्ताओं ने यह भली–भाँति समझ लिया था कि राजाओं से सीधे–सीधे बैर मोल लेना उचित नहीं इसलिए सेवा और सुधार के माध्यम से रियासतों की अशिक्षित व गरीब जनता को जन–आंदोलन से जोड़ने का प्रयास किया गया। समाज के मध्यमवर्ग से निकले जन–आंदोलन के इन सिपाहियों की अग्रिम पंक्ति अध्यापकों की थी। साधु सीताराम दास, जयनारायण व्यास, त्रिलोकचंद माथुर, गोपीलाल यादव, हरिदेव जोशी, गौरीशंकर उपाध्याय अर्जुनलाल सेठी, स्वामी कुमारानंद ये सभी पाठशालाओं के संचालक थे और अध्यापन कार्य के माध्यम से जन–जागृति में संलग्न थे। दूसरी पंक्ति वकील व लेखकों की थी और बाद में अन्य सामान्य जन आते थे। राजपूताना में राजनीतिक गतिवधियों का यह दौर मंथर गति से चल रहा था। 1921 में जब गांधी ने अहिंसक असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव रखा तथा आंदोलन का आह्वान किया तब बिजौलिया, बूँदी, बेगू बिसाड तथा शेखावटी क्षेत्र की जनता ने भी अपने आंदोलन को शुरू किया। इनके अतिरिक्त भरतपुर, जोधपुर तथा जयपुर में भी आंदोलन चले।

अब राजपूताना के राजनीतिक आंदोलन का संचालन करने के लिए एक ऐसे केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी जो रियासती जनमानस को दिशा–निर्देश दे सके और इसकी पूर्ति की ''अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद''

ने जिसकी 1927 में बम्बई में स्थापना हुई। इसका उद्देश्य देशी रियासतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था। चूंकि प्रत्येक देशी रियासत में विभिन्न राजनीतिक समस्यांए थी और वे अपने स्थानीय स्त्रोतों पर इतना अधिक निर्भर थे कि किसी बाहरी विचारधारा पर निर्भर रहना कठिन था। इसलिए राजपूताना की रियासतों में वास्तविक जनजागृति व जनचेतना का संचार अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की स्थानीय शाखाओं ने किया जिन्हें हम ''प्रजामण्डल'' या ''लोकपरिषद'' के नाम से जानते हैं। 1931 से 1946 ई. के बीच राजपूताना की लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डलों का गठन किया गया और आगे का संघर्ष इन्हीं के माध्यम से लड़ा गया। 1938 ई. से पूर्व तक रियासतों में ब्रिटिश भारत के समान संवैधानिक तथा दैनिक महत्व की गतिविधियाँ करना सम्भव ही नहीं था, इसलिए इन संगठनों की गतिविधियां धीरे–धीरे चलती रहीं।

एक ओर तो राजाओं और उनकी रियासतों की ऐसी निरंकुश स्थिती थी और दूसरी ओर राजा लोग अपने अधिकारों की रक्षा के लिये निरंतर चितित रहते थे। ब्रिटिश सरकार ने भारत में संवैधानिक सुधारों के नाम पर राजाओं के अधिकारों एवं आत्म गौरव की रक्षा करने के उद्देश्य से 1921 ई. में 'नरेन्द्र मण्डल' की स्थापना की। इससे राजाओं को ब्रिटिश सरकार के समक्ष मजबूती से अपनी बात रखने का मंच मिला किंतु देशी राज्यों की जनता को कोई प्राप्ति नहीं हुई। नरेन्द्र मण्डल की स्थापना के दो परिणाम सामने आये। पहला तो यह कि देशी नरेशों ने नरेन्द्र मण्डल के माध्यम से अपनी सामूहिक शक्ति द्वारा ब्रिटिश सत्ता पर दबाव डालकर अपनी प्रभुसत्ता को प्रभावी बनाने का मंच प्राप्त कर लिया तथा राजाओं की यह एकजुट शक्ति ब्रिटिश भारत के नेताओं के समक्ष मजबूत दीवार बनकर खड़ी हो गयी। नरेन्द्र मण्डल की स्थापना का दूसरा परिणाम जन–प्रतिक्रिया के रूप में सामने आया। राजाओं को इस प्रकार संगठित होते हुए देखकर देशी रियासतों की प्रजा को राजाओं की निरंकुश और स्वेच्छाचारिता के शिकंजे से मुक्ति पाने तथा नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये सामूहिक रूप से संगठित होने की प्रेरणा मिली।

देशी रियासतों की जनता के प्रति कांग्रेस की नीति भी धीरे–धीरे सहानुभूतिपूर्ण होती जा रही थी। 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस के संविधान से वह धारा

निकाल दी गयी जो राज्यों में हस्तक्षेप के विरुद्ध थी। यह एक ऐतिहासिक घटना थी जिससे देशी राज्यों में संघर्षरत जन प्रतिनिधियों को मौलिक अधिकारों तथा प्रजातांत्रिक संस्थाओं के लिये संघर्ष करने हेतु नैतिक समर्थन मिला। 1937 ई. के निर्वाचनों के बाद जब 11 में से 8 अंग्रेजी प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बन गयी तब प्रांतीय स्वायत्ता का व्यावहारिक रूप सबके सामने आ गया। इन दोनों घटनाओं ने एक ओर कांग्रेस के और दूसरी ओर राज्यों के जन–प्रतिनिधियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन उत्पन्न कर दिया और वह साहनुभूति और सद्भावना जो राजतंत्र के प्रति थी, समाप्त होनी शुरू हो गयी। इस कारण 1937 ई. में भारत सरकार के राजनीतिक विभाग ने राजाओं को प्रेरित किया कि वे अपनी रियासतों में प्रशासनिक सुधार करें और प्रशासन में लोकप्रिय सरकार के तत्वों को शामिल करे किंतु इस सलाह पर ध्यान नहीं दिया गया। भारतीय राज्यों के शासक प्रारंभ में कांग्रेस द्वारा राज्यों में जन अकांक्षाओं के प्रति उदासीन नीति अपनाने के कारण काफी निश्चितता महसूस कर रहें थे किंतु अब राजाओं में बेचैनी दिखने लगी थी। एक तरफ तो राजा ब्रिटिश सत्ता से भयभीत थे। वहीं दूसरी ओर वे अपनी ही जनता से भयाक्रांत भी थे।

1946 ई. में कैबीनेट योजना में देशी राज्यों की जनता का कोई उल्लेख नहीं था उसमें केवल राजाओं को प्रधानता दी गई किंतु रियासती जनता अब इतनी अधिक जागरूक हो चुकी थी कि जयनारायण व्यास के नेतृत्व में उन्होंने दिल्ली जाकर एक विराट सम्मेलन का आयोजन कर ऐसा वातावरण बनाया कि नेहरू और पटेल को भी उसमें उपस्थित होकर यह आश्वासन देना पड़ा कि ऐसी कोई योजना स्वीकार नहीं कि जायेगी जिसमें देशी राज्यों की जनता की उपेक्षा हो। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की राजस्थान की प्रांतीय कार्यकारिणी ने 1946 ई. में एक प्रस्ताव पारित किया कि राजस्थान का कोई भी राज्य आधुनिक प्रगतिशील राज्य की सुविधा उपलब्ध करवाने की स्थिति में नहीं है। इसलिये राजस्थान के सभी राज्यों और अजमेर–मेरवाड़ा को मिला कर एक इकाई बना दिया जाना चाहिये। प्रांतीय कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव ने रियासतों के जन–संगठनों की मूल नीति में क्रांतकारी परिवर्तन किया। अब तक राजपूताना की रियासतों में चल रहे जन–आंदोलनों के द्वारा वहां के जनमानस के अंतर्मन में यह बात बैठ गयी थी कि उनका उद्देश्य अपने राजा की

छत्रछाया में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना है। किंतु यह प्रस्ताव उनकी सोच में मूलभूत परिवर्तन का प्रतीक था। लेकिन तब तक जो राजा लोग परिस्थितियों से विवश होकर मंत्रिपरिषदों तथा विधान सभाओं के माध्यम से जनता को शासन में सम्मिलित करने का मानस बना चुके थे। उन्होंने छत्रछाया वाले सिंद्धात को मजबूती से पकड़ लिया था, इससे देशी राज्यों में आरम्भिक चरण में उत्तरदायी शासन के नाम पर सामंती प्रभाव वाले मंत्रिमंडलों का गठन किया गया जिनका हर रियासत में विरोध हुआ। इस विरोध के चलते राज्यों के मंत्रिमंडलों में लोकप्रिय प्रतिनिधियों की संख्या लगातार बढ़ती गयी थी।

इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, द्वितीय विश्वयुद्ध के भयानक नरसंहार तथा देशी राजाओं की असीमित महत्वाकांक्षाओं की उलझी हुई परिस्थितियों के बीच, देशी रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिये कड़ा संघर्ष हुआ। यह कहना समीचीन होगा कि राजपूताना के राज्यों में नागरिक अधिकारों एवं उत्तरदायी शासन के आंदोलन का स्त्रोत राष्ट्रीय चेतना में निहित था और वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का एक भाग था जो अब निर्णायक दौर से गुजर रहा था। राजपूताना की विभिन्न रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिये लगभग 27 वर्ष तक कड़ा संघर्ष हुआ जिसकी कहानी रोंगटे खड़े कर देने वाली है। जहां ब्रिटिश भारत की जनता को मजबूत नेताओं के नेतृत्व में केवल गोरी सरकार से सत्ता छीननी थी वहीं रियासती भारत के लोगों के लिये यह लड़ाई दो मोर्चो पर एक साथ चलती थी। इस प्रकार संघर्ष करते करते देशी रियासतों में चलने वाला आन्दोलन ब्रिटिश भारत में चल रहें स्वतन्त्रता संग्राम का एक हिस्सा बन गया।

अब अंग्रेज भारत छोड़कर जाने का निर्णय ले चुके थे ऐसे में देशी राज्यों पर एक नया खतरा मण्डराने लगा। कांग्रेस का मानना था कि भारतीय रियासतें केवल मध्यकालीन सामंतवाद के ऐतिहासिक चिह्न है। इनकी वर्तमान परिस्थिति से संगत नहीं इसलिए इन्हें समाप्त कर दिया जाना चाहिये। किंतु ब्रिटिश सरकार ने जाते–जाते भी देश को कई टुकड़ो में बाटने का षड़यंत्र किया और देशी रजवाड़ों पर से परमोच्चसता का हस्तान्तरण भारतीय संघ को न सौपकर, समाप्त कर दिया। अब व्यवहारिक रूप से राजपूताना के रजवाडों को भारत अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित

होने अथवा स्वतंत्र रहने की छूट मिल गई। इन विकट परिस्थितियों में रियासती जनता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कांग्रेस के एक प्रमुख नेता ने राजाओं को चेतावनी देते हुए कहा कि ''वे भारत की स्वतंत्रता के विरुद्ध न जाये अन्यथा रियासतों में चलने वाले लोकप्रिय आंदोलन एवं आर्थिक दबाव राजाओं के अलगाव को नष्ट कर देंगे। वास्तव में स्वतंत्र भारत और उसके नेतृत्व ने रियासती जनता से जितनी अपेक्षाएं और उम्मीद पाली थी रियासती जनमानस ने उससे कहीं ज्यादा करके दिखाया। स्वाधीन भारत के लिये यह किसी भी तरह व्यवहारिक नहीं था कि विशाल देश के मध्य कुछ रियासतें अपना अलग अस्तित्व बनायें रखे जैसे कि समुद्र के बीच टापू स्थित हों। उन्हें हर हालत में भारत में सम्मिलित होना ही था। भारत तथा राजपूताना की अधिकांश देशी रियासतें और उनकी जनता ब्रिटिश भारत के हिंदू बहुल क्षेत्र में स्थित थी। यह सम्बन्ध इतना मजबूत था कि यदि हिंदू बहुल देशी रियासतों में से कुछ रियासतों के शासक मुस्लिम लीग के साथ मिलकर पाकिस्तान में सम्मिलित होने का प्रयास करते तो पर्याप्त संभव था कि इन रियासतों की जनता ही राजाओं को उखाड़ फैंकती। जोधपुर के महाराजा द्वारा पाकिस्तान में विलय के लिये जिन्ना से भेंट की खबर जब रियासत की जनता को लगी तब उन्होंने महाराजा की आलोचना की तथा उन्हें चेतावनी देते हुए विरोध प्रदर्शन किया। इसी प्रकार बीकानेर रियासत द्वारा बहावलपुर के प्रधानमंत्री के साथ गुप्त समझौता वार्ता पर भी बीकानेर प्रजा परिषद व अन्य नेताओं ने महाराजा की जमकर आलोचना की। 15 अगस्त, 1947 से पूर्व ही राजपूताना की समस्त रियासतों द्वारा विलय पत्र पर हस्ताक्षर के पीछे राजा–रजवाड़ों पर स्थानीय जनमानस का भारी दबाव भी एक कारण था। उनका मानना था कि शासक बने रह कर विद्रोही प्रजा की इच्छा पर जीने की अपेक्षा भारत सरकार की छत्रछाया में रहना कहीं अधिक उपयुक्त होगा।

भारतीय प्रजातंत्र के संघ में राजा–रजवाड़े अपनी रियासतें सम्मिलित करने को क्यों सहमत हुए? उन्होंने देखा कि अपनी प्रजा से सीधा सम्बन्ध न रखने से लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक उनकी रियासतों में अव्यवस्था का बोलबाला रहा जिसकी वजह से जनता में उनके लिये लेश मात्र थी सहानुभूति नहीं रह गयी। भारत की ब्रिटिश

सरकार के प्रश्रय में रहकर वे स्वेच्छाचारी बनकर जो चाहते वही करते रहे अपनी प्रजा के कल्याण की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। राजे–महाराजे रियासतों के राजस्व से प्राप्त धन को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं, सैर–सपाटों, दावतों जलसों, विदेश यात्राओं, अफसरों के मोटे वेतन– भत्तों और शानोशौकत में व्यय करते रहे। परंतु अब पुरानी व्यवस्था व दस्तूर बदल चुके थे। राजा–रजवाड़े ये सोचने पर मजबूर हुए की अब उनका जमाना बदल चुका है। जनमानस और उनकी चेतना पूरी तरह उनके विरुद्ध है। अब उनके सामने इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं कि वे सामान्य जनमानस की अपेक्षाओं पर खरे उतरते हुए अपनी–अपनी रियासतों का भारतीय संघ में विलय स्वीकार कर लें। राजपूताना के शासकों ने भारतीय संघ में विलय स्वीकार किया क्योंकि उन पर शक्तिशाली भारतीय संघ का दबाव था किंतु इससे भी बड़ा डर उन्हें अपनी जनता का था जो उन्हें विद्रोह करके सत्ता से अपदस्त कर सकती थी। देशी राजा अंग्रेजों की कृत्रिम सुरक्षा के घेरे से सदा के लिये निकाल दिये जाने वाले थे। अब तक जिस जनमानस के साथ उन्होंने अमानवीय व्यवहार किया और उसकी चेतना को उदित नहीं होने देने के जतन करते रहे अब वहीं जन–साधारण एवं उसकी दैदिप्यमान जागृति और अंतःचेतना के भय से कांप रहे थे। कुछ लोगों का मानना है कि सुशासित अलग रहने योग्य रियासतों में जनमत विलय के पक्ष में नहीं था। इस बात के प्रमाण के रूप में वे प्रथम आम चुनाव के नतीजों को रखते हैं। इस चुनाव में प्रायः प्रत्येक राजा जिसने चुनाव लड़ा, अपने शक्तिशाली कांग्रेसी विरोधी को हाराकर विजयी हुआ। जनतंत्र में आम चुनाव के अतिरिक्त जनता की इच्छा जानने का और कोई अच्छा साधन नहीं हो सकता। इनका कहना था कि राजाओं पर एकीकरण स्वीकार करने के लिये जहां दबाव डाला गया और प्रलोभन दिया गया वहां सम्बंधित जनता की कभी सलाह नहीं ली गयी। यह तर्क की प्रजामण्डल अथवा प्रजा परिषद, राजपूताना की जनता की आवाज थे, प्रथम आम चुनावों के परिणामों से बिल्कुल धराशायी हो जाता है। प्रथम आम चुनाव में प्रजा मण्डलों के बड़े–बड़े नेता राजस्थान में चुनाव हार गये।

वास्तव में यह बात निराधार है कि आम जनता एकीकरण के पक्ष में नहीं थी यदि ऐसा होता तो राजपूताना की कई रियासतों के शासकों को जनता को अपने पक्ष

में करने के लिए खजाने की थैलियों के मुंह नहीं खोलने पड़ते। फिर यह भी कहा जा सकता है कि आजादी मिलते ही रियासतों की ग्रामीण जनता पूर्णतः जागीरदारों के भय एवं आंतक से मुक्त नहीं हुई थी। अधिकांश जनता अब भी जागीरदारों के खेतो में काम कर रही थी। जागीरदारों का भय एवं आतंक तो बहुत आगे चलकर शनैः शनैः कम हुआ। हो सकता है कि जागीरदारों के इसी आतंक और भय का प्रभाव आम मतदाता के निर्णय पर पड़ा हो चुनावों में हार जीत मतदाता की व्यक्तिगत विचारधारा अथवा भावना पर आधारित होती है। जो नेता चुनाव हार गये उसका कारण उन नेताओं के व्यक्तित्व की कमजोरी अथवा चुनाव लड़ने के लिये आवश्यक साधनों की कमी भी हो सकती है। फिर आम चुनाव राजतंत्र बनाम प्रजातंत्र नहीं हुए थे अपितु प्रत्याशियों के बीच हुए थे। राजपाट और रियासतें छिन जाने के पश्चात् परम्परागत सामाजिक संरचना में पली बढ़ी राजपूताना की सीधी–साधी, गरीब जनता में अपने भूतपूर्व शासकों के प्रति कुछ मात्रा में सद्भावना भी अवश्य ही रही होगी। इस आधार पर हम ये निष्कर्ष नहीं निकाल सकते की राजपूताना की जनता रियासतों के एकीकरण के पक्ष में नहीं थी।

राजपूताना जैसे पारंपरिक व सामन्ती समाज के लोगों में भी अपने उच्च राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संगठित व सामूहिक प्रयास करने, तथा उनके अनुरूप राननीतिक संस्थाओं का निर्माण व प्रबंध एवं उनके लिए समुचित जन–समर्थन जुटाने की पर्याप्त क्षमता रही, और यहां की जनता की इसी राजनीतिक क्षमता व दृढ़ निश्चय का परिणाम था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत प्रदेश की यह जनता राजस्थान में भी शेष भारत के समान एक आधुनिक लोकतंत्रीय व्यवस्था व तदनुरूप राजनीतिक समुदाय का न सिर्फ निर्माण कर पाई बल्कि उसे बनाए रख पाने की अद्भूत क्षमता का प्रदर्शन भी कर पाई। पुनः जनता की इसी राजनीतिक चेतना के कारण यह भी संभव हो सका कि रियासतों के विलय व एकीकरण की प्रक्रियाओं के दौर से निर्बाध रूप से गुजरते हुए राजस्थान प्रदेश सामंती युग से आधुनिक लोकतान्त्रिक चरण तक आ पहुंचा।

राजपूताना की रियासतों में चलाये गये ये आन्दोलन वस्तुतः सामंतवाद व ब्रिटिश उपनिवेशवादी शक्ति के विरुद्ध किया गया संघर्ष था जिसे, सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्तरों पर लड़ा गया। ब्रितानी साम्राज्यवाद व देशी सामन्तवाद के दोहरे जुए के नीचे यहां का जनमानस चुप नहीं बैठा। यहां के शहरी मध्यमवर्ग, कृषक तथा बनवासियों ने एक अविरल व्यापक हलचलों की धारा प्रवाहित की जो अन्ततः राजशाही के विनाश व प्रजामण्डल के उत्थान का माध्यम बनी। राजपूताना की रियासतों में चलाया गया यह जन–आंदोलन एक दिलचस्प विषय है। वास्तव में इस आंदोलन का उद्देश्य प्रारम्भ में सुधारों की मांग तक सीमित था, परन्तु जैसे–जैसे परिस्थितियां परिवर्तित होती गई तथा जनचेतना का संचार होता गया राजपूताना की जनता के आंदोलन के उद्देश्य भी विस्तृत और परिष्कृत होते गये। यहां के आन्दोलनों व जनसाधारण की राजनीतिक गतिविधियों का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि अंत तक जनता का उद्देश्य राजा की अधीनता में उत्तरदायी शासन प्राप्त करना था। एक भी ऐसा आन्दोलन नहीं था जिसमें किसी रियासत के राजा को हटाने की बात कही गयी थी। राजा–महाराजा विदेशी तो थे नहीं इसलिए सत्ता के विरुद्ध किये जा रहे आन्दोलन में उनको शामिल नहीं किया जाना उचित ही था। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय जब ब्रिटिश भारत ''अंग्रेजों भारत छाड़ों'' के नारों से गूंज रहा था। तब भी यहां की जनता ने राजाओं से केवल अंग्रेजों का साथ छोड़ने की उम्मीद की और नारा दिया'' राजाओं अंग्रेजों का साथ छोड़ों'' लेकिन जब उनकी ज्यादतियाँ ज्यादा हो गयी और यह महसूस किया जाने लगा कि वे किसी भी प्रकार उत्तरदायी शासन को अच्छी तरह नहीं चलने देंगे तो उनका जुआ भी कंधे से उतार फैंकने में जनता ने ढील नहीं दी।

राजपूताने की रियासतों को भारत में घेर कर लाने तथा उन्हें राजस्थान में एकीकृत करने की प्रक्रिया काफी नाजुक, लम्बी और उलझन भरी थी। हर जगह फिसलन ही फिसलन थी और जनता को राष्ट्रीय नेताओं के साथ कदम ताल मिलानी थी। इतिहास के इस मोड़ पर पहुंच कर यह नहीं कहा जा सकता कि राजपूताना की रियासती जनता की भूमिका और अधिक व्यापक और असरदार हो सकती थी किंतु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यहां की वीर जनता ने अपनी क्षमता और सामर्थ्य से अधिक आगे जाकर अपनी जन्मभूमि के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

I प्राथमिक स्त्रोत–

(A) पुरालेखीय आधिकारिक अभिलेख, दस्तावेज तथा अन्य अप्रकाशित शोध सामग्री–

(अ) राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारत सरकार, जनपथ, नई दिल्ली में संग्रहित सामग्री–

- फॉरेन एवं पॉलिटिकल विभाग के अभिलेख– पॉलिटिकल (गोपनीय) इण्टरनल प्रोसिडिंग्स (गोपनीय), होम–पॉलिटिकल संघ एवं भारतीय राज्य, संघ गोपनीय, रियासतों के साथ संघीय वार्तालाप, सीटों का बँटवारा सुधार (गोपनीय), गोपनीय कार्यवाही विवरण एवं विचार–विमर्श

1. बटलर कमेटी रिपोर्ट, 1929
2. साइमन कमीशन रिपोर्ट, 1930
3. अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद की कार्यवाहियों से सम्बन्धित रिपोर्ट
4. नरेन्द्र मण्डल के क्रियाकलापों के सम्बंधित वार्षिक प्रतिवेदन, 1922–1940
5. गोलमेज सम्मेलन के दस्तावेज और रिपोर्टस। 1931, 1932, 1933
6. माण्टेग्यू– चैम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918
7. संघीय वित्त समिति की रिपोर्ट, 1932
8. भारतीय संवैधानिक सुधारों के प्रस्ताव, श्वेतपत्र मार्च, 1933
9. भारत सरकार बिल, 1935
10. भारत सरकार अधिनियम, 1935
11. राजपूताना मध्यभारत सभा की रिपोर्ट्स
12. भारतीय स्वंतत्रता अधिनियम, 1947
13. भारतीय रियासतों पर जारी श्वेत पत्र, 1950
14. विश्वयुद्धों में भारतीयों का योगदान, खण्ड I, II
15. लार्ड माउंटबेटन के भाषण, 1947–48
16. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956

17. फाइल न. 18/7/32 पॉलिटिकल 1939 – अजमेर पेपर्स
18. फाइल न. 44/3/35 होम पॉलिटिकल– अजमेर पेपर्स
19. फाइल न. 12/7/41 पॉलिटिकल– अजमेर पेपर्स
20. फाइल न. 304–पी/48, रिप्रजेन्टेशन फ्रांम द राजस्थान यूनियन जागीरदार्स
21. फाइल न. 304 पी/48 II जागीरी उन्मूलन
22. फाइल न. सी/15–24/1941 कृषक विरोध
23. फाइल न. 428–पी. (एस)1923, भील उपद्रव

(ब) नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली में संग्रहित सामग्री–

- अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के लेख, विभिन्न राज्यों के प्रजा मण्डलों का रिकॉर्ड, अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के प्रस्ताव एवं पत्राचार अध्यक्षीय उद्बोधन, ज्ञापन, सूचनाएं, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव।

1. संग्रहालय में उपलब्ध समाचार पत्रों का संग्रह
2. फाइल न. 1, 3, 5, 6, 9 जयनारायण व्यास से सम्बन्धित दस्तावेज
3. फाइल न. 3–1933–49, ए.आई.एस.पी.सी.
4. फाइल न.8, 11 और 12 – 1929–34, देशी रियासतों में जन–आंदोलन
5. फाइल न. 19–1940–49, जयपुर प्रजामण्डल
6. फाइल न. 31–126–66, हरिभाऊ उपाध्याय पेपर्स
7. फाइल न. 54– 1921– 1966, हीरालाल शास्त्री पेपर्स
8. फाइल न. 124– 1917–46 सेठ जमनालाल बजाज पेपर्स
9. फाइल न. 1101 –135 एफ 1929–30 देशी रियासतों से सम्बंधित पेपर्स
10. फाइल न. 47– 612–1250–1937–39 ''द पोप्यूलर रूल'' देशी रियासतों के जन–आन्दोलन तथा राजाओं की दमनकारी नीति के विरुद्ध प्रतिरोध
11. फाइल न. 211–5–879–1937–38, देशी रियासतों में राजनीतिक आंदोलन
12. फाइल न. 2–1422–1948, देशी रियासतों का विलीनीकरण
13. अखिल भारतीय कांग्रेस, कमेटी पेपर्स
14. फाइल न. 673P/1927, ए.जी.जी राजपूताना टू सक्रेटरी गवर्नमेंट ऑफ राजस्थान

(स) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

- रियासतों के शासकों एवं ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों के साथ पत्र व्यवहार, सनद बहियां, राज्यों के शासकीय आदेश व महकमा खास की फाइलें, गोपनीय पुलिस एवं प्रशानिक रिकॉर्ड, पुलिस प्रशासन की गोपनीय सूचनायें, राज्य कौंसिल के गोपनीय परिपत्र, जागीर रिकॉर्ड, प्रजामण्डल एवं लोक परिषद के अभिलेख।

1. स्वतंत्रता सेनानियों के अभिलेखागार में संग्रहित मौखिक संस्मरण।
2. राजपूताना की रियासतों की पाक्षिक रिपोर्ट्स।
3. द गवर्नमेंट ऑफ बीकानेर एक्ट, 1947
4. जयपुर पब्लिक सोसायटी रेगुलेशन एक्ट, 1940
5. कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ मारवाड़ लोक परिषद– 1938
6. रिपोर्ट ऑफ द राजपूताना– मध्यभारत सभा (1937–38)
7. वायसराय इरविन द्वारा बीकानेर में 29 जनवरी 1927 को दिया गया भाषण
8. रिपोर्ट ऑन एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजस्थान 1950–51, जयपुर
9. बीकानेर लेजिस्लेटिव एसेम्बली एडिक्ट, 1945
10. प्रोक्मेलेशन वाय हिज़ हाइनेस, बीकानेर, 1946
11. रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन कॉन्स्टीट्यूशनल रिफॉर्म, 1943
12. फाइल न. 33/1927, देशी रियासतों से सम्बन्धित समाचार पत्रों की कटिंग्स
13. फाइल न. 42/1927 पॉलिटिकल ट्रबल्स इन इण्डियन स्टेट्स,
14. फाइल न. 90/1927 स्पेशल न्यूज
15. फाइल न. 91/1927 स्पेशल न्यूज
16. फाइल न. 5/1928 पॉलिटिकल, सोशल एण्ड रिलिजियस एक्टिविटिज ऑफ द कनसर्निंग स्टेट्स
17. फाइल न. 20/1928, इण्डियन स्टेट्स इनक्वायरी, बटलर कमेटी, ब्यूज एण्ड ऑपिनियंस
18. फाइल न. 25/1928, फ्यूचर ऑफ इण्डियन स्टेट्स एण्ड स्टेट्स पीपल
19. फाइल न. 29/1928 देशी रियासतों से सम्बंधित अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेज

20. फाइल न. 78 / 1928 ऑल इण्डियन नेशनल कांग्रेस

21. फाइल न. 94 / 1928, एलिगेशन अगेनस्ट इण्डियन प्रिंसेज– वेरियस आस्पेक्ट्स ऑफ देयर लाइब्ज़ एण्ड एड्मिनिस्ट्रेशन

22. फाइल न. 96 / 1928, 97 / 1928 पॉलिटिकल एण्ड सोशियल एक्टिविटीज

23. फाइल न. 98 / 1928, नेटिव स्टेट्स

24. फाइल न. 99 / 1928, स्पेशल न्यूज– इण्डियन स्टेट्स

25. फाइल न. 1 / 1931 – 33, अलवर राज्य प्रजामण्डल रिकॉर्ड

26. फाइल न. 11 / 1941–42 अलवर राज्य प्रजामण्डल

27. फाइल न. 11 / 1941–42 अलवर राज्य प्रजामण्डल

28. फाइल न. 21 / 1946 इन्टरव्यू फाइल

29. फाइल न. 23 / 1946 पब्लिकेशनस ऑफ प्रजामण्डल

30. फाइल न. 51 / 1947 ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस एण्ड अदर पॉलिटिकल कटिंग्स

31. फाइल न. 1 / 1928 जोधपुर पुलिस रिपोर्ट पॉलिटकल

32. फालइ न. 2 / 1930– 45 लैटर्स रिटन बाय मारवाड़ लोक परिषद

33. फाइल न. 4 / 1934 – 37 मीटिंग्स एण्ड एक्टिविटीज एण्ड प्रजा परिषद

34. फाइल न. 5 / 1935–45 मारवाड़ लोक परिषद लैटर्स एक्सचेंज

35. फाइल न. 6 / 1937 मारवाड़ लोक परिषद लैटर्स एक्सचेंज

36. फाइल न. 15 / 1940–42 कॉरस्पोडेन्स बिटवीन मारवाड़ लोक परिषद एण्ड इट्स ब्रांच आफिसिज़

37. फाइल न. 6 / 1939 आल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस एण्ड करौली

38. फाइल न. 9 / 1946–48 ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपल्स कॉन्फ्रेंस लैटर्स एक्सचेंज

39. फाइल न. 1 / JSL जैसलमेर पेपर्स

40. फाइल न. 2 / JSL जैसलमेर पेपर्स

41. फाइल न. 24 / 2 खण्ड I (पॉलिटिकल) गवर्नमेंट ऑफ जोधपुर

42. फाइल न. 252 / 28 बूंदी रिकॉर्ड्स

43. फाइल न. 24 / 1 सैकेण्ड रिकॉर्ड्स, बूंदी

44. फाइल न. 148 / 51 B फॉरेन ऑफिस (सिक्रेट) झालावाड़

45. फाइल न. 212 / 51 C,फॉरेन ऑफिस (सिक्रेट) झालावाड़

46. फाइल न. 121 / 33 महकमाखास, कोटा रिकॉर्ड

47. फाइल न. 160 P / 1937 कोटा रिकॉर्ड

48. फाइल न. 12 / 15 कोटा रिकॉर्ड

49. फाइल न. 232–C / 179 / 39 अलवर रिकॉर्ड

50. फाइल न. CB / BN / 13 / 222 फोर्ट नाइटली इन्टेलीजेंस रिपोर्ट ऑफ राजपूताना स्टेट्स भरतपुर

51. फाइल न. CB / PN / 13 / 214 फोर्टनाइटली इन्टेलीजेंस रिपोर्ट ऑफ राजपूताना स्टेट्स भरतपुर

52. फाइल न. C–4 / 45, धौलपुर रिकॉर्डस

53. फाइल न. 16 / 1947–48 धौलपुर प्रजा मण्डल

54. फाइल न. C / 97 / VOL / II / प्रशासन / भारत की स्वतंत्रता

55. फाइल न. C / 166 / CR प्रशासन, जयपुर 1938 खण्ड I,II (1939)

56. फाइल न. 20–A– प्रशासन, जयपुर 1938

57. मेवाड़ प्रजामण्डल के द्वारा जारी समाचार

58. फाइल न. 60 / 59 अलवर राज्य प्रजामण्डल

59. सूचना एवं जनसंपर्क विभाग जोधपुर की प्रेस कटिंग

    फाइल न. C– 6 / मत्स्य

    फाइल न. C–15 / राज्यों का विलय

    फाइल न. C–16 / राज्यों का विलय

(द) राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर।

1. बस्ता न.1 महकमा खास, जोधपुर राज्य

2. फाइल न. ADM / 1949 / C / 98 / 25 / II / 41 / 1 / 4 जोधपुर– जैसलमेर का एकीकरण

3. प्रजामण्डल से संबन्धित दस्तावेज

(च) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, उदयपुर

1. खुफियाँ राजनीतिक दस्तावेज डिसपेच न. 62 राजप्रमुखों के लिये खुफिया सैन्य दस्तावेज/ 1948–49
2. फाइल न. 15/1948–49 संयुक्त राजस्थान का उद्घाटन

(B) गजेटियर्स

1. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया– राजपूताना एजेंसी, इलाहबाद 1906
2. राजपूताना गजेटियर, इलाहबाद 1909
3. राजस्थान के जिलों के गजेटियर्स

(C) संग्रहित दस्तावेज

1. एचिंसन, सी.यू–ए कलक्शन ऑफ ट्रीटीज एंगेजमेंट्स, एंड सनद्स, कलकत्ता 1909
2. फिलिप्स, सी. एच, एच.एल.सिंह एण्ड बी. एन. पांडेय (सं.)–द इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एंड पाकिस्तान (1858–1947)– सलेक्ट डोक्यूमेंट्स लंदन – 1962
3. मनसेर्ज, निकोलस एवं लुम्बी, ई.वी.आर. (सं.)–द ट्रांसफर ऑफ पॉवर (12खण्ड) लंदन (1970–83)
4. मुंशी, के.एम. (सं.)–इणडियन कॉस्टीट्यूशनल डॉक्यूमेंटस, 2 खण्ड मुम्बई– 1967

(D) समाचार पत्र, पत्रिकाऐं

1. वीर अर्जुन
2. विश्वामित्र
3. रियासती
4. प्रिंसली इण्डिया
5. राजपूताना
6. द हिन्दुस्तान
7. तरूण राजस्थान
8. हिन्दुस्तान टाइम्स
9. द टाइम्स ऑफ इण्डिया

10. द स्टेट्समैन

11. प्रताप

12. क्रॉनिकल

13. द इण्डियन न्यूज

II द्वितीय स्त्रोत

(A) अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें

1. अभ्यंकर, जी. आर. – प्रॉब्लम्स ऑफ इण्डियन स्टेट्स पूणे, आर्य भूषण प्रेस, 1928
2. अभ्यंकर, जी.आर – नेटिव स्ट्ेट एण्ड पोस्ट वार रिफॉर्मस, पूणे, आर्य भूषण प्रेस, 1917
3. एडम्स, आर्चिबोल्ड – द वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, लंदन, 1899
4. अक्कद, बी.जे – सरदार वल्लभभाई, सूरत, 1950
5. अलवा, जोकिम – मैन एण्ड सुपरमैन ऑफ हिन्दुस्तान, बोम्बे, 1943
6. जहमद, जमील – स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ मि. जिन्ना, लाहौर, 1946
7. अचिंसन, सी.यु – ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज ऐंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स खण्ड III कलकत्ता, 1932
8. भटट् एण्ड भार्गव – लैण्ड एण्ड पीपल ऑफ इण्डियन स्टेट्स एण्ड यूनियन टेरिटरीज रारा अविस पब्लिशर्स, न्यू देहली, 2006
9. बनर्जी, ए.सी. – द ईस्ट इण्डिया कम्पनी एंड द राजपूत स्टेट्स कलकत्ता, 1951
10. बर्टन, विलियम – द प्रिंसेज ऑफ इण्डिया, लंदन, 1934
11. बहादुर, के.पी. – हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम मूवमेंट इन इण्डिया, रेफरेंस प्रेस नई दिल्ली, 2010
12. बिड़ला, जी.डी – इन द शैडो ऑफ महात्मा
13. बक्शी, एस. आर. – इण्डियन नेशनलिज्म–पैथवे टू स्वराज, रारा अविस पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2006
14. बोलियो, हैक्टर – जिन्ना–क्रियेटर ऑफ पाकिस्तान सुरजीत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009

15. ब्राउन, जूडिश – गांधीज राइज टू पावर कैम्ब्रिज यूनिवरसिटी प्रेस कैम्ब्रिज, 1972

16. कैम्पबेल जॉनसन,एलन – मिशन विद मांउटबेटन, लंदन, 1951

17. कॉलिन्स, लैरी एण्ड लैपीयरे डोमिनिक – फ्रिडम एट मिटनाइट, नई दिल्ली, 1976
– माउंटबेटन एंड द पार्टिशन ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1983

18. चूड़गर, पी.एल – द इण्डियन प्रिंसेज अंडर ब्रिटिश प्रोटेक्शन, लंदन, 1929

19. चौधरी,पी.एस – देशमुख सी.डी– द कोर्स ऑफ माय लाइफ

20. कोरफील्ड, कोनार्ड – प्रिंसली इण्डिया आई न्यू–फ्रॉम रीडिंग टू माउंटबेटन, मद्रास, 1949

21. चांदीवाला, ब्रिजकृष्ण – एट द फीट ऑफ बापू, नवजीवन, अहमदाबाद, 1954

22. चितकारा, एम, जी – काश्मीर, ए टेल ऑफ पार्टिशन, रारा अविस पब्लिशर्स, न्यू देहली, 2002

23. चोपड़ा पी.एन. – कूट इण्डिया द रिटन रिपोर्ट, फरिदाबाद, 1976
– द सलेक्टिड वर्क्स ऑफ सरदार पटेल (12 खण्ड) कोनार्क पब्लिकेशन देहली, 1998
–

24. क्रयू, क्विटन – द लास्ट महाराजा –ए बायोग्राफी ऑफ सवाई मानसिंह ॥

25. दुर्गादास (सं.) – सरदार पटेल्स कॉरस्पोंडेंस (8 खण्ड) अहमदाबाद, 1973
– इण्डिया, फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर, लंदन, 1969

26. देओरा, जी. एस. (सं.) – महाराजा गंगासिंह सेन्टनरी वोल्यूम

27. डिग्बी, विलियम – प्रोसपेरस ब्रिटिश इण्डिया, फिशर अनविन, लंदन, 1901

28. डॉयरक्टरेट ऑफ, चेम्बर ऑफ प्रिंसेज – ब्रिटिश क्राउन एण्ड द इण्डियन स्टेट, लंदन, 1929

29. इर्सकिन, के.डी. – वेस्टन राजपूताना स्टेट रेजिडेन्सी एण्ड द बीकानेर एजेंसी, द पायोनीयर प्रेस इलाहाबाद, 1909
– राजपूताना गजेटियर्स खण्ड II, अजमेर

30. एडवर्ड, माइकल – द लास्ट ईयर ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, लंदन,1963

31. फिट्जे, केनेथ – ट्विालाइट ऑफ द महाराजाज, लंदन, 1956

32. फिलिप्स, सी.एच. एण्ड वैनराइट, एम.डी – द पार्टीशन ऑफ इण्डिया (1935–1947) लंदन, 1970

33. गांधी एम. के – द इण्डियन स्ट्ेट प्रोब्लम, अहमदाबाद,1941

34. गांधी, एम.के. – टू द प्रिंसेज, एण्ड देयर पीपल, करांची, 1942

35. गांधी, राजमोहन – पटेल– ए लाइफ, अहमदाबाद, 1992

36. गायत्री देवी – ए प्रिंसेस रिमेम्बर्स– मैमोरीज ऑफ द महारानी ऑफ जयपुर, न्यूयार्क, 1976

37. गोपाल, एस. – ब्रिटिश पॉलिसी इन इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1955

38. गुप्ता, उर्मिला – रिवोल्यूशनरी मूवमेंट इन राजस्थान

39. गौड़, डी.डी – कॉस्टीट्यूशनल डवलपमेंट ऑफ इस्टर्न राजपूताना स्टेटस,, उषा पब्लिशिंग हाउस, जोधपुर, 1978

40. गोखले, एस.एम – इण्डियन स्टेट एण्ड द कैबिनेट मिशन प्लान, बड़ौदा, 1947

41. घोष, अरविन्द – बंकिम, दयानंदन एण्ड तिलक, कलकत्ता, 1947

42. हडसन, एच.बी – द ग्रेट डिवाइड

43. हाडा, आर.एल – हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगल, न्यू देहली, 1968

44.	हैमस्थ, चार्ल्स, सी	–	नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफॉर्म्स
45.	इस्माइल, मिर्जा	–	माई पब्लिक लाइफ रिकलेक्शन एण्ड रिफलेक्शन, जार्ज एलन एण्ड अनविन लिमिटेड, 1954
46.	जैन, एम.एस	–	कंसाइज हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न राजस्थान, न्यू देहली, 1993
47.	ज्योफ्रि, रॉबिन (सं.)	–	पीपल, प्रिंस एण्ड पेरामाउंट पॉवर ऑक्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978
48.	जीगलर .पी.	–	माउंटबेटन, कॉलिन्स, लंदन, 1985
49.	जूनेजा, एम.एम.	–	जी.डी. बिड़ला, लाइफ एण्ड लैगेसी
50.	कपिल, एफ. के	–	राजपूताना स्टेट्स (1817–1950) जोधपुर, 1999
		–	प्रिंसली स्टेट्स–पर्सोनेसेज जोधपुर, 2005
51.	कृष्णा, बी.	–	इण्डियाज बिस्मार्क– सरदार वल्लभ भाई पटेल, मुम्बई, 2007
52.	कमल, के.एल.	–	पार्टी पॉलिटिक्स इन एन इण्डियन स्ट्ेट, नई दिल्ली
53.	कुलकर्णी, वी.बी.	–	द फ्यूचर ऑफ इण्डियन स्टेट्स, बॉम्बे, 1944
		–	ब्रिटिश स्टेट्मैन इन इण्डिया, बॉम्बे, 1961
54.	खड़गावत, एन.आर.	–	राजस्थान रोल इन द स्ट्रगल ऑफ 1857, जयपुर, 1957
55.	लोथियान, ए.सी	–	किंगडम्स ऑफ यस्टरडे, लंदन, 1951
56.	लुम्बाय, एफ.डब्ल्यू.	–	द ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया, जार्ज एलन एण्ड अनविन, 1954
57.	मैकमन, जार्ज	–	द इण्डियन, स्टेट्स एंड प्रिंसेज, लंदन, 1936
58.	मजूमदार ए.सी.	–	इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन, मद्रास, 1917
59.	मजूमदार आर.सी.	–	स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, मुम्बई, 1969

60. माथुर, वी.डी – स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस, जयपुर, 1984

61. माथुर, एस – स्ट्रगल फॉर रेस्पॉन्सिबल गवर्नमेंट इन मारवाड़, जोधपुर, 1882

62. मनकेकर, डी.आर – एक्सेशन टू एक्सटिंशन, नई दिल्ली, 1974

63. मिश्रा, डी.पी. – लिविंग एन ऐरा (2 खण्ड) न्यू देहली, 1978

64. मून , पी. (सं.) – वैवेल द वायसरायज जरनल, लंदन, 1973

65. मूर, आर.जे. – द क्राइसिस ऑफ इण्डियन यूनिटी, दिल्ली, 1974

66. मेनन, वी.पी. – ट्रांसफर ऑफ पॉवर, कलकत्ता, 1957

– द स्टोरी ऑफ द इण्टिग्रेशन ऑफ द इण्डियन स्टेट्स, मुम्बई, 1961

67. मनसर्ग निकोलस – द ट्रांसफर ऑफ पॉवर, 1942

68. मेहता, एम.एस – लार्ड हेस्टिंग्स एंड द इण्डियन स्टेट्स, मुम्बई, 1930

69. मोसले, लियोनार्ड – द लास्ट डेज ऑफ द ब्रिटिश राज, लंदन, 1961

70. मुंशी, के.एम, – पिलग्रीमेज टू फ्रीडम बॉम्बे, भारतीय विद्या भवन, 1967

– द ऐंड ऑफ एन ऐरा, बॉम्बे, 1957

71. मोंटमोरेंसी, ज्योफ्री – द इण्डियन स्टेट्स एण्ड इण्डियन फेडरेशन, कैम्ब्रिज, 1942

72. नरवन, डी.एन. – द इण्डियन स्टेट्स इन द फेडरेशन ऑफ इण्डिया, बॉम्बे, 1939

73. निकोलसन, ए.पी – इण्डियाज ब्रोकन ट्रिटीज, हर प्रिंसेज एण्ड द प्रोब्लम, लंदन, 1930

74. पुरी, किशन – मैमोरीज ऑफ मारवाड़ पुलिस, जोधपुर, 1986

75.	पणिक्कर, के.एम.	–	एन ऑटोबायोग्राफी, मद्रास 1977
		–	हिज हाइनेस द महाराजा ऑफ बीकानेर, लंदन 1937
		–	रिलेशन्स ऑफ इण्डियन स्टेट्स विथ द गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, लंदन 1927
76.	पांडेय,बी.एन	–	द ब्रेकअप ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, लंदन, 1969
77.	पांडे, राम	–	पीपल्स मूवमेंट इन राजस्थान, जयपुर
			एग्रेरिअन मूवमेंट इन राजस्थान, न्यू देहली, 1974
78.	पेमाराम	–	द एग्रेरिअन मूवमेंट इन राजस्थान, जयपुर, 1986
79.	फड़नीस उर्मिला	–	टू वर्ड्स इन्टिग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेट्स (1919–1947) बॉम्बे, 1968
80.	फिलिप्स (सं.)	–	द पार्टिशन ऑफ इण्डिया– पोलिसीज एण्ड पर्सपेक्टिवस (1935–1947) लंदन, 1970
81.	फिलिप्स, सिंह एण्ड पाण्डे	–	द इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, 1958 से 1947, लंदन, 1962
82.	कानूनगो, के.आर	–	स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री, देहली, 1960
			हिस्ट्री ऑफ द जाट्स, कलकत्ता, 1925
83.	राघवन, एस.आर.एस.	–	इण्डियन स्टेट्स एण्ड इण्डियन पॉलिसी, बैंगलूरू
84.	राजस्थान डिस्ट्रिक्ट्र गजेटियर्स	–	उदयपुर, 1979 जयपुर, अलवर, 1978 जयपुर
85.	राठौड़ एल. एस.	–	पोप्यूलर मूवमेंट एण्ड डेमोक्रेटिक इन्सटीट्यूशन इन द प्रिंसली स्टेट्स ऑफ राजस्थान, न्यू देहली, 1970
86.	रोबर्ट, पी.इ.	–	हिस्ट्री ऑफ इण्डिया अंडर कंपनी एण्ड द क्राउन, लंदन, 1952

87. रूडोल्फ, सूसेन होबर एण्ड रूडोल्फ लोयाड – राजपूताना अंडर ब्रिटिश पेरामाउंटेसी

88. साही, मुंशी ज्वाला – द रॉयल राजपूताना, इलाहाबाद, 1902

89. सरकार, जे.एन – फॉल ऑफ द मुगल एम्पायर, कलकत्ता, 1931

90. शास्त्री, के.आर.आर. – इण्डियन स्टेट्स इलाहबाद, 1941

91. शंकर, वी. – माई रेमिनिसेंसेज ऑफ सरदार पटेल (2 खण्ड) न्यू देहली, 1974

– सरदार पटेल सलैक्ट कॉरस्पोंडेंस, अहमदाबाद, 1979

92. शावर्स, सी.एल. – ए मिसिंग चैप्टर ऑफ द इण्डियन म्यूटिनी, लंदन, 1888

93. शारदा, हरविलास – फेडरेशन एण्ड राजपूताना, अजमेर, 1938

– लाइफ ऑफ दयानंद सरस्वती, अजमेर, 1946

94. सक्सैना, के.एन. – द पॉलिटिकल मूवमेंट्स एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, नई दिल्ली, 1972

95. सिसन, रिचर्ड – द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान, दिल्ली, 1972

96. सेन, एस.एन. – ऐटीन फिफ्टी सेवन, न्यू देहली, 1957

97. सिंह, जी. एन. – इण्डियन स्टेट्स एण्ड ब्रिटिश इण्डिया, बनारस, 1930

98. सिंह, करणी – द रिलेशन ऑफ द हाउस ऑफ बीकानेर विथ द सेन्ट्रल पावर्स, न्यू देहली 1974

99. सिंह, रघुवीर – इण्डियन स्टेट्स एंड द न्यू रिजीम, मुम्बई, 1938

100. सितारामया, पी. – हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस बॉम्बे, 1935, 1947

101. सुब्रमण्यम, अयय्र, एस. – द प्रोब्लम ऑफ इण्डियन नेटिव स्टेट्स बैंगलौर, 1917

102. थोम्सन, एड्वर्ड – द मेकिंग ऑफ द इण्डिया प्रिंसेज, आक्सफोर्ड, 1945

103. टॉड, जेम्स कर्नल – एनल्स एंड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान खण्ड I, II, कलकत्ता, 1884

104. ताराचंद – हिस्ट्री ऑफ द फ्रिडम मूवमेंट इन इण्डिया, दिल्ली, 1961

105. उपाध्याय, निर्मला – द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ जोधपुर स्टेट् (1800–1947) जयपुर

(B) हिन्दी भाषा की पुस्तकें

1. अग्रवाल, गोविन्द – स्वामी गोपालदास– व्यक्तित्व और कृतित्व, चुरू

2. आचार्य, दाऊदयाल – भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बीकानेर का योगदान, बीकानेर, 1997

3. भण्डारी, सुखसम्पत्ति राय – भारत के देशी राज्य, जयपुर, 2009

4. बोस, एस.के. – आधुनिक भारत के निर्माता– सर तेज बहादुर सप्रु

5. बजाज, रामकृष्ण (सं.) – जमनालाल बजाज की डायरी (1–52) नई दिल्ली, 1966–78

6. बोड़ा, रामचँन्द्र – अमर शहीद सागरमल गोपा, जयपुर, 1966

7. बिड़ला घनश्यामदास – मेरे जीवन में गांधी

8. भारतीय, भवानीलाल (सं.) – स्वामी दयानन्द सरस्वती व्यक्तित्व, विचार और मूल्यांकन जोधपुर, 2000

9. चौधरी, रामनारायण – आधुनिक राजस्थान का उत्थान, अजमेर, 1967
– बीसवीं सदी का राजस्थान अजमेर, 1980

10. चौधरी विक्रमादित्य – राजस्थान में किसान आंदोलन, जोधपुर, 2005

11. दिनकर, रामधारीसिंह – संस्कृति के चार अध्याय, दिल्ली, 1956

12. दास, जर्मनी – महाराजा, हिन्द पॉकेट बुक, नई दिल्ली, 2007

13. दीपक, जगदीश चंद्र – जब जनता जागी थी
14. गहलोत, जगदीश सिंह – मारवाड़ राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1925
– राजपूताना का इतिहास (2 खण्ड) जोधपुर, 1937
– दुर्गादास राठौड़, जोधपुर, 1966
15. गुप्ता, शोभालाल – गांधीजी और राजस्थान, भीलवाड़ा, 1969
16. गुप्ता, मंजू – स्वतंत्रता संग्राम एवं जमनालाल बजाज, जयपुर, 2010
17. गुप्ता, मोहनलाल – ब्रिटिश शासन में राजपूताने की रोचक एवं ऐतिहासिक घटनाऐं, जोधपुर, 2009
18. गुप्त, मन्मथ नाथ – राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, आगरा, 1962
19. इन्द्र, विद्यावाचस्पति – आर्य समाज का इतिहास, दिल्ली, 1957
20. जैन, जे.के. (सं.) – स्वाधीनता के गीत, जयपुर, 1987
21. जैन, हुकम चंद – ऐतिहासिक राजस्थान, जयपुर, 2009
22. जैन, एम,एस – आधुनिक राजस्थान का इतिहास, जयपुर, 1990
23. जोशी, सुमनेश – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, जयपुर, 1973
24. जोशी, निर्मला – राजस्थान स्वाधीनता संग्राम की कहानी, जयपुर, 1985
25. कोठारी, देव, – स्वतंत्रता आंदोलन में मेवाड़ का योगदान, उदयपुर
26. कपिल, एफ. के – राजपूताना – जनजागरण से एकीकरण, जोधपुर, 2014
27. कमल, के.एल., जैन, एस.एन. – भारतीय स्वाधीनता संग्राम एवं राजस्थान के जन आंदोलन, जयपुर, 1988
28. केला, भगवानदास – देशी राज्यों में जन जागृति, इलाहबाद 1948
– देशी राज्यों की पद्धति, इलाहबाद, 1948
29. कमठान, गंगा प्रसाद – धौलपुर का राजनीतिक इतिहास (1857–1948) धौलपुर
30. मुद्गल, चेतना – बीकानेर में जन आंदोलन, बीकानेर, 1995

31. मनोहर , प्रभाकर (सं.) – 1857 और राजस्थान– कथा क्रांति की, जयपुर, 1985

32. मिश्र, रतनलाल – राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम दुर्लभ दस्तावेज, जयपुर, 1997

33. मेहता, पी.एस. – हमारा राजस्थान, इलाहबाद, 1950

34. मोसले, लियोनार्ड – भारत में ब्रिटिश राज के अंतिम दिन, दिल्ली, 1964

35. ओझा, गौरी शंकर, हीराचंद – उदयपुर राज्य का इतिहास, अजमेर, 1928
– राजपूताना का इतिहास, अजमेर, 1933
– जोधपुर राज्य का इतिहास, अजमेर, 1938
– बीकानेर राज्य का इतिहास, अजमेर, 1939

36. पुरोहित, प्रकाश – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता, जयपुर, 2007

37. पटेल, सरदार – भारत की एकता का निर्माण, नई दिल्ली, 1954

38. पटेल, बाबू भाई जे. – स्वतंत्र भारत का निर्माण, अहमदाबाद, 1983

39. पानगड़िया, बी.एल. – राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, जयपुर, 1985

40. पापा, सूरजप्रकाश – स्वतंत्रता संग्राम में मारवाड़

41. रघुवंशी, वी.पी. एस – राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारत का संविधान, आगरा, 1972

42. राज्य अभिलेखागार बीकानेर – राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी, जयपुर, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर अंचल, 2009

43. राजपुरोहित, नृसिंह – भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थानी, कवियां रो योगदान, जोधपुर, 1988

44. राजपुरोहित, देवकिशन – राजस्थान शासन परिचयांकन, 1988

45. परिहार, विनिता – राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिये संघर्ष, जयपुर, 2002

46. रेउ, विश्वेश्वरनाथ – मारवाड़ का इतिहास, जोधपुर 1938, 1940

47. राय, लाजपत – महर्षि दयानंद और उनका काम

48. शर्मा, गोपीनाथ – राजस्थान का इतिहास, आगरा, 1978

49. शर्मा, रामगोपाल – राजस्थान में प्रजामण्डल आंदोलन, जयपुर, 2002

50. शास्त्री, हीरालाल – प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र, जयपुर, 1970

51. शर्मा, शिव – अजमेर इतिहास और पर्यटन, जयपुर, 2009

52. शिशु, भूषणलाल – हरिभाऊ उपाध्याय, जयपुर, 2000

53. सक्सैना, के.एस. – राजस्थान में राजनीतिक जन जागरण, नई दिल्ली, 1972

54. सक्सैना, शंकरसहाय – जो देश के लिये जिए, बीकानेर

55. सक्सैना, शंकर सहाय व पद्मजा शर्मा – बिजोलिया किसान आंदोलन का इतिहास बीकानेर, 1972

56. शर्मा, बृजकिशोर – सामन्तवाद एवं किसान संघर्ष, जयपुर

57. सिरोही, राजेन्द्र शाह – पश्चिमी राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम, जयपुर, 2001

58. सुथार, अंजू – 20वीं सदी में राष्ट्रीय राजनीति के निर्माता, जयपुर, 2008

59. त्रिवेदी, विजय कुमार – युगयुगीन सिरोही, उदयपुर, 1990

60. यादव, कमल – देशी रियासतों में राजनीतिक चेतना और जन आंदोलन, जयपुर, 1993

परिशिष्ट– I

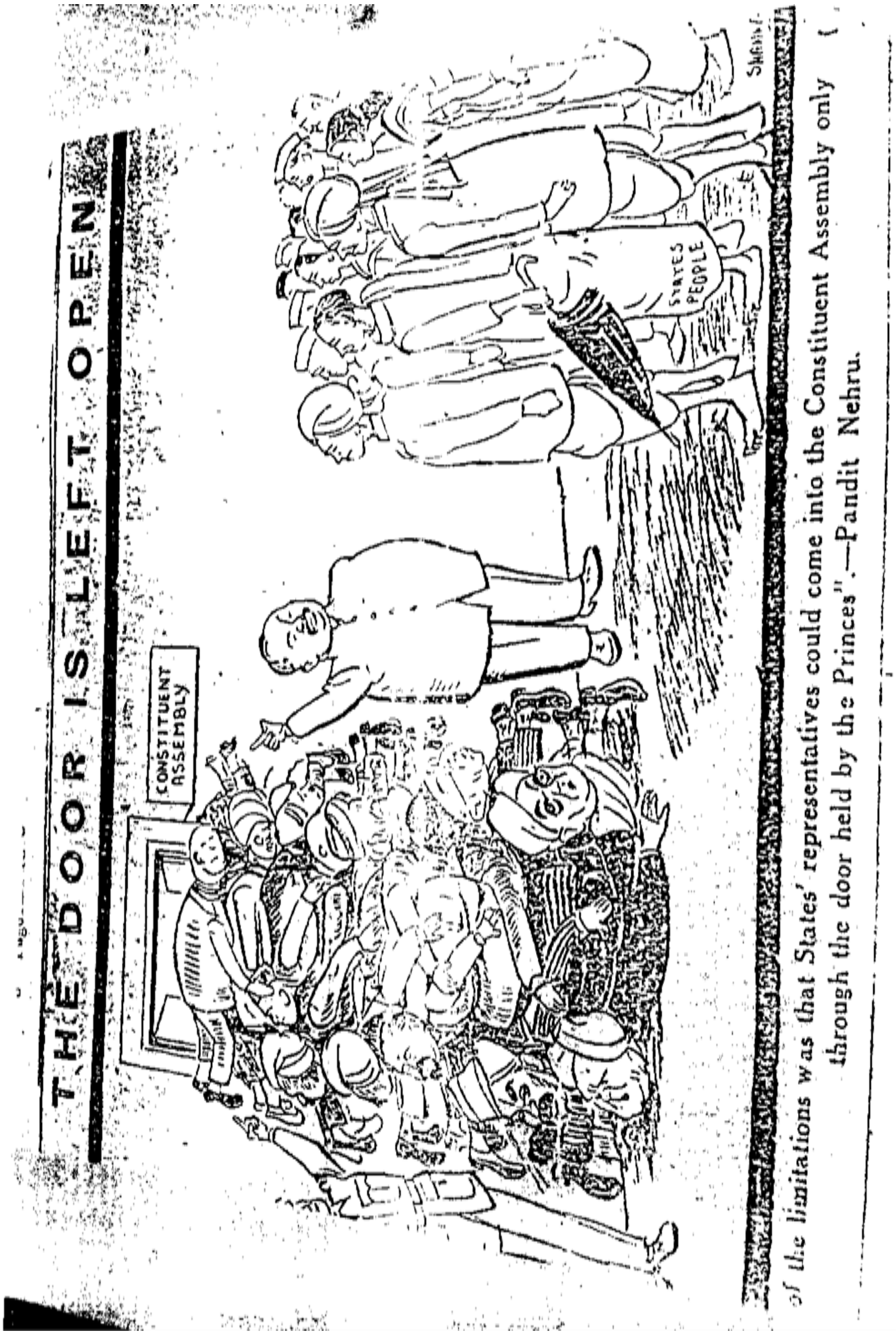

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– II

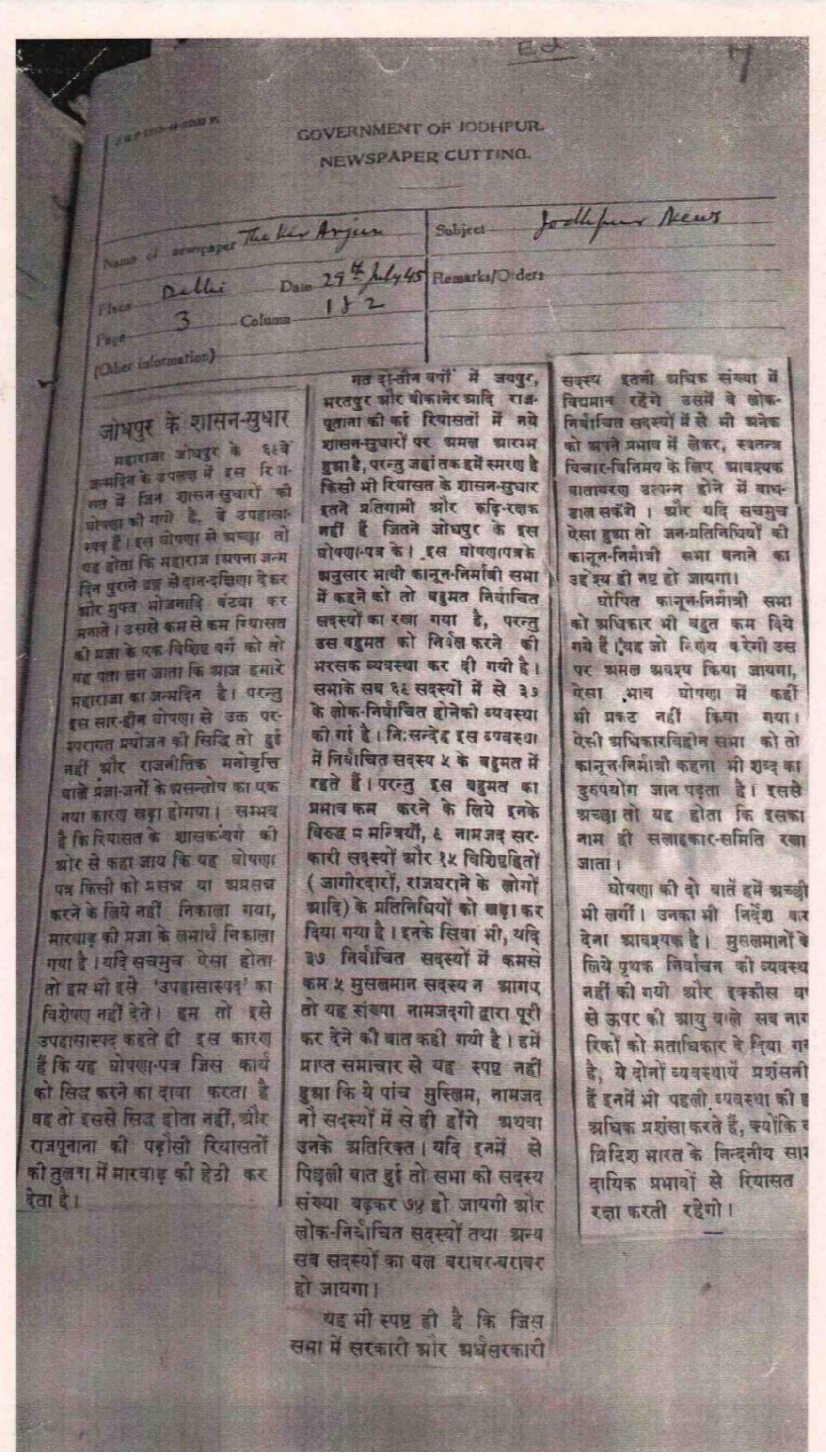

GOVERNMENT OF JODHPUR.

NEWSPAPER CUTTING.

Name of newspaper The Vir Arjun — Subject Jodhpur News

Place Delhi — Date 29th July 45 — Remarks/Orders

Page 3 — Column 1 & 2

(Other information)

जोधपुर के शासन-सुधार

महाराजा जोधपुर के ६६वें जन्मदिन के उपलक्ष में इस रियासत में जिन शासन-सुधारों की घोषणा की गयी है, वे उपहासास्पद हैं। इस घोषणा से अच्छा तो यह होता कि महाराज अपना जन्म दिन पुराने ढङ्ग से दान-दक्षिणा देकर और मुफ्त भोजनादि बंटवा कर मनाते। उससे कम से कम रियासत की प्रजा के एक विशिष्ट वर्ग को तो यह पता लग जाता कि आज हमारे महाराजा का जन्मदिन है। परन्तु इस सार-हीन घोषणा से उक्त परम्परागत प्रयोजन की सिद्धि तो हुई नहीं और राजनीतिक मनोवृत्ति वाले प्रजा-जनों के असन्तोष का एक नया कारण खड़ा होगया। सम्भव है कि रियासत के शासक-वर्ग की ओर से कहा जाय कि यह घोषणा पत्र किसी को प्रसन्न या अप्रसन्न करने के लिये नहीं निकाला गया, मारवाड़ की प्रजा के लभार्थ निकाला गया है। यदि सचमुच ऐसा होता तो हम भी इसे 'उपहासास्पद' का विशेषण नहीं देते। हम तो इसे उपहासास्पद कहते ही इस कारण हैं कि यह घोषणा-पत्र जिस कार्य को सिद्ध करने का दावा करता है वह तो इससे सिद्ध होता नहीं, और राजपूताना की पड़ोसी रियासतों की तुलना में मारवाड़ की हेठी कर देता है।

गत दो-तीन वर्षों में जयपुर, भरतपुर और बीकानेर आदि राजपूताना की कई रियासतों में नये शासन-सुधारों पर अमल आरम्भ हुआ है, परन्तु जहां तक हमें स्मरण है किसी भी रियासत के शासन-सुधार इतने प्रतिगामी और रूढ़ि-रक्षक नहीं हैं जितने जोधपुर के इस घोषणा-पत्र के। इस घोषणापत्र के अनुसार भावी कानून-निर्मात्री सभा में कहने को तो बहुमत निर्वाचित सदस्यों का रखा गया है, परन्तु उस बहुमत को निर्बल करने की भरसक व्यवस्था कर दी गयी है। सभाके सब ६६ सदस्यों में से ३७ के लोक-निर्वाचित होनेकी व्यवस्था की गई है। निःसन्देह इस व्यवस्था में निर्वाचित सदस्य ५ के बहुमत में रहते हैं। परन्तु इस बहुमत का प्रभाव कम करने के लिये इनके विरुद्ध ८ मन्त्रियों, ६ नामजद सरकारी सदस्यों और १५ विशिष्टहितों (जागीरदारों, राजघराने के लोगों आदि) के प्रतिनिधियों को खड़ा कर दिया गया है। इनके सिवा भी, यदि ३७ निर्वाचित सदस्यों में कमसे कम ५ मुसलमान सदस्य न आगए तो यह संख्या नामजदगी द्वारा पूरी कर देने की बात कही गयी है। हमें प्राप्त समाचार से यह स्पष्ट नहीं हुआ कि ये पांच मुस्लिम, नामजद नौ सदस्यों में से ही होंगे अथवा उनके अतिरिक्त। यदि इनमें से पिछली बात हुई तो सभा की सदस्य संख्या बढ़कर ७५ हो जायगी और लोक-निर्वाचित सदस्यों तथा अन्य सब सदस्यों का बल बराबर-बराबर हो जायगा।

यह भी स्पष्ट ही है कि जिस सभा में सरकारी और अर्धसरकारी सदस्य इतनी अधिक संख्या में विद्यमान रहेंगे उसमें वे लोक-निर्वाचित सदस्यों में से भी अनेक को अपने प्रभाव में लेकर, स्वतन्त्र विचार-विनिमय के लिए आवश्यक वातावरण उत्पन्न होने में बाधा डाल सकेंगे। और यदि सचमुच ऐसा हुआ तो जन-प्रतिनिधियों की कानून-निर्मात्री सभा बनाने का उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा।

घोषित कानून-निर्मात्री सभा को अधिकार भी बहुत कम दिये गये हैं। वह जो निर्णय करेगी उस पर अमल अवश्य किया जायगा, ऐसा भाव घोषणा में कहीं भी प्रकट नहीं किया गया। ऐसी अधिकारविहीन सभा को तो कानून-निर्मात्री कहना भी शब्द का दुरुपयोग जान पड़ता है। इससे अच्छा तो यह होता कि इसका नाम ही सलाहकार-समिति रखा जाता।

घोषणा की दो बातें हमें अच्छी भी लगीं। उनका भी निर्देश कर देना आवश्यक है। मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचन की व्यवस्था नहीं की गयी और इक्कीस वर्ष से ऊपर की आयु वाले सब नागरिकों को मताधिकार दे दिया गया है, ये दोनों व्यवस्थायें प्रशंसनीय हैं इनमें भी पहली व्यवस्था की हम अधिक प्रशंसा करते हैं, क्योंकि यह ब्रिटिश भारत के निन्दनीय साम्प्रदायिक प्रभावों से रियासत की रक्षा करती रहेगी।

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– III

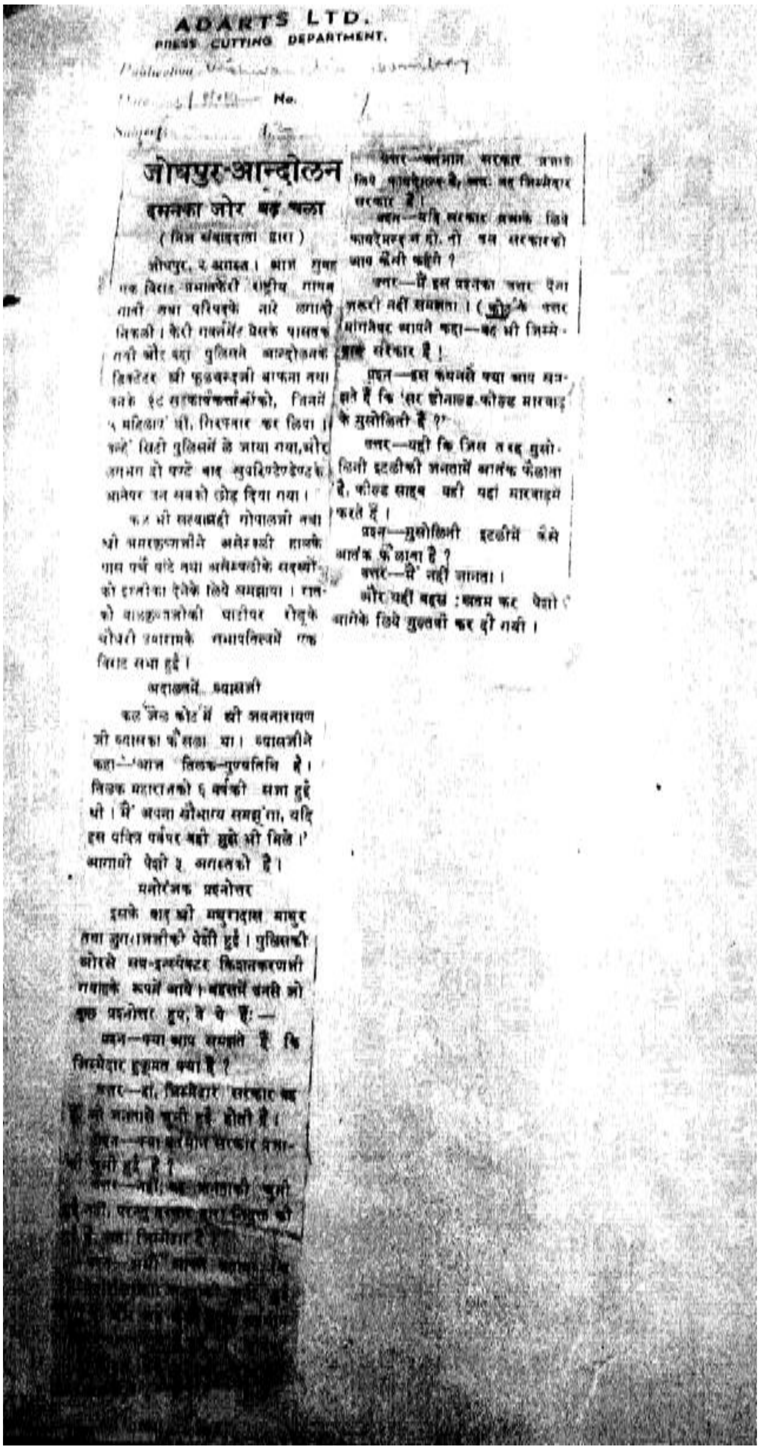

ADARTS LTD.
PRESS CUTTING DEPARTMENT.

Publication [illegible]

Date [illegible] No. [illegible]

Subject [illegible]

जोधपुर-आन्दोलन

दमनका जोर बढ़ चला

(निज संवाददाता द्वारा)

जोधपुर, २ अगस्त। आज सुबह एक विराट जमातने राष्ट्रीय गायन गाती तथा परिषद्के नारे लगाती निकली। फेरी गवर्नमेंट प्रेसके पासतक गयी और वहां पुलिसने आन्दोलनके डिक्टेटर श्री फूलचन्दजी बाफना तथा उनके १८ सत्याग्रहियोंको, जिनमें ५ महिलाएं थीं, गिरफ्तार कर लिया। उन्हें सिटी पुलिसमें ले जाया गया, और लगभग दो घण्टे बाद सुपरिण्टेण्डेण्टके आनेपर उन सबको छोड़ दिया गया।

कल श्री सत्याग्रही गोपालजी तथा श्री [illegible]जीने [illegible] पास पर्चे बांटे तथा [illegible] [illegible]को हड़तालका देनेके लिये समझाया। रात को [illegible]की पाटीपर [illegible] चौधरी [illegible] सभापतित्वमें एक विराट सभा हुई।

अदालतमें व्यासजी

कल जेल कोर्टमें श्री जयनारायण जी व्यासका फैसला था। व्यासजीने कहा—'आज तिलक-पुण्यतिथि है। तिलक महाराजको ६ वर्षकी सजा हुई थी। मैं अपना सौभाग्य समझूंगा, यदि इस पवित्र पर्वपर वही मुझे भी मिले।' आगामी पेशी ३ अगस्तको है।

मनोरंजक प्रश्नोत्तर

इसके बाद श्री मथुरादास माथुर तथा [illegible]जीकी पेशी हुई। पुलिसकी ओरसे सब-इन्स्पेक्टर किशनकरणजी गवाहके रूपमें आये। बहसमें उनसे जो कुछ प्रश्नोत्तर हुए, वे ये हैं:—

प्रश्न—क्या आप समझते हैं कि जिम्मेदार हुकूमत क्या है?

उत्तर—हां, जिम्मेदार सरकार वह है जो जनतासे चुनी हुई होती है।

प्रश्न—क्या वर्तमान सरकार प्रजा[illegible] चुनी हुई है?

उत्तर—नहीं, वह जनताकी चुनी हुई नहीं, परन्तु [illegible] नियुक्त की गई है, अतः जिम्मेदार है। [illegible]

उत्तर—वर्तमान सरकार प्रजाके लिये फायदेमन्द है, अतः वह जिम्मेदार सरकार है।

प्रश्न—यदि सरकार प्रजाके लिये फायदेमन्द न हो, तो उस सरकारको आप कैसी कहेंगे?

उत्तर—मैं इस प्रश्नका उत्तर देना जरूरी नहीं समझता। (कोर्टके उत्तर मांगनेपर आपने कहा—वह भी जिम्मेदार सरकार है।

प्रश्न—इस कथनसे क्या आप समझते हैं कि 'सर डोनाल्ड फील्ड मारवाड़के मुसोलिनी हैं?'

उत्तर—यही कि जिस तरह मुसोलिनी इटलीकी जनतामें आतंक फैलाता है, फील्ड साहब वही यहां मारवाड़में करते हैं।

प्रश्न—मुसोलिनी इटलीमें कैसे आतंक फैलाता है?

उत्तर—मैं नहीं जानता।

और यहीं बहस खतम कर पेशी आगेके लिये मुल्तवी कर दी गयी।

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– IV

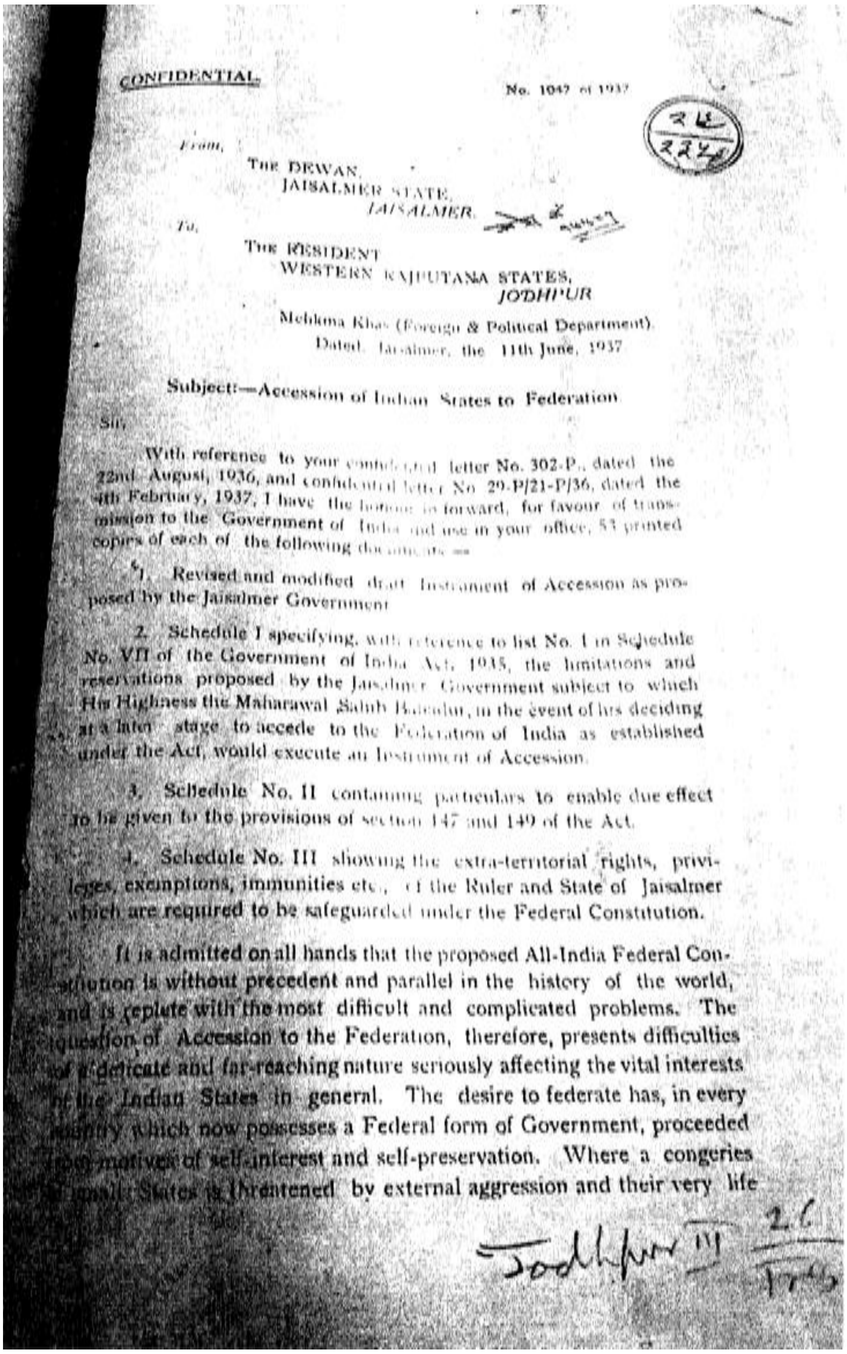

CONFIDENTIAL.

No. 1047 of 1937

From,

THE DEWAN,
JAISALMER STATE,
JAISALMER.

To,

THE RESIDENT
WESTERN RAJPUTANA STATES,
JODHPUR

Mehkma Khas (Foreign & Political Department).
Dated, Jaisalmer, the 11th June, 1937

Subject:—Accession of Indian States to Federation

Sir,

With reference to your confidential letter No. 302-P., dated the 22nd August, 1936, and confidential letter No 29-P/21-P/36, dated the 4th February, 1937, I have the honour to forward, for favour of transmission to the Government of India and use in your office, 53 printed copies of each of the following documents :—

1. Revised and modified draft Instrument of Accession as proposed by the Jaisalmer Government

2. Schedule I specifying, with reference to list No. I in Schedule No. VII of the Government of India Act, 1935, the limitations and reservations proposed by the Jaisalmer Government subject to which His Highness the Maharawal Sahib Bahadur, in the event of his deciding at a later stage to accede to the Federation of India as established under the Act, would execute an Instrument of Accession.

3. Schedule No. II containing particulars to enable due effect to be given to the provisions of section 147 and 149 of the Act.

4. Schedule No. III showing the extra-territorial rights, privileges, exemptions, immunities etc., of the Ruler and State of Jaisalmer which are required to be safeguarded under the Federal Constitution.

It is admitted on all hands that the proposed All-India Federal Constitution is without precedent and parallel in the history of the world, and is replete with the most difficult and complicated problems. The question of Accession to the Federation, therefore, presents difficulties of a delicate and far-reaching nature seriously affecting the vital interests of the Indian States in general. The desire to federate has, in every country which now possesses a Federal form of Government, proceeded from motives of self-interest and self-preservation. Where a congeries of small States is threatened by external aggression and their very life

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– V

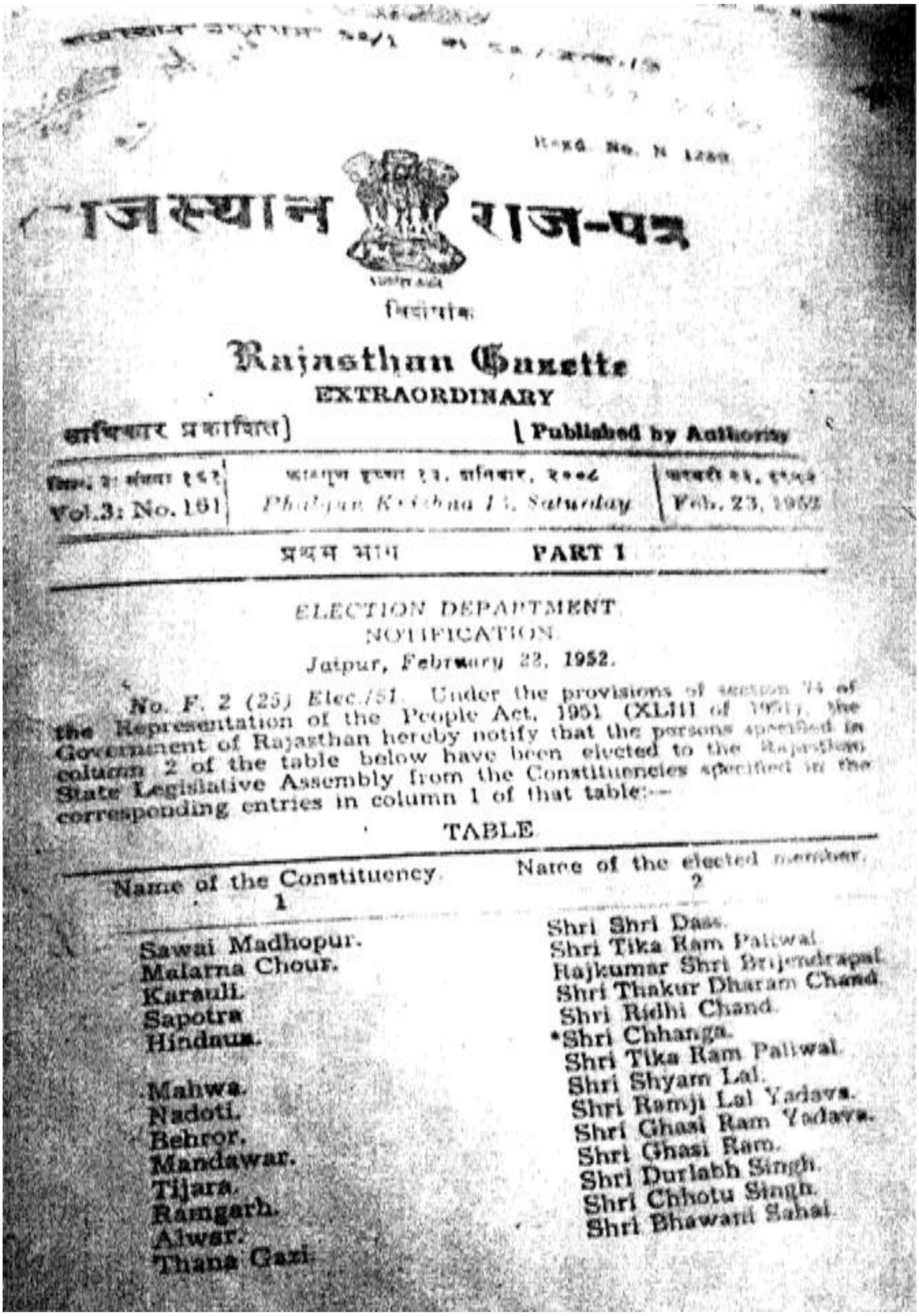

राजस्थान राज-पत्र

विशेषांक

Rajasthan Gazette

EXTRAORDINARY

अधिकार प्रकाशित] | Published by Authority

Vol.3: No. 161	Phalgun Krishna 13, Saturday	Feb. 23, 1952

प्रथम भाग **PART I**

ELECTION DEPARTMENT

NOTIFICATION

Jaipur, February 22, 1952.

No. F. 2 (25) Elec./51. Under the provisions of section 74 of the Representation of the People Act, 1951 (XLIII of 1951), the Government of Rajasthan hereby notify that the persons specified in column 2 of the table below have been elected to the Rajasthan State Legislative Assembly from the Constituencies specified in the corresponding entries in column 1 of that table:—

TABLE

Name of the Constituency. 1	Name of the elected member. 2
	Shri Shri Das.
Sawai Madhopur.	Shri Tika Ram Paliwal.
Malarna Chour.	Rajkumar Shri Brijendrapal.
Karauli.	Shri Thakur Dharam Chand.
Sapotra	Shri Ridhi Chand.
Hindaun.	*Shri Chhanga.
	Shri Tika Ram Paliwal.
Mahwa.	Shri Shyam Lal.
Nadoti.	Shri Ramji Lal Yadava.
Behror.	Shri Ghasi Ram Yadava.
Mandawar.	Shri Ghasi Ram.
Tijara.	Shri Durlabh Singh.
Ramgarh.	Shri Chhotu Singh.
Alwar.	Shri Bhawani Sahai.
Thana Gazi.	

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– VI-A

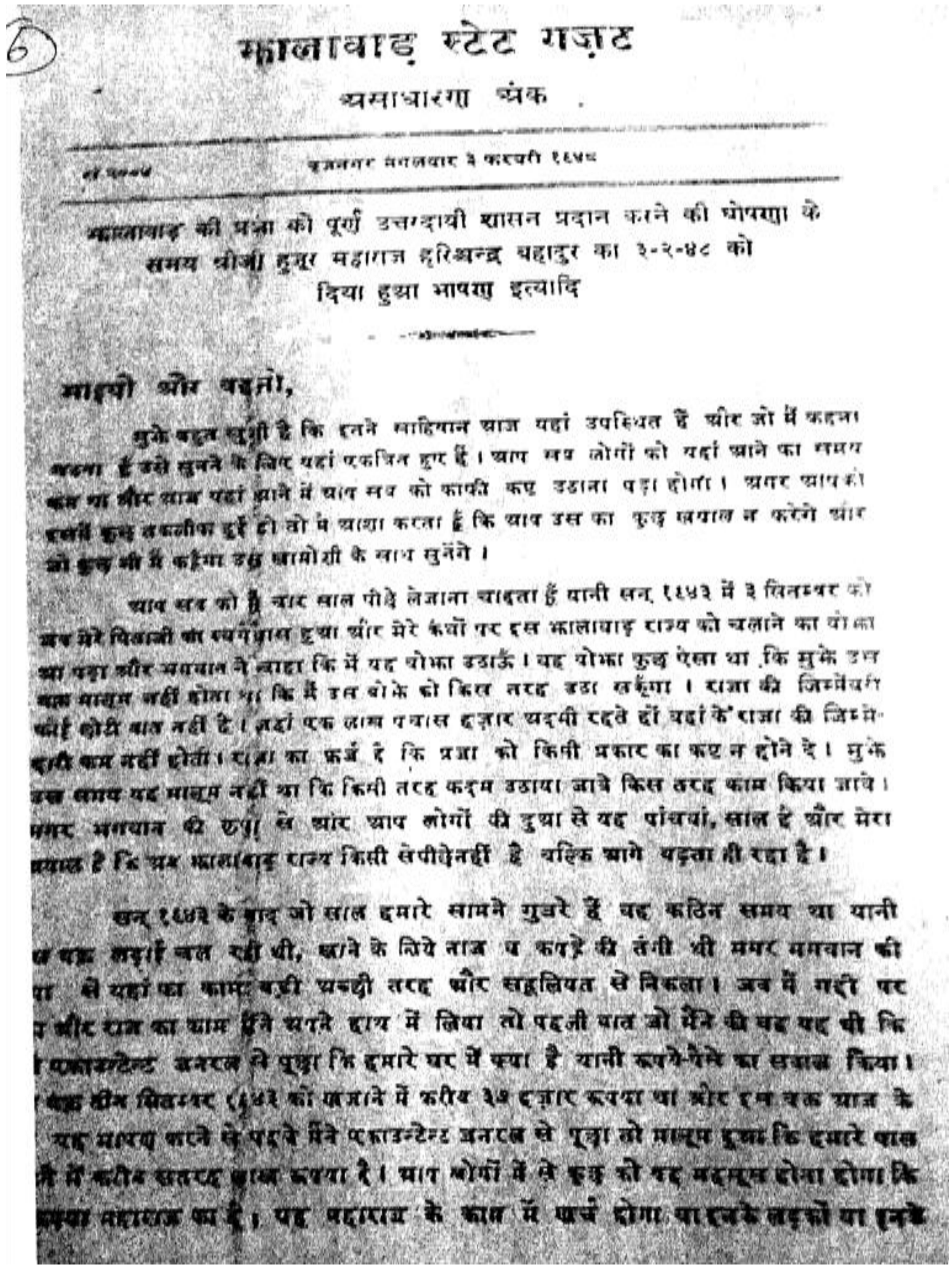

झालावाड़ स्टेट गज़ट

असाधारण अंक

[illegible] मंगलवार ३ फरवरी १९४८

झालावाड़ की प्रजा को पूर्ण उत्तरदायी शासन प्रदान करने की घोषणा के समय श्रीजी हुजूर महाराज हरिश्चन्द्र बहादुर का ३-२-४८ को दिया हुआ भाषण इत्यादि

भाइयो और बहनो,

मुझे बहुत खुशी है कि इतने साहिबान आज यहां उपस्थित हैं और जो मैं कहना चाहता हूं उसे सुनने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। आप सब लोगों को यहां आने का समय कम था और आज यहां आने में आप सब को काफी कष्ट उठाना पड़ा होगा। अगर आपको इसमें कुछ तकलीफ हुई हो तो मैं आशा करता हूं कि आप उस का कुछ खयाल न करेंगे और जो कुछ भी मैं कहूंगा उसे खामोशी के साथ सुनेंगे।

आप सब को मैं चार साल पीछे ले जाना चाहता हूं यानी सन् १९४३ में ३ सितम्बर को जब मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ और मेरे कंधों पर इस झालावाड़ राज्य को चलाने का बोझा आ पड़ा और भगवान ने चाहा कि मैं यह बोझा उठाऊं। यह बोझा कुछ ऐसा था कि मुझे उस वक्त मालूम नहीं होता था कि मैं उस बोझे को किस तरह उठा सकूंगा। राजा की जिम्मेवारी कोई छोटी बात नहीं है। जहां एक लाख पचास हज़ार आदमी रहते हों वहां के राजा की जिम्मेवारी कम नहीं होती। राजा का फ़र्ज़ है कि प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न होने दे। मुझे उस समय यह मालूम नहीं था कि किसी तरह कदम उठाया जावे किस तरह काम किया जावे। मगर भगवान की कृपा से और आप लोगों की दुआ से यह पांचवां साल है और मेरा खयाल है कि अब झालावाड़ राज्य किसी से पीछे नहीं है बल्कि आगे बढ़ता ही रहा है।

सन् १९४३ के बाद जो साल हमारे सामने गुजरे हैं वह कठिन समय था यानी [illegible] बड़ी लड़ाई चल रही थी, खाने के लिये नाज व कपड़े की तंगी थी मगर भगवान की [illegible] से यहां का काम बड़ी अच्छी तरह और सहूलियत से निकला। जब मैं गद्दी पर [illegible] और राज का काम मैंने अपने हाथ में लिया तो पहली बात जो मैंने की वह यह थी कि [illegible] एकाउन्टेन्ट जनरल से पूछा कि हमारे घर में क्या है यानी रूपये-पैसे का सवाल किया। [illegible] तीन सितम्बर १९४३ को खजाने में करीब ३७ हज़ार रूपया था और इस वक्त आज के [illegible] यह भाषण करने से पहले मैंने एकाउन्टेन्ट जनरल से पूछा तो मालूम हुआ कि हमारे पास [illegible] में करीब सतरह लाख रूपया है। आप लोगों में से कुछ को यह महसूस होता होगा कि [illegible] महाराज का है। यह महाराज के काम में खर्च होगा या इनके लड़कों या इनके

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– VI-B

1965

1	2
Bali.	
Bali-Desuri.	Shri Lichman Singh.
Sojat-Desuri.	Shri Bhairon Singh.
Pali-Sojat.	Shri Bhairon Singh.
Sojat (Main).	Shri Bishan Singh.
Jaitaran East-Sojat East	Shri Keshri Singh.
Jaitaran North West.	Shri Mohan Singh.
Jalore (A).	Shri Umed Singh.
Jalore (B).	Shri Madho Singh.
Jaswantpura	Shri Hari Singh.
Jaswantpura-Sanchore	Shri Chatter Singh.
Sanchore.	Shri Ganpat Singh.
Barmer (A).	Shri Kishore Singh.
Barmer (B)	Shri Tan Singh.
Barmer (C).	Shri Nathu Singh.
Siwana.	Shri Thakur Madho Singh.
Jodhpur City (A)	Shri Mota Ram.
Jodhpur City (B).	Shri Inder Nath.
Jodhpur Tehsil South.	Shri Hanwant Singh.
Jodhpur Tehsil North	Shri Narsingh Kachhawaha.
Phalodi.	Shri Mangal Singh.
Shergarh.	Shri Himmat Singh.
Bilara.	Shri Khet Singh.
	Shri Santosh Singh Kachhawaha.
Nagaur East.	Shri Ganga Singh.
Nagaur West	Shri Keshri Singh.
Merta West.	Shri Nathu Ram.
Merta East.	Shri Bhopal Singh.
Nawan.	Shri Kishan Lal.
Parbatsar.	Shri Madan Mohan.
Deedwana.	Shri Mathura Dass.
Deedwana-Parbatsar.	Shri Moti Lal.
Bagidora.	Shri Hari Ram.
Banswara.	Shri Belji.
Ghatol.	Shri Dhulji.
Sagwara.	Shri Bhogi Lal.
Dungarpur.	Shri Hari Dev.
	Shri Soma.
Partapgarh-Nimbahera.	Shri Badri Lal Vakil.
	Shri Manna.
Badi Sadri-Kapasin.	Shri Jagat Singh.
	Shri Jai Chand.
Chittor.	Shri Partab Singh.
Begun.	Shri Sugan Chand Jain.
Mandalgarh.	Shri Kesri Singh.
Jahazpur.	Shri Ram Dayal.
Shahpura-Banera.	Shri Rajadhiraj Amar Singh.
	Shri Kastoor Chand.
	Shri Gopal Singh.
Asind.	Shri Chunni Lal.
Mandal.	Shri Shambhu Singh.
Shahada.	Shri Tej Mal.
Bhilwara.	Shri Sangram Singh.
Bhim.	

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– VI-C

1

Lachmangarh-Rajgarh.
Kaman
Nagar.
Kumher.
Weir.

Bharatpur.
Rupbas.
Bari.

Dholpur.
Nawalgarh.
Jhunjhunu.
Khetri.

Chirawa.
Udaipur
Lachmangarh.

Sikar Town.
Sikar Tehsil.
Danta Ramgarh.
Neem-ka-Thana (A)
Neem-ka-Thana (B)
Neem-ka-Thana (C)
Tonk.

Thikana Uniara.
Malpura.
Jaipur City (A).
Jaipur City (B).
Jaipur City (C).
Jaipur-Chaksu.

Bandikui.
Rupnagar.
Phagi.
Kishangarh.
Lalsote-Dausa.

Sikrai.
Kotputli.
Bairath.
Amber (A).
Amber (B).

Jamuwa Ramgarh.
Jaisalmer.
Bhavri.
Sheoganj.
Sirohi.

2

Shri Bhola Nath.
*Shri Sampat Ram.
Shri Mohammad Ibrahim.
Shri Gopi Lal Yadav.
Shri Raja Man Singh.
Shri Ghisa Singh.
*Shri Tej Pal
Shri Hari Datta.
Shri Sri Bhan Singh.
Shri Dr. Mangal Singh.
*Shri Hansraj.
Shri Sri Gopal Bhargava.
Shri Th. Bhim Singh.
Shri Joshi Narottam Lal.
Shri Th. Raghubir Singh.
*Shri Mahadev.
Shri Har Lal Singh.
Shri Devi Singh.
*Shri Narayan Lal.
Shri Balvir.
Shri Radha Krishna.
Shri Ishwar Singh.
Shri Bheron Singh.
Shri Ladu Ram Chowdhri.
Shri Rup Narain.
Shri Kapil Deo.
Shri Ram Ratan.
Shri Lalu Ram.
Shri Rao Raja Sardar Singh.
Shri Damodar Lal.
Shri Shah Alimuddin.
Shri Ram Kishore.
Shri Gulab Chand Kasliwal.
Shri Narayan Chaturvedi.
*Shri Harishankar Sidhant-shastri.
Shri Bishambhar Nath Joshi.
Shri Bhanu Pratap Singh.
Shri Abani Kumar.
Shri Chand Mal.
Shri Ram Karan Joshi.
*Shri Ram Lal Bansiwal.
Shri Triveni Shyam Sharma.
Shri Hazari Lal Sharma.
Shri Mukti Lal Modi.
Shri Kr. Tej Singh.
Shri Maharawal Sangram Singh.
Shri Man Singh.
Shri Hanwant Singh.
Shri Mohabat Singh.
Shri Arjun Singh.
Shri Jawan Singh.

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– VII

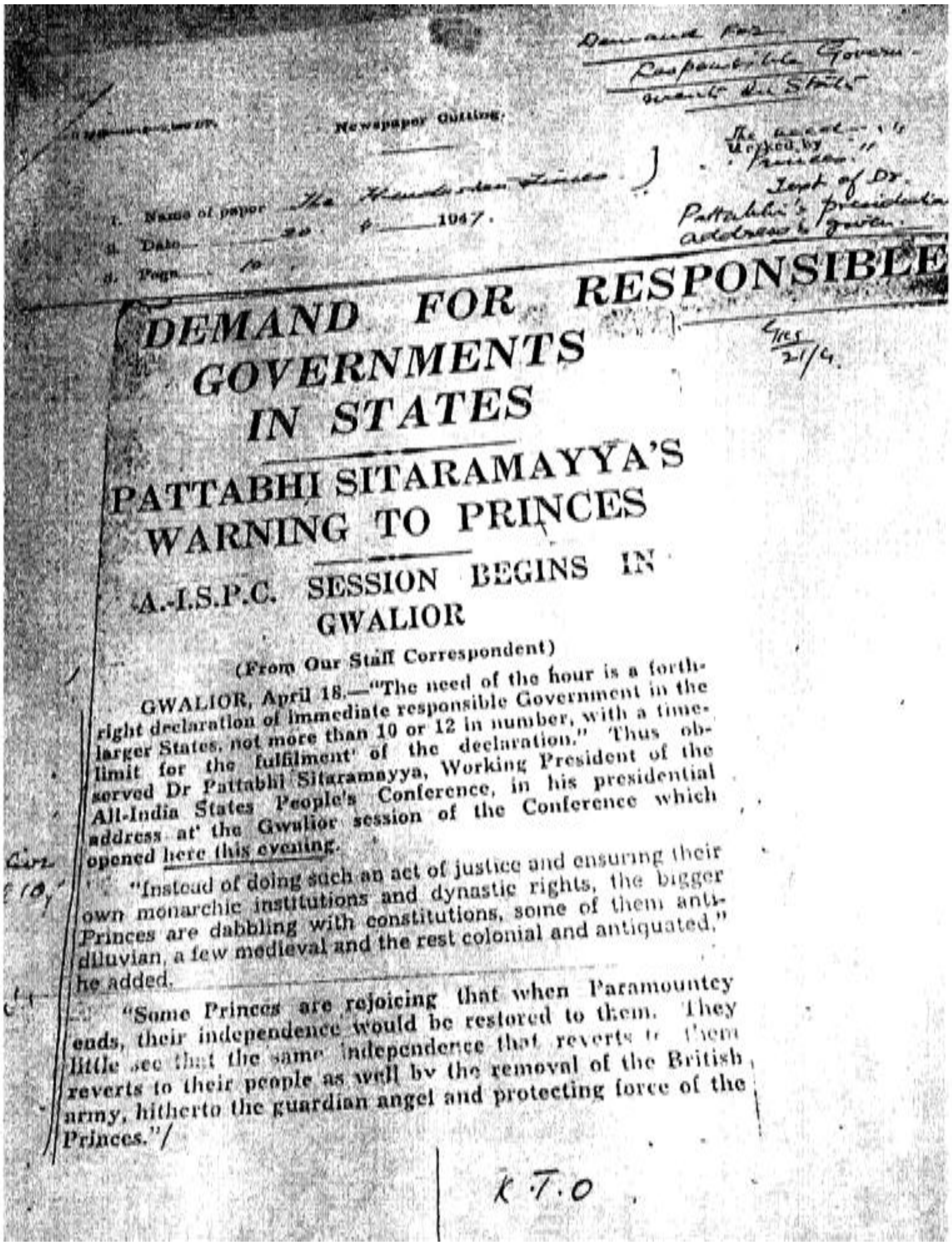

Newspaper Cutting.

1. Name of paper The Hindustan Times
2. Date 20-4-1947.
3. Page 10

DEMAND FOR RESPONSIBLE GOVERNMENTS IN STATES

PATTABHI SITARAMAYYA'S WARNING TO PRINCES

A.-I.S.P.C. SESSION BEGINS IN GWALIOR

(From Our Staff Correspondent)

GWALIOR, April 18.—"The need of the hour is a forthright declaration of immediate responsible Government in the larger States, not more than 10 or 12 in number, with a time-limit for the fulfilment of the declaration." Thus observed Dr Pattabhi Sitaramayya, Working President of the All-India States People's Conference, in his presidential address at the Gwalior session of the Conference which opened here this evening.

"Instead of doing such an act of justice and ensuring their own monarchic institutions and dynastic rights, the bigger Princes are dabbling with constitutions, some of them antediluvian, a few medieval and the rest colonial and antiquated," he added.

"Some Princes are rejoicing that when Paramountcy ends, their independence would be restored to them. They little see that the same independence that reverts to them reverts to their people as well by the removal of the British army, hitherto the guardian angel and protecting force of the Princes."

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– VIII

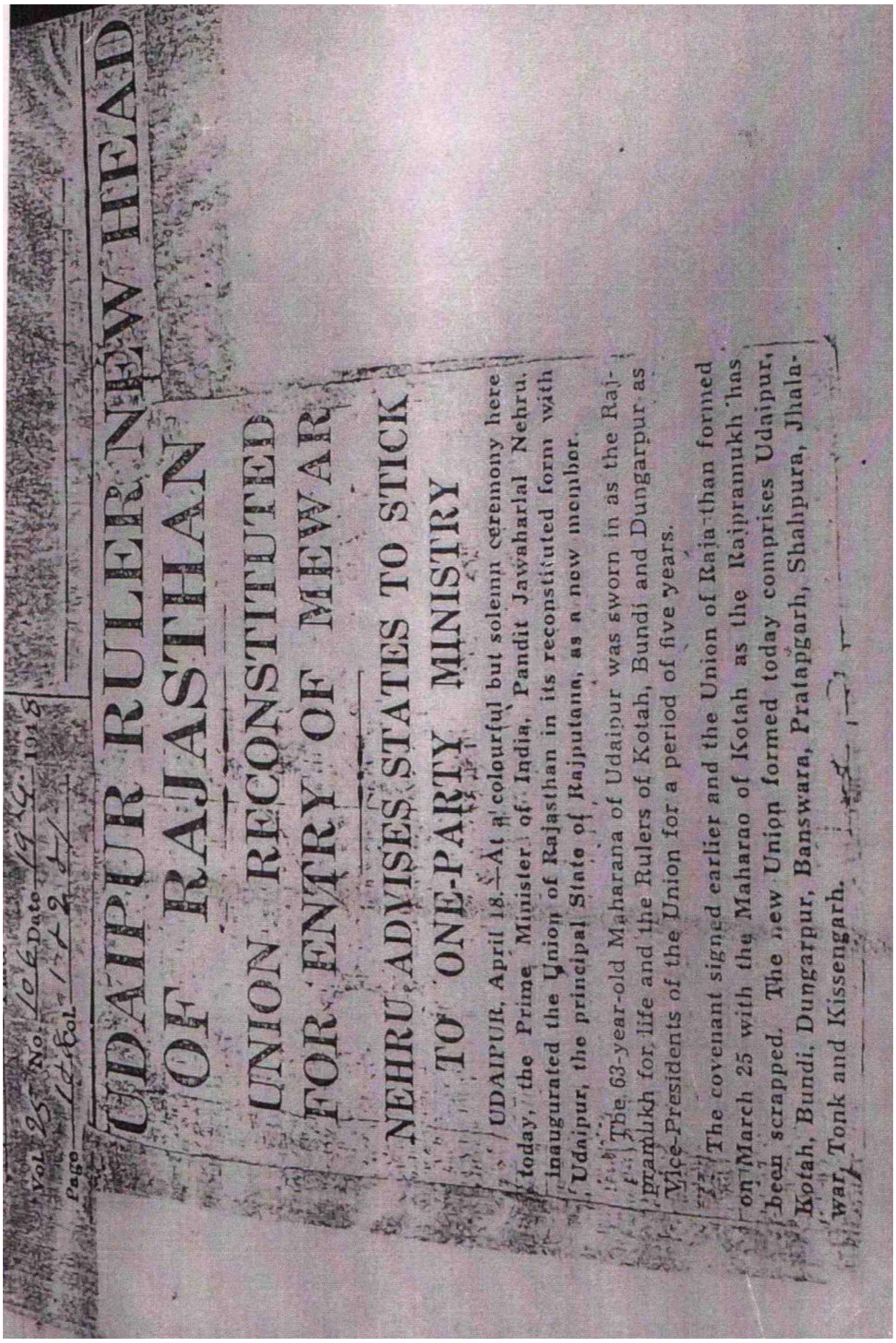

Vol. No. Date 1948
Page Col.

UDAIPUR RULER NEW HEAD OF RAJASTHAN

UNION RECONSTITUTED FOR ENTRY OF MEWAR

NEHRU ADVISES STATES TO STICK TO ONE-PARTY MINISTRY

UDAIPUR, April 18.—At a colourful but solemn ceremony here today, the Prime Minister of India, Pandit Jawaharlal Nehru, inaugurated the Union of Rajasthan in its reconstituted form with Udaipur, the principal State of Rajputana, as a new member.

The 63-year-old Maharana of Udaipur was sworn in as the Raj-pramukh for life and the Rulers of Kotah, Bundi and Dungarpur as Vice-Presidents of the Union for a period of five years.

The covenant signed earlier and the Union of Rajasthan formed on March 25 with the Maharao of Kotah as the Rajpramukh has been scrapped. The new Union formed today comprises Udaipur, Kotah, Bundi, Dungarpur, Banswara, Pratapgarh, Shahpura, Jhalawar, Tonk and Kissengarh.

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– IX

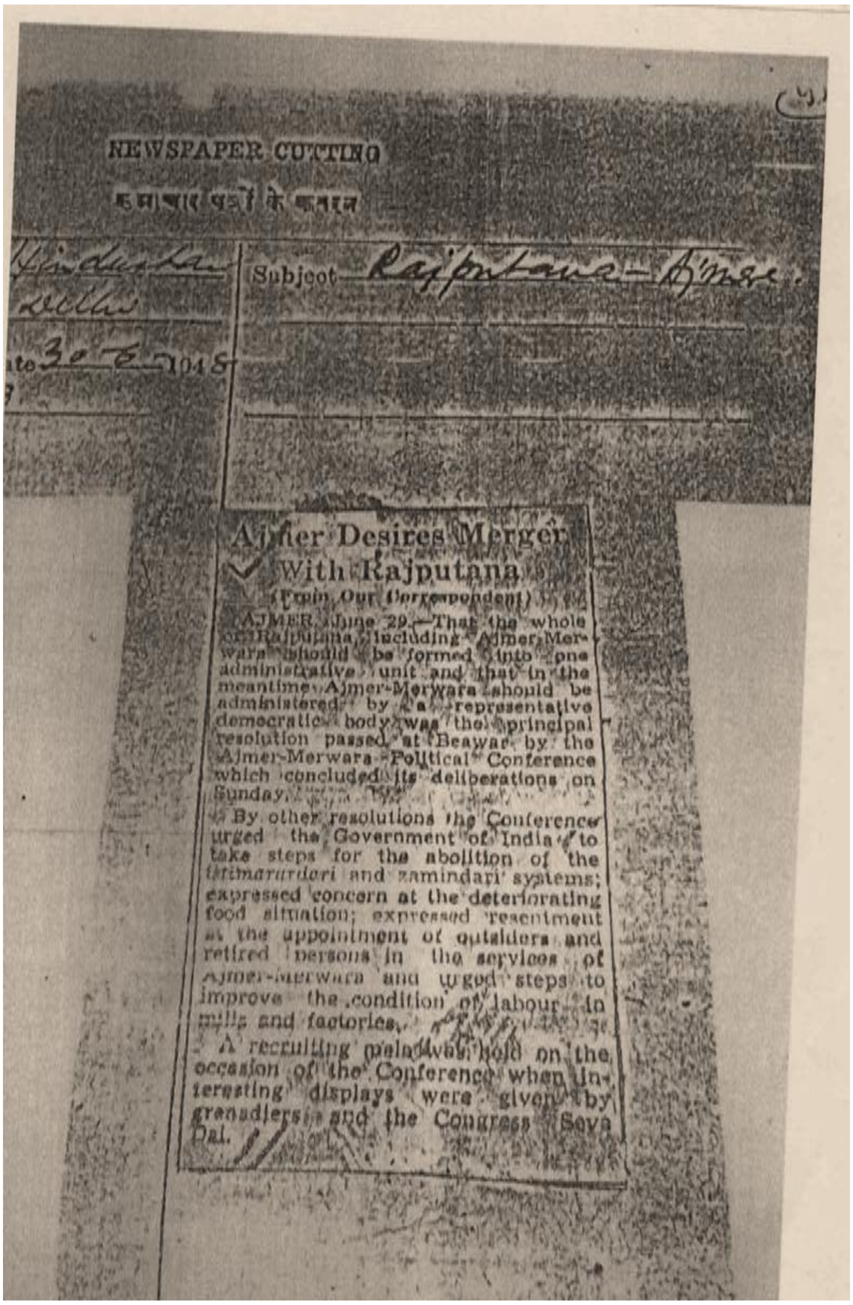
NEWSPAPER CUTTING

समाचार पत्रों के कतरन

Subject Rajputana–Ajmer

Ajmer Desires Merger With Rajputana

(From Our Correspondent)

AJMER, June 29.—That the whole of Rajputana, including Ajmer-Merwara should be formed into one administrative unit and that in the meantime Ajmer-Merwara should be administered by a representative democratic body was the principal resolution passed at Beawar by the Ajmer-Merwara Political Conference which concluded its deliberations on Sunday.

By other resolutions the Conference urged the Government of India to take steps for the abolition of the *istimrardari* and zamindari systems; expressed concern at the deteriorating food situation; expressed resentment at the appointment of outsiders and retired persons in the services of Ajmer-Merwara and urged steps to improve the condition of labour in mills and factories.

A recruiting mela was held on the occasion of the Conference when interesting displays were given by grenadiers and the Congress Seva Dal.

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– X

Sardar Warns The Princes

ENTER THE CONSTITUENT ASSEMBLY NOW

Close Up The Ranks: Appeal To Communists And Socialists

BOMBAY, Monday.

SARDAR VALLABHBHAI PATEL, Home Member, Government of India, made a fervent appeal today to the Princely Order to enter the Constituent Assembly immediately and co-operate with the Congress in creating a strong Union Centre so that "India can hold her head in the Comity of Nations."

"The Congress does not want to abolish the Princely Order. It bears the Princes no ill-will. But I will warn the Princes that they should not take advantage of the communal differences existing in the country. Any sort of manoeuvring and delaying tactics will be suicidal" he added.

On the question of division of India, Sardar Patel emphatically stated that it was the duty of every Indian to prevent any sort of division, as such an action could neither benefit the Hindus nor the Muslims.

Sardar Patel also called upon the Communists, Socialists and other disruptive forces in the country to stop thinking of revolutions, but to close their ranks with the Congress and cooperate with it at least for the next twelve months, which were the most crucial in India's history.

He also appealed to the workers and leaders of the B.E.S.T. Company Union to call off their strike and accept adjudication.

Sardar Patel was addressing a mammoth gathering on the Chowpatty sands for well over two hours. The meeting was held under the auspices of the B.P.C.C.

Sardar Patel said "India is now n the threshold of freedom. The te of revolution, struggle and sabotge has gone. Since coming out of I have been telling the country t our fight in future will not be [illegible] among ourselves. ents have now proved this

"There are several people in the ntry who are apprehensive of future and are anxious with reid their share in the freedom. persons who disbelieved

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

परिशिष्ट– XI

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

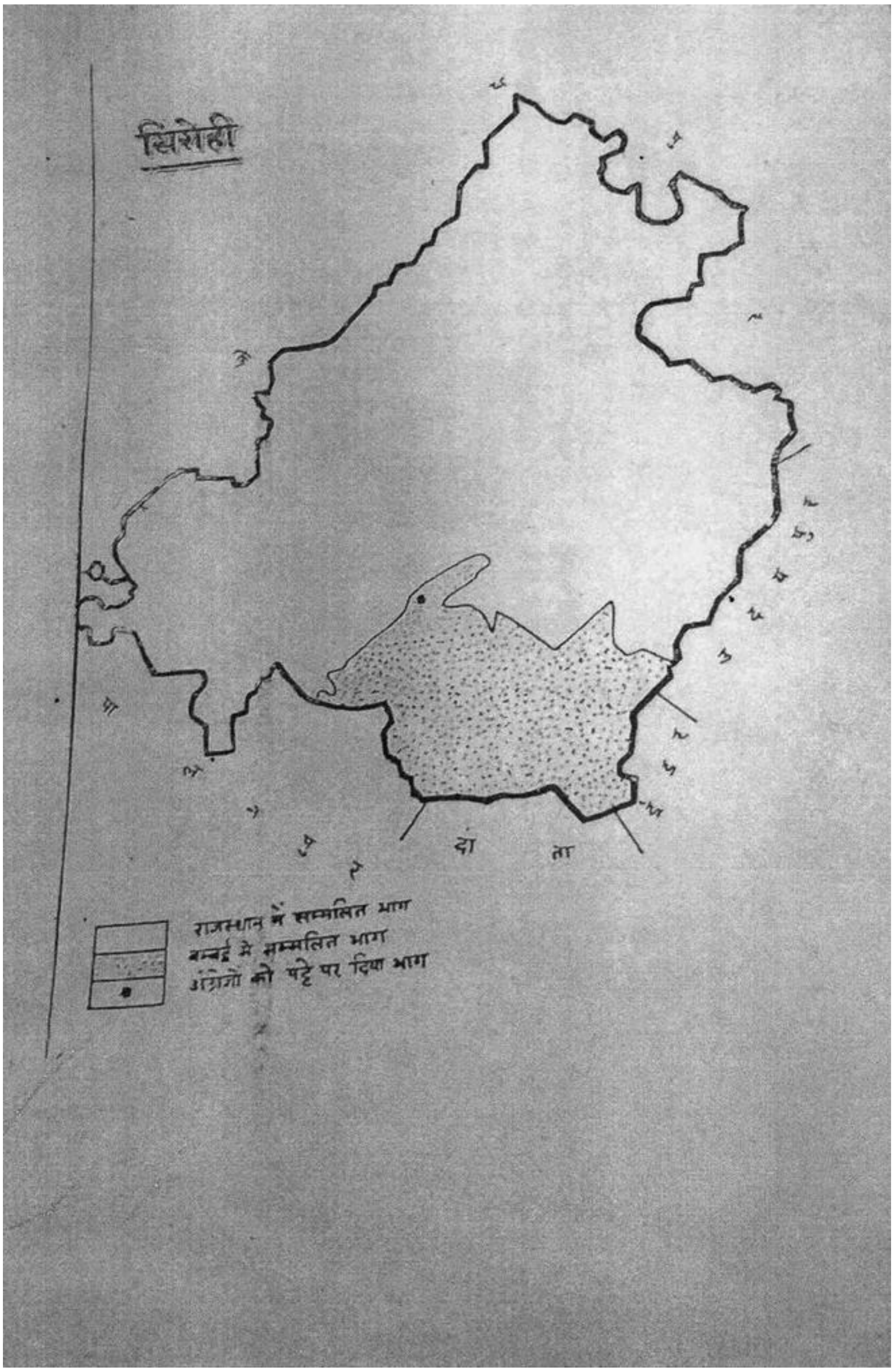

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

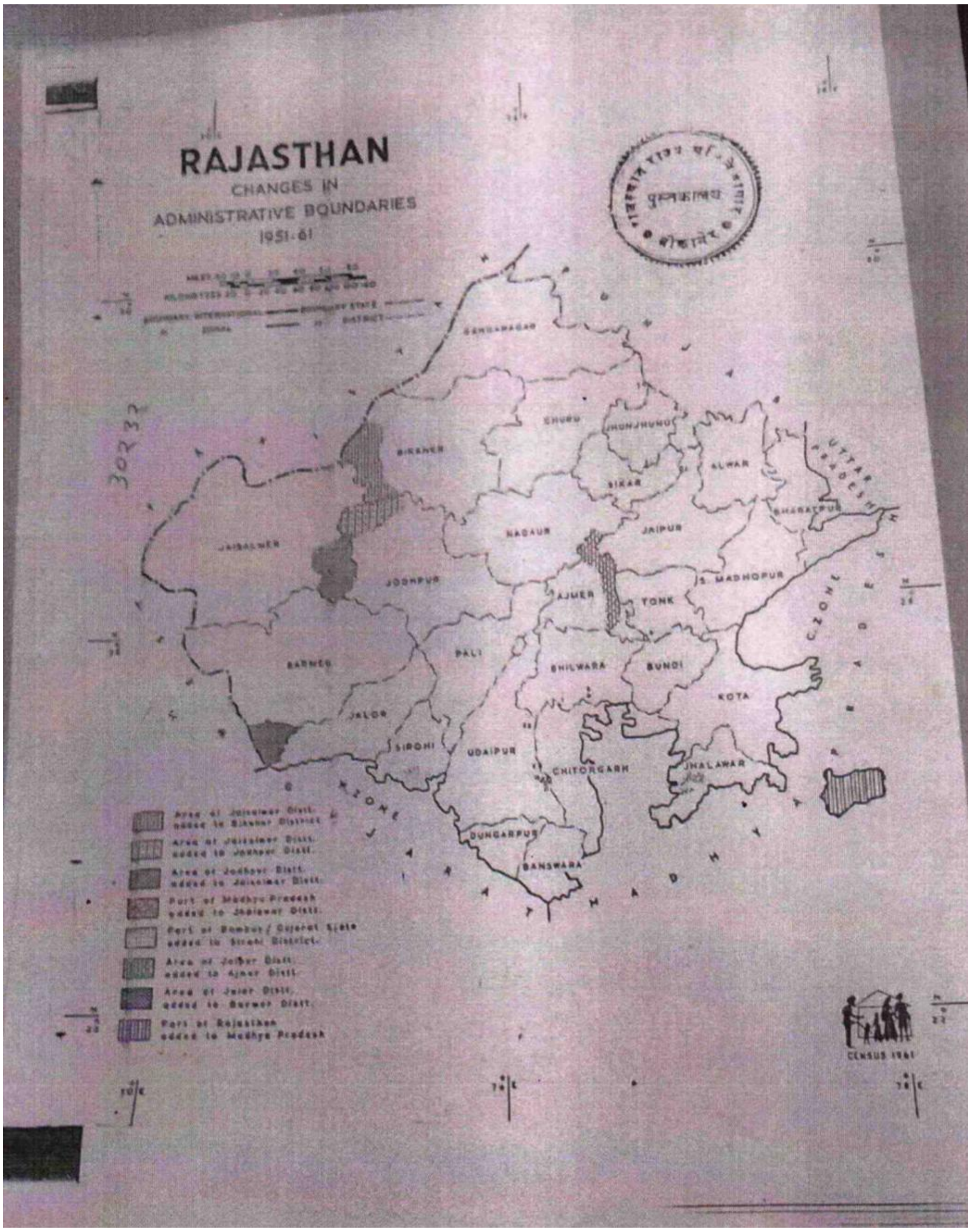

(राज्य अभिलेखाकार, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त)

The Indian Empire
Direct British Rule
Indian Princely States
Presidency Boundaries
Afghanistan
Tibet
Nepal
Bhutan
Bengal
Bombay
Madras
Arabian Sea
Bay of Bengal
Ceylon
Thailand

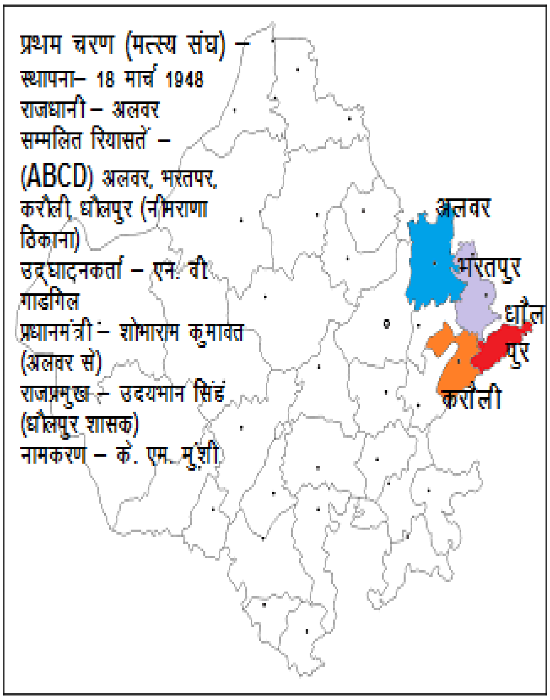

प्रथम चरण (मत्स्य संघ) –
स्थापना– 18 मार्च 1948
राजधानी – अलवर
सम्मलित रियासतें –
(ABCD) अलवर, भरतपर,
करौली, धौलपुर (नीमराणा
ठिकाना)
उद्घाटनकर्ता – एन. वी.
गाडगिल
प्रधानमंत्री – शोभाराम कुमावत
(अलवर से)
राजप्रमुख – उदयभान सिंह
(धौलपुर शासक)
नामकरण – के. एम. मुंशी
अलवर
भरतपुर
धौल
पुर
करौली

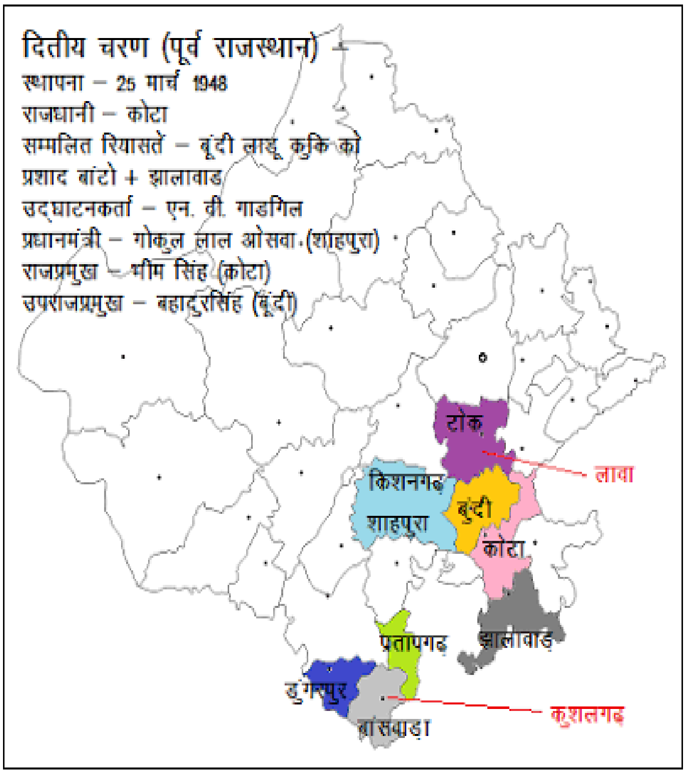

द्वितीय चरण (पूर्व राजस्थान) –
स्थापना – 25 मार्च 1948
राजधानी – कोटा
सम्मलित रियासतें – बूंदी लाडू कुकि को
प्रशाद बांटो + झालावाड़
उद्घाटनकर्ता – एन. वी. गाडगिल
प्रधानमंत्री – गोकुल लाल ओसवा (शाहपुरा)
राजप्रमुख – भीम सिंह (कोटा)
उपराजप्रमुख – बहादुरसिंह (बूंदी)
टोंक
लावा
किशनगढ़
शाहपुरा
बूंदी
कोटा
प्रतापगढ़
झालावाड़
डुंगरपुर
बांसवाड़ा
कुशलगढ़

तृतीय चरण (संयुक्त राजस्थान) –
स्थापना – 18 अप्रैल 1948
राजधानी – उदयपुर
सम्मलित रियासतें – पूर्व राजस्थान +
मेवाड़(उदयपुर)
उद्घाटनकर्ता – पं. जवाहर लाल नेहरु
प्रधानमंत्री – माणिक्यलाल वर्मा (उदयपुर)
राजप्रमुख – भूपाल सिंह (उदयपुर)
उपराजप्रमुख – मीम सिंह (कोटा)
मेवाड़

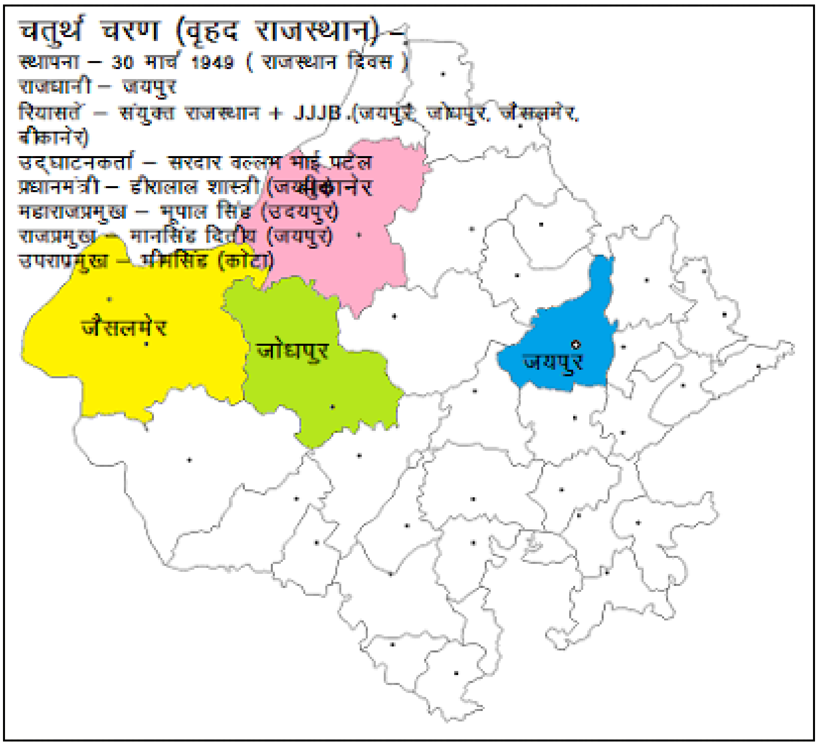
चतुर्थ चरण (वृहद राजस्थान) –
स्थापना – 30 मार्च 1949 (राजस्थान दिवस)
राजधानी – जयपुर
रियासतें – संयुक्त राजस्थान + JJJB .(जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर)
उद्घाटनकर्ता – सरदार वल्लभ भाई पटेल
प्रधानमंत्री – हीरालाल शास्त्री (जयपुर)
महाराजप्रमुख – भूपाल सिंह (उदयपुर)
राजप्रमुख – मानसिंह द्वितीय (जयपुर)
उपराजप्रमुख – भीमसिंह (कोटा)
बीकानेर
जैसलमेर
जोधपुर
जयपुर

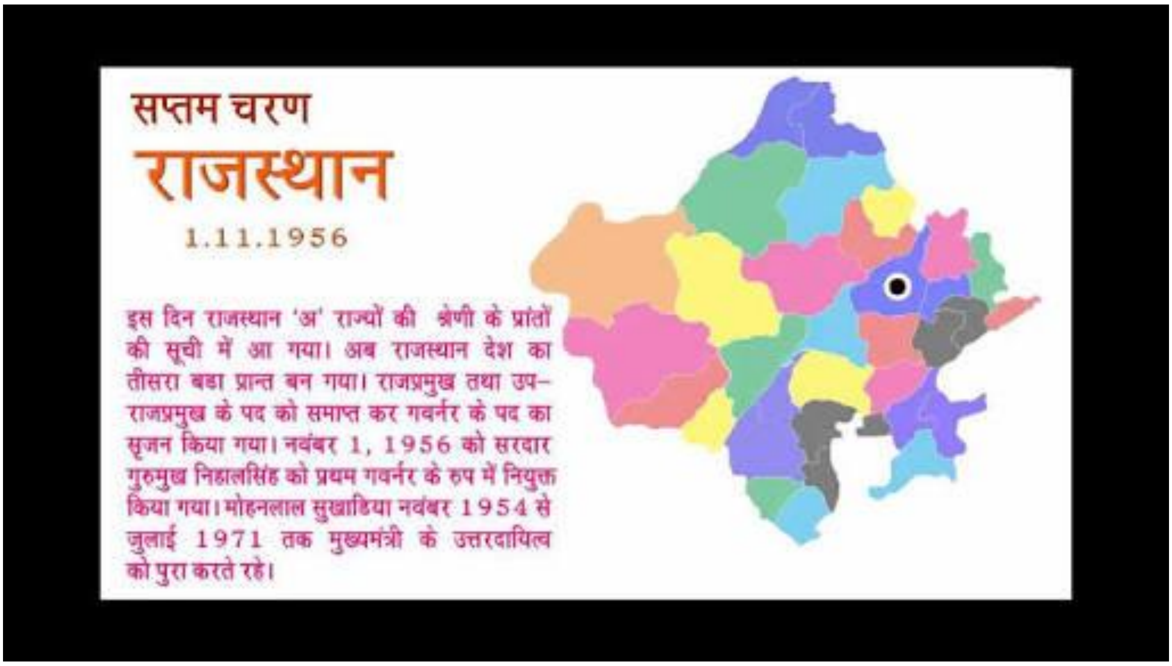
सप्तम चरण
राजस्थान
1.11.1956
इस दिन राजस्थान 'अ' राज्यों की श्रेणी के प्रांतों की सूची में आ गया। अब राजस्थान देश का तीसरा बडा प्रान्त बन गया। राजप्रमुख तथा उप-राजप्रमुख के पद को समाप्त कर गवर्नर के पद का सृजन किया गया। नवंबर 1, 1956 को सरदार गुरुमुख निहालसिंह को प्रथम गवर्नर के रुप में नियुक्त किया गया। मोहनलाल सुखाडिया नवंबर 1954 से जुलाई 1971 तक मुख्यमंत्री के उत्तरदायित्व को पुरा करते रहे।

राजस्थान – एकीकरण के चरण

क्र. सं.	चरण	तिथि	नाम	शामिल रियासतें / ठिकाने / क्षेत्र	प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री	राजप्रमुख (राजधानी)	विशेष विवरण
1.	प्रथम	18 मार्च 1948	मत्स्य संघ	अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली एंव नीमराना(ठिकाना)	शोभाराम कुमावत, अलवर	महाराज उदयभान सिंह,धौलपुर (अलवर)	नामकरण- के.ऍम. मुंशी उद्घाटनकर्ता- वी.एन.गाडगिल
2.	दितीय	25 मार्च 1948	पूर्व राजस्थान संघ	कोटा, बूंदी, झालवाड., टोंक, किशनगढ.,शाहपुरा, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर और कुशल्गढ़(ठिकाना)	गोकुल लाल आस्वा, शाहपुरा	महाराज भीम सिंह (कोटा)	उद्घाटनकर्ता - वी.एन.गाडगिल
3.	तृतीय	18 अप्रैल 1948	संयुक्त राजस्थान	पूर्व राजस्थान में उदयपुर रियासत शामिल	माणिक्यलाल वर्मा , उदयपुर	महाराणा भूपाल सिंह (उदयपुर)	उद्घाटनकर्ता- प.जवाहर लाल नेहरु
4.	चतुर्थ	30 मार्च 1949	वृहद राजस्थान	संयुक्त राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर शामिल	हीरालाल शास्त्री, जयपुर	महाराज सवाई मान सिंह II (जयपुर)	**महाराज प्रमुख- भूपालसिंह (उदयपुर)** उद्घाटनकर्ता- सरदार पटल
5.	पंचम	15 मई 1949	संयुक्त वृहत्तर राजस्थान	वृहद राजस्थान में मत्स्य संघ शामिल	हीरालाल शास्त्री, जयपुर	महाराज सवाई मान सिंह II (जयपुर)	डा. शंकर राय समिति की सिफारिश से मत्स्य संघ शामिल
6.	छठा	26 जनवरी 1950	राजस्थान संघ	सिरोही का राजस्थान में विलय (आबू-देलवाड़ा को छोड़कर)	हीरालाल शास्त्री, जयपुर	महाराज सवाई मान सिंह II (जयपुर)	राजस्थान बी श्रेणी का राज्य
7.	सप्तम	1 नवम्बर 1956	आधुनिक राजस्थान	अजमेर-मेरवाड़ा, आबू-देलवाड़ा(सिरोही) व् मध्यप्रदेश के मन्दसोर जिले की भानपुरा तहसील का सुनेल टप्पा शामिल किया और सिरोंज उपखंड मध्यप्रदेश को दिया	मोहनलाल सुखाड़िया के मुख्यमंत्री काल में	राजप्रमुख पद समाप्त,और राज्यपाल पद का प्रारंभ (जयपुर)	7वें संशोधन से राज्यों की श्रेणियां समाप्त

N
INDIA
GENERAL ELECTION 1951
AFGHANISTAN
JAMMU AND KASHMIR
CHINA
HP
PUNJAB
HIMACHAL PRADESH
P.E.P.S.U.
PAKISTAN
P.E.P.S.U.
P.E.P.S.U.
DELHI
NEPAL
SIKKIM
BHUTAN
ASSAM
RAJASTHAN
AJMER
A
UTTAR PRADESH
BIHAR
MANIPUR
BANGLADESH
VINDHYA PRADESH
TRIPURA
KUTCH
WEST BENGAL
MADHYA BHARAT
BHOPAL
MYANMAR
BO
SAURASHTRA
BO
BO
MADHYA PRADESH
ORISSA
Daman (Portuguese)
HYDERABAD
Bay of Bengal
Arabian Sea
BOMBAY
Yanam (French)
Goa (Portuguese)
MADRAS
LEGEND
International Boundary
State Boundary
A Ajmer
B Bilaspur
R Rajasthan
BO Bombay
P.E.P.S.U. Patiala and East Punjab States Union
MYSORE
COORG
Mahe (French)
Pondicherry (French)
Karaikal (French)
MADRAS
TRAVANCORE-COCHIN
ANDAMAN AND NICOBAR ISLANDS (INDIA)
SRI LANKA
Map not to Scale
INDIAN OCEAN
Copyright © 2012 www.mapsofindia.com
(Updated on 1st October 2012)

INDIA
1956
N
JAMMU AND KASHMIR
HP
PUNJAB
HIMACHAL PRADESH
Patiala & East Punjab States Union
DELHI
RAJASTHAN
AJMER MERWARA
UTTAR PRADESH
SIKKIM
NORTH-EAST FRONTIER AGENCY
ASSAM
EAST PAKISTAN
TRIPURA
BIHAR
WEST BENGAL
VINDHYA PRADESH
MADHYA BHARAT
BHOPAL
KUCHCHH
SAURASHTRA
MADHYA PRADESH
ORISSA
BOMBAY
HYDERABAD
ANDHRA PRADESH
BAY OF BENGAL
ARABIAN SEA
MYSORE
MADRAS
KERALA
LAKSHADWEEP
COCHIN
ANDAMAN AND NICOBAR ISLANDS
International Boundary
State Boundary
Map not to Scale
Copyright © 2012 www.mapsofindia.com
(Updated on 31st March 2012)